॥ श्रीहरिः ॥ 41

कल्याण

शक्ति-अङ्क

नवें वर्षका विशेषाङ्क

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ
कल्याण-शक्ति-अंक
भाद्रपद के अंक सहित
सम्पादक
हनुमानप्रसाद पोद्दार
श्रावण
भाद्रपद
१९९१
भाग ९
अङ्क
१-२
B.K. Mitra

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

सं० १९९१ से २०५७ तक	७८,१००
सं० २०५९ दसवाँ संस्करण	५,०००
	योग ८३,१००

मूल्य—एक सौ रुपये

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

visit us at: www.gitapress.org / e-mail:gitapres@ndf.vsnl.net.in

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीशक्त्यङ्क और परिशिष्टाङ्ककी विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-शङ्करकृत भवानी-स्तुति (पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री) २
२-श्रीदुर्गासप्तसती .... [दो पृष्ठोंमें]
३-श्रीदेव्यथर्वशीर्ष, उसका महत्त्व और अर्थ (अनु०—पं० श्रीअनन्त यज्ञेश्वरजी शास्त्री धुपकर, विद्यालङ्कार) ५
४-सगुणब्रह्म और त्रिशक्तितत्त्वस्वरूपमीमांसा (श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्री-शङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्ण-तीर्थ स्वामीजी महाराज) १२
५-शक्ति (श्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री-११०८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज) २५
६-शक्तितत्त्व (पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके विचार २९
७-तन्त्र और वेदान्त (श्रीअरविन्द, प्रेषक—श्रीनलिनीकान्त गुप्त) ३२
८-शक्तितत्त्व (श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम साहित्यदर्शनाद्याचार्य तर्करत्न न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री) ३३
९-भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ३५
१०-सर्वोपरि महाशक्ति (श्रीस्वामी पं० रामवल्लभा-शरणजी महाराज श्रीजानकीघाट, अयोध्याजी) ३८
११-शक्तिका रहस्य (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ४०
१२-शक्तिसामर्थ्य (स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर करनाली) ४५
१३-माता शक्तिकी पूजा (स्वामी श्रीअभेदानन्दजी, पी-एच्० डी०) ४७
१४-शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं है (स्वामी श्रीतपोवनजी महाराज) ५०
१५-शिव और शक्ति (स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती) ५३
१६-शक्तिसाधना (महामहोपाध्याय पं० श्री-गोपीनाथजी कविराज, एम्०ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी) ५५
१७-तत्त्व (श्री सर जॉन वुडरफ) ६४
१८-षट् शक्ति (पं० श्रीभवानीशंकरजी) ६८
१९-शक्ति और शक्तिमान्‌की अभिन्नता (श्री-आनन्दस्वरूपजी 'साहेबजी महाराज', दयालबाग़) ७०
२०-कल्याण ('शिव') ७१
२१-शक्ति-उपासना (श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया) ८१
२२-तन्त्र (पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ८४
२३-दश महाविद्या (पं० श्रीमोतीलालजी शर्मा गौड़, सम्पादक, 'शतपथब्राह्मण') ८९
२४-श्रीविद्या (पं० श्रीनारायणशास्त्रीजी खिस्ते) ११३
२५-शक्ति-तत्त्व (डॉ० श्रीभगवानदासजी, एम्० ए०, डी० लिट्०) १२१
२६-शक्ति-तत्त्व ('भारतधर्ममहामण्डल' के एक महात्मा) १२६
२७-शक्ति-तत्त्व-रहस्य (आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी) १३०
२८-शक्ति-तत्त्व अथवा श्रीदुर्गा-तत्त्व (पं० श्रीसकल नारायणजी शर्मा, काव्य-सांख्यव्याकरणतीर्थ) १३४

विषय	पृष्ठ-संख्या
२९-साधनमार्गमें शक्ति-तत्त्व (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण)	१३५
३०-शक्ति-तत्त्व (स्वामी श्रीमाधवानन्दजी महाराज)	१३९
३१-शक्ति-उपासनाकी सर्वव्यापकता (चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)	१४१
३२-शक्ति-स्वरूप-निरूपण (पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र)	१४४
३३-वाममार्गका यथार्थ स्वरूप (स्वामी श्रीतारानन्दतीर्थजी, तारापुर)	१४९
श्रीदुर्गासप्तशती	
३४-(महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाई हरिशङ्करजी शास्त्री)	१५२
३५-(बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजी)	१५५
३६-(पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	१५८
बलिदान-रहस्य	
३७-(स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)	१६१
३८-(एक सेवक)	१६२
३९-(पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री 'विद्यावाचस्पति')	१६४
महाशक्ति	
४०-('विद्यामार्तण्ड' पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)	१६५
४१-(स्वामी श्रीरामदासजी)	१६६
४२-शक्ति और शक्तिमान्का अभेद (प्रो० श्री एस्० एस्० सूर्यनारायण शास्त्री, एम्० ए०)	१६७
४३-श्रीमन्मध्वसम्प्रदायमें शक्ति-तत्त्व ('पण्डितभूषण' श्रीनारायणाचार्यजी बरखेडकर)	१६९
४४-श्रीशक्ति (पं० श्रीहनूमानजी शर्मा)	१७२
४५-श्रीकृष्णकी शक्ति श्रीराधिका (देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी भट्ट)	१७५
श्रीराधा-तत्त्व	
४६-(महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगङ्गानाथजी झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्० एल्० डी०)	१८८
४७-(भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर स्वामी श्रीयोगत्रयानन्दजीके उपदेश)	१८९
४८-('कवीन्द्र श्रीदिल-दरियाव')	१९२
श्रीसीता-तत्त्व	
४९-(पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी स्वामीके उपदेश)	१९६
५०-(पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम्० ए०)	२०५
५१-परात्परा शक्ति श्रीसीता (श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराज)	२११
५२-श्रीरामचरितमानसमें श्रीसीता-तत्त्व (श्रीजयरामदासजी 'दीन', रामायणी)	२१४
५३-शक्ति-रहस्य (पं० श्रीदुर्गादत्तजी शर्मा)	२१७
अर्जुनकी शक्ति-उपासना	
५४-विजयके लिये (महाभारत भीष्मपर्वसे)	२१८
५५-गुह्यतम प्रेमलीला-दर्शनके लिये (पद्मपुराणसे)	२१९
५६-श्रीतारा-रहस्य-निरूपण (चतुर्वेदी पं० श्रीकेशवदेवजी शास्त्री)	२२४
५७-तारा-रहस्य (डॉ० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०, डी० लिट्०)	२२५
५८-कात्यायनीजी (कहानी) (म० श्रीबालकरामजी विनायक)	२२८
५९-शिव और शक्ति (श्रीअनन्त शङ्कर कोल्हटकर बी० ए०)	२३२
६०-शक्तिका रहस्य (डॉ० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर)	२३३
६१-माँ! ओ माँ!! (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम्० ए०)	२३५
६२-श्रीशक्ति-तत्त्व (पं० श्रीसीताराम जयराम जोशी, एम्० ए०, साहित्यशास्त्राचार्य)	२३७
६३-नारदकृत राधास्तवन (पद्मपुराणसे)	२४१
६४-शक्ति-सम्प्रदाय (प्रो० श्रीवी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, एम्० ए०)	२४३
६५-माँ दुर्गे! तेरी जय हो!! (श्री 'अज्ञात')	२४५
६६-अस्पष्ट नामोच्चारणसे भी देवी प्रसन्न होती हैं (ह०भ०प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)	२४९
६७-पञ्च-मकारका आध्यात्मिक रहस्य (कवि श्रीदयाशङ्कर रविशङ्कर)	२५३
६८-शक्ति अथवा सक्रिय ब्रह्म (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)	२५७
६९-शक्तिका स्वरूप (डॉ० श्रीविनयतोष भट्टाचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	२६१
७०-वेद, चण्डी और गीतामें शक्ति-तत्त्व (श्रीनलिनीमोहन सान्याल, एम्० ए०, 'भाषा-तत्त्व-रत्न')	२६४

विषय	पृष्ठ-संख्या
उपनिषदोंमें शक्ति-तत्त्व	
७१-(श्रीश्रीधर मजूमदार, एम्० ए०)	२७०
७२-(पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा सांख्ययोगाचार्य)	२७२
७३-गीतामें शक्ति-तत्त्व (दीवानबहादुर श्री के० एस्० रामस्वामी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्०, भूतपूर्व जज, सम्पादक 'धर्मराज्य')	२७९
७४-ब्रह्मसूत्रमें शक्ति-तत्त्व (पण्डितप्रवर श्रीपञ्चानन तर्करत्न)	२८३
७५-शक्तिका स्वरूप (पं० श्रीदामोदरजी उपाध्याय)	२९४
७६-देवीभागवतमें शक्तिका स्वरूप (पं० श्रीमायाधरजी तर्कपञ्चानन)	२९५
७७-योगवासिष्ठमें शक्तिका स्वरूप (श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०)	२९८
७८-गायत्री-मीमांसा (श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज)	३०२
गायत्री-तत्त्व	
७९-(परिव्राजक ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी)	३१३
८०-(श्रीप्रेमी महाशय)	३१८
८१-विद्या-शक्ति (पं० श्रीबटुकनाथजी शर्मा एम्० ए०, साहित्योपाध्याय)	३२०
८२-महाशक्ति (डॉ० एच्० डब्ल्यू० बी० मॉरेनो एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)	३२२
८३-विज्ञान, शक्ति और पवित्रता (डॉ० श्रीराधाकमल मुकर्जी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	३२४
८४-माँकी कृपा	३३२
८५-शङ्कर और शक्तिवाद (पं० श्रीवाई० सुब्रह्मण्य शर्मा, सम्पादक 'अध्यात्मप्रकाश')	३३३
८६-श्रीशक्ति-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव (श्रीमाता-का एक भक्त)	३३६
८७-शाक्ताद्वैतवाद (पं० श्रीवीरमणिप्रसादजी उपाध्याय, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्याचार्य, न्यायशास्त्री)	३३८
८८-संस्कृत-साहित्यमें शक्ति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, कविरत्न)	३४८
८९-श्रीश्रीजगद्धात्री-तत्त्व (स्वामी भार्गव श्रीशिव-रामकिङ्कर योगत्रयानन्दजीके उपदेश)	३५३
९०-महासरस्वती-तत्त्व (स्वामी भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजीके उपदेश)	३५९
९१-माँकी झाँकी (श्री पी० एन० शंकरनारायण अय्यर बी० ए०, बी० एल्०)	३६६
९२-शक्ति-तत्त्व (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री)	३७३
९३-परा-शक्ति प्रकृति (ज्यो० पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)	३७५
९४-श्रीयन्त्र (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्० ए०)	३७९
९५-श्रीसीताजीका महाकाली-रूप (रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी, बी० ए०)	३८३
९६-तन्त्रमें यन्त्र और मन्त्र (श्रीदेवराजजी विद्यावाचस्पति)	३८७
९७-दीक्षा-रहस्य, कुमारी-पूजा और आम्नायभेद (सं० क०—पं० श्रीमेघराजजी गोस्वामी, मन्त्रशास्त्री, साहित्यविशारद)	३९८
९८-सर्वोपरि महाशक्ति (साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस')	४०१
९९-तारा-रहस्य (राजाबहादुर श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्त्व-विशारद, राजा साहेब टेक्काली)	४०४
१००-श्रीतारा-शक्ति (श्रीमोतीलाल रविशंकर घोड़ा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)	४०७
१०१-ब्रह्माण्ड-विस्तार परमात्मशक्ति मायाका विलास है! (श्रीविनायक नारायण जोशी, 'साखरे' महाराज)	४०८
१०२-ब्रह्म-विद्या (वेदान्ताचार्य श्रीकृष्णलालजी भगवानजी महाराज)	४११
१०३-शक्ति-विज्ञान (श्रीमती सुब्बलक्ष्मी अम्मल, बी० ए०, एल० टी०)	४१३
१०४-महाराष्ट्रकी शक्ति-उपासना (पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पाङ्गारकर बी० ए०)	४१६
१०५-गुजराती साहित्यमें शक्ति-पूजा (अध्यापक श्रीसाँवलजी नागर)	४२०
१०६-शिवजीका राधावतार (महाभागवतके आधारपर)	४२४

विषय	पृष्ठ-संख्या

१०७-भाव और आचार (श्रीयुत अटलबिहारी घोष, एम्० ए०, बी० एल्०) ४२५
१०८-सर्वोपरि महाशक्ति (तान्त्रिक पं० श्रीविदुरदत्तजी शर्मा चतुर्वेदी) ४३१
१०९-शक्ति-विज्ञान ही विज्ञान है (श्रीरामदासजी गौड़, एम्० ए०) ४३३
११०-नाद, विन्दु और कला (पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी साहित्यरत्न) ४४६
१११-षट्चक्र और कुण्डलिनी-शक्ति (श्रीभगवतीप्रसाद-सिंहजी, एम्० ए०, डिप्टीकलेक्टर) ४५१
११२-कुण्डलिनी-जागरणकी विधि (स्वामी श्रीज्योतिमयानन्दजी) ४५५
११३-शक्ति-उपासनाका तात्पर्य (एक दीन) ४५९
११४-अनन्यता और दुर्गाराधना (गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी) ४६३
११५-शक्ति-तत्त्व (परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी हरिनामदासजी उदासीन) ४६५
११६-प्रत्यक्ष घटनाएँ (एक जानकार) ४६६
११७-भारतकी नारी-शक्ति ४६७
११८-कुण्डलिनी (प्रो० श्रीशङ्करराव बी० दाण्डेकर, एम्० ए०) ४७२
११९-परा और अपरा शक्ति (श्रीरामचन्द्र शङ्कर टक्की महाराज, बी० ए०) ४७६
१२०-भण्डासुर-युद्धका रहस्य (चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसाद-सिंहजी) ४८०
१२१-शक्तिका सच्चा स्वरूप और उसका विकास (दण्डिस्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती) ४८२
१२२-ब्रह्मविद्या (पं० श्रीहरिदत्तजी शास्त्री, वेदादितीर्थ) ४८७
१२३-सङ्घ-शक्ति (पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ) ४९०
१२४-आत्म-शक्तिकी उपासना (पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी) ४९१
१२५-जगदम्बाकी दीपोत्सवी (श्रीजयेन्द्रराय भगवानलाल दूरकाल, एम्० ए०) ४९३
१२६-देवीका विराट् स्वरूप (देवीभागवतके आधारपर) ४९३
१२७-भद्रकाली देवी (डॉ० वेङ्कट सुब्बैया, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ४९४
१२८-महाशक्ति सावित्रीका मन्त्रयुद्धमें उपयोग (श्रीसुन्दरलाल नाथालालजी जोशी) ४९५
१२९-राष्ट्र-शक्ति (पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०) ४९७
१३०-शक्ति क्या है? (गोस्वामी पं० श्रीमदन-गोपालजी दीक्षित, मन्त्रशास्त्री) ५००
१३१-जगज्जननी जगदम्बिके! (श्रीनित्यानन्दजी जोशी, साहित्यशास्त्राचार्य) ५०२
१३२-मातृशक्तिचरण (पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे) ५०३
१३३-अन्तर्याग और बहिर्याग ५०४
१३४-शक्तिका तात्त्विक रूप (श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या) ५०५
१३५-वह शक्ति कहाँ चली गयी? (श्रीरूपरानीजी 'श्यामा') ५०६
१३६-शक्तिवादके कुछ प्रचलित अर्थ (बहिन श्रीकमलाजी 'विशारद') ५०८
१३७-माता (श्रीमती इन्दुमतीजी तिवारी, बी० ए०) ५०९
१३८-मातृशक्ति (बहिन कुमारी हरदेवी मलकानी) ५११
१३९-भगवद्गीतामें प्रकृति और पुरुष (श्रीएस्० एन्० ताडपत्रीकर, एम्० ए०) ५१३
१४०-यन्त्र-प्रसङ्ग (एक 'माता-सेवक') ५१४
१४१-शाक्त-धर्म (श्रीचिन्ताहरण चक्रवर्ती, एम्० ए०) ५१६
१४२-शक्ति-सन्दर्भ (श्रीविनायकरावजी भट्ट) ५२०
१४३-श्रद्धा-शक्ति (पं० श्रीवशिष्ठनारायणजी त्रिपाठी) ५२१
१४४-शक्ति-तत्त्वका आर्यग्रन्थोंमें स्थान (वामकौल-प्रवर्तकाचार्य पं० श्रीहरिदत्तजी शर्मा) ५२२
१४५-ब्रह्मसूत्रमें जगन्माताका स्वरूप (पण्डित श्रीहाराणचन्द्रजी शास्त्री, भट्टाचार्य) ५२५
१४६-काली-तत्त्व (डॉ० श्रीप्रभातचन्द्र चक्रवर्ती, काव्यतीर्थ, एम्० ए०, पी० आर० एस्०, पी-एच्० डी०) ५३१
१४७-सहज साधनामें महाशक्ति या माँ (श्रीभीम-चन्द्र चट्टोपाध्याय, बी० ए०, बी० एल्०, बी० एस्-सी०, एम्० आर० ई० ई०, एम्० आई० ई०) ५३७
१४८-लक्ष्मी-पार्वती-संवाद (बहिन श्रीजयदेवीजी) ५४१
१४९-बौद्ध और जैन-धर्ममें शक्ति-उपासना

विषय	पृष्ठ-संख्या

(दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशंकर देवशंकर मेहता, बी० ए०) ५४४
१५०-श्रीशतचण्डी-विधि और सप्तशती-महायन्त्र ('माता-सेवक') ५५०
१५१-श्रीदुर्गासप्तशती और श्रीमद्भगवद्गीता (पं० श्रीकलाधरजी त्रिपाठी) ५५३
१५२-जैन-धर्ममें शक्ति-पूजा (श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर, एम्० ए०, बी० एल्०) ५६५
१५३-शक्तिके विभिन्न वाहनोंका रहस्य (श्रीपरमानन्दजी शास्त्री 'आनन्द') ५६६
१५४-शक्ति-पूजा (श्रीभगवानदासजी केला) ५६८
१५५-महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती (पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्य-सांख्य-स्मृति-तीर्थ) ५६९
१५६-शक्तिपूजा और प्रस्तरकला (पं० श्रीवासुदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०) ५७३
१५७-गीताके शक्ति-मन्त्रमें शक्तियाँ (पं० श्रीबाबूरामजी शुक्ल, कविसम्राट् पद्यार्थवाचस्पति) ५७७
१५८-दयामयी माँ लक्ष्मी (श्री० ति० पे० रङ्गाचार्य, 'रा० विशारद') ५७८
१५९-शक्ति-उपासना और उसका रूप-स्वरूप (श्रीजुगलकिशोरजी 'विमल' सी० एडवोकेट) ५८०
१६०-षडध्व (सर जॉन वुडरफ भू० पू० न्यायाधीश कलकत्ता हाईकोर्ट) ५८३
१६१-भारतमें विद्युत्-शक्तिका उपयोग (पं० श्री-दयाशङ्करजी दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ५८८
१६२-श्रीयन्त्रका स्वरूप (श्रीललिताप्रसादजी डबराल व्याकरणाचार्य) ५९२
१६३-मातेश्वरी ब्रह्मविद्याके पुजारी (स्वामीजी श्री-नित्यानन्दजी भारती) ६१०
१६४-शक्ति ही ब्रह्म है (ठाकुर श्रीसूर्यनारायणसिंहजी) ६१३
१६५-नव दुर्गा और दस महाविद्याके ध्यान ६१५

परिशिष्टाङ्क (भाद्रपदका अङ्क)

१६६-माताकी दया (श्रीअरविन्द) ६१८
१६७-शक्ति-सम्बन्धी साहित्य (दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशंकर देवशंकरजी मेहता, बी० ए०) ६१९
१६८-बङ्गालके कतिपय शाक्त साधक (पं० श्री-चन्द्रदीपनारायणजी त्रिपाठी) ६२९
१६९-भारतवर्षके प्रधान शक्ति-पीठ (श्रीभगवतीप्रसाद-सिंहजी, एम्० ए०) ६३७
१७०-शक्तिपीठ ६४४
१७१-गुजरातमें शक्तिके तीन महापीठ ६४७
१७२-काशीमें देवियोंके मन्दिर और उनकी यात्रा (पं० श्रीशालिग्रामजी शर्मा) ६५५
१७३-शक्तिसञ्चयसे महाशक्तिपूजा ('शिव') ६५६
१७४-श्रीकामाख्या महापीठ (पं० श्रीपद्मनाथ भट्टाचार्य विद्याविनोद, एम्० ए०) ६५७
१७५-प्राचीन मूर्ति और यन्त्र (श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर एम्० ए०, बी० एल्०) ६५९
१७६-दिल्लीके दो प्रसिद्ध शक्तिपीठ (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए० आचार्य, शास्त्री) ६६०
१७७-श्रीओसम मातृमाता ६६१
१७८-श्रीआरासुरी माता (श्रीहेमचन्द्र शर्मा भट्ट, वैद्य) ६६२
१७९-श्रीवरदायिनी (श्रीनटवरलाल मणिशंकर द्विवेदी) ६६२
१८०-जगदम्बा श्रीकरणीदेवी ६६५
१८१-श्रीउग्रतारा-स्थान (श्रीहरिनन्दनजी ठाकुर) ६६९
१८२-श्रीश्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्यामन्दिर (पं० श्रीभगवतीप्रसादजी शुक्ल) ६७०
१८३-बड़ौदेकी श्रीअम्बामाता (श्रीहिम्मतलाल व्रजभूषणदास, मन्त्री श्रीत्रिम्बकनाथ-सेवामण्डल) .. ६७१
१८४-उत्तराखण्डका देवीस्थान (चतुर्वेदी डॉ० पं० श्रीविशालमणिजी शर्मा, उपाध्याय) ६७१
१८५-श्रीपूर्णागिरिपीठ (श्रीदुर्गाशंकरजी शुक्ल) ६७२
१८६-श्रीकेदारमण्डल शक्तिपीठ (पं० श्रीमहिमानन्दजी शर्मा शास्त्री, मैठाणी) ६७३
१८७-जालन्धरपीठ (स्वामी श्रीतारानन्दजी तीर्थ) ६७५
१८८-श्रीहरसिद्धि देवी (श्रीहरिसिंहजी हाड़ा) ६७६
१८९-देवी कनकावती (करेडीमाता) (श्रीउत्सवलालजी तिवारी विशारद) ६७७
१९०-श्रीदेवीजीका मन्दिर, महिदपुर (श्रीराधाकृष्ण गान्धी 'सन्तोषी') ६७९
१९१-अम्बिकास्थान (श्रीगौरीशंकरजी गनेडीवाला) ६८०
१९२-कंकाली देवी (श्रीराधाकृष्णजी भार्गव) ६८०
१९३-श्रीदुर्गामन्दिर, रामनगर (पं० श्रीलक्ष्मीदत्तजी मिश्र, रामनगर) ६८१
१९४-महादेवी आद्या शक्ति (श्रीसूर्यनारायणसिंहजी) ६८२

विषय पृष्ठ-संख्या

१९५-श्रीलयराई देवी (श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत) ६८३
१९६-श्रीदेवीमन्दिर, वेरी (श्रीबुद्धरामजी छारिया) ६८४
१९७-भगवती बगलामुखी, होशंगाबाद (श्री पी० एम्० कालेलकर) ६८४
१९८-श्रीकूलकुल्या देवी (पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय व्याकरणशास्त्री 'राम' ६८५
१९९-सहारनपुरमें दो पौराणिक शक्तिपीठ (पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर', विद्यालंकार, एम्० आर० ए० एस्०) ६८६
२००-मोरवी प्रान्तान्तर्गत श्रीत्रिपुरसुन्दरीका प्राचीन मन्दिर (दवे पं० श्रीकन्हैयालाल जयशंकर शर्मा) ... ६८८
२०१-श्रीसप्तशृंगी देवी प्रे०—(श्रीडालचन्द चौथमल) ६९१
२०२-श्रीशान्ता दुर्गा (कैवल्यपुर) (श्रीनारायण भास्कर नाईक गोमन्तक) ६९२
२०३-श्रीज्वालामुखीक्षेत्र (पं० श्रीभैरवदत्तजी शर्मा) ६९३
२०४-भावनाशक्ति (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६९३
२०५-क्षमायाचना (सम्पादक) ६९७
२०६-चित्र-परिचय ७००
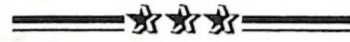
पद्य

१-श्रीजगदम्बिकादिव्याष्टोत्तरशताभिनवनामावली-प्रारम्भः (प्रे०—श्रीदिगम्बरदासजी) १०
२-शक्तिस्तवन (आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी) २९
३-स्वरूप-शक्ति (श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी) ३०
४-श्रीदेव्यपराधक्षमापनस्तोत्र (पं० श्रीरमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति') ३९
५-विजयिनी शक्ति, कोमलतम शक्ति (कविसम्राट् श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध') ८८
६-अम्ब-अनुकम्पा (स्व० पं० श्रीकृष्णशंकरजी तिवारी एम्० ए०) १२९
७-समता, विषमता (श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार') १३३
८-महामाया (पं० श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय) १४८
९-श्रीसीता-स्तुति (साह मोहनराज) १६०
१०-शक्ति-महिमा (साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस') २३४
११-शक्ति-स्तवन (पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम') २६०
१२-प्रार्थना (महात्मा श्रीजयगौरीशङ्कर सीतारामजी) ३०१
१३-प्रणयाञ्जलिः (श्रीयुत पं० श्यामनाथजी शुक्ल 'द्विजश्याम') ३२३
१४-भोली भवानी! ('कुमार') ३४७
१५-अनिर्वचनीय शक्ति (पं० श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु') ३७२
१६-माँ (श्रीगङ्गाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु') ३७८
१७-अम्बे! (श्रीकपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद') ३८२
१८-अलकें (श्रीजगन्नाथप्रसादजी) ४००
१९-दिव्य दर्शन (पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी साहित्यरत्न) ४०६
२०-शक्ति-तत्त्व (श्रीजगदीशजी झा 'विमल') ४१५
२१-अम्बे! (श्रीनन्दकिशोरजी झा 'किशोर' काव्यतीर्थ) ४३०
२२-शक्तितत्त्वाख्यानम् (पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री) ४४५
२३-सोरठा (ठाकुर श्रीबाघसिंहजी, नवलगढ़) ४५०
२४-माया (कु० श्रीहिम्मतसिंहजी साहित्यरञ्जन, भैंसरोडगढ़) ४५८
२५-मायाकी मधुशाला (महाकवि पु० श्रीप्रताप-नारायणजी, जयपुर) ४७१
२६-वर-याचना (पं० श्रीमदनगोपालजी गोस्वामी बी० ए०, 'अरविन्द' ४८९
२७-विजयावाहन (श्रीईशदत्तजी पाण्डेय 'श्रीश' शास्त्री, साहित्यरत्न) ५१०
२८-शक्तिशतकम् (पं० श्रीकुञ्जबिहारीजी मिश्र महाराज, शक्तिशतकसे) ५२८

विषय पृष्ठ-संख्या

२९-शक्ति-स्तवन (पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शुक्ल 'शंकर', अडिशनल सबजज, गोंडा) ५२९
३०-आराधना (पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ५८७
३१-महास्वप्न (पं० श्रीरूपनारायणजी त्रिपाठी 'मृदु') ५९०
३२-आदिशक्ति (कुँवर श्रीविश्वनाथसिंहजी समथर) ६७४
३३-शक्तिचालीसी (लेखक—स्व० लाला शङ्करदयाल 'खुश्तर', प्रे०—वैद्यभूषण श्रीहनुमानप्रसादजी गुप्त विशारद 'प्रेमयोगी मान') ६८७
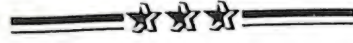
संगृहीत लेख और कविताएँ

१-शक्ति-स्तुति (स० र० उपनिषद्से) १
२-अमित महिमा (श्रीगदाधरजी) १९५
३-जय शक्ति! (स्व० सेठ श्रीअर्जुनदासजी केडिया) ... २७८
४-उपदेश (श्रीसवाईप्रतापसिंहजी महाराज 'व्रजनिधि') ३१२
५-परमधन (श्रीव्यासजी) ४७९
६-श्रीराधावन्दना ५५२
७-शरण ५७२
८-देवी-स्तुति ६१७
९-तू ही (चन्दबरदाई) ६६४
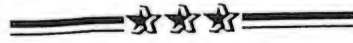
चित्र-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

इकरङ्गे-सादे चित्र

१-श्रीशिव-शक्ति .... टाइटल-पेज
२-माता श्रीराधाजी (श्रीव्रजेन्द्र) १८५
३-माता श्रीसीताजी ('') २०५
४-श्रीजगद्धात्री (श्रीपरमेश राय) ३५३
५-वीणापाणि सरस्वती (श्रीकनू देसाई) ३६०
६-माता श्रीउमाजी (श्रीव्रजेन्द्र) ३६९
७-श्रीयन्त्र चित्र नं० १ (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी) ३८०
८-श्रीयन्त्र चित्र नं० २ ('') ३८०
९-कालपुरुष (श्रीव्रजेन्द्र) ४५१
१०-श्रीयन्त्रम् (श्रीधनुषराम) ६०४
११-श्रीहादिविद्यायुतं श्रीचक्रम् ('') ६०८
ये दोनों चित्र नं० १०-११ श्रीफारवस गुजराती सभाकी कृपा और आज्ञासे उनके चित्रोंके आधारपर बनाये गये हैं।
१२-देवकृत देवीस्तुति (भाद्रपदके अंकका मुखपृष्ठ)
१३-उमाके सामने शिवका प्रदोष-नृत्य ६२६
१४-श्रीसरस्वतीदेवीकी झाँकी—बीकानेर ६२७
१५-श्रीसरस्वतीदेवी ६२७
१६-श्रीकरवीरनिवासी श्रीमहाकाली, कोल्हापुर ६३४
१७-गिरनारपर दत्तात्रेयका स्थान ६३४
१८-धूम्रलोचनवध ६३४
१९-श्रीतुलजाभवानीमन्दिर, तुलजापुर ६३५
२०-श्रीतुलजाभवानीजी, तुलजापुर ६३५
२१-भारतवर्षके प्रधान शक्तिपीठोंका नक़शा (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी) ६३७
२२-श्रीकालीजी—कलकत्ता ६३८
२३-श्रीसतीमन्दिर—कनखल ६३८
२४-काँगड़ादेवीका मन्दिर—काँगड़ा ६३८
२५-श्रीचामुण्डामन्दिर—मैसूर ६३८
२६-श्रीचामुण्डाजीके मन्दिरके समीप विशालकाय नन्दीमूर्ति—मैसूर ६३८
२७-श्रीत्रिपुरासुन्दरी—तिरवा ६३८
२८-कालीखोह—विन्ध्याचल ६३८
२९-दुर्गाकुण्ड और मन्दिर—काशी ६३८
३०-श्रीकामाख्यामन्दिर—गौहाटी ६३९
३१-श्रीगुह्येश्वरीमन्दिर—नेपाल ६३९
३२-श्रीक्षीरभवानी—काश्मीर ६४०
३३-श्रीज्वालाजी, ज्वालामुखी ६४०
३४-श्रीचण्डीदेवीमन्दिर—हरिद्वार ६४१
३५-श्रीचिन्तपूर्णीजी देवी—होशियारपुर ६४१
३६-श्रीनयनीदेवीमन्दिर—नैनीताल ६४१
३७-श्रीसारिकाचक्रेश्वर—हरिप्रभात (काश्मीर) ६४१
३८-श्रीजानकीमन्दिर—जनकपुर ६४१
३९-श्रीराधिका-मन्दिर—बरसाना ६४१
४०-श्रीमहालक्ष्मी (Bandivde, Goa) ६४१
४१-नवरात्र-उत्सव कुतियाना—जूनागढ़ ६४१
४२-श्रीकालकादेवी—बम्बई ६४२
४३-श्रीमहालक्ष्मीमन्दिर—बम्बई ६४२
४४-श्रीपार्वतीमन्दिर—पूना ६४३
४५-भवानीमन्दिर—प्रतापगढ़ ६४३
४६-श्रीविठोबा और श्रीरुक्मिणीमन्दिर—पण्ढरपुर ६४३
४७-श्रीमीनाक्षीमन्दिरका द्वार—मदुरा ६४३
४८-श्रीमीनाक्षी-स्वर्गकमल-सरोवर—मदुरा ६४३
४९-श्रीमीनाक्षी-मन्दिर—गोपुर—मदुरा ६४३
५०-श्रीकालीमन्दिर—कालीघाट—कलकत्ता ६४४
५१-श्रीआदिकालीमन्दिर—कलकत्ता ६४४
५२-श्रीसर्वमङ्गलादेवीमन्दिर—काशीपुर, कलकत्ता ६४४
५३-श्रीहजारभुजाकालीमन्दिर—शिवपुर, कलकत्ता ६४४
५४-श्रीदक्षिणेश्वरी काली (परमहंस रामकृष्णकी इष्टदेवी) कलकत्ता ६४५
५५-श्रीसिंहवाहिनी देवी (मल्लिकघरानेकी) कलकत्ता ६४५
५६-श्रीतारासुन्दरीदेवी—कलकत्ता ६४५
५७-श्रीतारासुन्दरीमन्दिर—कलकत्ता ६४५
५८-श्रीअम्बाजी भवानी—आरासुर ६४८
५९-श्रीअखैराम सेठकी डूबती हुई जहाजका अम्बाजीद्वारा बचाया जाना ६४८

विषय पृष्ठ-संख्या

६०-कुम्भारियाजी जैनमन्दिर ६४९
६१-श्रीबालाका मानसरोवर ६४९
६२-लक्कड़पुल पावागढ़ दरवाजा ६४९
६३-पावागढ़ पहाड़ ६४९
६४-श्रीमहाकालीमन्दिर—पावागढ़ ६४९
६५-अजाई माता ६५०
६६-मानसरोवर—बायें भागका दृश्य ६५०
६७-कोटेश्वरकुण्ड ६५०
६८-श्रीअम्बिकाजीके मन्दिरका शिखर ६५०
६९-मानसरोवरके दाहिने भागका दृश्य ६५०
७०-गब्बरगढ़ ६५१
७१-माईगृहद्वार ६५१
७२-शक्तिसेवकमण्डल, श्रीअम्बिकाजीका उत्सव ६५१
७३-कृष्णज्वारा ६५१
७४-माईजीका त्रिशूल ६५१
७५-चामुण्डाकी टेकरी ६५१
७६-चामुण्डाजीका द्वार ६५१
७७-श्रीबाला त्रिपुरसुन्दरी—चुवाळपीठ ६५४
७८-श्रीबाला बहुचराजीका मन्दिर ६५४
७९-शिवाजीपर भवानीकी कृपा ६५४
८०-श्रीरेणकादेवी ६५५
८१-श्रीकुबेरनाथ महादेव ६५५
८२-श्रीशिवरामकिंकर योगत्रयानन्द स्वामी ६५५
८३-पं० बटुकनाथजी भट्ट ६५५
८४-श्रीश्रीअन्नपूर्णाजी—काशी ६५६
८५-श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्रीलक्ष्मीजी और सरस्वतीजी—काशी ६५६
८६-श्रीदुर्गाजी—काशी ६५७
८७-श्रीराजराजेश्वरीजी—ललिताघाट, काशी ६५७
८८-श्रीविशालाक्षीजी—काशी ६५७
८९-श्रीसंकटाजी—काशी ६५७
९०-श्रीयोगमायामन्दिर—दिल्ली ६५८
९१-श्रीकालिकामन्दिर—दिल्ली ६५८
९२-पाण्डवोंका किला ६५८
९३-पृथ्वीराजमन्दिर ६५८
९४-तान्त्रिकीदेवी ६५९

विषय पृष्ठ-संख्या

९५-भैरव ६५९
९६-वानरीदेवी ६५९
९७-तान्त्रिक ताम्रयन्त्र (पृष्ठभाग) ६५९
९८-तान्त्रिक ताम्रयन्त्र (सम्मुखभाग) ६५९
९९-श्रीअम्बाजी माताजीका मुख्य मन्दिर—खेडब्रह्मा ६६२
१००-श्रीओसम मातृमाता ६६२
१०१-आरासुरी अम्बाजी—सूरत ६६२
१०२-श्रीमहिषासुरमर्दिनी और श्रीब्रह्माणीजी—खेडब्रह्मा ६६३
१०३-श्रीअम्बाजी माताजी—खेडब्रह्मा ६६३
१०४-श्रीवरदायिनीजी—रूपाल ६६३
१०५-दसभुजा दुर्गा ६६४
१०६-श्रीगणेशजननी ६६४
१०७-श्रीकृष्णकाली ६६४
१०८-श्रीकरणीजीका मन्दिर, बीकानेर ६६५
१०९-श्रीकरणीजीके मन्दिरका अग्रभाग ६६५
११०-श्रीनेड़ीजीका मन्दिर ६६५
१११-श्रीदधिमथी देवी ६६५
११२-श्रीमहिषमर्दिनी—खजुराहो ६६८
११३-श्रीगङ्गा—खजुराहो ६६८
११४-श्रीकालिकाजी—धार ६६८
११५-श्रीएकलवीर्य देवीजी ६६८
११६-महिषमर्दिनी आदि छः देवियाँ ६६९
(१) महिषमर्दिनी दुर्गा
(२) काली
(३) नील सरस्वती
(४) उग्रतारा
(५) एकजटा
(६) त्रिपुरसुन्दरी
११७-श्रीअन्नपूर्णाजी—सक्खर ६६९
११८-श्रीभद्रकालीमन्दिर—थानेश्वर ६६९
११९-श्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्यामन्दिर—बाँगरामऊ ६७०
१२०-श्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्या—बाँगरामऊ ६७०
१२१-श्रीअम्बिकामन्दिर—सूरत ६७१
१२२-श्रीअम्बिकादेवी—सूरत ६७१
१२३-श्रीअम्बाजी माता—बड़ौदा ६७१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१२४-सरस्वती गङ्गाके ऊपर मटसहित भगवती-मन्दिर	६७१
१२५-श्रीपूर्णागिरिपीठ	६७२
१२६-कालीमठ	६७३
१२७-गौरीकुण्ड	६७४
१२८-जालन्धरपीठ	६७५
१२९-श्रीहरसिद्धिदेवी—उज्जैन	६७६
१३०-श्रीकालिकाजी—उज्जैन	६७७
१३१-देवी कनकावती—मालवा	६७७
१३२-श्रीदेवीजीका मन्दिर—महिदपुर	६७९
१३३-श्रीमहीमयी	६८०
१३४-कङ्कालीदेवी प्रयाग	६८१
१३५-श्रीमहादुर्गा और सिंहशार्दूल	६८१
१३६-श्रीदुर्गामन्दिर—रामनगर	६८२
१३७-श्रीदेवांजी—मनीयर	६८३
१३८-श्रीदेवीमन्दिर—बेरी	६८४
१३९-भगवती बगलामुखी—होशंगाबाद	६८४
१४०-श्रीकूलकुल्यादेवीकी मृन्मयी मूर्ति	६८५
१४१-श्रीकूलकुल्येश्वर महादेव	६८५
१४२-देवीकुण्डका सिंहावलोकन	६८७
१४३-श्रीशान्तादुर्गा—कैवल्यपुर, गोवा	६९०
१४४-श्रीलयराई देवी—शिरोग्राम	६९०
१४५-श्रीमहालसादेवी—महादल गोवा	६९०
१४६-श्रीसप्तशृङ्गीदेवी—नासिक	६९१
१४७-श्रीमहालक्ष्मीजी—मालेगाँव	६९१
१४८-श्रीसप्तशृङ्गीदेवीजीका पहाड़	६९१
१४९-श्रीज्वालाजीका आँगन ज्वालामुखी	६९२
१५०-श्रीज्वालामुखीजीका आदिस्थान	६९३
१५१-श्रीशारदाम्बा शृङ्गेरी	६९८
१५२-श्रीशारदाम्बा, शिवगङ्गा, मैसूरराज्य	६९८
१५३-श्रीकामाक्षीमन्दिर—कांची	६९९
१५४-श्रीमहिषासुरमर्दिनी	६९९
१५५-श्रीमहिषासुरमर्दिनी गुफा महाबलीपुरम्	६९९

इनके सिवा यन्त्रोंके अनेकों छोटे-बड़े चित्र और हैं।

॥ श्रीहरि: ॥
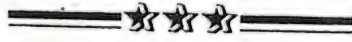
ग्रन्थाकारमें उपलब्ध

'कल्याण' के पुराने, अति उपयोगी पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—इसमें शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन करानेवाली मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों एवं अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर इसमें रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं। सारांशत: यह विशेषाङ्क सर्वसाधारण जनोंको योगके कल्याणकारी (अवदानों) और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंकी ओर आकृष्ट कर 'योग'के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०] संतोंकी महिमासे मण्डित, उनकी शिक्षाओं-उपदेशों और प्रेरणाओंसे पूरित यह 'संत-अङ्क' नित्य पठनीय और सर्वदा सेवनीय है। इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों एवं त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उनके पारमार्थिक आदर्श, जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं। और, किसीको भी उनके पद-चिन्होंपर चलनेकी सत्प्रेरणा दे सकते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचारों और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत होनेसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। अत: सभीके लिये विशेषत: आत्मकल्याणकामी पुरुषोंके लिये यह उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र—दो खण्डोंमें) [वर्ष१७, सन् १९४३ ई०]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। महाभारतकी अत्यधिक महिमा और अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा गया है।

संक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र) [वर्ष १९, सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअयोध्या, श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त इसमें शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती गङ्गाकी महिमासहित; यमुना-स्नान, तीर्थ, व्रत, देवपूजन, श्राद्ध, दानादिके विषयमें भी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष २१, सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणकारी महान् साधनों, उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती), तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार आदि अनेक गम्भीर, रोचक विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त पुराणोंमें) है। कल्याणकामी पुरुषोंके लिये इनका अनुशीलन लाभप्रद है।

नारी-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई०]—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक-सामग्री इसके उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनों और देवियोंसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय संस्कृति—विशेषतः हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसंधानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी इसमें वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्तचरिताङ्क (सचित्र) [वर्ष २६, सन् १९५२ ई०]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले अनेकों भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस, मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे अवश्य ही नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहद् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषतः बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान् बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक तथा अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं इसके बालोचित आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और इसकी कल्याणकारी बातें हृदयङ्गम करने लायक, सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, वर्तमान स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन—अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। अतः भारतके प्रायः समस्त तीर्थोंका अनुसंधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये महत्त्वपूर्ण मार्ग-दर्शक (गाइड) हो सकता है।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र) [वर्ष ३४, सन् १९६० ई०]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसंगोंके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर इसमें महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अतः साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दाराननवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ } गोरखपुर, श्रावण १९९१, अगस्त १९३४ { संख्या १ पूर्ण संख्या ९७

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥

(स० र० उपनिषद्)

शङ्करकृत भवानी-स्तुति

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः ॥ १ ॥

भवानी, औरोंकी तो बात ही क्या, अखिल सृष्टिके रचयिता प्रजापति ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते; त्रिपुरहर शङ्कर पाँच मुख रहते हुए भी इस विषयमें मूक होकर रह जाते हैं; छः मुखवाले कार्तिकेय भी मन मारकर बैठ जाते हैं। इन सबकी कौन कहे, हजार मुखवाले शेषजी भी मन मसोसकर रह जाते हैं, परन्तु तुम्हारी स्तुति नहीं कर पाते। कोई करे भी तो कैसे? तुम्हारे गुणोंका थाह पावे तब न। फिर मेरे-जैसे जीवोंकी तो सामर्थ्य ही क्या जो इस काममें हाथ डालनेका दुःसाहस करे।'

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥ २ ॥

'हे शरणार्थियोंको शरण देनेवाली, तुम्हें छोड़कर जितने दूसरे देवता हैं वे अपने हाथोंसे ही अभय और वरदानका काम लेते हैं, इसीसे तो उन्होंने अपने हाथोंमें अभय और वरद मुद्रा धारण कर रक्खी है। तुम्हीं एक ऐसी हो जो इन दोनों ही मुद्राओंके धारण करनेका स्वाँग नहीं रचतीं। रचने भी क्यों लगीं, तुम्हें इसकी आवश्यकता ही क्या है? तुम्हारे दोनों चरण ही आश्रितोंको सब प्रकारके भयोंसे मुक्त करने तथा उन्हें इच्छित फलसे अधिक देनेमें समर्थ हैं। तुम्हारे हाथ सदा शत्रुसंहारके काममें ही लगे रहते हैं। भक्तोंके लिये तो तुम्हारे चरण ही पर्याप्त हैं।'

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये।
तदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः ॥ ३ ॥

'हे शैलेन्द्रतनये, शास्त्र एवं सन्त यह कहते हैं कि तुम्हारे पलक मारते ही यह संसार प्रलयके गर्भमें लीन हो जाता है और पलक खोलते ही यह फिरसे प्रकट हो जाता है, संसारका बनना और बिगड़ना तुम्हारे लिये एक पलकका खेल है। तुम्हारे एक बार पलक उघाड़नेसे जो यह संसार खड़ा हो गया है यह एकबारगी नष्ट न हो जाय, मालूम होता है, इसीलिये तुम कभी पलक गिराती नहीं, सदा निर्निमेष दृष्टिसे अपने भक्तोंकी ओर निहारती रहती हो।'

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः ॥ ४ ॥

'हे शिवे, अधखिले नीलकमलके समान कान्तिवाले अपने विशाल नेत्रोंसे तुम्हारे सुरमुनिदुर्लभ चरणोंसे बहुत दूर पड़े हुए मुझ दीनपर भी अपने कृपापीयूषकी वर्षा करो। तुम्हारे ऐसा करनेसे मैं तो कृतार्थ हो जाऊँगा और तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं; क्योंकि तुम्हारी कृपाका भण्डार अटूट है, मुझपर कुछ छींटे डाल देनेसे उसका दिवाला नहीं निकलेगा। फिर तुम इतनी कंजूसी किसलिये करती हो, क्यों नहीं मुझे एक बार ही सदाके लिये निहाल कर देती। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे सभी जगह समानरूपसे अमृतवर्षा करता है। उसकी दृष्टिमें एक वीरान जंगल और किसी राजाधिराजकी गगनचुम्बिनी अट्टालिकामें कोई अन्तर नहीं है। फिर तुम्हीं मुझ दीनपर क्यों नहीं ढरतीं, मुझसे इतना अलगाव क्यों कर रक्खा है? क्या इस प्रकारका वैषम्य तुम्हें शोभा देता है? नहीं नहीं, कदापि नहीं। अब कृपया शीघ्र इस दीनको अपनाकर अपने शीतल चरणतलमें आश्रय दो, जिससे यह सदाके लिये तुम्हारा क्रीतदास बन जाय, तुम्हें छोड़कर दूसरी ओर कभी भूलकर भी न ताके।'

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ॥ ५ ॥

'घी, दूध, अंगूर अथवा शहदका स्वाद कैसा है और उनके स्वादमें क्या-क्या अन्तर है—इसे हम शब्दोंद्वारा

अलग-अलग करके किसी प्रकार भी नहीं समझा सकते, चाहे हम कितने ही पण्डित और शब्दशास्त्री क्यों न हों। इसका तो हम रसनेन्द्रियके द्वारा अनुभव ही कर सकते हैं, दूसरेको समझा नहीं सकते। इसी प्रकार, हे देवि, तुम्हारी अनुपम छविका कोई वर्णन नहीं कर सकता; वह तो केवल परमशिवके प्रत्यक्षका ही विषय है। सौन्दर्यकी तो बात ही क्या, तुम्हारे और-और गुणोंका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। वेद और उपनिषद् भी हार मान जाते हैं और 'नेति, नेति' कहकर ही अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।'

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥ ६॥

'संसारमें लोग अनेक प्रकारके गुणोंसे युक्त, पत्तोंवाली लताका ही आदरपूर्वक सेवन करते हैं; परन्तु मेरा अपना मत तो यह है कि जगत्में सब लोगोंको अपर्णा (बिना पत्तोंकी बेल अर्थात् देवी पार्वती, जो इस नामसे प्रसिद्ध हैं) का ही सेवन करना चाहिये, जिनके संसर्गसे पुराना स्थाणु (ठूँठ अर्थात् देवाधिदेव महादेव, जो संसारके आदिकारण होनेसे सबसे पुराने तथा सर्वगत, अक्रिय, अपरिणामी एवं निर्विकार होनेके कारण 'स्थाणु' अर्थात् अविचल कहलाते हैं) भी मोक्षरूपी फल देने लगता है। तात्पर्य यह है कि 'सदाशिव' नामसे अभिहित निर्गुण परमात्मा सर्वथा क्रियाशून्य होनेसे उनके द्वारा अथवा उनकी कृपासे मोक्ष आदि फलकी प्राप्ति असम्भव है, उनके शक्तिसमन्वित अर्थात् सगुण एवं सक्रिय होनेपर ही उनके द्वारा इस प्रकार आदान-प्रदानकी क्रिया सम्भव है।'

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसासाधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः॥ ७॥

'हे देवि, मुझ शरणागतपर शीघ्र ही अपने कृपाकटाक्षका निक्षेप कर मुझे कृतकृत्य करो। माना कि मेरे आचरण साधुओंके-से नहीं हैं, किन्तु मैं तुम्हारी शरणमें तो चला आया हूँ। क्या शरणमें आये हुएकी तुम्हें उपेक्षा करनी चाहिये? यदि शरणमें चले आनेपर भी शरणार्थीके सम्बन्धमें तुम यह विचार करोगी कि उसके आचरण उत्तम हैं या नहीं और मुझ-जैसे मन्द आचरणवालोंसे बेरुखीका बर्ताव करोगी तो फिर तुममें और दूसरे देवताओंमें अन्तर ही क्या रहा? कल्पवृक्षके नीचे चले जानेपर भी यदि किसीकी इच्छा पूरी न हो तो फिर उसमें और साधारण वृक्षोंमें क्या अन्तर है? कल्पवृक्षका धर्म ही है अर्थार्थीकी कामनाको पूर्ण करना। फिर तुम अपने धर्मको कैसे छोड़ सकती हो। तुम्हें अपने विरदकी रक्षाके लिये ही मेरी बाँह पकड़नी होगी, मुझे अपनी शरणमें लेना होगा। यदि मेरा परित्याग करती हो तो साथ-ही-साथ अपनी शरणागतवत्सलताका बाना भी छोड़ना होगा।'

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ८॥

'हे उमे, हे लम्बोदरजननि, मुझे तुम्हारे चरणकमलोंका ही पूरा-पूरा भरोसा है, अन्य किसी देवताका सहारा नहीं है। फिर भी तुम्हारा हृदय यदि मेरे प्रति दयार्द्र नहीं होता तो मैं अवलम्बहीन किसकी शरणमें जाऊँगा। सब ओरसे मुँह मोड़कर तो तुम्हारा आश्रय ग्रहण किया है, तुम्हीं यदि मुझे दुत्कार दोगी तो फिर मुझे कौन अपनी शरणमें लेगा। अतः मुझ निराश्रयको आश्रय देना ही होगा।'

अयःस्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्॥ ९॥

'पारसमणिका स्पर्श पाते ही लोहा तत्काल सोना बन जाता है और नालेका गन्दा पानी भी जगत्पावनी गंगाजीकी धारामें मिलकर स्वयं जगत्पावन हो जाता है। फिर अनेक प्रकारके पापोंसे कलुषित हुआ मेरा मन क्या तुम्हारे प्रेमको प्राप्त करके भी निर्मल नहीं होगा, अवश्य होगा।' महात्मा सूरदासजीने भी अपने एक पदमें इसी प्रकारके उद्गार प्रकट किये हैं। वे कहते हैं—

एक नदिया, एक नारु कहावत, मैलो नीर भरो।
दोउ मिलकै जब एक बरन भयो, सुरसरि नाम परो॥
एक लोहा पूजामें राख्यो, एक घर बधिक परो।
पारस गुन-अवगुन नहि चितवै, कंचन करत खरो॥

त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियम-
स्त्वमज्ञानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।

इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तन्दिवमुचितमीशानि कुरु तत् ॥१०॥

'तुम्हारे अतिरिक्त जो दूसरे देवता हैं उनके द्वारा उनके उपासकोंको इच्छित फलकी प्राप्ति हो ही, ऐसा नियम नहीं है। क्योंकि प्रथम तो वे सर्वसमर्थ नहीं हैं, वे अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार ही अपने उपासकोंकी इच्छाको पूर्ण कर सकते हैं। अपनी सामर्थ्यसे अधिक वे नहीं दे सकते। फिर जो कुछ भी वे देते हैं उसके लिये मूल्य भी पूरा-पूरा वसूल करते हैं। मूल्य पूरा अदा न करनेसे अथवा साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि रह जानेपर अथवा विधिमें वैगुण्य होनेसे वे इच्छित फल, सामर्थ्य होनेपर भी, नहीं देते। तुम्हारी बात कुछ दूसरी ही है। तुम तो अपने भक्तोंको उनकी इच्छासे अधिक भी दे सकती हो।' किसी भक्तने अपने भगवान्‌के प्रति कहा है—

'हो तृषित आकुल अमित प्रभु, चाहता जो तुमसे नीर।
तुम तृषाहारी अनोखे उसे देते सुधाक्षीर॥'

बात यह है कि हम अल्पज्ञ जीव तुम्हारी अतुल सामर्थ्यको न जानकर तुमसे बहुत छोटी-छोटी चीजें माँग बैठते हैं, किन्तु तुम इतनी दयालु हो कि हमें आशातीत फल प्रदान करती हो। तुम सर्वज्ञ हो, अतः हमारी आवश्यकताओंको भलीभाँति समझकर हमारे लिये जो उचित होता है वही करती हो। और देवता तो हमारी सांसारिक इच्छाओंको पूर्ण करके ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं, किन्तु तुम हमारी सांसारिक कामनाओंको भी पूर्ण करती हो और साथ-ही-साथ अपनी विमल भक्ति भी देती हो। गीतामें भगवान्‌ने भी कहा है—'मद्भक्ता यान्ति मामपि'। ब्रह्मादिक पूर्वजोंने तुममें और अन्य देवताओंमें यही अन्तर बताया है। इसीलिये मेरा मन रातदिन तुम्हारा ही चिन्तन करता रहता है, तुम्हींसे लौ लगाये हुए है। हे परमेश्वरि! अब जैसा उचित समझो करो। चाहे तारो चाहे मारो, मैं तो तुम्हारी ही शरणमें पड़ा हूँ। तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ, किसकी शरण लूँ? मुझ-जैसे अधमोंको और कहाँ ठिकाना है। आश्रयहीनको आश्रय देनेवाला तुमसे बढ़कर कहाँ पाऊँगा, तुम्हीं बताओ।

निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।
महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना ॥११॥

'कैलासमें तुम्हारा घर है, जो सारी समृद्धियोंकी खान है तथा जहाँकी शोभाको स्वर्गादि लोक भी नहीं पा सकते; ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगण, जिनसे बढ़कर इस संसारमें कोई नहीं है, बन्दीजनोंकी भाँति तुम्हारी विरदावलीका बखान करते रहते हैं; सारी त्रिलोकी तुम्हारा कुटुम्ब है, तुम्हारी दृष्टिमें कोई पराया है ही नहीं; आठों सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारे दरवाजेपर खड़ी रहती हैं और तुम्हारी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। स्वयं देवाधिदेव महादेव, जो सारे संसारके स्वामी हैं और साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं, तुम्हारे प्राणपति हैं और नगाधिराज हिमालय तुम्हारे पिता हैं। तुम्हारी महिमाकी भला कौन समता कर सकता है?'

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ॥१२॥

'यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि स्वयं महादेवजीके पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। बूढ़े बैलपर तो वे सवारी करते हैं, भाँग-धतूरा खाते हैं, कभी-कभी हलाहल भी चढ़ा जाते हैं, नंग-धड़ंग दिगम्बरवेशमें रहते हैं, श्मशानमें विचरते रहते हैं, विषधर सर्पोंको अपने अंगोंमें लिपटाये रहते हैं और भस्मसे अपने शरीरको सजाये रखते हैं। स्वयं उनका तो यह हाल है, जो जगजाहिर है; फिर उनके घरमें इतनी समृद्धि कहाँसे आयी! यह सब तुम्हारा ही प्रभाव है, तुम्हारी ही महिमा है।

अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः सङ्गत्याः फलमिति च कल्याणि कलये ॥१३॥

जो भगवान् शङ्कर अखिल ब्रह्माण्डके संहारमें स्वभावसे ही रत हैं और जो श्मशानमें रहते हैं तथा चिता-भस्म रमाये रहते हैं उन्हींने समस्त भूमण्डलपर कृपा करके भयङ्कर हलाहलको गलेमें धारण कर लिया—यह हे मङ्गलमयि! तुम्हारे ही साथ रहनेका फल है; नहीं तो सारे संसारको ग्रसनेवाले महाकालरूप भगवान्‌में इतनी दया कहाँसे आती? —चिम्मनलाल गोस्वामी

कवच, अर्गला, कीलक और रहस्य सहित

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष, उसका महत्त्व और अर्थ

(लेखक—पं० श्रीअनन्त यज्ञेश्वर शास्त्री धुपकर, विद्यालंकार)

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

(भाषाटीकासमेतम्)

१—ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ।

अर्थ—सभी देव, देवीके समीप रहकर, नम्रतासे प्रार्थना करने लगे कि हे महादेवि ! तुम कौन हो ?

२—साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यं च ।

अर्थ—उसने कहा, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ । मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है ।

३—अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं जगत् ।

अर्थ—मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ । मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ । अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ । पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ । यह सारा दृश्य जगत् मैं ही हूँ ।

४—वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ।

अर्थ—वेद और अवेद भी मैं हूँ । विद्या और अविद्या मैं, अजा और अनजा भी मैं, नीचे-ऊपर, अगल-बगल भी मैं ही हूँ ।

५—अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि । अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि । अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ।

अर्थ—मैं रुद्रों और वसुओंके रूपमें सञ्चार करती हूँ । मैं आदित्यों और विश्वेदेवोंके रूपमें फिरा करती हूँ । मैं दोनों मित्रावरुणका, इन्द्राग्निका और दोनों अश्विनीकुमारोंका पोषण करती हूँ ।

६—अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि । अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ।

अर्थ—मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगको धारण करती हूँ । त्रैलोक्यको आक्रमण करनेके लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापतिको मैं ही धारण करती हूँ ।

७—अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते । अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । य एवं वेद । स दैवीं सम्पदमाप्नोति ।

अर्थ—देवोंको उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमानके लिये हविर्द्रव्योंसे युक्त धन धारण करती हूँ । मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी, उपासकोंको धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्होंमें (यजन करने योग्य देवोंमें) मुख्य हूँ । मैं आत्मस्वरूपपर आकाशादि निर्माण करती हूँ । मेरा स्थान आत्मस्वरूपको धारण करनेवाली बुद्धिवृत्तिमें है । जो इस प्रकार जानता है वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है ।

८—ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥

अर्थ—तब देवोंने कहा, देवीको नमस्कार है । बड़े बड़ोंको अपने-अपने कर्तव्यमें प्रवृत्त करनेवाली कल्याण-कर्त्रीको सदा नमस्कार है । गुणसाम्यावस्थारूपिणी मङ्गलमयी देवीको नमस्कार है । नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं ।

९—तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥

अर्थ—उन अग्निके-से वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गा-

देवीकी हम शरणमें हैं। असुरोंका नाश करनेवाली देवी! तुम्हें नमस्कार है।

१०-देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां
विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥

अर्थ—प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया उसको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनुतुल्य आनन्ददायक और अन्न और बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर हमारे समीप आवे।

११-कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्। सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥

अर्थ—कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति और दक्ष-कन्या (सती), पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं।

१२-महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्॥

अर्थ—हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यानमें) प्रवृत्त करें।

१३-अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥

अर्थ—हे दक्ष! आपकी जो कन्या अदिति है वह प्रसूता हुई और उनके स्तुत्यर्ह और मृत्युरहित देव उत्पन्न हुए।

१४-कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्॥

अर्थ—काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स—वर्ण, मातरिश्वा—वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल—वर्ण, और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है।

[शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासकात्मिका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका, महात्रिपुरसुन्दरी—यही इस मन्त्रका भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्रमें पञ्चदशी कादि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकारके अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थमें बताये हैं। इसी प्रकार 'वरिवस्यारहस्य' आदि ग्रन्थोंमें इसके और भी अनेक अर्थ दरसाये हैं। श्रुतिमें भी ये मन्त्र इस प्रकारसे अर्थात् कचित् स्वरूपोच्चार, कचित् लक्षणा और लक्षित लक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्-पृथक् अवयव दरसाकर जानबूझकर विशृंखलरूपसे कहे गये हैं। इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।]

१५-एषात्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति।

अर्थ—यह परमात्माकी शक्ति है। यह विश्वमोहिनी हैं। पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। यह 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है वह शोकको पार कर जाता है।

१६-नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः।

अर्थ—हे भगवती, तुम्हें नमस्कार है। हे माता! सब प्रकारसे हमारी रक्षा करो।

१७-सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥

अर्थ—(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वही यह अष्ट वसु हैं; वही यह एकादश रुद्र हैं; वही यह द्वादश आदित्य हैं; वही यह सोमपान करनेवाले और न करनेवाले विश्वेदेव हैं; वही यह यातुधान (एक प्रकारके राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं; वही यह सत्त्व-रज-तम हैं; वही यह ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं; वही यह प्रजापति-इन्द्र-मनु हैं; वही यह ग्रह, नक्षत्र और तारा हैं; वही कलाकाष्ठादि कालरूपिणी हैं; पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्तरहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याणदात्री और मङ्गलरूपिणी उन देवीको हम सदा प्रणाम करते हैं।

१८-वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥
१९-एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥

अर्थ—वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई' कारसे युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवीका बीज है वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस एकाक्षर ब्रह्मका ऐसे यति ध्यान करते हैं जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण हैं और जो ज्ञानके सागर हैं। (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकारके समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थसे भरा हुआ है। संक्षेपमें इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द समरसीभूत शिवशक्तिस्फुरण है।)

२०-वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः॥
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः।
विच्चे नवार्णकोऽणुः स्यान्महदानन्ददायकः॥

अर्थ—वाक् वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू—काम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यञ्जन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकारसे युक्त (चा), सूर्य (म), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वारसे युक्त (मुं), टकारसे तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ'से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकोंको आनन्द और ब्रह्मसायुज्य देनेवाला है।

[इस मन्त्रका अर्थ—हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वती! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी! हे आनन्दरूपिणी महाकाली! ब्रह्मविद्या पानेके लिये हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीस्वरूपिणी चण्डिके! तुम्हें नमस्कार है। अविद्यारूप रज्जुकी दृढ़ ग्रन्थिको खोलकर मुझे मुक्त करो।]

२१-हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥

अर्थ—हृत्कमलके मध्यमें रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अङ्कुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रवाली, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ।

२२-नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥

अर्थ—महाभयका नाश करनेवाली, महासङ्कटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।

२३-यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्ता लक्ष्याजैका नैकेति॥

अर्थ—जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य देख नहीं पड़ता इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म समझमें नहीं आता इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही विश्वरूपमें सजी हुई है इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अजा, एका और नैका कहाती है।

२४-मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता* शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥

अर्थ-सब मन्त्रोंमें 'मातृका'—मूलाक्षररूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें अर्थरूपसे रहनेवाली, ज्ञानोंमें 'चिन्मयातीता', शून्योंमें 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है वह दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हैं।

२५-तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥

अर्थ-उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशक और संसारसागरसे तारनेवाली दुर्गा देवीको संसारसे डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ।

२६-इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥

अर्थ-इस अथर्वशीर्षका जो अध्ययन करता है उसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके जपका फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्षको न जानकर जो प्रतिमास्थापन करता है वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता। अष्टोत्तरशत (१०८) जप (इत्यादि) इसकी पुरश्चरणविधि है। जो इसका दस बार पाठ करता है वह उसी क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महादेवीके प्रसादसे बड़े दुस्तर संकटोंको पार कर जाता है।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत् ॥

अर्थ-इसका सायंकालमें अध्ययन करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें अध्ययन करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है, दोनों समय अध्ययन करनेवाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रिमें तुरीय† सन्ध्याके समय जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। नयी प्रतिमापर जप करनेसे देवतासांनिध्य प्राप्त होता है। भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योगमें महादेवीकी संनिधिमें जप करनेसे महामृत्युसे तर जाता है। जो इस प्रकार जानता है वह महामृत्युसे तर जाता है। इस प्रकार यह अविद्यानाशिनी ब्रह्मविद्या है।

(१) पदार्थमात्र यद्यपि ब्रह्मरूप ही है, तथापि भक्तचित्तावलम्बनार्थ परमात्माने अनेक विभूतियाँ कल्पित की हैं। इन सब विभूतियोंमें सच्चिद्रूप ब्रह्म यद्यपि समरूपसे ही स्थित है, तथापि दर्पण, मणि, जल आदि उपाधियोंके शुद्धितारतम्यके अनुसार प्रतिबिम्बधर्ममें भी तारतम्य हुआ करता है। जिस प्रकार तरतमभाव उपाधिमें भी होता है, उसी प्रकार ब्रह्मत्वके स्फुरणतारतम्यके अनुसार विभूतियोंमें भी तरतमभाव उत्पन्न हुआ करता है—ऐसा शास्त्रसिद्धान्त है, और इसलिये उपास्यतर एकैकगुणोपाधि ब्रह्मविष्ण्वादिकोंसे भी गुणत्रयसाम्यावस्थोपाधिक भगवती महामाया ही सर्वोत्तम विभूति हैं। अर्थात् उनकी उपासना ही मुख्य है। और इसीलिये सब आगमशास्त्रोंमें उन्हींका बड़ा विस्तार है। इसी प्रकार अखिल भारतवर्षमें देवीकी उपासनाका सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन और प्रबल है। यही नहीं, प्रत्युत शैव, वैष्णव आदि अन्य सम्प्रदायोंमें भी शक्तिकी उपासना अखण्डरूपसे अनुस्यूत है—यह बात सूक्ष्म अवलोकन करनेसे स्पष्ट ही देख पड़ेगी।

(२) प्रस्तुत विषयका साङ्गोपाङ्ग प्रतिपादन करनेवाले पुराणतन्त्रादि अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, तो भी चिच्छक्ति

* 'चिन्मयानन्दा' भी एक पाठ है और वह ठीक ही मालूम होता है।

† श्रीविद्याके उपासकोंके लिये चार सन्ध्याएँ आवश्यक हैं। इनमें तुरीय सन्ध्या मध्यरात्रिमें होती है। उसकी विधि हमने अपनी संस्कृत टीकामें दी है।

महामायाके सगुण, निर्गुण स्वरूपका यथावत् निरूपण करके उसका ध्यान, मन्त्र और स्तोत्रका भी वर्णन करनेवाला, कण्ठ करने योग्य, सरल और सुगम, मनोहर और फिर साक्षात् श्रुतिका शिरोभाग होनेके कारण निर्बाधप्रामाण्यस्वरूप 'देव्यथर्वशीर्ष' एक अमूल्य तेजस्वी रत्न है—यही कहना चाहिये ।

(३) 'अथर्वशीर्ष' याने अथर्ववेदका शिरोभाग । वेदके संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक—ये तीन भाग होते हैं । उपनिषद् प्रायः तीसरे भागमें ही आते हैं । अथर्वशीर्ष उपनिषद् ही हैं और अथर्ववेदके अन्तमें आते हैं । ये सर्वविद्या-शिरोभूत ब्रह्मविद्याके प्रतिपादक होनेके कारण यथार्थ 'अथर्वशीर्ष' कहाते हैं । अथर्वशीर्ष मुख्यतः पाँच हैं । इनमें सबसे श्रेष्ठ 'देव्यथर्वशीर्ष' ही है । कारण, इस एकके पाठसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके पठनका फल प्राप्त होता है—यह श्रुतिने ही बताया है । सर्वपापनाश, महासङ्कटमोक्ष, वाक्सिद्धि, देवतासान्निध्य इत्यादि अन्य फल भी इसके बड़े महत्त्वके हैं । मृत्युतक टालनेकी सामर्थ्य इसमें है, यह बात फलश्रुतिसे ज्ञात हो ही जायगी ।

(४) शक्ति-उपासनाको अवैदिक कहनेवालोंके लिये तो यह अथर्वशीर्ष 'मूले कुठारः' ही प्रतीत होगा । कई पाश्चात्यविद्याविभूषित आधुनिक विद्वान् यह कहा करते हैं कि अथर्ववेद अर्वाचीन रचना है और अथर्वशीर्ष तो बिल्कुल ही नये हैं, इनको वेद या श्रुति कहना ही भूल है । पर इन लोगोंका यह कथन इनके केवल परप्रत्ययनेय-बुद्धित्वका फल है । कारण, अत्रि (६ । ३), शंख (११ । ४) और वशिष्ठ (२८ । १४) इन परममान्य स्मृतिकारों-ने 'शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम्' कहकर रुद्र आदिके साथ ही अथर्वशीर्षका भी निर्देश किया है । इसी प्रकार महर्षि गौतमके धर्मसूत्रोंमें भी 'अघमर्षणमथर्वशिरोरुद्रः' (३ । १ । १२) इस प्रकार उल्लेख है । और अथर्ववेदका तो ऋग्वेदके ही 'ऋचां त्वः पोषमास्ते०' (८ । २ । २४) इस मन्त्रमें उल्लेख है । अस्तु । केवल प्रकृत देव्यथर्वशीर्षकी ही बातको सोचें तो श्रीमच्छङ्कराचार्यसे भी पूर्वकालीन श्रीहंसयोगीने अपने गीताभाष्यमें देव्यथर्वशीर्षसे नामनिर्देशके साथ प्रमाण उद्धृत किये हैं । इसी प्रकार देवीभागवत (स्कन्ध ७ अ० ३१) में इसके कुछ मन्त्र ज्यों-के-त्यों आये हैं तथा सप्तशतीस्तोत्रमें भी इसका एक मन्त्र मिलता है । इसलिये यह अर्वाचीन तो नहीं है । इसमें जो 'कामो योनिः' इत्यादि पञ्चदशी-मन्त्रोद्धार-पद्धति है उससे यदि कोई इसे अर्वाचीन कहे तो उसको यह जानना चाहिये कि यही मन्त्र 'चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो०' (ऋ० सं० ४ । ३ । १ । ४) इस ऋग्वेदमन्त्रमें भी उद्धृत है, यह बात मन्त्रशास्त्रवेत्ताओंको ज्ञात ही है । इसलिये कम-से-कम आस्तिकोंके लिये तो इसके प्राचीनत्व और प्रामाण्यके विषयमें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं है ।

(५) इस प्रकार अथर्वशीर्षकी बड़ी महिमा होनेपर भी मूल आथर्वणशाखाका उच्छेद होनेके कारण इसकी अध्ययनपरम्परा ही गड़बड़ा गयी और इसका पाठ शुद्ध बना रखनेका भार सर्वथा अर्थज्ञानपर ही आ पड़ा । वैदिकोंमें अर्थज्ञानका प्रायः अभाव होनेसे इसमें अशुद्ध पाठोंकी रेल-पेल हो गयी । पीछे मुद्रण आरम्भ होनेपर संशोधनके अवसरोंमें मन्त्रशास्त्रानभिज्ञ पण्डितोंने जो अपनी बुद्धिमत्ता उसमें खर्च की उससे और फिर 'मुद्राराक्षस' (Printer's devil) की भी कृपासे इस अथर्वशीर्षकी जो विडम्बना हुई उसे निर्णयसागरके ब्रह्मकर्म, उपनिषद्संग्रह, सदाशिव-प्रसाद इत्यादिकोंमें, हमारी इस शुद्ध प्रतिके साथ मिलानकर कोई भी देख सकते हैं । उदाहरण देकर निष्कारण स्थान-को छेंकना इस अवसरमें उचित नहीं प्रतीत होता । अस्तु ।

(६) इस अथर्वशीर्षके लिखित और मुद्रित ग्रन्थोंमें ऐसी दुरवस्था देखकर तथा अनेक वैदिकोंके मुखसे भी वैसे ही अशुद्धभूयिष्ठ पाठ सुनकर बहुत दिनोंसे हमारे मनमें यह बात थी कि भगवतीके उपासकोंके लिये देव्यथर्वशीर्षकी कोई सम्प्रदायशुद्ध प्रति प्रकाशित की जाय और तदनुसार हम उसे प्रकाशित करनेवाले भी थे । परन्तु इसी बीच हमें जो एक विलक्षण कटु अनुभव हुआ उससे इस कार्यकी दिशा ही बदल गयी । संक्षेपमें, बात यह हुई कि एक नामी छापेखानेके लिये सटीक शाङ्करभाष्यसहित गीताका संशोधन करते हुए उपोद्घातभाष्यकी टीकामें ही जहाँ 'विग्रह-परिग्रहद्वारेण' होना चाहिये वहाँ भिन्न-भिन्न प्रेसोंकी सभी प्रतियोंमें 'निग्रह-परिग्रह···' छपा हुआ देखा । हमने अपने संशोधनमें उसे शुद्ध करके भेजा, पर प्रेसके शास्त्रिमण्डलने उसे फिर ज्यों-का-त्यों करके अशुद्ध पाठ ही छापा और पूछनेपर यह उत्तर भी दे डाला कि सभी प्रतियोंमें वैसा ही पाठ है ! पीछे अर्थकी चर्चा करनेपर उन्हें मेरा कहना

स्वीकार हुआ और शुद्धिपत्रकी तंग गलीसे किसी प्रकार वह शुद्ध पाठ पुस्तकमें प्रविष्ट हो पाया। तात्पर्य, देव्यथर्वशीर्षको यदि शुद्ध रीतिसे छापना है तो उसके अर्थकी चर्चा भी करनी होगी, अन्यथा हमारी इस प्रतिको अन्य प्रतियोंसे मिलाकर देखनेका पण्डितोंको व्यर्थ ही कष्ट देना है, यही सोचकर देव्यथर्वशीर्षपर हमने एक विस्तृत संस्कृत टीका लिखना आरम्भ किया। यह टीका अब बहुत कुछ लिखी जा चुकी है। श्रीजगदम्बाकी कृपासे वह शीघ्र ही जानकारोंकी सेवामें सादर समुपस्थित की जायगी। पर वह ग्रन्थ बड़ा होगा और केवल संस्कृतज्ञोंके ही कामका होगा, इसलिये कुछ मित्रोंने यह सूचना की कि सर्वसामान्यजनोंके लिये भी कुछ होना चाहिये। इतनेहीमें गुणग्रामाभिसंवादि नाम धारण करनेवाले सुप्रसिद्ध 'कल्याण' मासिकका 'शक्ति-अङ्क' का प्रस्ताव विदित हुआ। तब यह विचार किया कि पहले यह अथर्वशीर्ष अर्थसहित इसी अङ्कमें दिया जाय जिससे सहस्रों मनुष्य उससे लाभ उठा सकेंगे। 'कल्याण'-सम्पादकने बड़े प्रेमसे हमारा यह प्रस्ताव स्वीकार किया। उससे बड़ा प्रोत्साहन मिला और अन्य कार्योंको स्थगित करके इसे प्राकृत भाषान्तरके साथ लिखकर तैयार किया। इससे, हमें यह आशा है कि भगवतीके सर्वसाधारण उपासकों तथा अन्य लोगोंको इस दिव्य अथर्वशीर्षका भावार्थ जाननेमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

मूलके प्रत्येक पद और मन्त्रका साधार विस्तृत अर्थ, अनेक मन्त्रार्थ, शाक्तमन्त्रप्रक्रिया, यह सब विषय संस्कृत टीकामें होगा। प्रस्तुत लेख और इस भाषाटीकाको अपने अत्यन्त लोकप्रिय मासिकमें स्थान देकर हमारे चिरन्तन उद्देश्यको इस प्रकार मूर्तिमान् जिन 'कल्याण'-सम्पादकने किया उन्हें जितने भी धन्यवाद दिये जायँ, थोड़े ही हैं।

श्रीजगदम्बार्पणमस्तु।

श्रीजगदम्बिकादिव्याष्टोत्तरशताभिनवनामावलीप्रारम्भः

अथ ध्यानम्

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामतिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्॥

श्लोकोऽनुष्टुप्

रजताचलशृङ्गाग्रमध्यस्थायै नमो नमः।
हिमाचलमहावंशपावनायै नमो नमः॥ १॥
शङ्करार्द्धाङ्गसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः।
लसन्मरकतस्वच्छविग्रहायै नमो नमः॥ २॥
महातिशयसौन्दर्यलावण्यायै नमो नमः।
शशाङ्कशेखरप्राणवल्लभायै नमो नमः॥ ३॥
सदा पञ्चदशात्मैक्यस्वरूपायै नमो नमः।
वज्रमाणिक्यकटककिरीटायै नमो नमः॥ ४॥
कस्तूरीतिलकोद्भासितनिटिलायै नमो नमः।
भस्मरेखाङ्कितलसन्मस्तकायै नमो नमः॥ ५॥
विकचाम्भोरुहदललोचनायै नमो नमः।
शरच्चाम्पेयपुष्पाभनासिकायै नमो नमः॥ ६॥
लसत्काञ्चनताटङ्कयुगलायै नमो नमः।
मणिदर्पणसंकाशकपोलायै नमो नमः॥ ७॥
ताम्बूलपूरितस्मेरवदनायै नमो नमः।
सुपक्वदाडिमीबीजरदनायै नमो नमः॥ ८॥
कम्बुपूगसमच्छायकन्धरायै नमो नमः।
स्थूलमुक्ताफलोदारसुहारायै नमो नमः॥ ९॥
गिरीशबद्धमाङ्गल्यमङ्गलायै नमो नमः।
पद्मपाशाङ्कुशलसत्कराब्जायै नमो नमः॥ १०॥
पद्मकैरवमन्दारसुमालिन्यै नमो नमः।
सुवर्णकुम्भयुग्माभसुकुचायै नमो नमः॥ ११॥
रमणीयचतुर्बाहुसंयुक्तायै नमो नमः।
कनकाङ्गदकेयूरभूषितायै नमो नमः॥ १२॥
बृहत्सौवर्णसौन्दर्यवसनायै नमो नमः।
बृहन्नितम्बविलसज्जघनायै नमो नमः॥ १३॥

सौभाग्यजातशृंगारमध्यमायै नमो नमः ।
दिव्यभूषणसन्दोहराजितायै नमो नमः ॥ १४ ॥
पारिजातगुणाधिक्यपदाब्जायै नमो नमः ।
सुपद्मरागसङ्काशचरणायै नमो नमः ॥ १५ ॥
कामकोटिमहापद्मपीठस्थायै नमो नमः ।
श्रीकण्ठनेत्रकुमुदचन्द्रिकायै नमो नमः ॥ १६ ॥
सचामररमावाणीवीजितायै नमो नमः ।
भक्तरक्षणदाक्षिण्यकटाक्षायै नमो नमः ॥ १७ ॥
भूतेशालिङ्गनोद्भूतपुलकाङ्ग्यै नमो नमः ।
अनङ्गजनकापाङ्गवीक्षणायै नमो नमः ॥ १८ ॥
ब्रह्मोपेन्द्रशिरोरत्नरञ्जितायै नमो नमः ।
शचीमुखामरवधूसेवितायै नमो नमः ॥ १९ ॥
लीलाकल्पितब्रह्माण्डमण्डितायै नमो नमः ।
अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमो नमः ॥ २० ॥
एकातपत्रसाम्राज्यदायिकायै नमो नमः ।
सनकादिसमाराध्यपादुकायै नमो नमः ॥ २१ ॥
देवर्षिभिः स्तूयमानवैभवायै नमो नमः ।
कलशोद्भवदुर्वासःपूजितायै नमो नमः ॥ २२ ॥
मत्तेभवक्त्रषड्वक्त्रवत्सलायै नमो नमः ।
चक्रराजमहायन्त्रमध्यवर्त्यै नमो नमः ॥ २३ ॥
चिदग्निकुण्डसम्भूतसुदेहायै नमो नमः ।
शशाङ्कखण्डसंयुक्तमुकुटायै नमो नमः ॥ २४ ॥
मत्तहंसवधूमन्दगमनायै नमो नमः ।
वन्दारुजनसन्दोहवन्दितायै नमो नमः ॥ २५ ॥
अन्तर्मुखजनानन्दफलदायै नमो नमः ।
पतिव्रताङ्गनाभीष्टफलदायै नमो नमः ॥ २६ ॥
अव्याजकरुणापूरपूरितायै नमो नमः ।
नितान्तसच्चिदानन्दसंयुक्तायै नमो नमः ॥ २७ ॥
सहस्रसूर्यसंयुक्तप्रकाशायै नमो नमः ।
रत्नचिन्तामणिगृहमध्यस्थायै नमो नमः ॥ २८ ॥
हानिवृद्धिगुणाधिक्यरहितायै नमो नमः ।
महापद्माटवीमध्यभागस्थायै नमो नमः ॥ २९ ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनां साक्षिभूत्यै नमो नमः ।
महातापौघपापानां विनाशिन्यै नमो नमः ॥ ३० ॥
दुष्टभीतिमहाभीतिभञ्जनायै नमो नमः ।
समस्तदेवदनुजप्रेरकायै नमो नमः ॥ ३१ ॥

समस्तहृदयाम्भोजनिलयायै नमो नमः ।
अनाहतमहापद्ममन्दिरायै नमो नमः ॥ ३२ ॥
सहस्रारसरोजातवासितायै नमो नमः ।
पुनरावृत्तिरहितपुरस्थायै नमो नमः ॥ ३३ ॥
वाणीगायत्रिसावित्रीसन्नुतायै नमो नमः ।
रमाभूमिसुताराध्यपदाब्जायै नमो नमः ॥ ३४ ॥
लोपामुद्रार्चितश्रीमच्चरणायै नमो नमः ।
सहस्ररतिसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः ॥ ३५ ॥
भावनामात्रसन्तुष्टहृदयायै नमो नमः ।
सत्यसम्पूर्णविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ॥ ३६ ॥
त्रिलोचनकृतोल्लासफलदायै नमो नमः ।
श्रीसुधाब्धिमणिद्वीपमध्यगायै नमो नमः ॥ ३७ ॥
दक्षाध्वरविनिर्भेदसाधनायै नमो नमः ।
श्रीनाथसोदरीभूतशोभितायै नमो नमः ॥ ३८ ॥
चन्द्रशेखरभक्तार्तिभञ्जनायै नमो नमः ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तचैतन्यायै नमो नमः ॥ ३९ ॥
नामपारायणाभीष्टफलदायै नमो नमः ।
सृष्टिस्थितितिरोधानसंकल्पायै नमो नमः ॥ ४० ॥
श्रीषोडशाक्षरीमन्त्रमध्यगायै नमो नमः ।
अनाद्यन्तस्वयंभूतदिव्यमूर्त्यै नमो नमः ॥ ४१ ॥
भक्तहंसपरीमुख्यवियोगायै नमो नमः ।
मातृमण्डलसंयुक्तललितायै नमो नमः ॥ ४२ ॥
भण्डदैत्यमहासत्त्वनाशनायै नमो नमः ।
क्रूरभण्डशिरच्छेदनिपुणायै नमो नमः ॥ ४३ ॥
धात्रच्युतसुराधीशसुखदायै नमो नमः ।
चण्डमुण्डनिशुम्भादिखण्डनायै नमो नमः ॥ ४४ ॥
रक्ताक्षरक्तजिह्वादिशिक्षणायै नमो नमः ।
महिषासुरदोर्वीर्यनिग्रहायै नमो नमः ॥ ४५ ॥
अभ्रकेशमहोत्साहकरणायै नमो नमः ।
महेशयुक्तनटनतत्परायै नमो नमः ॥ ४६ ॥
निजभर्तृमुखाम्भोजचिन्तनायै नमो नमः ।
वृषभध्वजविज्ञानभावनायै नमो नमः ॥ ४७ ॥
जन्ममृत्युजरारोगभञ्जनायै नमो नमः ।
विदेहमुक्तिविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ॥ ४८ ॥

कामक्रोधादिषड्वर्गनाशनायै नमो नमः ।
राजराजार्चितपदसरोजायै नमो नमः ॥ ४९ ॥
सर्ववेदान्तसंसिद्धसुतत्त्वायै नमो नमः ।
श्रीवीरभक्तविज्ञानविन्दनायै नमो नमः ॥ ५० ॥
अशेषदुष्टदनुजसूदनायै नमो नमः ।
साक्षाच्छ्रीदक्षिणामूर्तिमनोज्ञायै नमो नमः ॥ ५१ ॥
महामेधाग्रसम्पूज्यमहिमायै नमो नमः ।
दक्षप्रजापतिसुतावेषाढ्यायै नमो नमः ॥ ५२ ॥
सुमबाणेक्षुकोदण्डमण्डितायै नमो नमः ।
नित्ययौवनमाङ्गल्यमङ्गलायै नमो नमः ॥ ५३ ॥
महादेवसमायुक्तमहादेव्यै नमो नमः ।
चतुर्विंशतितत्त्वैकस्वरूपायै नमो नमः ॥ ५४ ॥

(श्रीजगदम्बार्पणमस्तु)

सगुणब्रह्म और त्रिशक्तितत्त्वस्वरूपमीमांसा

(लेखक—श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री १००८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थ स्वामीजी महाराज)

कनकजठरमादौ यो विधायाथ तस्मै
निखिलभुवनधाम्ने प्राहिणोद्वेदपूगम् ।
प्रथमगुरुवरेण्यं स्वात्मबुद्धिप्रकाशं
शरणममरमेनं मोक्षकांक्षी प्रपद्ये ॥
दाराग्विधेरुदारान् करुणापूरान् कराब्जधृतकीरान् ।
हीरालङ्कृतहाराञ्जगदाधारान् विभावये धीरान् ॥
सरसगुणनिकायां सच्चिदानन्दकायां
सकलसुजनगेयां संयमीन्द्रैर्विचेयाम् ।
सरसिजजनिजायां सर्वलोकाप्रमेयां
सततमहमुपेयां संहृताशेषमायाम् ॥
त्रिकोणनिलयस्थितां त्रिनयनक्षुधा श्लोषित-
त्रिविक्रमसुतासुदां त्रिपथगासपत्नीं शिवाम् ।
त्रिविक्रमसहोद्भवां त्रिविधतापनिर्मूलिनीं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥
त्रिकालमुत सन्ततं त्रिकरणीविशुद्ध्यार्चित-
त्रिलोकजननीमुमां त्रिपथगापविन्नाङ्घ्रिकान् ।
त्रिलोचननवाकृतींस्त्रिभुवनेड्यकीर्तीन् गुरून्
त्रिविक्रमसमाह्वयांस्त्रिगुणहैन्यसिद्ध्यै श्रये ॥

भूमिका

परमात्मा, जीवात्मा और जगत्के बाह्य रूपोंमें औपाधिक अर्थात् व्यावहारिक दृष्टिसे अनन्तानन्तकोटि भेदोंके होते हुए भी, इन तीनोंका जो पारमार्थिक दृष्टिसे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्दघनस्वरूपी यथार्थस्वरूपभूत लक्षण वेदान्तशास्त्रमें बताया गया है, उसका हमने 'कल्याण'के 'ईश्वराङ्क' में वेदान्त, वैविल, युक्तियों और विज्ञानशास्त्रोंके आधारपर विस्तृत निरूपण किया था, और परमात्मा, जीवात्मा और जगत्के वस्तुतत्त्वकी दृष्टिसे पारमार्थिक तथा आत्यन्तिक अभेदको सिद्ध किया था। तत्पश्चात् हमने उसी परमात्माकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी तीनों मूर्तियोंके पारस्परिक सम्बन्धका 'कल्याण' के शिवाङ्कमें विवरण किया था। इस बार तो हमें और आगे बढ़कर 'कल्याण'के इस शक्त्यङ्कके लिये इस लेखमें इन तीनों मूर्तियोंके अपने-अपने कार्यक्षेत्रमें जो लीलाएँ हुआ करती हैं, उन सबकी प्रेरणा करनेवाली और उनको भलीभाँति सम्पन्न करानेवाली अर्थात् जगन्मातारूपी परमेश्वरी भगवती महामाया श्रीभगवच्छक्तिके सम्बन्धमें हमारे वेदान्तसिद्धान्तके सारांशका कुछ दिग्दर्शनरूपी उल्लेख करना है।

अवतरणिका

आजकल कुछ लोग इतने बड़े जबरदस्त ज्ञानी और वेदान्ती निकल पड़े हैं कि वे साधारण अद्वैतसिद्धान्त (अर्थात् विवर्तवाद) से तृप्त न होते हुए, भगवान् जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य महाराजजीके परमगुरु स्वामी श्रीगौडपादाचार्यकी माण्डूक्यकारिकामें बताये हुए अजातवादसे भी तृप्त न होते हुए, ईश्वरके परिच्छिन्न अर्थात् सगुण और साकार रूपोंको न मानते हुए, अखण्ड, अपरिच्छिन्न, निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी परमात्माका ही सर्वदा (अर्थात् व्यवहारदशामें भी) वाङ्मात्रसे स्वीकार एवं वर्णन करते हुए, श्रीमद्भगवद्गीताप्रतिपादित यथार्थ साम्यवादका अनर्थ, अयथार्थ और उलटा अर्थ बताते हुए, सनातनधर्मके मूलस्तम्भरूपी वर्णाश्रमव्यवस्थाको तोड़ना चाहते हैं और इसी अतिसुलभ उपायसे अपने बड़े भारी वेदान्तीपन या ज्ञानीपनको सिद्ध करनेमें लगे हुए हैं।

यथार्थ सिद्धान्त

इस विषयके यथार्थ तत्त्वावधानके लिये हमें सनातन-धर्मके मूलग्रन्थोंसे—

> एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
> सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
> क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
> क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
> अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥
> न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।

—इत्यादि अनेकों लम्बे-चौड़े वचनोंको उद्धृत करके उनके विस्तृत विवरणके द्वारा यह सिद्धान्त बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि जो चैतन्यरूपी पदार्थ मूलस्वरूपमें और पारमार्थिक दृष्टिसे एक ही है और अखण्ड अपरिच्छिन्न सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी है, वही घट-घटमें जीवरूपसे तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डरूपी जगत्‌रूपसे भी, संख्यातीत खण्ड परिच्छिन्न रूपोंको धारण करता है और उपासनाके लिये सगुण मूर्ति ही उपयुक्त होती है, अर्थात् खण्डसे ही अखण्ड, परिच्छिन्नसे ही अपरिच्छिन्न, सगुणसे ही निर्गुण, साकारसे ही निराकार और एकदेशव्यापी छोटी मूर्तिसे ही सर्वव्यापी परमात्मस्वरूपकी साक्षात्काररूपी प्राप्ति हो सकती है ।

श्रीमद्भगवद्गीताकी गवाही

क्योंकि इन विषयोंका हम 'रामायणाङ्क', 'श्रीकृष्णाङ्क', 'ईश्वराङ्क' और 'शिवाङ्क' में बहुत विस्तारके साथ विवरण कर चुके हैं, अतः अब उनका पुनर्निरूपण नहीं करते । परन्तु इस लेखके प्रस्तुत विषयके खास उद्देश्यकी पूर्तिके लिये श्रीमद्भगवद्गीतासे, जो—

> सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
> पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

—इस प्रमाणके अनुसार, सनातनधर्मके मूलप्रमाणरूपी वेदभगवान्‌के मुकुटस्वरूपी वेदान्तशास्त्रका हृदय या सारांश बतानेवाली है, एक ही ऐसे छोटे प्रसङ्गका वर्णन करना पर्याप्त समझते हैं जिससे इस विषयमें हमारा सिद्धान्त अपने आप और अति सुलभतासे सुस्पष्ट हो सकता है ।

अर्जुनका प्रश्न

श्रीपरमात्माके पूर्णावतार आनन्दकन्द भगवान् श्री-जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी गीताके तीसरे अध्यायमें अर्जुनको निष्काम कर्मयोगका उपदेश देनेके बाद, चौथे अध्यायका आरम्भ करते हुए कहा कि—

> इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
> विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
> एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
> स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥

अर्थात् 'हमने जगत्‌के आरम्भके समयमें इस शाश्वत कर्मयोगका सूर्यको उपदेश दिया था । उसने अपने पुत्र (वैवस्वत) मनुको दिया था और (वैवस्वत) मनुने (अपने पुत्र) इक्ष्वाकुको दिया था । इस प्रकार परम्परासे आये हुए इस कर्मयोगको राजर्षिगण जानते थे, परन्तु बहुत समयसे यह विद्या विच्छिन्न हो गयी है और इसीका हमने अब तुम्हें पुनरुपदेश किया है ।' तब अर्जुनने श्रीभगवान्‌से पूछा—

> अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
> कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥

'आप तो अबके हैं और सूर्यनारायण तो पूर्वसे हैं । फिर मैं आपकी इस बातको कैसे मानूँ कि आपने ही कल्पारम्भमें इस कर्मयोगविद्याका सूर्यको उपदेश दिया था ?'

श्रीभगवान्‌का उत्तर

अर्जुनके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीभगवान्‌ने कहा—

> बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
> तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥

'हे अर्जुन ! जैसे बहुत-से जन्म तेरे हुए हैं वैसे ही मेरे भी हुए हैं । विशेषता केवल इस बातकी है कि तू उन सबको नहीं जानता, परन्तु मैं जानता हूँ ।' श्रीभगवान्‌के इस स्पष्ट उत्तरको सुनकर अर्जुनने इस विषयमें श्रीभगवान्‌से और कुछ भी नहीं पूछा; परन्तु अर्जुन तो हम समस्त नरोंकी ओरसे एक प्रतिनिधि ही था और गीताजीका उपदेश अर्जुनरूपी केवल एक ही नरके लिये नहीं था बल्कि सारे संसारके सभी नरोंके प्रयोजनके लिये था । इसीलिये श्रीभगवान्‌ने अपनी सर्वज्ञताके कारण हम कलियुगी पुरुषोंकी बुद्धिमें आनेवाली शङ्काओं और कुयुक्तियोंको भी अपने हिसाबमें लेकर, यद्यपि इनका अर्जुनने तनिक भी, नामतकका भी जिक्र नहीं किया

था, हमलोगोंके कल्याणके लिये अपने-आप शङ्कासमाधान और कुयुक्तिनिरसन किया ।

सुधारकोंका खास प्रश्न

अवतारवादका विरोध करते हुए आजकलके सुधारक तो यही पूछते हैं कि जो भगवान् 'अज' अर्थात् (जन्मरहित) है वह जन्म कैसे ले सकता है ? और सुधारकोंके मनमें यही धारणा रहा करती है कि इस आक्षेपरूपी युक्तिवादका कोई युक्तियुक्त उत्तर हो ही नहीं सकता । परन्तु यह तो कुछ नयी आपत्ति नहीं है जिसका सुधारकोंने अपनी ही अद्भुत मेधाशक्ति या प्रतिभाके बलसे नया आविष्कार किया हो, क्योंकि श्रीभगवान्ने तो अर्जुनके द्वारा भी न पूछे हुए इसी खास प्रश्नका पर्याप्त और अति सुन्दर उत्तर देते हुए, अपने-आप कहा—

> **अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।**
> **प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥**

अर्थात् अज (जन्मरहित) होते हुए भी, निर्विकारस्वरूप होते हुए भी, समस्त भूतोंके ईश्वर होते हुए भी, हम अपनी प्रकृतिके जबरदस्त आधारपर स्थित होकर अपनी मायाके बलसे जन्म लिया करते हैं ।

मायाका स्वरूप

अब प्रश्न यह है कि जिस मायाके बलसे भगवान् अवतार धारण किया करते हैं, वह कौन-सी चीज है, उसका क्या स्वरूप है, उसका लक्षण क्या है और उसका तत्त्व एवं रहस्य क्या है । श्रीभगवान्के उपर्युक्त वचनसे ही स्पष्ट हो गया है और—

> **अजायमानो बहुधा विजायते ।**
> **मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।**

—इत्यादि अनेक वेदमन्त्रोंसे भी स्पष्ट होता है कि अपनी जिस शक्तिके बलसे श्रीभगवान् 'बहु स्यां प्रजायेय' इस अपने सङ्कल्पके अनुसार एकदम नाना जगत्रूपी रूपोंको धारण करते हुए जगत्की सृष्टि करनेवाले कहलाते हैं, उसीका नाम माया है । यहाँतक मायाशक्तिका निर्वचन करनेके पश्चात् आगे बढ़कर शास्त्रोंने यह भी सिद्ध किया है कि भगवान्की मायाशक्ति जगत्की केवल सृष्टि ही करनेवाली नहीं है बल्कि पालन और संहार भी करनेवाली है ।

त्रिमूर्ति और त्रिशक्ति

सनातनधर्मका इसके सम्बन्धमें यही सिद्धान्त है, जिसका हम 'कल्याण' के 'शिवाङ्क' में श्रीमद्भागवतके बहुत-से लंबे-लंबे प्रमाणोंसे सिद्ध कर चुके हैं, कि एक ही परमात्मा, जो निर्गुण, निष्क्रिय, निराकार और निरञ्जन (निर्लिप्त) है, वही अपनी त्रिगुणात्मक, त्रिशक्त्यात्मक मायाशक्तिसे शबलित होकर जगत्की सृष्टि, पालन और संहाररूपी तीन प्रकारके कार्यके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीनों नामोंको और मूर्तियोंको धारण करता है, और जिन तीन प्रकारकी शक्तियोंसे शबलित होकर त्रिमूर्तिरूपमें आता है उन्हींके नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हैं । अर्थात् ब्रह्माजीकी शक्ति, जिससे सृष्टि होती है, वह महासरस्वती है; विष्णुशक्ति, जो पालन करती कराती है, महालक्ष्मी है; और रुद्रशक्ति, जिससे संहार होता है, उसका नाम महाकाली है । इसीलिये भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने भी कहा है—

> **शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ॥**

(भगवान् अपनी शक्तिसे शबलित होकर ही अपना काम करनेमें समर्थ होते हैं, नहीं तो नहीं ।) इससे स्पष्ट है कि असलमें (अर्थात् अपने मूलस्वरूपमें) भगवान् निरञ्जन अतएव निष्क्रिय होते हुए भी अपनी मायाशक्तिसे शबलित होकर जगदीश्वर होते हैं, अर्थात् जगत्स्रष्टा, जगत्पालक और जगत्संहर्ता होते हैं ।

तीनों कार्योंका ऐतिहासिक दृष्टिसे क्रम

इन कार्योंके क्रमका दो प्रकारसे विचार किया जा सकता है । एक है ऐतिहासिक क्रम (Historical and Chronological Sequence), जिसमें इस दृष्टिसे विचार होता है कि सबसे पहले हर एक चीजकी सृष्टि की जाती है, उसके बाद उसकी स्थिति होती है और अन्तमें उसका नाश हो जाता है । इसी कारण 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र'—ये तीनों नाम हमारे ग्रन्थोंमें इसी क्रमसे पाये जाते हैं ।

उनका आध्यात्मिक साधनकी दृष्टिसे क्रम

इन तीनों कार्योंके क्रमका दूसरे प्रकारका विचार साधककी आध्यात्मिक दृष्टिसे (from the *psychological* standpoint of the *Spiritual Aspirant*) होता है । इसमें अवधूतराज श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्रसरस्वती महाराजकृत वर्णनके अनुसार—

'जनिविपरीतक्रमतः'

श्रीमहासरस्वती

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुस्सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥
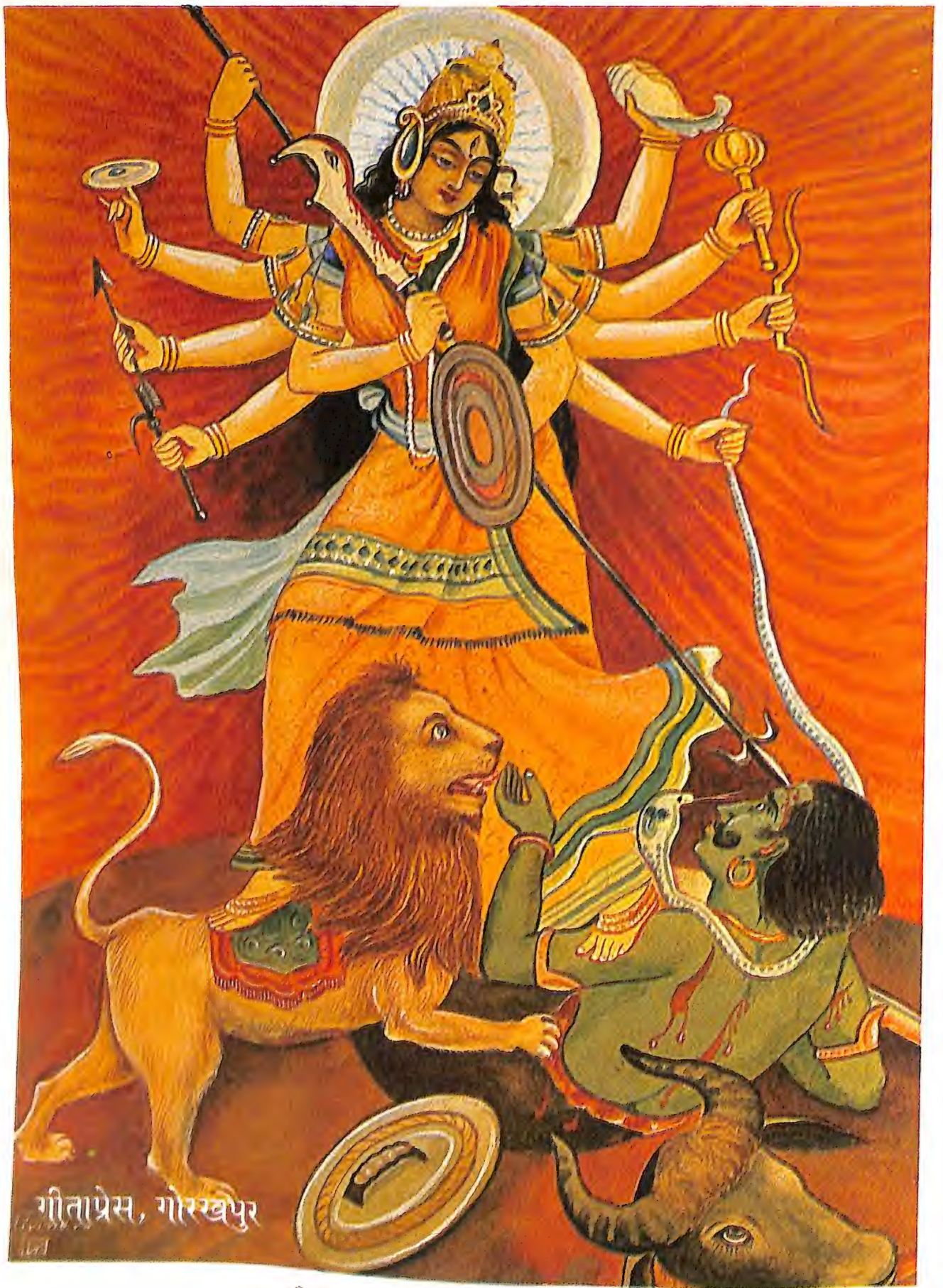
(पृष्ठ-संख्या १)

श्रीदुर्गा-दशभुजा (पृष्ठ-संख्या ४७)

देवी स्कन्दमाता

सिंहासनगता नित्यं पद्माश्रितकरद्वया।
शुभदास्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी॥

(पृष्ठ-संख्या ८३)

श्रीलक्ष्मीनारायण (पृष्ठ-संख्या १७)

श्रीमहालक्ष्मी (पृष्ठ-संख्या २७)
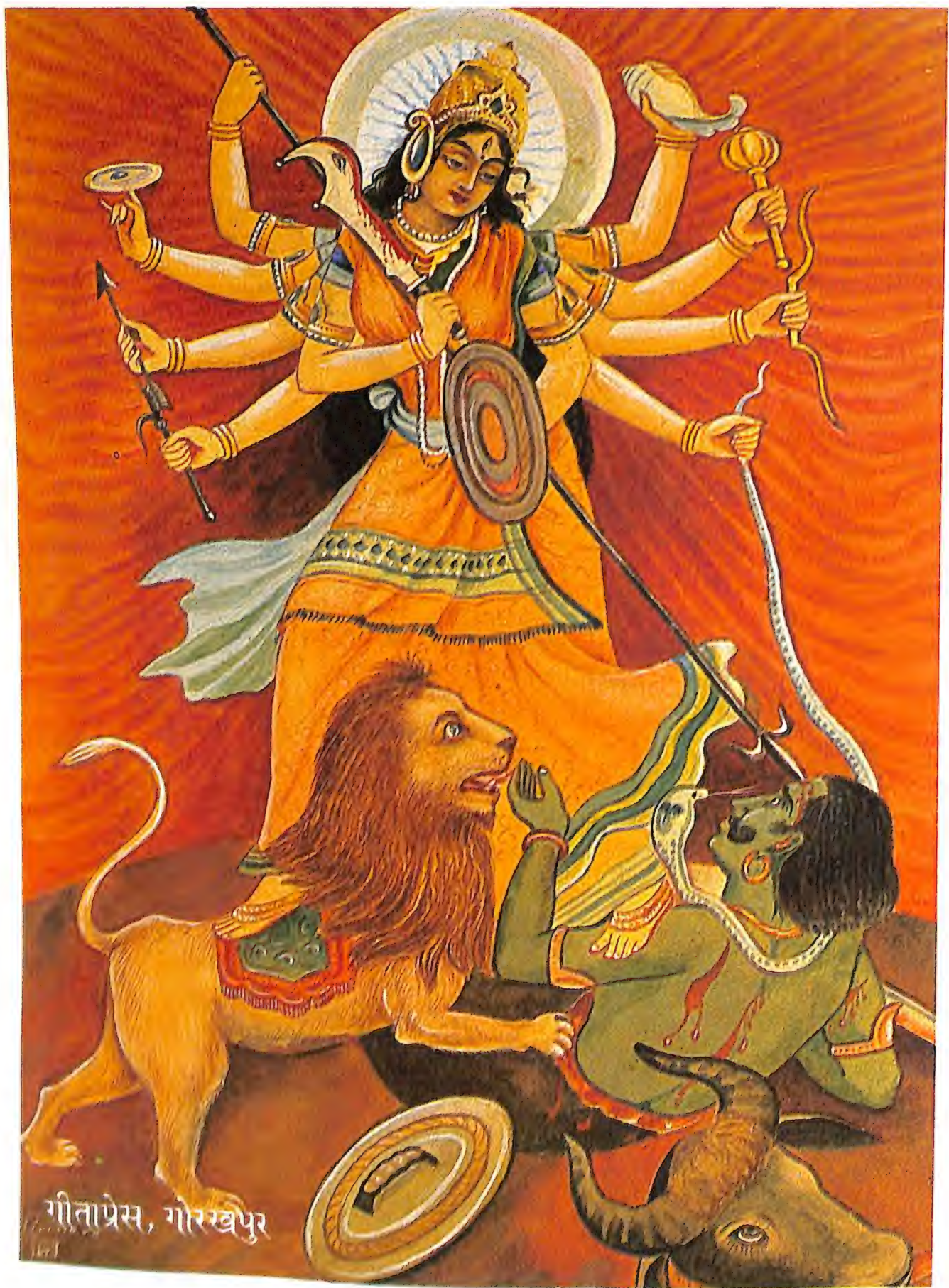
श्रीदुर्गा-दशभुजा (पृष्ठ-संख्या ४७)

देवी स्कन्दमाता

सिंहासनगता नित्यं पद्माश्रितकरद्वया।
शुभदास्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी॥

(पृष्ठ-संख्या ८३)

शैलपुत्री

वन्दे वाञ्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्रीं यशस्विनीम्॥

(पृष्ठ-संख्या ९६)

भगवती श्रीदुर्गा (पृष्ठ-संख्या १३४)

श्रीराधाकृष्ण (पृष्ठ-संख्या १८३)

—विपरीत क्रमसे अर्थात् लयके क्रमसे गणना होती है, सृष्टिके क्रमसे नहीं। इसी कारण 'महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती' ये तीनों नाम उपासनाकाण्डके ग्रन्थोंमें इसी नियत क्रमसे आते हैं।

व्याधिकी चिकित्साका दृष्टान्त

लौकिक व्यवहारमें सर्वसाधारणके अनुभवसे सिद्ध एक दृष्टान्तसे इस क्रमका तात्पर्य और आवश्यकता स्पष्ट होगी। व्याधिकी चिकित्सामें वैद्य या डाक्टरका पहला कर्तव्य है व्याधिका मूलसे संहार। अतः उस समयपर, वह वैद्य रुद्रका काम करता है। परन्तु रुद्रका यह काम करते हुए व्याधिको जड़से काट डालनेके समय उसे ऐसी अत्यन्त जागरूकता और सावधानीके साथ काम करना पड़ता है जिससे सिर्फ बीमारी ही नष्ट हो, न कि साथ-साथ बीमार भी चल बसे। इस कारण वह प्राणका पालन या विष्णुका भी काम करता है। और जब व्याधि जड़से कट गयी और जान बच गयी तब शरीरमें खूब ताकत लानेवाली औषध (Tonic), पोषक आहार आदि चीजोंको देते हुए, वही वैद्य नयी सृष्टि या ब्रह्माका भी काम करता है।

अज्ञाननिवारणका दृष्टान्त

इसी प्रकारसे गुरुके सम्बन्धमें कही हुई—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव महेश्वरः।

—यह बात भी चरितार्थ होती है, क्योंकि जब गुरु अपने शिष्यके अन्यथाभानरूपी अज्ञान (या गलत समझ) का निवारण करता है तब वह संहार या रुद्रका काम करता है। प्रामादिक ज्ञानको काटते हुए, साथ-साथ जब वह शिष्यके मनमें जो यथार्थ ज्ञान है उसकी रक्षा करता है तब वह पालन या विष्णुका काम करता है, और जब अज्ञानको हटाते हुए और ज्ञानकी रक्षा करते हुए वह नयी बातोंको सिखाता है तब वह सृष्टि या ब्रह्माका काम कर रहा है।

अन्यान्य दृष्टान्त

इस प्रकारसे और-और दृष्टान्तोंको लेकर, पाठक अपने-आप सोच सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि प्रत्येक कार्यक्षेत्रमें इसी प्रकारसे साधना हुआ करती है। अर्थात् सबसे पहले बुरी चीजों, गुणों और आदतोंका संहार करना चाहिये, साथ-ही-साथ अच्छी चीजों, गुणों और अभ्यासोंको सुरक्षित रखना चाहिये, और जब बुरी चीजें निकल जायँ और प्राण बच जायँ तब अच्छी चीजोंका क्रमशः पोषण और वर्धन करते जाना चाहिये। सारांश यह कि संहार, पालन और सृष्टिकी सभी प्रकारके साधकोंको आवश्यकता है और इसी क्रमसे महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—इन तीनों नामोंका शास्त्रसिद्ध अनुक्रम स्पष्ट है।

तीनों शक्तियों और मूर्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध

इन तीनों मूर्तियों और शक्तियोंके इस प्रकारसे कर्तव्य-क्षेत्र सिद्ध हुए हैं कि महाकाली-शक्तिसहित रुद्र संहार करता है, महालक्ष्मी-शक्तिसहित विष्णु पालन करता है और महासरस्वती-शक्तिसहित ब्रह्मा सृष्टि करता है। अब और आगे बढ़कर देखना है कि इनका आपसका सम्बन्ध क्या है। शास्त्रोंका विचार करनेपर यह बड़े चमत्कारकी बात होती है कि त्रिमूर्तियोंमेंसे किसी एक मूर्तिको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उसका साला होता है और दूसरा उसका बहनोई होता है। प्रकारान्तरसे देखें और त्रिशक्तियोंमेंसे किसी एक शक्तिको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उसकी ननद बनती है और दूसरी उसकी भावज बनती है, क्योंकि संहार करनेवाले रुद्रकी शक्ति महाकालीका भाई है पालन करनेवाला विष्णु, उसकी शक्ति महालक्ष्मीका भाई है सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा, और उसकी शक्ति महासरस्वतीका भाई है संहार करनेवाला रुद्र।

इनका आध्यात्मिक रहस्य

इन तीनों शक्तियों और मूर्तियोंके रूप, अवयव, आयुध, रंग आदि सब पदार्थोंके सम्बन्धमें उपासनाकाण्डके ग्रन्थोंमें जो अत्यन्त विस्तारके साथ वर्णन मिलते हैं, उनमेंसे एक छोटी-से-छोटी बात भी ऐसी नहीं है जो अनेक अत्युपयोगी तत्त्वोंसे भरी हुई न हो और जो जिज्ञासुओं एवं साधकोंके लिये अत्युत्तम आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली न हो। परन्तु समयके संकोचके कारण उन सब बातोंका यहाँ विवरण किया नहीं जा सकता। तो भी स्थालीपुलाक-न्यायके अनुसार इन चमत्कारोंके दृष्टान्तरूपसे और केवल दिग्दर्शनार्थ इन त्रिशक्तियों और त्रिमूर्तियोंके रंगोंके बारेमें कुछ उल्लेख किया जाता है—

तीन प्रकारके रंग

इनके रंगोंके सम्बन्धमें चमत्कार इस बातका है कि संहार करनेवाला रुद्र तथा उसकी बहिन महासरस्वती सफेद हैं। पालन करनेवाला विष्णु एवं उसकी बहिन महाकाली नीले रंगके हैं और सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा एवं उसकी बहिन महालक्ष्मी स्वर्णवर्णके हैं। यह तो बिल्कुल ठीक है, स्वाभाविक है और मुनासिब भी है कि कोई भी शक्ति अपने पतिके रंगकी नहीं होती और सब-की-सब अपने भाईके रंगकी होती हैं। परन्तु इस बातपर ध्यान देना है कि इन तीनों रंगोंका जो इनमें विभाग हुआ है, उसका आध्यात्मिक तत्त्व क्या है? शास्त्रोंने इसके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त बतलाया है कि इन तीनों मूर्तियोंके कार्योंमें कोई परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि ये परस्पर सहायक ही हैं। अतः त्रिमूर्तियोंका भी इसी तरहका आपसमें सम्बन्ध है।

आपसका सम्बन्ध

जो यह समझते हैं कि पालन करनेवाले और संहार करनेवाले परस्परविरुद्ध काम करनेवाले हैं, अतः हरि और हरका अवश्य ही अत्यन्त विरोध और शत्रुत्व हो सकता है, वे केवल ऊपर-ऊपरसे ही विचार कर, पालन और संहारके भीतरी अर्थको न सोचकर बड़ी भारी गलती कर रहे हैं। यह ठीक है कि यदि हरि और हर एक ही वस्तुके पालक और संहारक होते, तो उनका आपसमें शत्रुत्व ही हो सकता, परन्तु यह बात नहीं है। जिस पदार्थकी रक्षा करनी होती हो, उसके शत्रुका संहार जब हरसे होता है, तब विरोध कहाँ है? मसलन, बीमारके प्राणोंकी रक्षाके लिये जब वैद्य शस्त्रका प्रयोग (surgical operation) करता है और व्याधिका संहार करता है, तब तो एक ही आदमीसे हरि और हर दोनोंके काम होनेकी बात है। यही सम्बन्ध पालक हरि और संहारक हरका है।

महाकाली और रुद्रका काम

तीनों शक्तियोंके रंगों और कार्योंका यह चमत्कारी सम्बन्ध है कि रुद्रको जो संहाररूपी काम करना है उसे करानेवाली महाकालीरूपी रुद्रशक्ति अपने भयङ्कर कार्यके अनुरूप और योग्य काले रंगकी होती है। परन्तु वह संहारका काम संहारके लिये नहीं, बल्कि सारे संसारके रक्षण और कल्याणके लिये होता है। इसलिये वह खराब हिस्से-का संहार करके, अपने पतिका काम पूरा करके, खराबीसे अपनी बचायी हुई असली चीजको अपने भाई अर्थात् विष्णुके हाथमें सौंपकर कहती है कि 'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीमहादेव—रुद्रकी शक्तिकी हैसियतसे खराबीका संहार कर दिया। अतएव हमारा दम्पतिका काम पूरा हो गया है। अब तुम इस चीजको लेकर, अपना जो पालनेका काम है उसे करो।'

राजनीतिक्षेत्रमें शिक्षा

इससे राजनीतिक्षेत्रमें भी यह स्पष्ट शिक्षा हमें मिलती है कि प्रजाकी रक्षा ही राजाका प्रधान कर्तव्य है। अतएव भगवान् मनुने कहा है—

> **तस्मात्स्वविषये रक्षा कर्तव्या भूतिमिच्छता।**
> **यज्ञेनावाप्यते स्वर्गो रक्षणात्प्राप्यते यथा॥**

इसपर आक्षेपरूपसे पूछा जा सकता है कि ऐसा हो तो फिर राजा दुष्टोंको दण्ड क्यों देते हैं और फिर उन्हीं भगवान् मनुने ऐसा क्यों कहा है कि—

> **अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।**
> **अयशो महदाप्नोति निरयं चापि गच्छति॥**

इस शङ्काका समाधान यह है कि प्रजाकी रक्षा और दुष्टोंका दमन—ये दोनों ही काम राजाके हैं, परन्तु इनमेंसे दूसरा (दुष्टोंको दण्ड देनेका) जो काम है वह दण्ड देनेके लिये नहीं है, बल्कि सज्जनोंकी रक्षारूपी असली राजधर्मकी पूर्तिके लिये एक अनिवार्य (unavoidable) अङ्ग या साधनरूपी काम है। अतएव पाश्चात्य राजनीतिके ग्रन्थकारोंने भी "Doctrine of Vindictive punishment" (बदला लेनेके लिये सजा देनेके सिद्धान्त) को छोड़कर अब यह स्वीकार कर लिया है कि "The King's Punitive Function is there, only as a means towards the adequate fulfilment of his Protective Function." (अर्थात् दण्ड देना भी प्रजाकी रक्षाके अङ्गरूपसे ही राजाका कर्तव्य है।)

अवतारोंका प्रयोजन

इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने गीताजीमें अपने अवतारोंका उद्देश्य और प्रयोजन बतलाते हुए, पहले कहा—

'परित्राणाय साधूनाम्'

और तत्पश्चात् कहा —

'विनाशाय च दुष्कृताम्।'

अर्थात्, जैसे बीमारकी सड़ी हुई एक अँगुलीके जहरको सारे शरीरमें फैलनेसे रोकनेके लिये वैद्य शस्त्र (operation) से काटते हैं, इसी प्रकार भगवान् श्रीरुद्र संहारका जो काम करते हैं, वह जगत्के पालनके लिये है और किसी प्रयोजनके लिये नहीं ।

महालक्ष्मी और विष्णुका काम

विष्णुको जो पालनरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महालक्ष्मीरूपी विष्णुशक्ति अपने पालनात्मक कार्यके अनुरूप और योग्य स्वर्णवर्णकी होती है । परन्तु वह पालनका काम सिर्फ पालन करके छोड़ देनेके लिये नहीं, बल्कि पोषण और वर्धन करनेके उद्देशसे किया जाता है । इसलिये वह पालनका काम करके, अपने पतिके कार्यको पूर्ण करके, अपनी पाली हुई उस चीजको अपने भ्राता अर्थात् ब्रह्माके हाथमें सौंपकर कहती है कि 'भाईजी, मैंने अपने पति श्रीमहाविष्णुकी शक्तिकी हैसियतसे इस चीजको पाला है । इससे अब हमारा दम्पतिका काम पूरा हो गया है । अब तुम इसे लेकर अपना कार्य, जो नयी चीजोंका उत्पन्न करना, अर्थात् पोषण और वर्धन करनेका है, सो करो ।'

महासरस्वती और ब्रह्माका काम

ब्रह्माको जो नयी चीजोंका आविष्कार या सृष्टिरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महासरस्वतीरूपी ब्रह्मशक्ति अपने सृष्ट्यात्मक कार्यके अनुरूप और योग्य सफेद रंगकी होती है । परन्तु वह पोषण एवं वर्धनका काम आगे-आगे बढ़ाते जानेके ही मतलबसे नहीं है, बल्कि पोषण और वर्धन करनेके समय जो बुरे या अनिष्ट पदार्थ भी उसके साथ सम्मिलित हो जाया करते हैं उनको दूर हटाकर ठीक कर लेनेके उद्देश्यसे ही होता है । इसलिये, वह वर्धनके कामके हो जानेके बाद, अपनी बढ़ाई हुई चीजको अपने भ्राता अर्थात् रुद्रके हाथमें देकर कहती है कि 'भाईजी, मैंने अपने पति श्रीहिरण्यगर्भ ब्रह्माकी शक्तिकी हैसियतसे इस चीजका पोषण और वर्धन किया है । इससे अब हमारा दम्पतिका काम पूरा हो गया है । अब इसके पोषण और वर्धनके समयमें इसमें जो खराबियाँ और त्रुटियाँ आ गयी हों उनका संहार करनेका काम हमारा नहीं है—तुम्हारा है । इसलिये इन्हें हाथमें लेकर, खूब मार-मारकर सीधा करो ।'

एवं प्रवर्तितं चक्रम्

इस प्रकारसे एक ही परमात्मा जगदीश्वर महाप्रभु सृष्टि, पालन और संहार—इन तीनों कर्मोंके चक्रको लगातार चलाते हुए, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीनों नामोंसे दुनियामें प्रसिद्ध होता है, और उसके इन तीनों कामोंको करानेवाली जगन्माता भगवती महामायाके अन्तर्गत जो सृष्टिशक्ति, पालनशक्ति और संहारशक्ति हैं उन्हींके नाम (पूर्वोक्त कारणसे, उलटे क्रमसे) महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं ।

पञ्चीकरण और त्रिवृत्करण

हर एक काममें सभी पदार्थोंका समावेश रहता है, जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी—इन पाँच भूतोंमेंसे प्रत्येक भूतके साथ बाकी चार भूत भी मिले हुए रहते हैं और सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण—इन तीन गुणोंमेंसे प्रत्येक गुणके साथ बाकी दो गुण भी सम्मिलित रहते हैं इसीसे व्यवहारमें किसी भूत या गुणका नाम लिये जानेपर मतलब इतना ही होता है कि उस प्रकृत पदार्थमें वह भूत या गुण अधिक है, अतएव वेदान्तसूत्रोंमें भगवान् वेदव्यासने कहा है—

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ।

इसी प्रकार हर एक काममें बाकी कामोंका भी समावेश होता रहता है और हर एक साधनके साथ बाकी साधनोंकी भी आवश्यकता हुआ करती है, तो भी व्यवहारमें प्रत्येक काम या साधनके नाममें उसी पदार्थका जिक्र किया जाता है जिसका उसमें अधिक समावेश किया गया हो ।

साधनोंका विचार

सिद्धान्तरूपसे यही मानना होगा कि तीनों शक्तियोंमें तीनों शक्तियाँ हैं और सब साधन भी हैं, परन्तु ऊपर बताये हुए—

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ।

—इस न्यायके अनुसार, शास्त्रका यह सिद्धान्त भी ठीक है कि संहार, पालन और सृष्टिके लिये भयङ्कर बल, पर्याप्त स्वर्ण (अर्थात् धन) और स्वच्छ विद्या ही यथासंख्य (respectively) मुख्य साधन हैं । इसलिये महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती शक्ति, स्वर्ण और

विद्याकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं और उनके रंग भी इसीलिये काले, पीले और सफेद हैं।

इन दम्पतियोंका अभेद्य सम्बन्ध

क्योंकि 'मातरिश्वा अपो ददाति' इत्यादि ज्ञानकाण्ड भी यही बताता है कि ईश्वर असली स्वरूपमें निष्क्रिय है और चलनात्मक वायुरूपी सङ्कल्प-विकल्पकी पूर्तिके लिये शक्तिशबलित होकर ही औपाधिक सक्रियताको प्राप्त करता है, इसीलिये उपासनाकाण्डमें स्पष्ट किया गया है कि शक्ति और शिवको अलग करके उनमेंसे सिर्फ एककी उपासना नहीं करनी चाहिये। ईशावास्योपनिषद्के 'सम्भूति' और 'असम्भूति'-सम्बन्धी मन्त्रोंसे भी यही तात्पर्य निकलता है और उपासनाकाण्ड-के ग्रन्थोंमें तो भगवती और भगवान्‌की अलग-अलग उपासनाका स्पष्ट निषेध है।

भगवान्‌के बिना भगवती ?

भगवान्‌के बिना सिर्फ भगवतीकी उपासना करनेका जो फल या परिणाम होगा, उसके बारेमें श्रीलक्ष्मीनारायण-हृदय नामके उपासनाग्रन्थमें स्पष्ट कहा है कि ऐसी उपासनासे—

'लक्ष्मीः क्रुध्यति सर्वदा'

(अर्थात्, जिस भगवान्‌को छोड़कर केवल भगवती-की उपासना की गयी है वह भगवान् रुष्ट नहीं होता, बल्कि उसे छोड़कर जिस भगवतीकी उपासना की गयी है वही देवी जगन्माता रुष्ट हो जाती है।) फिर इससे बढ़कर भयङ्कर अनर्थ क्या हो सकता है ?

भगवतीरहित भगवान् ?

इस दृष्टान्तसे स्पष्ट हो गया कि भगवान्‌को छोड़कर केवल भगवतीकी उपासना नहीं करनी चाहिये। अब अगला प्रश्न यह है कि क्या भगवतीको छोड़कर सिर्फ भगवान्‌की उपासना की जा सकती है ? नहीं, वह भी मना है। इसमें भगवान् श्रीशङ्कराचार्यके—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

—इस वचनके अतिरिक्त अन्य प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती, क्योंकि जब शक्तिके बिना ईश्वरसे कुछ भी नहीं बन सकता तब ऐसेकी उपासना तो व्यर्थ ही है।

दक्षयज्ञका दृष्टान्त

इस प्रसङ्गमें दक्षयज्ञवाला उपाख्यान विचारणीय है। शङ्करके तिरस्कारसे भगवती दाक्षायणीको क्रोध हुआ और उसके क्रुद्ध होकर अपने प्राणोंको त्यागनेपर रुद्रगणाग्रणी वीरभद्र आदिके हाथोंसे दक्षयज्ञका विध्वंस हो गया। इससे हमें यह सुन्दर शिक्षा मिलती है कि ईश्वरके तिरस्कारसे शक्तिका नाश होता है और शक्तिका नाश होनेपर हमारे सब काम सिर्फ बिगड़ ही नहीं जाते, बल्कि बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानोपदेशक गुरु कौन हैं ?

असलमें तो हमारे शास्त्रोंका सिद्धान्त यह है कि परमात्माका ज्ञान भगवतीके अनुग्रहसे ही हो सकता है, अन्य किसी तरहसे नहीं। केनोपनिषद्में जो यज्ञका प्रसङ्ग आता है, उसमें कथासन्दर्भ यह है कि जब इन्द्र, अग्नि, वायु आदि देवता असुरोंको युद्धमें हराकर, यह न जानकर कि भगवान्‌के दिये हुए अनेक प्रकारके बलोंसे यह विजय प्राप्त हुई है, अहङ्कारी हो जाते हैं और समझने लगते हैं कि हमने अपने ही बलसे असुरोंको हरा दिया है, तब उनके उस गर्वका भङ्ग करके उनको यथार्थ तत्त्व सिखानेके लिये भगवान् एक बड़े भयङ्कर यक्षरूपसे प्रकट होते हैं, और उनको पता नहीं लगता कि यह कौन है ? पश्चात् भगवच्छक्ति-रूपिणी उमा आकर उनको वास्तविक सिद्धान्त सिखाती है। इस कथासन्दर्भसे स्पष्ट है कि भगवती परमेश्वरी जगदम्बा ही हमें परमात्माका ज्ञान दे सकती है और यह तो लौकिक व्यवहारकी दृष्टिसे भी स्वाभाविक और मुनासिब ही है कि बच्चे तो केवल अपनी माताको ही जानते हैं और उस मातासे ही उन्हें यह पता लगा करता है कि हमारा पिता कौन है ?

माताका गुरुत्व

(१) मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव ॥
(२) मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

—इत्यादि मन्त्रोंमें माताको ही सबसे पहला स्थान दिया गया है। इसका भी यही कारण है कि माता ही आदिगुरु है और उसीकी दया और अनुग्रहके ऊपर बच्चोंका ऐहिक, पारलौकिक और पारमार्थिक कल्याण निर्भर रहता है।

जगन्माताका जगद्गुरुत्व

जब एक-एक व्यष्टिरूपिणी माता भी इस प्रकार अपने-अपने बच्चोंके लिये श्रेयोमार्गप्रदर्शक और ज्ञानगुरु होती है, तब कैमुतिकन्यायसे अपने-आप ही सिद्ध होता है कि जो भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी समष्टिरूपिणी माता है और सारे जगत्की माता है वही अपने बच्चों (अर्थात् समस्त संसार) के लिये कल्याणपथप्रदर्शक ज्ञानगुरु होती है। अर्थात् जगन्माता जगद्गुरु होती है, और दुनियामें जितने अन्य गुरु होते हैं वे सब-के-सब इसी जगन्माताकी एक कलारूपसे ज्ञानोपदेशका काम करते हैं। अतएव भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने भी देवीकी स्तुति करते हुए, उसे—

देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम् ॥

—'गुरुरूपसे आकर अभ्युदयका मार्ग दिखानेवाली' बताया है।

इसीलिये शैव, वैष्णव आदि सब उपासनाग्रन्थोंमें यह नियम मिलता है कि भगवती जगन्माताके द्वारा ही भगवान् जगत्पिताके पास पहुँचा जा सकता है।

पाश्चात्योंका वृथा आडम्बर

हमें इस लेखमें पाश्चात्योंकी सभ्यता और हमारी प्राचीन सभ्यताकी तुलना या तारतम्यविचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; परन्तु एक विषयमें, जो इस लेखके इस प्रकृत प्रसङ्गके साथ खूब घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, कुछ जरूर लिखना है और यह दिखलाना है कि इस विषयपर पाश्चात्योंके किये हुए असत्यपूर्ण प्रचारोंके कारण हमारी साधारण जनताके हृदयमें एक बड़ा भारी भ्रम पैदा हो गया और वह स्थिर होकर इतना गहरा बैठ गया है कि जिसका निवारण करना आज हमारे परम कर्तव्योंमेंसे एक प्रधान कर्तव्य हो गया है।

भ्रमका स्वरूप

पाश्चात्योंका हमारी भारतीय प्रजाके मनमें भ्रम उत्पन्न करनेवाला वह वृथा और मिथ्या आडम्बर यह है कि वे सनातनधर्मी सामाजिक व्यवस्थाकी निन्दा करते हुए और खास करके भगवान् मनुको खूब गालियाँ देते हुए कहा करते हैं कि 'मनुस्मृति आदि सनातनियोंके शास्त्र स्त्रीजातिके शत्रु हैं, परन्तु हमारी ईसाई या क्रिस्तान (Christian) सभ्यता (civilisation) स्त्रीको समाजमें बहुत उच्च और प्रतिष्ठित पद देती है।' अब हमें देखना है कि हमारे धर्मशास्त्रोंकी और हमारी सभ्यताकी यह शिकायत कहाँतक सच्ची है।

स्त्रीजातिका जन्म

पहले यह देखना चाहिये कि हमारे और उनके शास्त्र स्त्रीजातिकी उत्पत्तिके बारेमें क्या इतिहास बताते हैं। हमारे श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें ऐतिहासिक वर्णन यह मिलता है कि—

कस्य कायमभूद्द्वेधा ।

भगवान्ने जिस प्रथम मनुकी सृष्टि की थी, उसके शरीरका दक्षिण भाग स्वायम्भुवमनुरूपी पुरुष बना और वाम भाग शतरूपा नामकी स्त्री बना। इससे स्पष्ट है कि हमारे शास्त्रोंके अनुसार स्त्री और पुरुष मिलकर एक शरीर होते हैं। स्त्री अर्धाङ्गिनी है, इसीलिये भगवान् शङ्कर अर्धनारीश्वर हैं, इत्यादि।

बैबिलमें इस विषयका वर्णन

अब आगे चलकर, तुलनात्मक अनुशीलनके लिये देखना है कि जो पाश्चात्य महानुभाव स्त्रीको सिर्फ अर्धाङ्गिनी बतानेसे तृप्त न होकर उसे Better Half (श्रेष्ठ अर्ध) बतानेका आडम्बर दिखाते हैं, उनके धर्मग्रन्थमें स्त्रीकी उत्पत्ति किस प्रकार बतायी गयी है। लम्बे-चौड़े वर्णनोंकी आवश्यकता नहीं है। सारांश बताना पर्याप्त है कि उनके बैबिल (Bible) नामके एकमात्र धर्मग्रन्थके पहले हिस्से (Old Testament) की पहली पुस्तक Genesis के पहले अध्यायमें जगत्की सृष्टिका क्रम बताया है कि 'ईश्वरने सारी दुनियाकी और सब चीजोंकी सृष्टि (God said: "Let there be light" and there was light, इत्यादि क्रमसे) अपने सङ्कल्पसे ही करनेके बाद, अन्तमें अपने सङ्कल्पसे ही और In His own image (अपनी ही मूर्तिके प्रतिबिम्बरूपसे) मनुष्यको बनाकर, उसके बाद उसे गाढ़ निद्रामें डालकर, अपने सुलाये हुए मनुष्यके पृष्ठवंश (backbone) से एक हड्डीको निकालकर, उससे स्त्रीको बनाया।' इससे स्पष्ट है कि बैबिलके सिद्धान्तके अनुसार केवल पुरुषजातिको नहीं, बल्कि पशु-पक्षी, कृमि, कीट, वृक्ष, पत्थर आदि सारी दुनियाको भी ईश्वरने अपने सङ्कल्पसे ही अर्थात् अपनी की हुई मानस सृष्टिसे बनाया, लेकिन सिर्फ एक स्त्रीजातिको अपने

सङ्कल्पसे न बनाकर पुरुषके शरीरके अन्तर्गत एक हड्डीसे बना डाला।

मुसलमान आदिका सिद्धान्त

चूँकि मुसलमान आदि अन्यान्य धर्मवाले भी बैबिल-के बताये हुए इसी इतिहासको मानते हैं, अतः पाठक अपने-आप जान सकते हैं कि सनातनधर्ममें स्त्रीका उत्पत्ति-से ही मनुष्यसमाजमें कितना मान है तथा अन्य मतोंमें स्त्रीजातिका उत्पत्तिसे ही कितना घृणित स्थान है।

सनातन वैवाहिक मन्त्र

एक और अंशमें तुलना करनेके लिये, अब देखना है कि हममें और उनमें स्त्रीको विवाहसे किस प्रकारका स्थान मिलता है। हमारे वैवाहिक मन्त्रोंसे ही स्पष्ट है कि स्त्रीको अपने पतिके घरमें सर्वोत्तम अधिकार दिया जाता है, क्योंकि विवाह करनेवाला पुरुष अपनी धर्मपत्नीसे कहता है—

'सम्राज्ञी भव'

'मेरे घरकी रानी या महारानी नहीं बल्कि सम्राज्ञी अर्थात् सार्वभौमिक चक्रवर्तिनी बनो।' इसमें स्त्रीको अपने पतिके घरमें कोई हीन पदवी नहीं मिलती, बल्कि सर्वोत्तम पदवी ही मिलती है।

पाश्चात्य वैवाहिक पद्धति

पाश्चात्योंमें विवाहके समय पुरुष कहता है कि 'I shall *love and cherish* thee till death doth us part.' (मैं तबतक तुझसे प्रेम और तेरा पालन करूँगा जबतक मृत्यु आकर हम दोनोंको अलग न कर दे।) परन्तु स्त्रीको कहना पड़ता है कि 'I shall *love and obey* thee till Death doth us part' (मैं तबतक तुझसे प्रेम और तेरी आज्ञाका पालन करूँगी जबतक मृत्यु आकर हम दोनोंको अलग न कर दे)। इसीसे स्पष्ट है कि Equality of the Sexes (स्त्री और पुरुषकी समानता) का आडम्बर दिखानेवाले और हो-हल्ला मचानेवाले पाश्चात्योंमें यथार्थमें समानताका भाव नहीं है, बल्कि भेदका है।

व्यवहारसम्बन्धी विवेचन

व्यवहारके सम्बन्धमें भी विवेचन करनेपर यही सिद्ध होता है कि सनातनधर्मका इस विषयमें भी अत्युत्तम सिद्धान्त और आदर्श है। बैबिलमें तो ईसाई (Jesus Christ के) greatest Propagandist (सर्वश्रेष्ठ प्रचारक) St. Paul महाशयने स्त्रीजातिको घृणित शब्दोंसे डाँटते हुए उसके अधिकारोंको अति सङ्कुचित किया है, मगर हमारे शास्त्रकारोंने उसे सिर्फ अर्धाङ्गिनी ही नहीं माना, बल्कि —

गृहिणी गृहमुच्यते

—इत्यादि वचनोंसे कहा है कि गृहिणी (अर्थात् स्त्री) से घर होता है, गृहस्थ अर्थात् पुरुषसे नहीं। गृहस्था-श्रमका नियम है कि जब किसी कार्यवश पुरुषको बाहर जाना पड़ता है तब स्त्री गार्हस्थ्य-अग्निको पूज-पाल सकती है, मगर जब पत्नी घरमें नहीं होती तब पुरुषको गार्हस्थ्यके औपासनकी अग्निको पूजनेका अधिकार नहीं है। इसी प्रकार यह भी हमारे शास्त्रोंकी विधि है कि स्त्रीको छोड़कर पुरुष अकेले तीर्थयात्रादि कार्य न करे, जब पुरुष दान-धर्म आदि पुण्यकर्म करता है तब स्त्रीके हाथसे उस पैसे या दूसरी चीजपर एक आचमनी जलके डाले जानेपर ही वह दान शास्त्रीय विधिके अनुसार साङ्ग होता है, इत्यादि इत्यादि।

मान, सत्कार और पूजा

बड़े खेदकी बात है कि आजकल मिथ्या प्रचारोंसे अपना स्वार्थ साधन करनेवाले इन विधर्मी प्रचारकोंके जालमें फँसकर हमारे सुधारक भाई भी कहने लगे हैं कि हिन्दू धर्मशास्त्र स्त्रीजातिका बड़ा अपमान करता है। यथार्थ तो यह है कि जिस महापुरुषके बारेमें श्रुति स्वयं कहती है कि

'यद्वन्मनुरब्रवीत्तद्भेषजम्'

'मनुने जो-जो कहा है वह सब जगत्का कल्याण करने-वाला है' और जिसको महाकवि श्रीकालिदासने भी 'माननीयो मनीषिणाम्' बताया है मगर जिसे आजकलके सुधारक स्त्रीजातिका खास दुश्मन बताते हैं, उसी मनीषि-माननीय भगवान् मनुने स्त्रियोंके सम्बन्धमें मान, सत्कार आदि साधारण शब्दोंका नहीं बल्कि 'पूजा' शब्दका ही प्रयोग करते हुए कहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

'जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं वहाँ देवता रमते हैं' और जहाँ स्त्रियाँ दुखी रहती हैं, वहाँ महालक्ष्मी आदि देवता नहीं बसते। तब मान और सत्कार तो बहुत छोटी बात है। अन्यान्य धर्मशास्त्रोंमें कई स्थानोंमें यहाँतक भी कहा गया है—

यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वै गृहम् ।

'जहाँ स्त्रियाँ नहीं पूजी जातीं वह तो घर नहीं है, श्मशान है' इत्यादि । ऐसी परिस्थितिमें यह कैसी भयानक भूल, अन्याय और जुल्म है कि ऐसे भगवान् मनुको और ऐसे धर्मशास्त्रोंको स्वार्थी विधर्मप्रचारकोंके शिष्य बनकर हमारे भारतीय सुधारक भी—

'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'

—इस न्यायसे स्त्रीजातिके शत्रु बताया करते हैं ।

स्त्रीमात्रका मातृस्वरूप

हमारे शास्त्र तो यहाँतक पहुँचे हुए हैं कि वे इतना ही नहीं कहते कि जगन्माता भगवतीको जगद्गुरु मानो और पूजो, परन्तु वे कहते हैं कि स्त्रीमात्रको जगन्माता और जगद्गुरु मानो और पूजो —

'सर्वस्त्रीनिलया'

'जगदम्बामयं पश्य स्त्रीमात्रमविशेषतः ॥'

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि स्त्रीमात्र जगदम्बा भगवतीका चर और प्रत्यक्ष रूप है, अतः उसके प्रति मनुष्यको अत्यन्त मान, आदर और सत्कारकी भावना रखनी चाहिये ।

स्त्रीनिन्दा आदिका निषेध

स्त्रीसत्कारकी विधिके साथ स्त्रीतिरस्कारका निषेध भी शास्त्रमें स्पष्ट शब्दोंसे किया गया है। इस बातके समर्थनके लिये एक ही प्रमाण पर्याप्त होगा—

स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं चाप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमन्विच्छन्देवीभक्तो विवर्जयेत् ॥

'अर्थात् देवीका भक्त होकर, अपना हित चाहनेवाला, स्त्रियोंकी निन्दा करने, उनको मारने, ठगने और उनका दिल दुखानेवाली बातें कहने आदिसे बचे ।'

देवीभक्त कौन है?

इसपर यह पूर्वपक्ष किया जा सकता है कि हम तो शिव, विष्णु आदि दूसरे किसी देवताके भक्त हैं, तुम्हारी देवीके नहीं हैं, इसलिये उपर्युक्त वचन हमारे लिये लागू नहीं है । इस आक्षेपका उत्तर यह है कि द्विजमात्र गायत्रीके उपासक हैं और गायत्री त्रिगुणात्मक त्रिशक्त्यात्मक महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीरूपिणी देवी ही है । अतएव द्विजमात्र प्रत्यक्ष देवीभक्त ही हैं और जो गायत्री-उपासना न करते हुए, शिव, विष्णु आदिके ही उपासक हैं, उनके लिये भी तो पूर्वोक्त सब प्रमाण मौजूद हैं कि बिना शक्ति ईश्वरकी प्रभुता ही नहीं होती । जो-जो अन्य देवताओंके उपासक होते हैं, उन सबको भी देवीकी उपासना बलात्कारसे करनी ही पड़ती है और उसके अनुग्रहका पात्र बननेके लिये, उपर्युक्त वचनके अनुसार, स्त्रीनिन्दा आदि पातकोंसे अवश्य बचना चाहिये । नहीं तो, उनको देवीका अनुग्रह नहीं मिल सकता । स्त्री-निन्दासे देवीका क्रोधपात्र बनना पड़ता है और उससे अपने सारे हितका नाश होता है ।

ईश्वरका स्वरूप

इस विषयके विचारके प्रसङ्गमें यह भी चमत्कार देखना है कि जो लोग Equality of the Sexes (स्त्री-पुरुषोंकी समानता) सिद्धान्तके मौखिक आडम्बरसे पक्षपाती, प्रचारक और ठेकेदार हैं, उनके मतमें अखण्ड, अपरिच्छिन्न सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वस्वरूपी ईश्वरके बारेमें सिर्फ Fatherhood of God का सिद्धान्त है । 'अर्थात् परमात्मा केवल जगत्पिता ही माना जाता है,' परन्तु स्त्री-जातिके शत्रु बताये जानेवाले सनातनधर्ममें तो सिद्धान्त है—

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'

'माता धाता पितामहः ।'

'भगवान् हमारी माता भी हैं और पिता भी' और भगवान्‌के अवतारोंमें स्त्रीरूपसे मोहिनी अवतार भी गिना जाता है ।

मातृभूतेश्वर

दक्षिणमें त्रिशिरःपुरी (Trichinopoly) में मातृ-भूतेश्वरका बड़ा प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर भी है, जो भगवान्‌के मातारूपसे किये हुए अवतारके उपाख्यानके आधारपर अति प्राचीन समयका बना हुआ है, जिसके साथ विभीषण आदिका भी ऐतिहासिक सम्बन्ध है और जिसका प्राचीन स्थापत्य, शिलालेख आदिके विज्ञाता विद्वान् (Archæologists and Epigraphists) बड़े आश्चर्यके साथ दर्शन आदि किया करते हैं । यह सनातनधर्मकी खास विशेषता है कि इसमें भगवान्‌के भीतर सिर्फ त्रिमूर्तियोंको ही नहीं, त्रिशक्तियोंको भी गिना गया है और प्रत्येक देवके साथ शक्तिरूपिणी एक

देवी जरूर रहती है, जिसकी उपासनाके विना केवल पुरुष-रूपी देवताकी उपासना हो ही नहीं सकती। हम पाश्चात्य दुनियाको Challenge देकर पूछते हैं कि क्या तुम्हारे धर्मग्रन्थोंमें Motherhood of God (ईश्वरके मातृत्व) का भाव किसी एक स्थानमें भी मिलता है ? अगर मिलता हो तो कहो।

देवताओंके नाम

इसीलिये हमारे उपासनाकाण्डमें गौरीशङ्कर, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण इत्यादि दम्पतियोंकी उपासनाकी विधि मिलती है और इनको अलग करना मना है। इस परिस्थितिके मुकाबिलेमें, पाश्चात्योंके बारेमें यह कहना अन्याय या अनुचित न होगा कि उनमें तो स्त्रीके विवाह होनेपर उसका असली नाम भी छूट जाता है और वह Mrs. अमुक बन जाती है और हमारे देशमें भी बड़े खेदके साथ देखा जाता है कि आजकल Mrs. अमुकका व्यवहार अंग्रेजी शिक्षा पानेका एक खास और अत्यन्त आवश्यक निशान माना जाने लगा है। रामायण, महाभारत आदिमें सीताजीका Mrs. राघव, रुक्मिणीजीका Mrs. यादव, द्रौपदीका Mrs. पाण्डव, इत्यादि वर्णन किसीने कभी भी कहीं भी पाया हो तो दिखावें।

समानता और स्वतन्त्रताका ढोंग

जहाँ ईश्वरस्वरूपमें एक छोटे अंगरूपसे भी स्त्रीके सन्निवेशका भावतक नहीं है और जहाँ विवाह हो जानेपर स्त्रीका नामतक नहीं रह सकता, वहाँसे Equality of the Sexes (स्त्रीपुरुषोंकी समानता), Independence of Woman (स्त्रीकी स्वतन्त्रता) आदि बड़े-बड़े सुन्दर सिद्धान्तोंका हो-हल्ला यहाँ हिन्दुस्थानमें आया करे, इससे बढ़कर धोखे और ढोंगकी बात क्या हो सकती है ?

स्त्रीपुरुषका यथार्थ सम्बन्ध

पाश्चात्य और भारतीय सुधारक Equality (समानता) का नाम लेकर हो-हल्ला मचाते रहें। ईश्वर-की सृष्टिमें तो स्त्रीपुरुषोंकी समानता है नहीं, कभी थी नहीं और कभी हो सकती भी नहीं, क्योंकि ये दोनों समान हों तो इनकी अलग-अलग सृष्टिकी ही क्या जरूरत थी ? सनातनधर्म और विज्ञानशास्त्र (अर्थात् प्रत्यक्ष प्रकृति) का भी कहना यह है कि the Sexes are not equal but only Complementary and Supplementary (अर्थात् स्त्री और पुरुष समान नहीं हैं, बल्कि दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण पदार्थ होते हैं)। इसी सिद्धान्तके अनुसार, जो प्रकृति या सृष्टिके यथार्थ और अनुभवसिद्ध क्रमके अनुकूल है, हमारे शास्त्रोंने सिर्फ हमारे मानवसमाजमें ही नहीं, बल्कि देवतासमाजमें भी स्त्री-पुरुषके कर्तव्य आदि विषयोंका विस्तारसे प्रतिपादन किया है।

अधिष्ठान और शक्ति

भगवान् शक्तिके अधिष्ठान हैं, इसलिये आधाररूपी ईश्वरके विना शक्ति रह ही नहीं सकती, और जिसके अन्दर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, इन तीनों शक्तियोंका समावेश है उस अपनी शक्तिके विना ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् और शक्ति परस्पर Complementary और Supplementary हैं।

रथी और सारथिका सम्बन्ध

कठोपनिषद्के—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

—इत्यादि मन्त्रोंके साथ, भगवान् श्रीशङ्कराचार्य महाराजके किये हुए श्रीशिवमानसपूजास्तोत्रके—

'आत्मा त्वं गिरिजा मतिः'

—इस वचनका समन्वय करनेपर यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि जैसे हमारे शरीररूपी रथमें रहनेवाले आत्मा और बुद्धि रथी और सारथिका सम्बन्ध रखते हैं, वैसे ही ईश्वर और भगवतीमें रथी और सारथिका सम्बन्ध होता है। क्योंकि भगवती ही भगवान्की प्रेरिका होकर उनकी गाड़ीको चलाती हुई उनके सब काम कराती हैं।

मनुष्यदम्पतियोंमें भी यही सम्बन्ध

देवी और भगवान्के इस सम्बन्धसे हम अपने आप समझ सकते हैं कि मनुष्यजातिमें भी धर्मपत्नी और पतिका आपसमें यही सम्बन्ध होना चाहिये कि धर्मपत्नी दूसरा कोई खयाल न करती हुई पतिके सब प्रकारसे सुख, शान्ति, आराम और कल्याणकी ही चिन्ता करे और काम करे। अर्थात् उसकी सारथि बने। अर्जुन और श्रीकृष्णके

रथोंका सुभद्राजी और सत्यभामाजीने जो सारथ्य किया था उससे भी इसी तत्त्वकी हमलोगोंके लिये बड़ी रोचक तथा उज्ज्वल दृष्टान्तरूपी शिक्षा मिलती है कि पति और पत्नीका सम्बन्ध रथी और सारथिका है।

सच्चा ऐक्य

इसीका नाम हमारे शास्त्रोंमें ऐक्य है। कलह बढ़ानेवाली समानता आदि बातोंसे कोई लाभ नहीं है, प्रत्युत नुकसान ही है। फायदेका रास्ता यह है कि स्त्री और पुरुष आपसमें अत्यन्त प्रेमका सम्बन्ध रखते हुए अपने-अपने विभिन्न अधिकारमें अपना-अपना काम करते हुए, दोनोंके इस प्रकारके मेलसे दोनोंके योगक्षेमके साधन बनें।

शिवशक्त्यैक्य

इसी हिसाबसे 'शिवशक्त्यैक्यरूपिणी' नामसे श्रीललितासहस्रनाममें देवीके विशेष्यरूपी नामोंका उपसंहाररूपी वर्णन करके, अन्तिम नाम विशेषणरूपी 'ललिताम्बिका' दिया गया है। इसका मतलब यह है कि विशेष्यरूपी ललिताम्बिका देवीके जो विशेषणरूपी 'श्रीमाता' 'श्रीमहाराज्ञी' आदि ९९८ नाम पहले दिये गये हैं, उन सबका 'शिवशक्त्यैक्यरूपिणी' इस (९९९) एक नामके भीतर अन्तर्भाव, उपसंहार, घनीकरण और क्रोडीकरण किया गया है।

भगवच्छक्तिके चार अर्थ

अबतक ऊपर बताये हुए सब विषयोंकी समालोचना और अनुसन्धानसे स्पष्ट होगा कि इस लेखका आरम्भ करते हुए हमने पहले वाक्यमें जिस 'भगवच्छक्ति' शब्दका प्रयोग किया है, उसके चार अर्थ होते हैं और इन चारों अर्थोंका हम सबको मनन करना चाहिये।

पहिला अर्थ

'भगवतः शक्तिः भगवच्छक्तिः'—इस षष्ठी तत्पुरुष-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि भगवती भगवान्‌की शक्ति है, वही ललितात्रिशती आदिमें बताये हुए 'ईश्वरप्रेरणकरी' नामको यथार्थ तथा चरितार्थ करती हुई, ईश्वरकी प्रेरणा करनेवाली और उसके सब काम करवानेवाली है।

दूसरा अर्थ

'भगवति शक्तिः भगवच्छक्तिः।' इस सप्तमी तत्पुरुष-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि भगवान्‌में जो शक्ति है उसीका नाम देवी है और उसकी उपासनाके बिना भगवान्‌की उपासना नहीं हो सकती।

तीसरा अर्थ

'भगवती चासौ शक्तिश्च भगवच्छक्तिः'—इस कर्मधारय-समासवाली व्युत्पत्तिसे हमें जानना है कि शक्तिरूपिणी देवी भगवती है। अर्थात् षड्गुणैश्वर्यादिसे विभूषित है और उसकी उपासनासे उपासकोंको सब प्रकारकी ऐश्वर्यादि विभूतियाँ अनायास मिल सकती हैं।

चौथा अर्थ

'भगवांश्चासौ शक्तिश्च, भगवच्छक्तिः।'—इस कर्मधारय-समासवाली एक और व्युत्पत्तिसे हमें पता लगता है कि देवी और भगवान्‌में भेद नहीं है, बल्कि ऐक्य है।

देवीमहिमाकी अनन्तता

ऐसी जगन्माता भगवतीकी उपासनाकी आवश्यकता और महिमाके विषयपर कितना भी कहते चलें, सब थोड़ा है। कविकुलतिलक श्रीकालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यके दसवें सर्गमें भगवान्‌के बारेमें जो कहा है—

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः॥
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥

—वह यहाँ भी ठीक-ठीक लागू होता है। भेद इतना है कि हम उस प्रकरणमें और इस प्रकरणमें—

'श्रमेण तदशक्त्या वा'

—इस पाठको पसन्द न करते हुए, उसकी जगहपर—

'श्रमेण तदशक्त्या च'

—इस प्रकारका संशोधन करते हुए, साफ-साफ कहेंगे कि भगवती और भगवान्‌की महिमाके सब वर्णनोंका जो उपसंहार अवश्य हुआ करता है, वह इसलिये नहीं कि उनकी महिमाका पर्याप्त या तृप्तिजनक वर्णन हो चुका है, बल्कि इसलिये कि उनकी महिमाका पर्याप्त या तृप्तिजनक वर्णन किसीसे और कभी भी हो ही नहीं सकता। जब श्रीअनन्तनाग आदिकी भी यही दुर्गति है तब कैमुतिकन्यायसे देवीमहिमाका यहाँतक कुछ दिङ्मात्र दर्शन किसी प्रकारसे करके—

'श्रमेण तदशक्त्या च'

—कालिदासकी उक्तिके इस संशोधित पाठके अनुसार हम उपसंहार करनेको विवश होते हैं ।

उपसंहार

उपसंहार करनेके समय वे ही दो खास प्रसङ्ग बार-बार याद आते हैं जिनमें क्षीराब्धिवासी शेषशायी भगवान् श्रीपुण्डरीकाक्षके अपनी योगनिद्रामें सोते रहनेके समय उनके नाभिकमलसे उत्पन्न छोटे बच्चे ब्रह्माजीके कच्चे मांसको खा जानेके लिये उपस्थित दोनों भयङ्कर असुरों (मधु और कैटभ) का भगवती महामाया जगन्माता, ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर, उन्हीं सोये हुए श्रीनारायणसे संहार करवा देती हैं।

अन्तिम आश्रय

जो जगन्माता—'न केवलं साधारणेषु सर्वेषु सुप्तेषु जागर्ति, अपि तु सुप्तेऽपि जगन्नाथे जागर्ति' अर्थात् 'केवल साधारण सब जीवोंके ही नहीं, बल्कि जगत्पिताके सोते रहनेपर भी जो अपने बच्चोंकी रक्षा और कल्याणके लिये दिनरात सदा-सर्वदा जागती रहती है, जिसका इसी प्रसङ्गके कारण चण्डीपाठ सप्तशतीके एक ध्यानश्लोकमें वर्णन है—

'यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥'

और जिसको शङ्करावतार और यतिसार्वभौम भगवान् जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य महाराजजीने भी अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिप्रेमसे भरे हुए भावके साथ—

'देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम्'

इत्यादि वर्णनोंसे सिर्फ जगन्माता ही नहीं बल्कि यथार्थ जगद्गुरु बताया है, उस जगन्माता भगवतीको छोड़कर आजकलके अति विकट सङ्कटके समयमें हम और किसका आश्रय लें । उसी जगन्माता और जगद्गुरु (rolled togather) के श्रीचरणोंके शरणागत होकर, उन्हीं श्रीचरणोंको पकड़कर, हमें अपने हृदयोद्गार और प्रार्थनाको पेश करना है ।

हृदयोद्गार

हमारे हृदयसे अब यही उद्गार और प्रार्थना उमड़ रही है कि—

'हे जगन्मातः ! उस समय मधु-कैटभसे तुम्हारे ही बचाये हुए उसी ब्रह्माके द्वारा और इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिरूपिणी शब्दब्रह्मरूपिणी तुम्हारी ही प्रेरणा और शक्तिसे भगवान्ने जिस सनातन वैदिक धर्मका दुनियाको उपदेश दिया, आज उसका केवल नाश ही नहीं बल्कि निर्मूलन करनेके लिये दो ही मधु-कैटभ नहीं बल्कि हजारों, लाखों और करोड़ों असुर कोने-कोनेसे उपस्थित हो रहे हैं । जगत्पिताजी, जो दुनियाकी इस बड़ी बुरी दशामें भी बहुत समयसे चुपचाप सोये पड़े मालूम देते हैं, अब चातुर्मास्यके समयमें, जब योगनिद्रामें सोते रहनेका नियम भी है, उनके जागनेकी हमें क्या आशा हो सकती है ? परन्तु उनकी योगनिद्राके समयमें उनके परम भक्त श्रीमान् प्रातःस्मरणीय राजर्षि अम्बरीषको उन्हींके सुदर्शनचक्रने महामुनि दुर्वासासे बचाया था । अवश्य ही जैसे अम्बरीषके पास वह चक्र था वैसे हम तुम्हारे आर्त बच्चोंके पास कोई आयुध नहीं है । तो भी, तुम तो हमेशा जागती रहनेवाली हो और भगवान्की योगनिद्राके समयमें तुम्हींने तो मधु और कैटभसे ब्रह्माजीकी रक्षा की थी ! अब हम तुम्हारे शरणागतोंके इस बड़े जबरदस्त सङ्कटके समय पर क्या तुम भी सो गयीं ? फिर हम तुम्हारे शरणागत और अनन्यशरण बच्चोंकी क्या गति होगी ? माता, तुम तो जगत्के प्रलयके बाद और उसकी पुनः सृष्टितक ही सोनेवाली हो । जगत्की सृष्टि और प्रलयके बीचमें तो तुम कभी सोती नहीं । और भगवान् जागते रहें या सोते रहें, उनकी शक्तिकी हैसियतसे तुमपर ही जगत्के पालनका भार रहता है । इसलिये अगर जगत्के प्रलयका समय आ गया हो, तब तो चुपचाप रहो । नहीं तो केवल अति शीघ्र नहीं, बल्कि एकदम उठ जाओ और हे शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ! अपने शरणागत दीन और आर्त सनातनधर्मियोंकी रक्षारूपी अपने कर्तव्यको सँभालो ।'

भक्तिप्रेमोपहाररूपी स्तोत्र और प्रार्थना

निजाङ्घ्रिसरसीरुहद्वयपरागधात्रीप्सिता-
खिलार्थततिदायकत्रिदशसद्मधात्रीरुहम् ।
पदाब्जनतिकृत्कृते निजकरस्थधात्रीफली-
कृताखिलनयव्रजं हृदि दधामि धात्रीगुरुम् ॥

करधात्रीकृतनतजनकरधात्रीकृतपरात्मपरविद्याम् ।
धात्रीधात्रीमेकां जगतीधात्रीं भजे जगद्धात्रीम् ॥

सुप्ते स्वयोगनिद्रावशतो विष्णौ तदीयनाभिजनिम् ।
डिम्भं जिघांसतोर्द्राकारितहननां भजे जगद्धात्रीम् ॥

सुप्तेऽपि जगज्जनके या त्वं जगतीसवित्रि ? जागर्षि ।
शरणागतरक्षाकृतिनिजकृतिकृतये भजे जगद्धात्रीम् ॥
इत्थं मधुकैटभतो रक्षितशिशवे हिरण्यगर्भाय ।
भगवन्मुखतः श्रावितसमस्तवेदां भजे जगद्धात्रीम् ॥
या ब्रह्माणं पूर्वं विधाय तस्मै हिनोति वेदांस्ताम् ।
हैरण्यगर्भदेशिकरूपां देवीं भजे जगद्धात्रीम् ॥
पातीति पात्री पिबतीति पात्री
व्युत्पत्तिरेवं द्विविधा भवन्ती ।
पीयूषपात्री शरणैकपात्री
द्वेधापि पात्रीभवती भवन्ती ॥
बुद्धिर्मे कुण्ठिता मातः समाप्ता मम युक्तयः ।
नान्यत् किञ्चिद्विजानामि त्वमेव शरणं मम ॥
धात्री पात्री हर्त्री वेत्री चाम्ब त्वमस्य लोकस्य ।
दात्री सकलार्थानां पात्रीकुरु मां त्वदीयकरुणायाः ॥

ॐ तत्सत् ।

शक्ति

सर्वशक्तिमयी महालक्ष्मी

(श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री १ १ ० ८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)

'शक्ति' शब्दके अनेक अर्थ कोशग्रन्थोंमें बतलाये गये हैं।

'कासूसामर्थ्ययोश्शक्तिः' (अमर)

'शक्तिः पराक्रमः प्राणः' (,,)

'षड्गुणाश्शक्तयस्तिस्रः' (,,)

—इत्यादि कोशवचन इसके प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई अर्थ हैं, जो दार्शनिक और तान्त्रिकोंके अभिमत हैं।

'शक्ति' शब्दकी व्याख्या

'शक्लृ शक्तौ' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय करनेपर 'शक्ति' शब्द सिद्ध होता है। कारण, वस्तुमें जो कार्योत्पादनोपयोगी अपृथक्सिद्ध धर्मविशेष है, उसीको 'शक्ति' कहते हैं। उदाहरणके लिये हम अग्निकी दाहशक्तिको ले सकते हैं। साधारणतया अग्नि दाह उत्पन्न करता है, यह हमलोग जानते हैं। परन्तु कहीं-कहीं ऐसा भी देखा गया है कि अग्निका स्पर्श होनेपर भी दाह नहीं होता। भारतमें इसके उदाहरण बहुत-से मिलेंगे। दक्षिण भारतमें देवी-देवताओंकी मन्नत मानकर धधकती हुई आगमें कूदनेकी प्रथा आज भी विद्यमान है। जादूगर लोग तपाये हुए लाल लोहेको अपने हाथोंमें उठा लेते हैं। इससे उनके हाथ-पैर नहीं जलते। चिरकालसे यह बात मानी जाती है कि मणि, मन्त्र और ओषधिके प्रभावसे अग्निका स्पर्श होनेपर भी दाह उत्पन्न नहीं होता। अतएव अग्निमें दाहोपयोगी एक ऐसी शक्तिको मानना पड़ेगा, जो मणिमन्त्रौषध्यादिके प्रभावसे नष्ट हो सकती है और उनके अभावमें उत्पन्न होती है। मीमांसक लोग इस प्रकारकी शक्ति माननेवालोंमें प्रधान हैं। अर्थात् 'शक्ति' वह चीज है जो कारणके साथ अपृथक्-सिद्ध रहकर कार्योत्पादनमें उपयोगी होती है।

अनेक शक्तियाँ

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥

(वि० पु० ६ । ७ । ६१)

इस श्लोकमें तीन शक्तियोंका उल्लेख है—परा विष्णुशक्ति, अपरा क्षेत्रज्ञशक्ति और तीसरा अविद्या—कर्म नामक शक्ति। जीवात्माको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तीसरी शक्ति कर्म है। इसीका नामान्तर अविद्या भी है। इसी अविद्याख्य कर्मशक्तिसे वेष्टित होकर क्षेत्रज्ञ नाना प्रकारके संसारतापोंको प्राप्त होता है और नाना योनियोंमें जाता है। जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा गया है—

यथा क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् ॥

(६ । ७ । ६२)

'सर्वगा' का अर्थ है 'जो सर्व योनियोंमें जाती है।'

केवल ये तीन ही शक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक भावपदार्थमें अलग-अलग शक्ति है। यह बात भी विष्णुपुराणमें ही कही गयी है। जैसे—

शक्तयस्सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः ।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ॥

(१ । ३ । २, ३)

अर्थात् सभी भावोंमें भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं, जिनका हम न तो चिन्तन कर सकते हैं और न वे हमारे ज्ञानका विषय ही हो सकती हैं। जैसे अग्निकी उष्णता और जलकी शीतलता आदि। अग्निउष्ण क्यों है, कहाँसे उसमें उष्णता आयी इत्यादि चिन्तन हमलोग नहीं कर सकते, चिन्तन करनेपर भी उष्णता आदि हमारे ज्ञानका विषय नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार ब्रह्मकी भी सर्गादि अनेक शक्तियाँ हैं।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

(श्वेता० ६। ८)

—इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें परमात्माकी नानाविध परा शक्तियाँ कही गयी हैं।

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणश्शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥

(वि० पु० १। २२। ५६)

—इत्यादि पुराणवचन समस्त जगत्को ब्रह्मकी शक्ति कहते हैं।

अहंताशक्ति

इस तरहकी अनेक शक्तियोंमें श्रीमहाविष्णुकी अहंता नामकी एक शक्ति है। वही महालक्ष्मी है।

तस्य या परमा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।
सर्वावस्थां गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी।
अहन्तां ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी॥

(लक्ष्मीतन्त्र २। ११, १२)

अर्थात् महालक्ष्मी इन्द्रके प्रति कहती हैं कि उस परब्रह्मकी जो चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति समस्त अवस्थाओंमें साथ देनेवाली देवी स्वात्मभूता अनपायिनी अहंता नामकी परमाशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूँ। इस शक्तिका दूसरा नाम नारायणी भी है। यह बात भी उसी तन्त्रमें कही गयी है—

नित्यनिर्दोषनिस्सीमकल्याणगुणशालिनी।
अहं नारायणी नाम सा सत्ता वैष्णवी परा॥

(लक्ष्मी० अ० ३। १)

अर्थात् महालक्ष्मी कहती हैं कि मैं नित्य, निर्दोष, सीमारहित, कल्याणगुणोंवाली नारायणी नामवाली वैष्णवी परासत्ता हूँ।

ऊपर 'शक्ति' शब्दकी व्याख्या हो चुकी है। कारणोंमें अपृथक्सिद्ध रहनेवाला कार्योपयोगी धर्म ही शक्ति है। यह शक्ति दो प्रकारकी है—कुछ तो केवल धर्ममात्र है, और कुछ धर्म और धर्मी उभयरूप है। अग्न्यादि भावोंकी उष्णता आदि शक्तियाँ केवल धर्म हैं। क्षेत्रज्ञ-शक्ति धर्म और धर्मी उभयरूप है। क्षेत्रज्ञ ईश्वरके प्रति विशेषण होकर धर्म बनते हुए भी स्वयं अनेक धर्मोंवाला है, शक्तिमान् भी है।

इन दो प्रकारकी शक्तियोंमें भी श्रीमहालक्ष्मी द्वितीय कोटिकी शक्ति है। स्वयं परमात्माका विशेषण होती हुई धर्म होकर भी वह अनेक गुणधर्मवती एवं शक्तिमती भी है। पहले जो 'विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता' इत्यादि विष्णुपुराणके वचन उद्धृत किये थे, उनमें जो 'विष्णुशक्ति' कही गयी है वह क्या है? इस विषयमें व्याख्याकारोंने नाना प्रकारके मत प्रदर्शित किये हैं, किन्तु हम यह समझते हैं कि वह विष्णुशक्ति ही 'अहंता' नामवाली महालक्ष्मी है। उस वचनमें अपराशक्ति और अविद्याशक्तिके विषयमें जैसा स्पष्टीकरण किया गया है वैसा स्पष्टीकरण विष्णुशक्तिके विषयमें नहीं किया गया है, केवल एक विष्णुशक्तिका उल्लेखमात्र कर दिया गया है। किन्तु इसका स्पष्टीकरण अहिर्बुध्न्यसंहिताके निम्नलिखित वचनसे हो जाता है। अहिर्बुध्न्यसंहिताके तीसरे अध्यायमें—

'तस्य शक्तिश्च का नाम'

अर्थात् उस परब्रह्मकी शक्तिका क्या नाम है?—नारदके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए अहिर्बुध्न्य कहते हैं—

शक्तयस्सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः।
स्वरूपे नैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः॥ २॥
सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी।
इदन्तया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते॥ ३॥
सर्वैरननुयोज्या हि शक्तयो भावगोचराः।
एवं भगवतस्तस्य परस्य ब्रह्मणो मुने॥ ४॥
सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः॥ ५॥

अर्थात् समस्त भावोंकी अपृथक्स्थित शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। पदार्थोंकी शक्तियाँ कार्यद्वारा ही दृश्यमान होती हैं स्वरूपतः नहीं। यह समस्त भावोंके साथ-साथ रहनेवाली सूक्ष्मावस्था है। उसको 'यह है वह शक्ति' इस तरह दिखला कर सिद्ध नहीं कर सकते, किन्तु 'नाहीं' भी नहीं कर सकते। भावोंमें रहनेवाली शक्तियाँ तर्कका विषय नहीं हैं, इसी

प्रकार परमात्माकी शक्ति भी चन्द्रमाके साथ चाँदनीकी भाँति सर्व भावोंमें रहती है। भावरूप और अभावरूप पदार्थोंमें रहनेवाली परमात्माकी वह शक्ति ही समस्त कार्यों-को करती है। इस प्रकार सामान्यतया निरूपण करनेके पश्चात्—

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते।
श्रयन्ती वैष्णवं भावं सा श्रीरिति निगद्यते॥ ९॥
अव्यक्तकालपुंभावात्सा पद्मा पद्ममालिनी।
कामदानाच्च कमला पर्यायसुखयोगतः॥१०॥
विष्णोस्सामर्थ्यरूपत्वाद्विष्णुशक्तिः प्रगीयते॥११॥

इन श्लोकोंमें उसी परब्रह्म शक्तिके लक्ष्मी, श्री, पद्मा, पद्ममालिनी, कमला इत्यादि नाम निर्वचनपूर्वक बताकर उसीको विष्णुशक्ति बताया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विष्णुपुराणोक्त परा विष्णुशक्ति श्रीमहा-लक्ष्मी ही हैं, जिनके कमला, पद्मा, श्री इत्यादि नामान्तर भी हैं। यही अहंता नामसे भी कही जाती हैं।

शक्तिका उपयोग

शक्ति-पदार्थकी व्याख्या करते हुए पहले बताया था कि कारणमें अपृथक्सिद्ध होकर रहनेवाला कार्योपयोगी धर्म या विशेषण ही शक्ति है। अब यह विचार करना है कि महालक्ष्मीजी यदि शक्ति हैं तो उनमें यह लक्षण समन्वित होता है या नहीं। परब्रह्म परमात्मा जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके कारण हैं—यह वेदान्तशास्त्रसिद्ध विषय है। उस परमात्माके उन कार्योंमें उपयुक्त होनेवाली श्रीमहा-लक्ष्मीजीके उस परमात्माका अपृथक्सिद्ध विशेषण होनेके कारण उनमें शक्तिलक्षण ठीक समन्वित हो जाता है।

भगवच्छक्तिरूप श्रीमहालक्ष्मीजीके पाँच कार्य हैं—तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, संहार और अनुग्रह।

शक्तिर्नारायणस्याहं नित्या देवी सदोदिता।
तस्या मे पञ्च कर्माणि नित्यानि त्रिदशेश्वर॥
तिरोभावस्तथा सृष्टिस्स्थितिस्संहृतिरेव च।
अनुग्रह इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम्॥
(लक्ष्मीतन्त्र अ० १२)

सृष्टि, स्थिति और संहार सुप्रसिद्ध हैं। तिरोभाव कहते हैं जीवात्माके कर्मरूप अविद्यासे तिरोहित या आच्छादित होनेको। अनुग्रह मोक्षको कहते हैं। यद्यपि ये पाँच कर्म शक्तिरूप लक्ष्मीजीके बताये गये हैं, किन्तु वास्तवमें ये हैं परमात्माके ही कर्म। परमात्माके सृष्ट्यादि कार्योंमें शक्तिका उपयोग होनेके कारण ही ये शक्तिके कार्य कहे गये हैं। यह बात लक्ष्मीतन्त्रमें ही एक जगह स्पष्ट कर दी गयी है—

निर्दोषो निरधिष्ठेयो निरवद्यस्सनातनः।
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् परमात्मा सनातनः॥
षाड्गुण्यविग्रहो नित्यं परं ब्रह्माक्षरं परम्।
तस्य मां परमां शक्तिं नित्यं तद्धर्मधर्मिणीम्॥
सर्वभावानुगां विद्धि निर्दोषामनपायिनीम्।
सर्वकार्यकरी साहं विष्णोरव्ययरूपिणः॥
× × ×
व्यापारस्तस्य देवस्य साहमस्मि न संशयः।
मया कृतं हि यत्कर्म तेन तत्कृतमुच्यते॥

अर्थात् महालक्ष्मीजी कहती हैं कि मैं नित्य, निर्दोष, निरवयव परब्रह्म परमात्मा श्रीमन्नारायणकी शक्ति हूँ। उनके सब कार्य मैं ही करती हूँ। मैं उनका व्यापाररूप हूँ। अतएव मैं जो कार्य करती हूँ वह उन्हींका किया हुआ कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि अग्निका दाहरूपी कार्य जैसे अग्निगत दाहशक्तिके कारण होता है, वैसे ही परमात्माके सृष्ट्यादि कार्य परमात्मगत शक्तिरूप महालक्ष्मी-जीके कारण होते हैं।

मोक्षलाभमें महालक्ष्मीजीका उपयोग

यह पहले बतलाया जा चुका है कि ईश्वरीय सृष्ट्यादि समस्त कार्योंमें तच्छक्तिरूप महालक्ष्मीजीका उपयोग है। परन्तु मोक्षदानरूप कार्यमें तो श्रीमहालक्ष्मीजीका विशिष्ट-रूपसे उपयोग है। जीवोंको मोक्षलाभ श्रीमहालक्ष्मीजीके कारण ही होता है।

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया।
रक्षकस्सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते॥

यहाँपर 'रक्षा' शब्दसे मोक्षदान ही अभिप्रेत है। परमात्मा मोक्षप्रद हैं, यह सर्वशास्त्रसिद्धान्त है। किन्तु वह मोक्षप्रदत्व लक्ष्मीसहित नारायणका है, केवल नारायण-का नहीं। मोक्षदानमें मुख्य कर्तृत्व हृषीकेशका होनेपर भी उसमें लक्ष्मीका साथ प्रयोजकरूपमें अन्तर्भूत है। लक्ष्मीके बिना मोक्षदान असम्भव हो जाता है। भगवच्छरणागतिमें लक्ष्मीजीका पुरुषकारत्व अवश्यापेक्षित है। उसके बिना शरणागति कार्यकरी नहीं होती।

यह बात सर्वतोभावेन शास्त्रज्ञोंने स्वीकार की है कि ईश्वरकी दया ही मोक्षलाभका मुख्य कारण है, जीवके सब प्रयत्न उसके बिना निरर्थक हैं। उस दयाके होनेपर जीव-प्रयत्न अनावश्यक है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥

अर्थात् परमात्मा श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि किसी भी उपायसे लभ्य नहीं हैं। किन्तु वह परमात्मा जिसको अपनाते हैं उसीको मिलते हैं। उसीके सामनेसे वह माया तिरस्करिणी हटती है।

वह परमात्माकी दया निर्हेतुकी दया होती है। ईश्वरीय दया किसपर होगी, कब होगी, यह जानना अशक्य है। दयामय परमात्माके सामने जब यह अनाद्यनन्त पापराशियोंसे भरा हुआ जीव श्रीमहालक्ष्मीजीको पुरुषकार बनाकर 'अकिञ्चनोऽनन्यगतिश्शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये' कहता हुआ जा गिरता है, उस समय अनन्यपराधीन अनियाम्य सर्वस्वतन्त्र सर्वकर्मफलप्रद परमात्माकी दयाको उद्बोधित करके उस जीवको दयाका पात्र बनानेवाली श्रीमहालक्ष्मीजीके सिवा दूसरी कौन है? अन्यथा सर्वस्वतन्त्र सर्वकर्मफलप्रद परमात्मासे दयाभिक्षा माँगनेवाले जीवात्माको परमात्मा यदि नियमानुसार कर्मफल भुगताने लग जायँ तो क्या हो सकता है? ऐसे समयमें सर्वजगन्माता कारुण्यमूर्त्ति श्रीमहालक्ष्मीजी नाना उपायोंसे दण्डधर परमात्माकी दयाको जाग्रतकर जीवकी रक्षा कराती हैं। यही उनका मातृत्व है।

श्रीपराशरभट्टारकने क्या ही सुन्दर कहा है—

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित्कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः॥

अर्थात् हे माता महालक्ष्मी! आपके पति जब कभी पूर्णापराध जीवके ऊपर पिताके समान हितकी दृष्टिसे क्रोधित हो जाते हैं, उस समय आप ही 'यह क्या? इस जगत्में निर्दोष है ही कौन?' इत्यादि रूपसे उपदेश कर उनके क्रोधको शान्त करवाके दयाको जाग्रतकर अपनाती हैं, तभी तो आप हमारी माता हैं।

सर्वशक्तिमयी, विशेषतः अनुग्रहमयी श्रीमहालक्ष्मीजीके पुरुषकारत्व और जीवरक्षणतत्परताके उदाहरण हमें श्रीजानकीजीके अवतारमें स्पष्ट मिलते हैं। रावणकी प्रेरणासे नानाविध कष्ट पहुँचानेवाली राक्षसियाँ जब त्रिजटाके स्वप्न-वृत्तान्तसे अवश्यम्भावी राक्षसवधको जानकर भयभीत हुईं, तब आप-ही-आप उनको अभयदान देकर 'भवेयं शरणं हि वः' कहनेवाली श्रीजानकीजीकी यह जीवदया किसके मनमें आश्चर्य उत्पन्न नहीं करती? रावणवधानन्तर राक्षसियोंको दण्ड देनेकी इच्छा करनेवाले श्रीहनुमान्‌जीसे—

कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।

—आदि कहकर उन राक्षसियोंको छुड़ानेवाली श्रीजानकीजीकी वह दया किसको आश्चर्यचकित न करेगी?

श्रीपराशरभट्टारकस्वामीजीने क्या ही सुन्दर कहा है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नस्सान्द्रमहागसस्सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

आचार्य कहते हैं कि श्रीरामने विभीषण और काककी रक्षा की तो क्या किया? वे दोनों तो शरणागत हुए थे। श्रीजानकीजीने तो राक्षसियोंके बिना कुछ किये ही, अपने आप हनुमान्-जैसे हठीसे लड़-झगड़कर तत्काल अपराध करनेवाली राक्षसियोंको छुड़ाकर उनकी रक्षा की, यही तो महत्त्वकी बात है। श्रीजानकीजीने श्रीरामगोष्ठीको भी अपने कार्यसे छोटा बना दिया।

श्रीमहालक्ष्मीजीका गुणवर्णन इस छोटे-से लेखमें नहीं हो सकता। उसके लिये समय मिलनेपर स्वतन्त्र लेख लिखनेका प्रयत्न करेंगे, अभी तो इतना ही। जय सर्वशक्तिमयी महालक्ष्मीजीकी।

शक्तिस्तवन

(लेखक—आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)

धाता-स्वरूप धरिकै रचि सृष्टि सारी,
पालौ प्रजा अखिल अच्युत-भेष-धारी।
नाशौ बहोरि सब शंकर-अंक आई,
लीला अपार तव अंब न जाय गाई॥ १॥

भावी, अतीत अरु संप्रति काल ज्ञाता,
तू ही सतोरज-तमोगुण-पूर्ण-गाता।
आद्यंतहीन, अखिलेश्वरि तूहि एका,
है तूहि जाहि जपते तपसो अनेका॥ २॥

सप्रेम पूजि जिनको नर नेमधारी
पावें कवीन्द्रपद पावन कीर्तिकारी।
नावें नृदेव जिन पायन पै स्वमाथा
दंडप्रणाम तिनको मम जोरि हाथा॥ ३॥

ब्रह्मा, महेन्द्र, निधिनायक, नीरनाथा,
सानंद जासु गुण गावत जोरि हाथा।
सत्कीर्ति तासु यह पामर ज्ञानहीना
हा! हा!! कहे किमि महामतिमंद दीना॥ ४॥

पीयूषपूर्ण दृग तू जननी हमारी
संतापतप्ततन बालक मैं दुखारी।
संबंध सत्य अस मातु हिये बिचारी
कीजै यथा उचित देवि! हमें निहारी॥ ५॥ ['देवीस्तुतिशतक' से]

शक्तितत्त्व

(पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके विचार)

प्र०—शक्तितत्त्व क्या है?

उ०—जो निर्विशेष शुद्ध तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधार है उसीको पुंस्त्वदृष्टिसे 'चित्' और स्त्रीत्वदृष्टिसे 'चिति' कहते हैं। शुद्ध चेतन और शुद्ध चिति—ये एक ही तत्त्वके दो नाम हैं। मायामें प्रतिबिम्बित उसी तत्त्वकी जब पुरुष-रूपसे उपासना की जाती है तब उसे ईश्वर, शिव अथवा भगवान् आदि नामोंसे पुकारते हैं, और जब स्त्रीरूपसे उसकी उपासना करते हैं तो उसीको ईश्वरी, दुर्गा अथवा भगवती कहते हैं। इस प्रकार शिव-गौरी, कृष्ण-राधा, राम-सीता तथा विष्णु और महालक्ष्मी—ये परस्पर अभिन्न ही हैं। इनमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है, केवल उपासकोंके दृष्टि-भेदसे ही इनके नाम और रूपोंमें भेद माना जाता है।

प्र०—शक्त्युपासनाका अधिकारी कौन है? और उसका अन्तिम फल क्या है?

उ०—शक्तिकी उपासना प्रायः सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये की जाती है। तन्त्रशास्त्रका मुख्य उद्देश्य सिद्धि-लाभ ही है। आसुरी प्रकृतिके पुरुष उसे मद्य-मांस आदिसे पूजते हैं, जिससे उन्हें मारण-उच्चाटन आदि आसुरी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; तथा दैवी प्रकृतिके पुरुष गन्ध-पुष्प आदि सात्त्विक पदार्थोंसे, जिससे वे नाना प्रकारकी दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यद्यपि शक्तिके उपासक प्रायः सकाम पुरुष ही होते हैं, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसके निष्काम उपासक होते ही नहीं। परमहंस रामकृष्ण ऐसे ही निष्काम उपासक थे। ऐसे उपासक तो सब प्रकारकी सिद्धियोंको ठुकराकर उसी परम पदको प्राप्त होते हैं जो परमहंसोंका गन्तव्य स्थान है। और यही शक्त्युपासनाका चरम फल है। दुर्गासप्तशतीमें जिस प्रकार देवीको 'स्वर्गप्रदा' बतलाया है उसी प्रकार उसे 'अपवर्गदा' भी कहा है। यथा—

स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

प्र०—शक्त्युपासनाका महत्त्व सूचित करनेवाली कोई सच्ची घटना सुनाइये।

उ०—प्रायः सवा सौ वर्ष हुए जगन्नाथपुरीके पास एक जमींदार थे। लोग उन्हें 'कर्ताजी' कहकर पुकारा करते थे। उन्होंने एक पण्डितजीसे वैष्णवधर्मकी दीक्षा ली। पण्डितजी ऊपरसे तो वैष्णव बने हुए थे, परन्तु वास्तवमें श्यामा (काली) के उपासक थे। वस्तुतः उनकी दृष्टिमें श्याम और श्यामामें कोई भेद नहीं था।

इधर कुछ लोगोंने कर्त्ताजीसे उनकी शिकायत करनी आरम्भ कर दी। परन्तु कर्त्ताजीको अपने गुरुजीसे इस विषयमें कोई प्रश्न करनेका साहस नहीं हुआ। उस देशके लोग अपने गुरुका बहुत अधिक गौरव मानते हैं। पण्डितजी रात्रिके समय काली माँकी उपासना किया करते थे। अतः कुछ लोगोंने कर्त्ताजीको निश्चय करानेके लिये उन्हें रात्रिको—जिस समय पण्डितजी पूजामें बैठते थे—ले जानेका आयोजन किया। एक दिन जिस समय पण्डितजी माताकी पूजा कर रहे थे वे अकस्मात् कर्त्ताजीको लेकर आ धमके। कर्त्ताजीको आये देख पण्डितजी कुछ सहमे और उन्होंने जगदम्बासे प्रार्थना की कि 'माँ! यदि तेरे चरणोंमें मेरा अनन्य प्रेम है तो तू श्यामासे श्याम हो जा।' पण्डितजीकी प्रार्थनासे वह मूर्ति कर्त्ताजीके सहित अन्य सब दर्शकोंको श्रीकृष्णरूप ही दिखलायी दी। इस प्रकार अपने भक्तकी प्रार्थना स्वीकारकर भगवतीने भगवान्‌के साथ अपना अभेद सिद्ध कर दिया।

स्वरूप-शक्ति

(लेखक—श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी)

सीता-सुधा

पद-कमलनकी धूलि ही जाके श्री विख्यात ।
जा छाया ही छवि अहै जयति जनकजा मात ॥ १ ॥
श्रीभूलीलाह्लादिनी आदिशक्तियनि-रानि ।
नाद-वेद जननी जयति सिय गुण-शोभा-खानि ॥ २ ॥
भेद-अभेद विलास जेहि उद्भवादि जेहि हास ।
ब्रह्माकार प्रकास जेहि करैं सो सिय हिय बास ॥ ३ ॥
निर्गुणहूकौ सगुण जो करति अदृश्यहु दृश्य ।
जय सिय-शक्ति परात्परा जेहि चिंतत मुनि-ऋष्य ॥ ४ ॥
अगुण-सगुण सौं रामकौ जो परचाव दिखाव ।
जय परब्रह्म ईक्षणा सिय बहुविध श्रुति गाव ॥ ५ ॥
जय स्वरूप-शक्ती शुभा 'बिन्दु' रेफरूपाहि ।
जामैं भासत जगत सो जननि जानकी पाहि ॥ ६ ॥
बीज कृशानु-सुवासिनी भानु-प्रकासिनि जोय ।
'बिन्दु' इंदु लौं भासिनी जयति जनकजा सोय ॥ ७ ॥
प्रकृति-रमित चिति-शक्ति जो रेफाश्रित सीताहि ।
कर्षण अनुसंधान करि प्रगट्यो जनक सुताहि ॥ ८ ॥
रेफ-सुहल-हल्यास्म-भुवि जनक ब्रह्मविद-द्वार ।
प्रगटति ब्रह्मविभूतिपर अजहूँ सीताकार ॥ ९ ॥
अहै प्रकृति ही पुरुषकौ निजी रहस्य विशेष ।
तेहि अनगोचरकौ अहै शक्ति विहार-प्रदेश ॥१०॥
बसत प्राणि-वैशेष्य है तासु स्वभावहि माँहि ।
नाना जन्महु कर्म लौं मूल छटा नहिं जाहि ॥११॥
जेहि मनकौ आकार जो सोई तासु स्वभाव ।
'बिन्दु' सत्त्व-संबद्ध सो आत्म-विलास-विभाव ॥१२॥
पुरुषोत्तम श्रीरामकी प्रकृति द्विधा सुप्रमान ।
सहजा सहज स्वरूपकी वैकारिकी जु आन ॥१३॥
अपरिणामि सहजा-सहित विरहित योग-वियोग ।
भासमान परिणामिसौं वैकारिकी-सुयोग ॥१४॥
चेतन-तोय-तरंग-सी वैकारिकी सुभाय ।
लीलाकारा प्रकृति सो चारु चपल चित चाय ॥१५॥
सहजा सहज स्वरूपकी सीताऽभिधा उदार ।
ता माया वैकारिकी राजित ईहाकार ॥१६॥
नित स्वरूपगत रहति सिय अग्नि-बीज-कृतवास ।
जाकी इच्छा-शक्ति ही माया छाया भास ॥१७॥

सिय-भ्रूभंगीपै नटति घटति विश्व-ब्रह्मांड ।
छन-कनमैं ही देति करि उद्भवादि सब कांड ॥१८॥
अपरा-परा-परात्परा चतुष्पादमयि मानि ।
यहि विध पुनि हरिकी अहै प्रकृति त्रिधा गुणखानि ॥१९॥
अपरा अचिद तमस्विनी परा सुचिद है माहि ।
उभय-विधायिनि शक्ति जो परात्परा सो आहि ॥२०॥
पराऽपराको क्षेत्र है प्रकृतिपाद-विस्तार ।
त्यौं त्रिपाद-राजेश्वरी सीय प्रकृतिपर-पार ॥२१॥
चिदचिद्-मिलित पराऽपरा लोकत्रयी रहिं खेलि ।
शुद्ध चिन्मयी एकरस परात्परा हरि-बेलि ॥२२॥
चिद्धात्री चिति-शक्ति ही भाँति-भाँति प्रतिभाति ।
अचिद-शक्तिहू शुद्ध ह्वै चिदसौं हिलिमिलि जाति ॥२३॥
सहज सच्चिदानन्दमयि सहजामैं ह्वै लीन ।
लहति ब्रह्म आकार सो झीनहुतैं अति झीन ॥२४॥
अहै अचित्त्व अनित्य जो अपरा-गुण-सुप्रधान ।
एक सचेतन तत्त्व तजि नहीं कहीं कछु आन ॥२५॥
विकृति अनित्या ही अहै प्रकृति-विकल्प सुभाय ।
जोइ अनित्य असत्य सोइ उपजै और बिलाय ॥२६॥
बहति जाति है प्रकृति-सरि पुरुषोत्तमकी ओर ।
अंतर्गत करि चर-अचर छन-छन लेति हिलोर ॥२७॥
जा सत्ता भासत जगत 'अस्ति' रेफ रामेंदु ।
अरु जातैं रमणीयता भाति 'भाति' सिय बिंदु ॥२८॥
सीता लक्ष्मण-संगहू होय तन्निहित त्यौंहि ।
रमत राम चर-अचरमैं प्रकृति-बीच गुण ज्यौंहि ॥२९॥
जौहु मूर्त्तित्रय संग नित तौहु स्वतंत्र अकेल ।
लसत राम निरपेक्षहू केवल तत्त्व अमेल ॥३०॥
तन्मत तद्गत ह्वै तवौं रहति सीय अविछिन्न ।
जो स्वरूप-शक्तिहि अहै होय सकति किमि भिन्न ॥३१॥
राम सीय सिय राम हैं लीलाहेतु द्विभास ।
जोइ विषय आश्रय सोई जोइ अकाश अवकाश ॥३२॥
चिदभिमानि दैवत लखन राम-तेज अनुकूल ।
जेहि महिमामैं लसत सो सिय चिति-शक्ति सुमूल ॥३३॥
मातृ-पितृ अरु पुत्रसौं वै अंगी वै अंग ।
अविच्छिन्न-संबंध नित रहत संग ही संग ॥३४॥

प्रकृति पुरुषतैं भिन्न नहिं शक्तिहि शक्तीमान।
यहि विध एक अभेदकौ अहै भेद सब जान ॥३५॥
एकहि प्रकृति विकृति तेहि अमित अचिंत्य विचित्र।
एकहि अद्वय पुरुषकी महिमा सो सुपवित्र ॥३६॥
केवल पुरुष अकेलि जो सोई अहै सकेलि।
निज महिमा बिस्तारिकै रहत खेल बहु खेलि ॥३७॥
जाहि योगमाया कहत शक्ति संधिनी सोय।
क्रियाशक्तिहू कहत तेहि महिमा पुरुष अदोय॥३८॥
जो महिमा माया अजा सोई शक्ति कहाय।
सोई पुनः प्रकृति अहै पुरुषाभिन्न सुभाय ॥३९॥
अजा अनादिरु सांत है त्रिगुणमयी जेहि भाँति।
त्योंहि सच्चिदानंदगुण-खानि सीय सुविभाति ॥४०॥
नित्य अनादि अनंत सिय सकल-शक्ति श्रीखानि।
रामकेर गुण-धर्म जे तेइ सियकेहु अहानि ॥४१॥
नाद-बीजकोशा नलिनि सिय कल[1]-दल कमनीय।
सगुणागुण रस-सुरभि जेहि राम-तत्त्व रमणीय ॥४२॥
प्रकृत-प्रकृति सिय प्रकृति[2] लसि विकृति विभक्ति-प्रसार।
अर्थ-राम अनुहरि छटा धारति विविध अकार ॥४३॥
शब्द-ब्रह्मकौ जगद् ब्रह्म करि जौन दिखावति।
नाद-बिंदुकौ निज महिमा मैं जौन खेलावति ॥
अव्यक्तहुको व्यक्त व्यक्त अव्यक्त बनावति।
ध्वनिरु ज्योति अनुचरिन-संग खेलति सुख पावति॥
जाकी महिमामैं जगद-बीज उगत फूलत-फलत।
जय सिय जा वात्सल्य-पय वत्स 'बिन्दु' हू पी पलत॥१॥

निज जन देखत ही मातु-चित्त द्रवि उठै,
स्रवि उठैं अँसुवाहू अँखियाँ भरति हैं।
इंदु-सिंधु-न्याय वातसल्यरस अमियकी,
कोटि-कोटि वीचि हिये-बीच उमरति है।
'बिन्दु' सैं कपूतहूकौ करति कृतार्थ, गोद,
मोदसौं भरति दुःख दोषन हरति है।
जैसे रामभद्र-छटा समता सरति अहै,
तैसे सिय-छवि मंजु ममता ढरति है॥१॥

सकिलि त्रिलोकन तैं शारदी जुन्हाई आई,
देखि सिय-शोभा शुभा हिम ह्वै गरति है।
होंहि सप्त-सिंधु जौ सुधाके वसुधाके बीच,
तौहू ताके शीलकी न उपमा पुरति है।
विश्व-कल्प वनमैं रमैं जो कोटि कामधेनु,
तबौं न उदारताकी समता धरति है।
'बिन्दु' रामचंद्रजूकी सुधाकी सी लसी सिय,
छन-छन छवि-छोह-निर्झरी झरति है ॥२॥

[1]—कला। [2]—शब्द।

जाकी ही महततासैं दृश्य औ अदृश्य लसैं,
दिव्यहू अदिव्य सृष्टि-सतता फुरति है।
निज भ्रूविलासतैं जो सहजै विपुल विश्व,
करति-धरति त्यौं भरतिहू हरति है।
ब्रह्म-सार-तत्त्व जो अगम्य है महत्त्व जासु,
सर्वशक्ति-सत्त्व राम-हिय विहरति है।
जाके एक 'बिन्दु' ही तैं कोटि ब्रह्मांडनकी,
कोटि-कोटि भाँति सुख-सुषमा सरति है।३।

जाकी रंच द्युति लहि दामिनी है दमकति,
चमकति चाँदनीहू कुमुद खिलत हैं।
कलिंद-चंद उडुवृंद दिव्यलोक जेते ते,
जाकी आकरषणीमैं फूलत-फलत हैं।
गंध धरा धारै तेज अनल सम्हारै अरु,
अनिल चलतु वारि 'बिन्दु' उछलत है।
लसैं अग जग सब जाकी ही महत्ता माहि,
बिनु सिय-सत्ता एक पत्ता ना हिलत है॥४॥

जड होत चेतन चेतन जड होत छन,
जाकी भौंह-भंगीतैं होत लय-विकास है।
परा अरु अपराहू जोहति रहति मुख,
उमा-रमा-गिरा जाकी शक्तिको विलास हैं।
अमृत-क्षेम-अभय-त्रिपादकी अधीश्वरी,
प्रकृतिलौं चारिहू विभूति जा प्रकास हैं।
मिथिलेश-दुलारी सुकुमारी राम-प्यारी जो,
माता सो हमारी'बिन्दु'पूरै सब आस है ॥५॥

चैतन्य-साम्राज्य-लक्ष्मी-सी प्रभा छिटकति,
अंगहि अंग छवि-घन लहलहात है।
हिम-धारा-धोई लई राकाहूकौ जोति कांति,
हीरकके हीरतैं अधिक अवदात है।
दृगतैं प्रसाद-सुधा-धारा-सी रहति बहि,
मुख-कंजहूतैं मधु माधुर्य रसात है।
सिय-तन-सौरभतैं पारिजात हारि जात,
माधुरी पै'बिन्दु'वारिजात वारि जात हैं॥६॥

प्रकृति-तुला तेहि मानदंड विभु विष्णु पुरुषपर।
दिशि गुण[1] पल[2] भुवितलहु अपर पुनि विलसत अंबर।
तौल्यो विधिनैं विधिवत विधु अरु सिय-मुख सुंदर।
छवि-दबि भुवि सिय-सुमुख रह्यो उठि गयो नभ चंदर।
अतिशय छविचय कहै को आदिज्योति सुषमातमा।
जय-जय सिय सर्वेश्वरी रामवल्लभा 'बिन्दु'-मा ॥२॥
खींचि लई सब अवनिनैं स्वर्ग-सुछवि अनयास।
प्रगट्यो तेहि सिय-रूपमैं भयो सून आकास ॥४४॥

[1]—डोर। [2]—पलड़ा।

तन्त्र और वेदान्त

(लेखक—श्रीअरविन्द)

भारतवर्षमें अब भी एक विशेष प्रकारकी ऐसी योगपद्धति प्रचलित है जो स्वभावसे ही समन्वयात्मक है और जिसका प्रवर्तन प्रकृतिके एक महान् केन्द्रस्थ तत्त्वसे—प्रकृतिकी एक प्रचण्ड वेगवती शक्तिसे होता है। पर यह है एक पृथक् योग ही, अन्य योगप्रणालियोंका समन्वय नहीं । यह योगपद्धति तन्त्रकी योगपद्धति है। तन्त्रमें पीछेसे आकर कई ऐसी बातें जुट गयी हैं जिनके कारण तन्त्र उन लोगोंमें बदनाम-सा हो गया है जो कि तान्त्रिक नहीं हैं। विशेषकर तन्त्रके वाममार्गमें ऐसी-ऐसी बातें आ गयीं जिनसे न केवल अच्छे-बुरेका, पाप-पुण्यका कोई विचार न रहा प्रत्युत पाप-पुण्यादि द्वन्द्वोंके स्थानमें स्वभावनियत सद्धर्मकी स्थापना होनेके बजाय अनियन्त्रित कामाचार, असंयत सामाजिक व्यभिचार—दुराचारका मानों एक पन्थ ही चल गया। तथापि मूलतः तन्त्र एक बड़ी चीज थी, बड़ी बलवती योगपद्धति थी और उसके मूलमें ऐसी भावनाएँ थीं जो कम-से-कम अंशतः सत्य थीं। इसके दक्षिण और वाम—दोनों ही मार्ग एक बड़ी गम्भीर अनुभूतिके फल थे। दक्षिण और वाम—इन शब्दोंके जो प्राचीन लाक्षणिक अर्थ हैं वे यही हैं कि एक है ज्ञानका मार्ग और दूसरा आनन्दका मार्ग। मनुष्यमें जो प्रकृति है उसका अपनी शक्तियों, अपने हृत्तत्त्वों और सम्भावनाओंके बलसञ्चय और प्रयोगमें विवेकसे चलना और इस प्रकार अपने आपको मुक्त करना ज्ञानमार्ग (दक्षिणमार्ग) है, और उस प्रकृतिका अपनी शक्तियों, अपने हृत्तत्त्वों और सम्भावनाओं-के बलसञ्चय और प्रयोगमें आनन्दकी स्थिति बनाये रहना और इस प्रकार अपने आपको मुक्त करना आनन्दमार्ग (वाममार्ग) है। पर इन दोनों मार्गोंमें यही हुआ कि अन्तमें मूलके सिद्धान्त ही लोग भूल गये, उनके रूप बिगड़ गये और अधःपतन हुआ।

अब यदि हम तन्त्रके बाह्याङ्गों और विशिष्ट कर्म-प्रणालियोंका विचार छोड़कर उसके मूलभूत सिद्धान्तकी ओर देखें तो सबसे पहली बात सामने यह आती है कि योगके जो वैदिक मार्ग हैं उनसे तन्त्र सर्वथा भिन्न है। वैदिक सम्प्रदाय जितने हैं उन सबके मूल सिद्धान्त वेद-वेदान्तके ही हैं; उनकी शक्ति ज्ञान है, मार्ग भी ज्ञान ही है, यद्यपि ज्ञानसे तात्पर्य सर्वत्र बुद्धिद्वारा विवेकका नहीं है प्रत्युत कहीं उस हृदयगत ज्ञानसे अभिप्राय है जो प्रेम और श्रद्धाके रूपमें प्रकट होता है और कहीं सङ्कल्पका कर्मरूपसे फलीभूत होना ही ज्ञानका अभिप्राय है। इन सभी योगोंमें योगेश्वर वही चिन्मय पुरुष है जो जानता, देखता, अपनी ओर खींचता और शासन करता है। परन्तु तन्त्रमें योगेश्वरका ध्यान नहीं प्रत्युत योगेश्वरीका ध्यान है, योगेश्वरी स्वयं प्रकृति, प्रकृतिदेवी, शक्ति, शक्तिमयी, सङ्कल्परूपिणी, सर्गस्थितिप्रलयरूप संसारकी अधिष्ठात्री विधात्री हैं। इन सर्वसमर्थ सङ्कल्पशक्तिका रहस्य, उनकी कार्यपद्धति, उनका तन्त्र जानकर और उसका प्रयोग करके ही तान्त्रिक योगियोंने प्रभुता, पूर्णता, मुक्ति और परमानन्द प्राप्त करनेके लिये वैसी साधना की। नामरूपात्मक जगद्रूप प्रकृति और उसकी कठिनाइयोंसे विरक्त होकर पीछे हटनेके बजाय उन्होंने उनका सामना किया, उनको पकड़ा और उन्हें जीत लिया। परन्तु अन्तमें, प्रकृतिके सामान्य स्वभावानुसार, तान्त्रिक योगका मूलभूत सिद्धान्त उसके आडम्बरमें लुप्त हो गया, केवल कुछ विधिविधान और गुप्त विद्याके कुछ यन्त्र रह गये। इन विधिविधानों और यन्त्रोंसे यदि ठीक तरहसे काम लिया जाय तो आज भी इनकी शक्ति प्रत्यक्ष है पर तान्त्रिक योगका जो मूल हेतु था उससे तो ये च्युत ही हो गये हैं।

तन्त्रशास्त्रका मुख्य सिद्धान्त सत्यका एक पहलू अर्थात् शक्तिपूजा है। शक्ति ही सब कुछ प्राप्त करानेवाली एकमात्र अमोघ शक्ति है। यह एक छोरकी बात है। दूसरे छोरकी बात वेदान्तके महावाक्योंमें मिलती है अर्थात् शक्ति केवल माया-मरीचिका है और इस कर्मरूप प्रकृतिकी धोखेधड़ीसे मुक्त होनेका साधन अचल अकर्ता पुरुषकी ही खोज करना है। परन्तु ये दोनों ही बातें अपूर्ण हैं। इनका पूर्णत्व यह है कि ज्ञानस्वरूप आत्मदेव प्रभु हैं और प्रकृति-

देवी उनकी कर्मशक्ति हैं । पुरुष सत्स्वरूप अर्थात् विशुद्ध और अनन्त ज्ञानघन आत्मसत्तारूप है; और प्रकृति—शक्ति चिद्रूपा है, यह पुरुषकी ज्ञानघन विशुद्ध अनन्त आत्मसत्ताकी शक्ति है । इन दोनोंका जो परस्पर सम्बन्ध है वह विश्राम और कर्मरूप दो ध्रुवोंके बीचमें है। जब ज्ञानस्वरूप परमानन्दमें प्रकृति समा जाती है तब वह है विश्रान्ति; और जब पुरुष अपनी प्रकृतिके कर्ममें अपने आपको डाल देता है तब वह है कर्म, सृष्टिकर्म और उसका आनन्दभोग या भवानन्द । परन्तु आनन्द जैसे विसर्गमात्रका स्रष्टा और उत्पादक है, वैसे ही उसका साधन है पुरुषके आत्मचैतन्यकी तपःशक्ति या कर्मशक्ति । यह कर्मशक्ति उसकी अनन्त घटनाशक्तिमें सदा ही रहती है और उससे उन भावनाओंके अथवा उस वास्तविक भाव या विज्ञानके सद्रूप प्रकट होते हैं, जो निकलते हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आत्मसत्तासे ही; और इसलिये जिनका पूर्ण होना असन्दिग्ध रहता है और जिनके अन्दर ही उनके जीवभूत होने अर्थात् मन, प्राण और शरीर धारण करनेकी प्रकृति और उसके नियम समाये हुए रहते हैं । तपकी निश्चय फलदायिनी सर्वशक्तिमत्ता और भावनाकी कभी न चूकनेवाली पूर्णताप्राप्तिसामर्थ्य सभी योगोंका मूल आधार है । मनुष्यमें इन्हीं दो वस्तुओंको हम सङ्कल्प और विश्वासके रूपमें पाते हैं—सङ्कल्प यानी ऐसा सङ्कल्प कि जो ज्ञानका ही ढला होनेसे पूर्ण होनेमें स्वतः समर्थ है और विश्वास यानी वह विश्वास जो निम्नागत चैतन्यमें उस सत्यका ही प्रतिबिम्ब है जो अभी नामरूपात्मक जगत्में अभिव्यक्त नहीं हुआ है । भावनाकी यह जो स्वतःसिद्ध निश्चयावस्था है, इसीको गीतामें इस प्रकार कहा है—

यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

'मनुष्यकी जो श्रद्धा अर्थात् निःसंशय भावना होती है, वही वह होता है ।'

(प्रेषक—नलिनीकान्त गुप्त)

शक्तितत्त्व

(लेखक—श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम साहित्यदर्शनाद्याचार्य तर्करत्न न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)

ह्लादिनी सन्धिनी संविदभिधानान्तरङ्गिका ।
तटस्था बहिरङ्गा च जयन्ति प्रभुशक्तयः ॥

आज 'कल्याण'के शक्त्यङ्कमें शक्तिसम्बद्ध ही कुछ उपहार लेकर कल्याणार्थियोंके समक्ष उपस्थित होना अवसरोचित जान पड़ता है ।

परन्तु शक्तितत्त्व तो पूर्वतत्त्वोंकी अपेक्षासे भी नितान्त ही निगूढ़ है, भरोसा है तो केवल इतना ही कि सर्वशक्तिमान् अवश्य स्वशक्तियोंकी सेवामें स्वशक्तिको यथाशक्ति प्रवृत्त होनेकी शक्ति प्रदान करेंगे ।

यद्यपि 'शक्ति' शब्दसे शास्त्रोंमें तथा लोकमें अनेक वस्तुएँ समझी जाती हैं तथापि यहाँ सामर्थ्यरूप अर्थ लेकर कुछ चर्चा की जाय तो असम्बद्ध कथन न होगा, क्योंकि सर्वत्र ही फलतः पर्यवसान यहाँ ही विश्रान्त होता है ।

किन्तु 'सामर्थ्य' शब्द साकाङ्क्ष अर्थका बोधक है अर्थात् 'किस कार्यमें सामर्थ्य' यह जिज्ञासा साथ ही होती है तो भी किसी विशेषका प्रकरण न रहनेसे समस्त कार्योंमें सामर्थ्य जिज्ञासित ठहरेगा एवं ऐसा सामर्थ्यशाली कौन है इस अंशमें भी जिज्ञासा होगी ही, दोनोंका ही उत्तर एक यही है कि—'सर्व कार्योंमें सामर्थ्यवान् जगदीश्वर हैं' सुतरां—इसीकी शक्ति प्रकृतमें विवेचनीय है ।

जब शक्ति और शक्तिमान् सामान्यरूपसे विदित हुए जो कि परस्पर सम्बन्धी हैं, तब इनका क्या सम्बन्ध है ? यह प्रश्न आवेगा ।

इसका उत्तर प्रायः सब शास्त्र यही देते हैं कि वह सम्बन्ध 'तादात्म्य' है । तादात्म्यका लक्षण शास्त्रोंमें 'भेदसहिष्णु अभेद' किया है अर्थात् भेद रहते हुए अभेदको तादात्म्य कहते हैं । जैसे—गृहमें दीप्यमान दीपशिखाका गृहमें फैले हुए प्रकाशके साथ जो सम्बन्ध है यह उक्त लक्षणका लक्ष्य होता है क्योंकि दीपशिखा और तत्प्रकाशमिथः सर्वथा भिन्न नहीं हैं । यदि भिन्न होते तो दीपशिखा हटानेसे प्रकाश न हटता । जैसे—घट-पट परस्पर भिन्न हैं; अतः

घट हटानेसे पट नहीं हटता है। तब क्या दीपशिखा और तत्प्रकाश अभिन्न हैं? यह भी नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो दीपशिखामें हाथ लगानेसे हाथमें फफोला पड़ जाता है, किन्तु हाथपर प्रकाश आनेसे वह दोष नहीं होता। सुतरां सर्वथा अभेद भी नहीं कहा जाता। इससे भेद-अभेद दोनों ही माने जायँगे। अतः तादात्म्य सिद्ध हो गया। यहाँ प्रकाश शक्ति है और दीपज्योति ही शक्तिवाली है। इन शक्ति-शक्तिमानोंका व्यवहार जब व्यवहर्त्ता भेदपूर्वक करता है तब दीपका प्रकाश है—ऐसा कहता है एवं जब अभेदसे व्यवहार करता है तब प्रकाश है—इतना ही कहता है। तथा व्यवहाराधीन प्रतीतियोंमें भी प्रथममें भेदका भान होता है दूसरीमें भेद भासमान नहीं होता।

इसी भाँति सर्वशक्तिमान् भगवान् और उनकी शक्तियोंमें भी तादात्म्य निर्विवाद है। उपासक अपनी रुचि-के अनुसार भेदसे भी उपासना करता है और अभेदसे भी करता है, प्रभु भी 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' के अनुसार उसके मनोरथ पूर्ण करते हैं।

विलक्षणता केवल इतनी ही है कि दृष्टान्तमें दीपक-प्रकाश जड होनेसे प्राकृतिक नियमानुसार दीपसे पृथक् होनेकी योग्यता नहीं रखता। दार्ष्टान्तिकमें ईश्वर 'कर्त्तुमकर्त्तु-मन्यथाकर्त्तुं क्षम' हैं, सुतरां स्वकीय शक्तिरूपमें भी ईश्वर ही हैं। इस लीलाका ही अवलम्बन करके 'शक्त्यद्वैतवाद' का उत्थान है।

यह बात और है कि उपासनाकी प्राणस्वरूपा अनन्यता-के अनुरोधसे साधकका चित्त अप्राकृत नामरूपविशेषमें आसक्त रहे।

इससे उसकी तो उत्तरोत्तर उन्नति ही है, अज्ञ, भ्रान्त वा कलुषितचेता लोग मनमाना प्रलाप किया करें इससे होता ही क्या है?

भगवान्की शक्तियाँ अनन्त होनेपर भी शास्त्रोंमें उनको त्रिविध कहा है—१–अन्तरङ्गा, २–तटस्था, ३–बहिरङ्गा। इनमें अन्तरङ्गाको ही स्वरूपशक्ति भी कहते हैं। यह 'स्वरूप-शक्ति' इसलिये है कि शक्तिमान्में जो प्रभाव हैं वह इसमें भी हैं और स्वरूपात्मक होनेसे ही अन्तरङ्गा भी उचित ही है।

यह शक्ति भी तीन भाँतिकी है—१–ह्लादिनी, २–संवित्, ३–सन्धिनी। तात्पर्य यह है कि जैसे—पाचक, दाहक, प्रकाशक एक ही अग्निमें पाचकता, दाहकता, प्रकाशकता मिथोविलक्षण तीन शक्तियाँ हैं वैसे ही एक ही सच्चिदा-नन्दमूर्ति भगवान्में आनन्दांशकी ह्लादिनी, चिदंशकी संवित् और सदंशकी सन्धिनी शक्तियाँ हैं। इन तीनोंकी ही स्वरूपतः नित्य पूर्णता है परन्तु सूर्यकिरणवत् प्रत्येककी गुणप्रधानभावसे अनन्त शक्तियाँ हैं। और जिस प्रकार भगवान्की पूर्णतमता सनातनी है किन्तु लीलानुरोधसे स्वरूपप्रकाशमें तारतम्यके कारण स्थूलमति स्वरूपमें भी तारतम्य समझ लेते हैं इसी प्रकार उक्त तीनों स्वरूप-शक्तियोंकी नित्य पूर्णता सर्वदा एकरस रहनेपर भी स्व-कर्त्तव्यानुरोधवश अपेक्षित वैभवका ही प्रकाशन किया जाता है जिससे यहाँ भी स्थूलदर्शी लोग गुरु-लघु भावकी कल्पना कर बैठते हैं।

भगवान्की तटस्था शक्ति अनन्त असंख्य समस्त जीवगण हैं। भाव यह कि, भगवान् नित्यसिद्ध अगणित शक्तियोंके आश्रय होनेसे समुद्रवत् परम महान् हैं और जीवगण सच्चिदानन्दकणरूप होनेसे विन्दुतुल्य हैं। अतः इस अंशसे विभिन्न होते हुए भी सच्चिदानन्द-स्वरूपतासे तत्त्वतः एकजातीय भी हैं। सुतरां स्वरूपात्मक भी नहीं और सर्वथा विजातीय भी नहीं हैं, इससे तटस्था कहलाते हैं।

और विकारगणसहित अर्थात् महत्तत्त्वसे लेकर महा-भूत एवं भौतिक वस्तुओंसहित प्रकृति बहिरङ्गा शक्ति कहलाती है; क्योंकि जड़ होनेसे सर्वथा विजातीय है जो कि दृश्यादृश्य प्राकृत जगत् है।

ये तीनों शक्तियाँ ऐसी हैं जैसे असीम तेजःपुञ्ज सूर्य एक वस्तु है और किरणें सूर्यसे कुछ मिलती और कुछ भिन्न अपर वस्तु हैं और छाया सूर्यसे विलक्षण हो करके भी सूर्याधीन सत्तावाली होनेसे तदीय शक्ति कहाने योग्य तीसरी वस्तु है। इसी भाँति पूर्वोक्त भगवच्छक्तियोंको भी समझना चाहिये।

इसी बहिरङ्गा शक्तिका निखिल प्रपञ्च शास्त्रोंमें पादविभूति कहाता है।

यद्यपि भगवद्वैभव परिमाणशून्य है तथापि वेद प्रभृति शास्त्रोंने हम अज्ञोंको समझानेके लिये उसके तीन चरणा-त्मक और एक चरणात्मक द्विविध भाग बतलाये हैं।

एक और तीन कल्पनाका उद्देश्य इतना ही है कि एक भागसे दूसरा भाग अत्यन्त अधिक है जिसमें केवल स्वरूप-शक्तिका निष्प्रत्यूह अनन्त स्वच्छन्द विलास है ।

दोनों भाग दो विरुद्ध शक्तियोंके क्रीडाधाम हैं और तटस्थाका सञ्चार तो अधिकारानुसार दोनोंहीमें रहा है, रहता है और रहेगा । उन दोनोंमें मिथोवैजात्य जैसा है ऐसा उनके साथ इसका नहीं है । यह भी तटस्था कहनेका बीज है ।

इस प्रकार प्रभेदत्रययुक्त स्वरूपशक्ति, तटस्था शक्ति और बहिरङ्गा शक्तिमें ही सब प्रमेय आ गया, इनसे बाहर वस्तुसत्ता नहीं हो सकती ।

इस भाँति शास्त्रोक्त शक्तितत्त्वका मूल दिग्दर्शन यथामति दिखलाया गया ।

अब मैं आपलोगोंसे विदा होता हूँ । यदि सर्वशक्तिमान्‌की इच्छा है तो फिर कोई नवीन उपहार लेकर उपस्थित होनेकी आशा करता हूँ ।

यह लेख किसी एकदेशीय दृष्टिसे नहीं लिखा गया प्रत्युत 'सर्वसिद्धान्तसमन्वयसाम्राज्य' के घण्टापथमें ऐकमत्यका डिण्डिमस्वरूप है ।

इस लेखमें यदि किसीको कुछ वक्तव्य वा प्रष्टव्य होवे तो मुझे सूचना देनेका श्रम स्वीकार करें ।

अपने लिखितांशके उत्तर देनेको मैं सर्वदा एवं सर्वथा सन्नद्ध हूँ ।

भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

सुनते हैं कि एक बार पूज्यपाद भगवान् भाष्यकार शाक्त-मतका खण्डन करनेके लिये काश्मीर गये, वहाँ जाते ही उनको इतने दस्त आये कि उनमें उठने-बैठनेकी तो क्या बोलनेतककी शक्ति नहीं रह गयी । तदनन्तर एक बारह वर्षकी सर्व-सौन्दर्य-सम्पन्ना कन्या उनके समीप आकर धीरे-धीरे उनके कानमें इस प्रकार कहने लगी—

'हे शङ्कर ! क्या आप शाक्त-मतका खण्डन और अद्वैत-मतका मण्डन कर सकते हैं ?'

शङ्करने निर्बलताके कारण धीरेसे कहा—'देवि ! मैं आया तो इसी विचारसे हूँ, परन्तु इस समय मुझमें बोलनेकी शक्ति नहीं है, जब मुझमें शक्ति आ जायगी, तभी मैं कुछ कर सकूँगा । बिना शक्तिके कुछ भी नहीं कर सकता ।'

'हे विद्वत्तम ! जब आप शक्ति बिना कुछ कर नहीं सकते तब शाक्त-मतका खण्डन और अद्वैत-मतका मण्डन कैसे करेंगे ? हे सुज्ञ ! मैं शिवकी शक्ति शिवा हूँ, शिव तो एक, अद्वितीय, अचल, ध्रुव, कूटस्थ और एकरस हैं, उनमें किसी प्रकारकी क्रिया नहीं हो सकती । क्रिया न होनेसे शिवको कोई जान नहीं सकता और शिव भी किसीको नहीं जान सकते । अपनेको जतलाने और दूसरेको जाननेके लिये ही शिवने मुझ शक्तिको रचा है, यह बात आप जानते हैं, फिर मैं जो शिवके द्वारा रची गयी हूँ, उसका खण्डन आप कैसे कर सकते हैं ? खण्डन अथवा मण्डन तो मैं ही करूँगी । शिव तो कुछ करेंगे नहीं । जिसके बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते, उसका आप खण्डन नहीं कर सकते । यद्यपि मैं शिवसे भिन्न नहीं हूँ, क्योंकि शिवको छोड़कर मेरी सत्ता ही नहीं है, फिर भी शिवको, अपनेको और जगत्-जीवको मैं ही तो सिद्ध करती हूँ, इसलिये मुझ सबकी सिद्धि करनेवालीका खण्डन आपको नहीं करना चाहिये । संसारमें संसारी, मुमुक्षु और मुक्त तीन प्रकारके मनुष्य हैं, संसारियोंके लिये मैं सच्ची हूँ, मुमुक्षुओंके लिये अनिर्वचनीय हूँ और मुक्त पुरुषोंकी दृष्टिमें मैं शिवसे अभिन्न हूँ । अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सब ठीक ही कहते हैं । आप आचार्य हैं, आपको कर्मी पुरुषोंकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न नहीं करना चाहिये । प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्ग अधिकारियोंके भेदसे भिन्न-भिन्न हैं ।'

भवानीके वचनोंसे आचार्यजीका समाधान हो गया और वे काश्मीरसे लौट आये । जिसके वचनोंसे जगद्गुरुको सन्तोष हो गया, मैं उस भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ ।

यह देवी एक होकर भी द्वैतरूपिणी, द्वैताद्वैतरूपिणी और अद्वैतरूपिणी यों तीन रूपवाली हो जाती है, परमेश्वरकी जो अद्भुत शक्ति लौकिक व्यवहार करते समय द्वैतरूपसे प्रतीत होती है, यानी जगत्‌रूप कार्य अथवा सत्य भासती है; साधन-कालमें जो द्वैताद्वैतरूपसे प्रतीत होने लगती है यानी अनेक भी और एक भी भासने लगती है, और समाधिकालमें अथवा मोक्ष-अवस्थामें जो केवल अद्वैत यानी अखण्डरूपसे प्रतीत होने लगती है, परमात्माकी ऐसी अद्भुतस्वरूपा भगवती शक्तिका ही मैं भजन करता हूँ।

वह कौन है ? किसकी है ? कहाँसे आयी है ? उसको किसने रचा है ? किसके लिये रचा है ? कहाँ रचा है ? कैसे रचा है ? और कब रचा है ? इत्यादि कुछ भी निर्णय जिसके विषयमें नहीं हो सकता, शिवकी उस अद्भुत भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ। भाव यह है कि अनादि कालसे आजतक जितने विद्वान् हुए हैं, उनमेंसे कोई भी शक्तिके रूपका निर्णय नहीं कर सका। विद्वानोंकी इस पराधीनताको देखकर मुझसे तो इतना ही बन सकता है कि मैं मौन होकर उस अपूर्व, अद्भुत, आश्चर्यरूप शिव-शक्तिको प्रणाम ही कर लूँ और अपने मूक नमस्कारोंकी ऐसी झड़ी लगा दूँ जिससे वह देवी अपने स्वरूपको मुझपर प्रकट करनेके लिये रीझ जाय ! अल्प शक्तिवाला तो इतना ही कर सकता है, अतएव शक्तिका स्वरूप जाननेके लिये मैं उस भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

जगत्‌की उत्पत्ति आदि सब क्रियाओंके कर्ता शिव हैं, भोगोंके भोगनेवाले शिव हैं, ज्ञाता शिव हैं और इस जगत्‌को नियममें रखनेवाले भी शिव हैं, क्योंकि अचेतन शक्तिमें कर्तृत्व आदि धर्म रह ही नहीं सकते, फिर भी जिस अनोखी शक्तिकी सहायतासे इस असङ्ग परमात्मा शिवमें ये सब कर्तृत्व आदि धर्म प्रतीत होने लगते हैं, जो शक्ति केवल निमित्तमात्र हो जाया करती है, निमित्तमात्र होनेपर जो अपने प्रभावसे असंग आत्मा शिवको कर्ता बना डालती है, उस अद्भुत भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

शिव स्वरूपसे असङ्ग, अनङ्ग, निर्विकार, अच्युत, भूमा, निष्कल, निरञ्जन, अद्वितीय हैं, ऐसे शिवमें किसी प्रकारकी क्रिया सम्भव ही नहीं है, इसलिये जो स्वयं करनेवाली है, स्वयं भोगनेवाली है, स्वयं जाननेवाली है और स्वयं ही परमेश्वरी बनी बैठी है, शिव तो जिसके केवल साक्षीमात्र हैं, शिवकी उस परम अद्भुत भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

परमार्थसे महादेव अपरिच्छिन्नस्वरूप हैं। अपरिच्छिन्न-स्वरूपवाले महादेवमें जो शक्ति अपरिच्छिन्नरूपसे ही विद्यमान रहती है और साधक भी जिसको अपरिच्छिन्न आदि लक्षणोंसे पहचानते हैं, महादेवकी उस अद्भुत भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

उपासकोंके लिये महादेव साकाररूप हैं, साकाररूप महादेवमें जो शक्ति साकाररूपसे विद्यमान रहती है और साधक मुमुक्षु जिस शक्तिको साकाररूपसे ही पहचानते हैं, महादेवकी उस विलक्षण परमाद्भुत भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

जो शक्ति निर्गुण महादेवमें निर्गुणरूपसे विद्यमान रहती हुई भी मुमुक्षुओंसे लक्षणोंके बिना ही लक्षणावृत्तिसे पहचानी जाती है, महादेवकी उस अद्भुत शक्तिका ही भजन करता हूँ।

मान लो कि कोई एक ऐसा चेतन है, जो चेत्य (चेतन किये हुए) पदार्थोंसे रहित है, वह बेचारा अचेतन-सा ही तो पड़ा होगा, अचेतनके समान पड़े हुए उस चेतनमें जो चेतना उत्पन्न कर देती है, उस अद्भुत शक्तिका ही भजन करता हूँ। भाव यह है कि जबतक आत्मा शिव विषयोंको प्रकाशित नहीं करता, तबतक आत्मा शिवकी स्थिति अचेतन लोष्ठ आदिके समान रहती है, क्योंकि उस चितिसे जाननेयोग्य कोई भी पदार्थ नहीं रहता, इसलिये उस समय अचेतनके समान प्रतीत होते हुए उस आत्मामें जिस शक्तिके कारण विषयोंको प्रकाश करनेवाली चेतना उत्पन्न हो आती है और ऐसा होनेसे संसारी लोगोंको भी उस आत्माके चेतन होनेका निश्चय हो जाता है, उस विस्मयकारिणी भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

शिवरूप आत्माका निर्विकल्पक स्वरूप तो किसीका भी प्रकाश करनेमें उपयोगी नहीं हो सकता, इसलिये जो शक्ति स्वयं सविकल्पस्वरूप चेतनसे ही प्रकाशित होती है, उस शक्तिको प्रकाशित करनेसे प्रथम प्रकाशयितव्य पदार्थोंके विद्यमान न होनेसे उस चेतनकी अवस्था किसी शून्य घरमें जलते हुए निष्फल प्रकाशवाले दीपककी-सी हुआ करती है, इसलिये उस समय शिवरूप आत्मा चेत्य पदार्थोंसे रहित चिन्मात्ररूपी ही रहता है। जो शक्ति उस चिन्मात्र शिवरूप आत्मामें व्यावहारिक विषयोंको प्रकाशित करनेवाली चेतनाको उत्पन्न कर देती है, उस आश्चर्यकारिणी भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

जिस शिवके पास शक्ति है ही नहीं, ऐसा बिना शक्तिका असक्त शिव कर ही क्या सकता है? जिस शक्तिके सहारेसे यह असङ्ग सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप शिव अपने कार्योंको करनेमें समर्थ होता है, उस अद्भुत अघटन-घटना-पटीयसी भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

जो शक्ति शक्तिवाले पदार्थमें रहकर ही अपने कार्योंके करनेमें समर्थ होती है, शक्तिवाले पदार्थमें रहे बिना कुछ नहीं कर सकती, शिवरूप आश्रयको छोड़ते ही जो शक्ति असमर्थ होकर क्षणभरमें जगद्व्यापारको बन्द कर देती है, शिवकी अनन्य भक्ता उस भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

निर्विकल्प आत्मस्वरूप शिवके प्राप्त होते ही न तो कोई शक्ति रहती है और न कोई शक्तिमान्, यानी अव्याकृत नामक शबल आत्मा ही रहता है, क्योंकि उस निर्विकल्प अवस्थाके आनेपर वह शक्ति शिवमें समरसता यानी एकताको प्राप्त हो जाती है, समरसताको प्राप्त हुई उस अद्भुत शक्तिका ही भजन करता हूँ।

श्रेयाभिलाषी, आत्मप्रेमी, शिवभक्त, शिवारक्त भावुक लोग जब इस प्रकार शिव और शक्तिके स्वरूपका विचार करेंगे, तब उनके गङ्गा-नीरके समान स्वच्छ हृदयमें स्वभावसे ही कैलास-पर्वतके समान शिव और शिवा दोनों क्रीडा करने लगेंगे और सहजमें ही सामरस्यका यानी एकताका अर्थात् अखण्डानन्दका समुद्र उमड़ पड़ेगा, अखण्डानन्दके समुद्रमें अथवा अखण्डानन्दरूप समुद्रमें लीन हुई एकरस, शान्तरस, स्वयंसिद्धरस, स्वयंज्योतिरस, पूर्णानन्दरस, अद्वितीयरस, अवर्णनीयरस, चिन्मात्ररस, रसातीतरसरूप सुखदायिनी, शिवकी भवानी भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

जो शक्ति भगवद्भक्तमें भक्तिके रूपमें निवास करती है, अज्ञानी पुरुषोंमें अज्ञानरूपसे रहती है, आत्मज्ञानियोंमें आत्मविद्यारूपसे विद्यमान रहती है, जगत्की उत्पत्तिके समयमें ब्रह्मारूपसे प्रकट हो जाती है, जगत्की स्थितिमें हरिका रूप धारण कर लेती है, जगत्के संहार-कालमें रुद्र-मूर्ति बन जाती है, जगत्के उत्पन्न करनेके सङ्कल्पसे प्रथम केवल चैतन्यस्वरूपमें रहती है, जीवमें अनेक प्रकारके विषयोंकी वासनाके रूपसे वास करती है, जड़ काष्ठ आदिमें घोर अज्ञानरूपसे दृष्टिगोचर होती है, उस शक्तिका यहाँतक संसारी रूपोंमें ध्यान करके अब मैं उस अद्भुत शक्तिको ध्यानमें लाता हूँ, जो शक्ति अव्याकृतसे परे है, जिसको वेदवेत्ता अधिष्ठान चैतन्य बताते हैं, उससे परे जो शुद्ध निर्विकार परमपद है, उस परमपदमें पहुँचकर जो अपनी आनन्द-लीला करने लगती है, उस भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

कोई सङ्गीत-प्रेमी दिन-रात ताल-ठप्पे उड़ाता हुआ मोद मानता है, कोई गाना सुननेका व्यसनी सर्वदा राग-रागिनियाँ सुनता हुआ मग्न रहता है, कोई कोमल गद्दे-तकियोंमें प्रीति करनेवाला निरन्तर कोमल रेशमी वस्त्रोंके नित्य-नये गद्दे-तकिये बनवाकर उनके ऊपर लोट लगाता हुआ और यथासम्भव कठिन भूमिमें पैर न रखता हुआ अपनेको धन्य मानता है, कोई मेले-तमाशे देखनेमें, कोई देश-विदेशकी सैर करनेमें, कोई अजायबघरोंमें जाकर उनके चित्र उतारनेमें अपना सौभाग्य समझता है, किसीको मीठे-सलोने छप्पन प्रकारके भोजन अच्छे लगते हैं, नित्य-नये भोजन करनेमें ही वह मनुष्यत्वको सफल मानता है और कोई बढ़ियासे भी बढ़िया इतर सूँघना और सुगन्धित पुष्पोंकी वाटिकामें ही बैठा रहना चाहता है। इन पाँचों विषयोंसे जो आनन्द होता है, उस आनन्दका नाम विषयानन्द है, मूर्ख पामर लोग इस विषयानन्दको चाहा करते हैं, ये विषयानन्द पूर्णानन्दके अति तुच्छ कण हैं, ऐसे इन विषयानन्द नामके सम्पूर्ण आनन्दोंको तीव्र वैराग्यसे छोड़कर ब्रह्मानन्दके स्वरूपको बतानेवाली, उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए आनन्दकी सीमाकी परम अवधि बनी हुई, आनन्दस्वरूपमें तन्मय हुई उस भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ।

पाठक! शक्तिका एक उपासक उपर्युक्त प्रकारसे शिव और शक्तिका विचार करके दोनोंके तत्त्वको जानकर परम सुखी हुआ। आशा है, अन्य भी जो कोई इसका विचार करेगा, वह भी सुखी होगा। सबका सार यह है—

कुं०—शिवशक्तीमें भेद है, अथवा नाहीं भेद।
भेद जिसे ऐसा मिला, सो ना पाता खेद॥
सो ना पाता खेद, शक्तिशिवमय जग जाने।
शिवको जगसे भिन्न, शुद्ध अच्युत पहिचाने॥
भोला! विश्व न देख, ब्रह्ममें लय कर वृत्ती।
रहे न रंचक भेद, एक होवें शिव-शक्ती॥

सर्वोपरि महाशक्ति

(लेखक—श्रीस्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज श्रीजानकीघाट, अयोध्याजी)

चकाराराधनं तस्य मन्त्रराजेन भक्तितः।
कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः परम्॥
दिव्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना।
जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थितचेतसा॥
प्रसन्नोऽभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः।
मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः॥

श्रीराम उवाच

द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्।
आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तुयाः सात्वतसम्मताम्॥
तदाराध्यस्तदारामस्तदधीनस्तया विना।
तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशीकरणमात्मनः।
पश्यतस्तस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौ प्रभुः॥
श्रुत्वा रूपं तदा शम्भुस्तस्याः श्रीहरिवक्त्रतः।
अचिन्तयत्समाधाय मनः कारणमात्मनः॥
अस्फुरत्कृपया तस्य रूपं तस्याः परात्परम्।
दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम्॥
आश्रयं सर्वलोकानां ध्येयं योगविदां तथा।
आराध्यं मुनिमुख्यानां सेव्यं संयमिनां सताम्॥
दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वं रूपं तस्याः सुरेश्वरः।
तुष्टाव जानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं प्रभाविणीम्॥
वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम्॥

(अगस्त्यसंहिता)

अर्थात्—'श्रीरामजीके पर रूपको जाननेकी इच्छा करनेवाले श्रीशिवजीने किसी समय श्रीरामजीका मन्त्रराजसे आराधन किया।'

'श्रीशिवजीने एकान्तमें स्थिर चित्तसे आचार्यद्वारा जानी हुई विधिसे तथा वेदविधिसे दिव्य सौ वर्षतक परम जाप्य (श्रीराम मन्त्रराज) का जप किया, तब भक्तोंसे भजनीय प्रभु करुणाकर श्रीरामदेवजी मन्त्राराध्यरूपसे प्रसन्न हुए।'

श्रीरामजी बोले—

'अगर मेरे भावनास्पद (भावनाके स्थान) रूपको देखनेकी इच्छा करते हो तो भक्तजनसम्मत मेरी आह्लादिनी पराशक्तिकी स्तुति करो।'

'हे शम्भो! मैं उनके सहित आराध्य हूँ; उन्हींसे मुझको आराम है; उन्हींके मैं आधीन हूँ; उनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता, क्योंकि वे मेरा परम जीवन हैं।'

'देवाधिदेव महादेवके ईश प्रभु श्रीरामजीने अपने वशीभूत होनेका उपाय कहकर उन श्रीशिवजीके देखते-देखते अपने रूपको अन्तर्धान कर लिया।'

'तब श्रीशिवजीने उन श्रीजानकीजीके रूपको श्रीरामजी-के मुखसे सुनकर अपने कारणरूप मनको एकत्र कर चिन्तन अर्थात् ध्यान किया!'

'जिसका दर्शन और आराधन कठिन अर्थात् कष्टसाध्य है, जिसका भक्तोंके हृदयमें निवास है, जो सब लोकोंका आश्रय है, जो योगियोंका ध्येय है, जो मुख्य-मुख्य मुनियोंका आराध्य एवं संयमी भक्तोंका सेव्य है, ऐसा श्रीजानकीजीका परात्पर रूप उनकी कृपासे श्रीशिवजीको प्रत्यक्ष हुआ।'

'देवताओंके ईश्वर श्रीशिवजी मूर्त्तिमती और प्रभाव-शालिनी श्रीजानकीजीके आश्चर्यमय नखशिख समग्र रूपको देखकर उनकी भक्तिसे स्तुति करने लगे।'

'अति नवीन सुगन्धसे योगियोंके चित्तको हरनेवाला, रातदिन मुनिरूपी हंसोंसे सेवनीय, भक्तोंके मानसरूपी भ्रमरोंसे भले प्रकार पान किये हुए परागवाले श्रीविदेहराज-कुमारीजीके चरणकमलोंकी मैं तीनों तापोंको दूर करनेके लिये वन्दना करता हूँ।'

श्रीअगस्त्यसंहिताके उपर्युक्त अवतरणसे यह स्पष्ट है कि महाशक्ति ही सर्वोपरि है, ब्रह्म शक्तिके सहित ही आराध्य है। जैसे पुष्पसे गन्ध पृथक् नहीं किया जा सकता, वह उसीमें सन्निहित है, उससे अभिन्न है, उसी तरह ब्रह्म और शक्ति कथनमात्रके लिये दो हैं, वस्तुतः वे परस्पर अभिन्न ही हैं। जैसे गन्ध ही चतुर्दिक्में व्याप्त होकर पुष्पविशेषका परिचय देता है उसी तरह शक्ति ही ब्रह्मतत्त्वका बोध कराती है।

श्रीदेव्यपराधक्षमापनस्तोत्र

(लेखक—पं० श्रीरमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति')

(१)

न मंत्रोंको जानो नहिं यतन आती स्तुति नहीं,
न आता है माता तव स्मरण आह्वान स्तुति ही,
न मुद्राएँ आर्ती जननि नहिं आता विलपना,
हमें आता तेरा अनुसरण ही क्लेशहर जो।

(२)

न आती पूजाकी विधि न धन आलस्ययुत मैं,
रहा कर्तव्योंसे विमुख चरणोंमें रति नहीं,
क्षमा दो हे माता अयि सकल उद्धारिणि शिवा!
कुपुत्रोंको देखा कबहुँक कुमाता नहिं सुनी।

(३)

धरित्रीमें माता सरल शिशु तेरे बहुत हैं,
उन्हींमें तो मैं भी सरल शिशु तेरा जननि हूँ,
अतः हे कल्याणी समुचित नहीं मोहिं तजना,
कुपुत्रोंको देखा कबहुँक कुमाता नहिं सुनी।

(४)

जगन्माता अंबे तव चरणसेवा नहिं रची,
तुम्हारी पूजामें नहिं प्रचुर द्रव्यादिक दिया,
अहो! तो भी माता तुम अमित स्नेहार्द्र रहतीं,
कुपुत्रोंको देखा कबहुँक कुमाता नहिं सुनी।

(५)

सुरोंकी सेवाएँ विविध विधिकी, हैं सब तजी,
पचासीसे भी हे जननि वय बीती अधिक है,
नहीं होती तेरी मुझपर कृपा तो अब भला,
निरालंबी लंबोदर-जननि जाएँ हम कहाँ?

(६)

मनोहारी वाणी अधम जन चांडाल लहते,
दरिद्री होते हैं अभय बहु द्रव्यादिक भरे,
अपर्णे कर्णोंमें यह फल जनोंके प्रविशता,
अहो! तो भी आती जपविधि किसे है जननि हे!

(७)

चिताभस्मालेपी गरल अशनी दिक्पट धरे,
जटाधारी कंठे भुजगपति माला पशुपति,
कपाली पाते हैं इह जग जगन्नाथपदवी,
शिवे! तेरी पाणिग्रहण परिपाटी फल यही।

(८)

न है मोक्षाकांक्षा नहिं विभववाञ्छा हृदयमें,
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छा अब नहीं,
यही यांचा मेरी निज तनयको रक्षित करो,
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानी जपति जो।

(९)

नाना प्रकार उपचार किए नहीं हैं,
रूखा न चिंतन किया वचसा कभी भी,
श्यामे! अनाथ मुझको लख जो कृपा हो,
तो है यही उचित अंब! तुम्हें सदा ही।

(१०)

आपत्तिसे व्यथित हो तुमको भजूँ मैं,
करो कृपा हे करुणार्णवे! शिवे!!
मेरे शठत्वपर आप न ध्यान देना,
क्षुधा तृषार्ता जननी पुकारते।

(११)

जगदंब विचित्र यह क्या, परिपूर्ण करुणा यदि करो,
अपराध करे तनय तो, जननी नहिं अनादर करे।

(१२)

अघहारी तो सम नहीं, मो सम पापी नाहिं।
जननी यह जिय जानिकै, जो भावै करु सोय॥

शक्तिका रहस्य

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शक्तिके विषयमें कुछ लिखनेके लिये भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारने प्रेरणा की, किन्तु 'शक्ति' शब्द बहुव्यापक होनेके कारण इसके रहस्यको समझनेकी मैं अपनेमें शक्ति नहीं देखता; तथापि उनके आग्रहसे अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार यत्किञ्चित् लिख रहा हूँ।

शक्तिके रूपमें ब्रह्मकी उपासना

शास्त्रोंमें 'शक्ति' शब्दके प्रसङ्गानुसार अलग-अलग अर्थ किये गये हैं। तान्त्रिक लोग इसीको पराशक्ति कहते हैं और इसीको विज्ञानानन्दघन ब्रह्म मानते हैं। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदिमें भी 'शक्ति' शब्दका प्रयोग देवी, पराशक्ति, ईश्वरी, मूलप्रकृति आदि नामोंसे विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्मके लिये भी किया गया है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्मका तत्त्व अति सूक्ष्म एवं गुह्य होनेके कारण शास्त्रोंमें उसे नाना प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की गयी है। इसलिये 'शक्ति' नामसे ब्रह्मकी उपासना करनेसे भी परमात्माकी ही प्राप्ति होती है। एक ही परमात्मतत्त्वकी निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार, देव, देवी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, राम, कृष्ण आदि अनेक नामरूपसे भक्तलोग उपासना करते हैं। रहस्यको जानकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार उपासना करनेवाले सभी भक्तोंको उसकी प्राप्ति हो सकती है। उस दयासागर प्रेममय सगुण निर्गुणरूप परमेश्वरको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा समझकर श्रद्धापूर्वक निष्काम प्रेमसे उपासना करना ही उसके रहस्यको जानकर उपासना करना है, इसलिये श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उस विज्ञानानन्दस्वरूपा महाशक्ति भगवती देवीकी उपासना करनी चाहिये। वह निर्गुणस्वरूपा देवी जीवोंपर दया करके स्वयं ही सगुणभावको प्राप्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारकार्य करती है।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं—

> **त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।**
> **त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥**
> **कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।**
> **परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥**
> **तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।**
> **सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥**
> **सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।**
> **सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥**
>
> (ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृति० २। ६६। ७–१०)

'तुम्हीं विश्वजननी मूलप्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परमतेजस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्व मङ्गलोंकी भी मङ्गल हो।'

उस ब्रह्मरूप चेतनशक्तिके दो स्वरूप हैं—एक निर्गुण और दूसरा सगुण। सगुणके भी दो भेद हैं—एक निराकार और दूसरा साकार। इसीसे सारे संसारकी उत्पत्ति होती है। उपनिषदोंमें इसीको पराशक्तिके नामसे कहा गया है।

> **तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणि स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्। सैषा पराशक्तिः।**
>
> (बह्वृचोपनिषद्)

उस पराशक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए। उसीसे सब मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ और बाजा बजानेवाले किन्नर सब ओरसे उत्पन्न हुए। समस्त भोग्य पदार्थ और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम मनुष्यादि प्राणीमात्र उसी पराशक्तिसे उत्पन्न हुए (ऐसी वह पराशक्ति है)।

ऋग्वेदमें भगवती कहती है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्य-
हमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्य-
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥

(ऋग्वेद० अष्टक ८। ७। ११)

अर्थात् 'मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवोंके रूपमें विचरती हूँ। वैसे ही मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंके रूपको धारण करती हूँ।'

ब्रह्मसूत्रमें भी कहा है कि—

'सर्वोपेता तद्दर्शनात्' (द्वि० अ० प्रथमपाद)

'वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्यसे युक्त है क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है।'

यहाँ भी ब्रह्मका वाचक स्त्रीलिङ्ग शब्द आया है। ब्रह्मकी व्याख्या शास्त्रोंमें स्त्रीलिंग, पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग आदि सभी लिङ्गोंमें की गयी है। इसलिये महाशक्तिके नामसे भी ब्रह्मकी उपासना की जा सकती है। बंगालमें श्रीरामकृष्ण परमहंसने माँ, भगवती, शक्तिके रूपमें ब्रह्मकी उपासना की थी। वे परमेश्वरको माँ, तारा, कांली आदि नामोंसे पुकारा करते थे। और भी बहुत-से महात्मा पुरुषोंने स्त्रीवाचक नामोंसे विज्ञानानन्दघन परमात्माकी उपासना की है। ब्रह्मकी महाशक्तिके रूपमें श्रद्धा, प्रेम और निष्काम भावसे उपासना करनेसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

शक्ति और शक्तिमान्‌की उपासना

बहुत-से सज्जन इसको भगवान्‌की ह्लादिनी शक्ति मानते हैं। महेश्वरी, जगदीश्वरी, परमेश्वरी भी इसीको कहते हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, सीता आदि सभी इस शक्तिके ही रूप हैं। माया, महामाया, मूलप्रकृति, विद्या, अविद्या आदि भी इसीके रूप हैं। परमेश्वर शक्तिमान् है और भगवती परमेश्वरी उसकी शक्ति है। शक्तिमान्‌से शक्ति अलग होनेपर भी अलग नहीं समझी जाती। जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे भिन्न नहीं है। यह सारा संसार शक्ति और शक्तिमान्‌से परिपूर्ण है और उसीसे इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं। इस प्रकार समझकर वे लोग शक्तिमान् और शक्ति युगलकी उपासना करते हैं। प्रेमस्वरूपा भगवती ही भगवान्‌को सुगमतासे मिला सकती है। इस प्रकार समझकर कोई-कोई केवल भगवतीकी ही उपासना करते हैं। इतिहास-पुराणादिमें सब प्रकारके उपासकोंके लिये प्रमाण भी मिलते हैं।

इस महाशक्तिरूपा जगज्जननीकी उपासना लोग नाना प्रकारसे करते हैं। कोई तो इस महेश्वरीको ईश्वरसे भिन्न समझते हैं और कोई अभिन्न मानते हैं। वास्तवमें तत्त्वको समझ लेना चाहिये फिर चाहे जिस प्रकार उपासना करे कोई हानि नहीं है। तत्त्वको समझकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक उपासना करनेसे सभी उस एक प्रेमास्पद परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी उपासना

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि शास्त्रोंमें इस गुणमयी विद्या-अविद्यारूपा मायाशक्तिको प्रकृति, मूलप्रकृति, महामाया, योगमाया आदि अनेक नामोंसे कहा है। उस मायाशक्तिकी व्यक्त और अव्यक्त यानी साम्यावस्था तथा विकृतावस्था दो अवस्थाएँ हैं। उसे कार्य, कारण एवं व्याकृत, अव्याकृत भी कहते हैं। तेईस तत्त्वोंके विस्तारवाला यह सारा संसार तो उसका व्यक्त स्वरूप है। जिससे सारा संसार उत्पन्न होता है और जिसमें यह लीन हो जाता है वह उसका अव्यक्त स्वरूप है।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

(गीता ८। १८)

अर्थात् 'सम्पूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते

हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लय होते हैं ।'

संसारकी उत्पत्तिका कारण कोई परमात्माको और कोई प्रकृतिको तथा कोई प्रकृति और परमात्मा दोनोंको बतलाते हैं । विचार करके देखनेसे सभीका कहना ठीक है । जहाँ संसारकी रचयिता प्रकृति है वहाँ समझना चाहिये कि पुरुषके सकाशसे ही गुणमयी प्रकृति संसारको रचती है ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

(गीता ९ । १०)

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे यह मेरी माया चराचरसहित सर्व जगत्को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतुसे ही यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है ।'

जहाँ संसारका रचयिता परमेश्वर है वहाँ सृष्टिके रचनेमें प्रकृति द्वार है ।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

(गीता ९ । ८)

अर्थात् 'अपनी त्रिगुणमयी मायाको अङ्गीकार करके स्वभावके वशसे परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदायको बारम्बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ ।'

वास्तवमें प्रकृति और पुरुष दोनोंके संयोगसे ही चराचर संसारकी उत्पत्ति होती है ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥

(गीता १४ । ३)

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेरी महद्ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतनरूप बीजको स्थापन करता हूँ । उस जड-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है ।'

क्योंकि विज्ञानानन्दघन, गुणातीत परमात्मा निर्विकार होनेके कारण उसमें क्रियाका अभाव है और त्रिगुणमयी माया जड होनेके कारण उसमें भी क्रियाका अभाव है । इसलिये परमात्माके सकाशसे जब प्रकृतिमें स्पन्द होता है तभी संसारकी उत्पत्ति होती है । अतएव प्रकृति और परमात्माके संयोगसे ही संसारकी उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं । महाप्रलयमें कार्यसहित तीनों गुण कारणमें लय हो जाते हैं तब उस प्रकृतिकी अव्यक्तस्वरूप साम्यावस्था हो जाती है । उस समय सारे जीव, स्वभाव, कर्म और वासनासहित उस मूल प्रकृतिमें अव्यक्तरूपसे स्थित रहते हैं । प्रलयकालकी अवधि समाप्त होनेपर उस माया-शक्तिमें ईश्वरके सकाशसे स्फूर्ति होती है तब विकृत अवस्था-को प्राप्त हुई प्रकृति तेईस तत्त्वोंके रूपमें परिणत हो जाती है तब उसे व्यक्त कहते हैं । फिर ईश्वरके सकाशसे ही यह गुण, कर्म और वासनाके अनुसार फल भोगनेके लिये चराचर जगत्को रचती है ।

त्रिगुणमयी प्रकृति और परमात्माका परस्पर आधेय और आधार एवं व्याप्यव्यापकसम्बन्ध है । प्रकृति आधेय और परमात्मा आधार है । प्रकृति व्याप्य और परमात्मा व्यापक है । नित्य चेतन, विज्ञानानन्दघन परमात्मा-के किसी एक अंशमें चराचर जगत्के सहित प्रकृति है । जैसे तेज, जल, पृथिवी आदिके सहित वायु आकाशके आधार है वैसे ही यह परमात्माके आधार है । जैसे बादल आकाशसे व्याप्त है वैसे ही परमात्मासे प्रकृतिसहित यह सारा संसार व्याप्त है ।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

(गीता ९ । ६)

अर्थात् 'जैसे आकाशसे उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही मेरे सङ्कल्पद्वारा उत्पत्तिवाले होनेसे सम्पूर्ण भूत मेरेमें स्थित हैं—ऐसे जान ।'

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

(गीता १० । ४२)

अर्थात् 'अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है ? मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगमायाके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ ।'

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
(ईश० १)

अर्थात् 'त्रिगुणमयी मायामें स्थित यह सारा चराचर जगत् ईश्वरसे व्याप्त है।'

किन्तु उस त्रिगुणमयी मायासे वह लिपायमान नहीं होता। क्योंकि विज्ञानानन्दघन परमात्मा गुणातीत केवल और सबका साक्षी है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
(श्वेता० ६। ११)

अर्थात् 'जो देव सब भूतोंमें छिपा हुआ, सर्वव्यापक, सर्व भूतोंका अन्तरात्मा (अन्तर्यामी आत्मा), कर्मोंका अधिष्ठाता, सब भूतोंका आश्रय, सबका साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण यानी सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे परे है वह एक है।'

इस प्रकार गुणोंसे रहित परमात्माको अच्छी प्रकार जानकर मनुष्य इस संसारके सारे दुःखो और क्लेशोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है। इसके जाननेके लिये सबसे सहज उपाय उस परमेश्वरकी अनन्य शरण है। इसलिये उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द परमात्माकी सर्व प्रकारसे शरण होना चाहिये।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
(गीता ७। १४)

अर्थात् 'क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

विद्या-अविद्यारूप त्रिगुणमयी यह महामाया बड़ी विचित्र है। इसे कोई अनादि, अनन्त और कोई अनादि सान्त मानते हैं। तथा कोई इसको सत् और कोई असत् कहते हैं एवं कोई इसको ब्रह्मसे अभिन्न और कोई इसे ब्रह्मसे भिन्न बतलाते हैं। वस्तुतः यह माया बड़ी विलक्षण है इसलिये इसको अनिर्वचनीय कहा है।

अविद्या—दुराचार, दुर्गुणरूप आसुरी, राक्षसी, मोहिनी प्रकृति, महत्तत्त्वका कार्यरूप यह सारा दृश्यवर्ग इसीका विस्तार है।

विद्या—भक्ति, पराभक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग, योगमाया, समष्टि बुद्धि, शुद्ध बुद्धि, सूक्ष्म बुद्धि, सदाचार, सद्गुणरूप दैवीसम्पदा—यह सब इसीका विस्तार है।

जैसे ईंधनको भस्म करके अग्नि स्वतः शान्त हो जाती है वैसे ही अविद्याका नाश करके विद्या स्वतः भी शान्त हो जाती है, ऐसे मानकर यदि मायाको अनादि-सान्त बतलाया जाय तो यह दोष आता है कि यह माया आजसे पहले ही सान्त हो जानी चाहिये थी। यदि कहें भविष्यमें सान्त होनेवाली है तो फिर इससे छूटनेके लिये प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यकता है? इसके सान्त होनेपर सारे जीव अपने आप ही मुक्त हो जायँगे। फिर भगवान् किसलिये कहते हैं कि यह त्रिगुणमयी मेरी माया तरनेमें बड़ी दुस्तर है किन्तु जो मेरी शरण हो जाते हैं वे इस मायाको तर जाते हैं।

यदि इस मायाको अनादि, अनन्त बतलाया जाय तो इसका सम्बन्ध भी अनादि अनन्त होना चाहिये। सम्बन्ध अनादि अनन्त मान लेनेसे जीवका कभी छुटकारा हो ही नहीं सकता और भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र, क्षेत्रज्ञके अन्तरको तत्त्वसे समझ लेनेपर जीव मुक्त हो जाता है—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥
(गीता १३। ३४)

अर्थात् 'इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको * तथा विकारसहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं वे महात्माजन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।'

इसलिये इस मायाको अनादि, अनन्त भी नहीं माना जा सकता। इसे न तो सत् ही कहा जा सकता है और न असत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कहा जा सकता कि इसका विकाररूप यह सारा संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं बतलाया जाता कि

* क्षेत्रको जड, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके भेदको जानना है।

यह दृश्य जडवर्ग सर्वथा परिवर्तनशील होनेके कारण इसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती।

इस मायाको परमेश्वरसे अभिन्न भी नहीं कह सकते क्योंकि माया यानी प्रकृति जड, दृश्य, दुःखरूप विकारी है और परमात्मा चेतन, द्रष्टा, नित्य, आनन्दरूप और निर्विकार हैं। दोनों अनादि होनेपर भी परस्पर इनका बड़ा भारी अन्तर है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

(श्वेता० ४।१०)

त्रिगुणमयी मायाको तो प्रकृति (तेईस तत्त्व जडवर्गका कारण) तथा मायापतिको महेश्वर जानना चाहिये।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते
विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥

(श्वेता० ५।१)

जिस सर्वव्यापी, अनन्त, अविनाशी, परब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मामें विद्या, अविद्या दोनों स्थित हैं। अविद्या क्षर है, विद्या अमृत है (क्योंकि विद्यासे अविद्याका नाश होता है) तथा विद्या, अविद्यापर शासन करनेवाला वह परमात्मा दोनोंसे ही अलग है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५।१८)

अर्थात् 'क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।'

इसलिये इस मायाको परमेश्वरसे अभिन्न नहीं कह सकते। वेद और शास्त्रोंमें इसे ब्रह्मका रूप बतलाया है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७।१९)

'सदसच्चाहमर्जुन' (गीता ९।१९)

तथा माया ईश्वरकी शक्ति है और शक्तिमान्‌से शक्ति अभिन्न होती है। जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे अभिन्न है इसलिये परमात्मासे इसे भिन्न भी नहीं कह सकते।

चाहे जैसे हो तत्त्वको समझकर उस परमात्माकी उपासना करनी चाहिये। तत्त्वको समझकर की हुई उपासना ही सर्वोत्तम है। जो उस परमेश्वरको तत्त्वसे समझ जाता है वह उसको एक क्षण भी नहीं भूल सकता, क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, इस प्रकार समझनेवाला परमात्माको कैसे भूल सकता है? अथवा जो परमात्माको सारे संसारसे उत्तम समझता है वह भी परमात्माको छोड़कर दूसरी वस्तुको कैसे भज सकता है? यदि भजता है तो परमात्माके तत्त्वको नहीं जानता। क्योंकि यह नियम है कि मनुष्य जिसको उत्तम समझता है उसीको भजता है यानी ग्रहण करता है।

मान लीजिये एक पहाड़ है। उसमें लोहे, ताँबे, शीशे और सोनेकी चार खानें हैं। किसी ठेकेदारने परिमित समयके लिये उन खानोंको ठेकेपर ले लिया और वह उससे माल निकालना चाहता है तथा चारों धातुओंमेंसे किसीको भी निकालो, समय करीब-करीब बराबर ही लगता है। उन चारोंमें सोना सर्वोत्तम है। इन चारोंकी क़ीमतको जाननेवाला ठेकेदार सोनेके रहते हुए, सोनेको छोड़कर क्या लोहा, ताँबा, शीशा निकालनेके लिये अपना समय लगा सकता है? कभी नहीं। सर्व प्रकारसे वह तो केवल सुवर्ण ही निकालेगा। वैसे ही माया और परमेश्वरके तत्त्वको जाननेवाला परमेश्वरको छोड़कर नाशवान्, क्षणभङ्गुर भोग और अर्थके लिये अपने अमूल्य समयको कभी नहीं लगा सकता। वह सब प्रकारसे निरन्तर परमात्माको ही भजेगा।

गीतामें भी कहा है—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५।१९)

अर्थात् 'हे अर्जुन! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

इस प्रकार ईश्वरकी अनन्य भक्ति करनेसे मनुष्य परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है। इसलिये श्रद्धापूर्वक निष्काम, प्रेमभावसे नित्य-निरन्तर परमेश्वरका भजन, ध्यान करनेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्नशील रहना चाहिये।
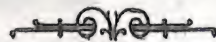
शक्तिसामर्थ्य

(लेखक—स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर करनाली)

प्रकृतिके साम्राज्यमें याने दुनियाके तख्तेपर कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें कोई-न-कोई शक्ति न हो। आकार-प्रकारमें किसी पदार्थके छोटे-बड़े होनेके कारण उसमें शक्ति भी न्यूनाधिक होगी, यह नियम नहीं है। अधिक लोहखण्डकी अपेक्षा स्वल्प स्वर्णखण्डमें शक्ति अधिक मानी गयी है। जो मनुष्य पदार्थोंकी शक्तिसे जितना परिचित और उनका जितना प्रयोग करना जानता है वह उतना ही उन्नत और उच्च समझा जाता है। दस-बीस रुपये लागतके लम्बे-चौड़े, टेढ़े-तिरछे, छोटे-बड़े भिन्न-भिन्न आकारके लोहेके टुकड़ोंके साथ उचित स्थान और परिमाणमें जल, अग्निका संयोग करके जब शक्तिका ज्ञाता पुरुष एक इञ्जनके आकारमें उसे सर्वसाधारणके समक्ष उपस्थित कर देता है, तब वह स्वल्प मूल्यका लोहा पचास हजारकी कीमतका बनकर सैकड़ों मनुष्योंद्वारा महीनोंमें होनेवाले कार्यको अनायास घण्टों या मिनटोंमें करके रख देता है। शक्तिज्ञान और उसके प्रयोगसे भूचर मनुष्य खेचर बन जाता है और सुदूरदेशस्थ शब्द चाहे जहाँ सुन लेता है। यह सब शक्तिका प्रभाव है, वह शक्ति हमारी जगन्माता भगवती देवी है। यतः—

> **या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।**
> **नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥**

इस सप्तशतीस्थ मन्त्रमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापत्रयकी शान्तिके लिये उपनिषदोंके त्रिरावृत्त 'शान्ति' शब्दकी तरह 'नमस्तस्यै' शब्दका तीन बार पाठ किया गया है।

मनुष्य उन्नतिशील प्राणी है पर यह अनायास ही उन्नत नहीं हो जाता। इसे बड़े-बड़े अन्तरायोंका सामना करना पड़ता है। शत्रु, चोर, राजा, शस्त्र, अग्नि और जलादि प्राणियोंके सर्वस्वका नाश कर सकते हैं। मनुष्य ही मनुष्यका अधिकांशमें विरोधी बन जाता है, इत्यादि। विपत्तिसागरको शक्तिशाली पुरुष ही तैरकर पार हो सकता है। क्योंकि शक्तिकी उपासनासे—

> शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
> न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति॥

शक्तिमान् मनुष्य जब चाहे तब संसारका मानचित्र बदल दे, उसके शत्रु अपने कन्धेपर कबतक सिर धरे फिर सकते हैं? शक्तिशाली पुरुष फूँसकी झोपड़ीमें बैठा पत्तेपर रूखा टुकड़ा खाता हुआ जिस महत्त्वका अनुभव कर सकता है उसके शतांशका भी अनुभव ऊँचे महलोंमें बैठे सोनेकी थालीमें खीर खानेवाला दुर्बल प्राणी नहीं कर सकता। संसारके पदार्थोंका सच्चा उत्तराधिकारी बलवान् है। जगत्‌की सब वस्तु उसकी पूजाकी सामग्री हैं, संसारकी सब मर्यादा पालन करानेका सामर्थ्य उसीमें है।

संग्रह करना अच्छा है या त्याग देना ठीक है? इन प्रश्नोंको लेकर अनेक विज्ञजनोंका बहुत कालसे विवाद होता चला आ रहा है। मनुष्य यदि संग्रह ही करता रहे तो परस्पर ऐसा संघर्ष उत्पन्न हो जाय और उससे ऐसी अशान्ति मचे कि दिन काटना मुश्किल हो जाय। और यदि केवल त्यागको ही अङ्गीकार कर लिया जाय तो लोकसंग्रह नष्ट हो जानेसे हम उन उत्तम पदार्थों तथा उन महापुरुषोंसे वञ्चित हो जायँ, जो हमें मनुष्यताका पाठ पढ़ानेमें समर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार इन प्रश्नोंका उत्तर कठिन होनेपर भी शक्तिका पुजारी अनायास दे सकता है। वह कहता है कि केवल 'संग्रह' या 'त्याग' के पीछे मत दौड़ो किन्तु पदार्थोंका सदुपयोग करना सीखो, यदि तुम घृत या तैलमें वस्त्र धोना, दूधमें स्नान करना, आटेको बिछाना, आगसे खेलना, पानीमें दौड़ना या रहना चाहो तो रह सकते हो, पर यह तुम्हारा उचित प्रयोग नहीं है, उचित प्रयोग किये बिना हानि होगी, लाभ नहीं। पर उचित प्रयोग तभी किया जा सकता है जब उन वस्तुओंकी शक्तिसे परिचय हो। अतः शक्तिज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया, प्रत्येक पदार्थमें सूक्ष्मदृष्ट्या उस तत्त्वका अनुसन्धान करना चाहिये, जिसके कारण पदार्थमें पदार्थत्व रहता है।

> **या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः**
> **पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।**
> **श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा**
> **तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥**

भगवती शक्ति ही जगत्‌का पालन कर रही है। वह धर्मात्माओंके घरमें साक्षात् लक्ष्मी है। धर्माधर्मका परिचय ज्ञान

बिना नहीं हो सकता, समर्थ ही ज्ञानी हो सकता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' जो दुर्बल है, जिसका इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं है, जो प्राकृतिक आघात-प्रत्याघातोंसे विचलित हो जाता है, उस मुमुर्षुको क्या ज्ञान होगा? अर्थात् सामर्थ्यसे सम्पन्न ज्ञानपूर्वक धर्मार्जन करनेवाले मनुष्योंके घर द्रव्य, पुत्र, स्त्री, पशु, सौख्य और लक्ष्मीसे कभी रिक्त नहीं हो सकते। इसी प्रकार पापियोंके घरमें वह भगवती दरिद्रताके रूपमें, विद्वानोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे, सज्जन लोगोंमें श्रद्धा होकर और कुलीनोंमें लज्जाके रूपमें निवास करती है।

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः॥

जगत्की सम्पूर्ण विद्या (परा, अपरा या चतुर्दश) भगवती शक्तिके ही भेद हैं और सम्पूर्ण स्त्रियाँ भी उसीका अङ्ग हैं।

ॐकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा।
पितरौ यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतसः॥
'मातृदेवो भव'

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः।
मातुः परतरं किञ्चिन्नाधिकं भुवनत्रये॥

—इत्यादि वचनोंसे भगवती शक्तिकी उपासनाका महत्त्व दिखाया गया है। देवीभागवतके तृतीय स्कन्धके २९ वें अध्यायमें बताया गया है कि नारदके उपदेशसे श्रीरामचन्द्रजीने भगवती शक्तिकी उपासनासे रावणद्वारा अपहृत सीताको प्राप्त किया था। ठीक ही है, बिना शक्तिके किसकी सामर्थ्य है जो शत्रुओंसे अपनी गृहलक्ष्मीको बचा सके?

अनादिकालसे आर्योंके साथ दस्युओंका, सात्त्विक वृत्तियोंके साथ तामस वृत्तियोंका, देवताओंके साथ असुरोंका संघर्ष होता चला आ रहा है। जिसकी शक्ति बढ़ गयी वह विजयी हो गया। यही भाव दुर्गासप्तशती नामक ग्रन्थमें लिखा गया है। देवताओंको असुरोंने परास्तकर स्वाधिकारसे च्युत कर दिया, देवोंने बहुत यत्न किया पर सफल न हुए, अन्तमें शक्ति-सञ्चय करनेसे ही सफलता मिली। सब देवताओंने अपनी उपयोगी वस्तुओंका त्याग किया यानी जिस देवताके पास जो-जो उत्तम वस्तु थी वे सब एक जगह संग्रह की गयीं। इस 'संघशक्ति' से प्रबल हुई शक्तिने विरोधी बलको निर्मूल कर दिया।

महाभारतमें दुर्गादेवीको परम पूज्या माना गया है। शक्ति यानी दुर्गाकी भक्ति महाभारतकालमें खूब की जाती थी, सौतिने भारतीय युद्ध प्रारम्भ होनेके पहले दुर्गाकी भक्तिका उपदेश दिया है। वहाँ दुर्गाका स्मरण करके श्रीकृष्णने अर्जुनको उसके स्तोत्र पाठ करनेकी आज्ञा दी है, भीष्मपर्व अ० ३३ में दुर्गास्तोत्रका उल्लेख है। इस स्तोत्रमें दुर्गाकी शक्तिका जैसा पराक्रम वर्णन किया गया है ऐसा ही स्कन्दपुराणमें वर्णित है। यहाँपर विन्ध्यवासिनीका वर्णन करते हुए दुर्गाका सरस्वतीके साथ एकताका भाव दिखाया गया है। विराटपर्वके आदिमें दुर्गाका बहुत सुन्दर स्तोत्र है, इसे यशोदाके पेटसे उत्पन्न, पत्थरपर पछाड़ते हुए कंसके हाथसे निकली हुई कंसके मारनेवाले श्रीकृष्णकी बहिन बताया गया है। हरिवंशपुराण तथा अन्य पुराणोंमें भी ऐसे बहुत-से महत्त्वपूर्ण वर्णन हैं, तन्त्रग्रन्थोंमें तो भगवतीसम्बन्धी सभी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन कर दिया गया है।

इतिहासप्रसिद्ध गुरु श्रीगोविन्दसिंहजीने प्रथम भगवती शक्तिकी ही उपासना करके यवन-सम्राट्का मुकाबला किया था। महाराणा प्रताप और शिवाजी शक्तिके परमोपासक थे। क्यों न हो, बिना शक्तिकी उपासनाके कोई भी आत्माभिमानी धर्म या देशका सिर ऊँचा कैसे कर सकता है?

जडवादी यूरोप आदि देश वस्तुसञ्चय या उसके प्रयोगसे शक्तिशाली होनेका दावा करते हैं। पर आस्तिक भारतीय सर्व पदार्थोंकी अधिष्ठात्री एक चेतन देवीको मानता है। जैसे यूरोपके विद्वान् कहते हैं कि पृथिवीकी छाया पड़नेसे सूर्यादि ग्रहण लगते हैं किन्तु भारतीय आस्तिक पण्डितोंका कहना है कि छाया जड पदार्थ है, वह स्वयं कुछ नहीं कर सकती। हाँ, उसके अधिष्ठातृदेवता चेतनके आक्रमणसे ग्रहण लगता है जिसे राहु कहते हैं। विदेशी विद्वान् हिमालयके ऊपरसे गङ्गाका आना बताते हैं। भारतीय पण्डित शिवजीके मस्तकसे गङ्गाका गिरना कहते हैं। इसका अभिप्राय भी यही है कि हिमालय सबसे ऊँचा होनेके कारण भगवान् विराट्का शिरःस्थानीय है। जब संसार विराट् भगवान्का अङ्ग है तो उसके सबसे उन्नत भागको

मस्तक मानना चाहिये, अतएव सब पदार्थोंमें चेतनशक्ति विद्यमान है।

उस शक्तिको सर्वसाधारण तथा कल्याणके लिये भक्तजनोंने मातृरूपसे व्यवहृत किया है। (यद्यपि वह सर्वरूपा है) उसके नानारूप बहुत-सी भुजाएँ, अनेक वाहन और नाना शस्त्रास्त्र दिखाये गये हैं। सिंहवाहिनी शस्त्रास्त्र-धारिणी भगवतीकी महिमाको जाननेवाला पुरुष सिंहका कान पकड़कर उसके दाँत गिन सकता है। वे शक्तिके कायर भक्त हैं जो दुर्बल अजापुत्रको (बकरेको) उसके नामपर बलि चढ़ा देते हैं। स्वार्थ और बलप्रयोगको पशु कहा गया है। स्वार्थ और जबरदस्तीको बलि चढ़ाओ और शत्रुरूप सिंहका कान पकड़कर उसे शिक्षा दो। भगवती शक्तिके उपासक संसारके शान्ति तथा मर्यादानाशक जीवोंकी बलि चढ़ाकर उसे प्रसन्न करके जगत्के सुखके कारण बनते हैं। शक्तिसे सुख है और उसीमें सब कुछ है।

किं तत्कार्यं जगत्यस्मिन् यत्तु शक्त्या न सिद्ध्यति ॥

माता शक्तिकी पूजा

(लेखक—स्वामी श्रीअभेदानन्दजी पी-एच० डी०)

वेदोंके प्रागैतिहासिक कालसे लेकर आजतक हिन्दूधर्म सगुण परमात्माकी माता और पिताके रूपमें उपासना करता आया है। हिन्दूधर्म हमें यह भी सिखलाता है कि इन दो भावोंमें-से किसी एकका आश्रय लेकर हम धर्मके परमोच्च आदर्शतक पहुँच सकते हैं। ऋग्वेदमें ईश्वरका पितृरूप 'प्रजापति' कहलाया–जिसका अर्थ है समस्त जीवोंके प्रभु और पिता। दशम मण्डलके १२१ वें सूक्तमें इन प्रजापतिका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। इस सूक्तमें सगुण परमात्माका जैसा निरूपण किया गया है उससे अधिक सुन्दर निरूपण गत पाँच हजार वर्षोंमें किसी अन्य जातिके धर्म-ग्रन्थोंमें नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक युगके किसी मन्त्रद्रष्टा ऋषिसे यह पूछा गया कि हमें कौन-से देवताकी स्तुति एवं पूजा करनी चाहिये ('कस्मै देवाय हविषा विधेम'?) उन्होंने दस ऋचाओंमें इस प्रश्नका उत्तर दिया जिनमेंसे दो ऋचाएँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
तस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्यु-
स्तस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

'आरम्भमें प्रजापति हुए जो समस्त भूतोंके पूर्वज एवं स्वामी थे। वे अपनी शक्तिसे पृथ्वी और आकाशको धारण करते हैं। हमें चाहिये कि उन्हींकी स्तुति और पूजा करें।' 'जो समस्त भूतोंको जीवन तथा शक्ति प्रदान करते हैं, जिनके शरीरसे अग्निमेंसे स्फुलिङ्गके समान जीव प्रकट होते हैं, जो समस्त जीवोंको पावन करनेवाले हैं, जिनकी आज्ञाका सभी प्राणी आदरपूर्वक पालन करते हैं, मृत्यु और अमृतत्व जिनकी छाया है—उन्हीं (प्रजापति) की हमलोग स्तुति एवं पूजा करें।'

इन्हीं प्रजापतिको जो विश्वके सच्चे एवं धर्मपरायण न्यायशील प्रभु हैं–जो देवाधिदेव हैं—ऋग्वेदमें एक स्थानपर 'द्यौः पिता' कहा गया है, जिसका अर्थ है स्वर्गमें रहनेवाला पिता और सबका रक्षक। ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके तीसरे अध्यायके २० वें मन्त्र (सूक्त १६४। ३३) में आता है—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।

अर्थात् 'वह ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश आत्मा जिसका निवास स्वर्गमें है, मेरा पिता और रक्षक, मेरा जन्मदाता है और वही सबका कारण है।' आगे चलकर वही 'द्यौः पिता' यूनानके पुराणग्रन्थोंमें 'ज्यूपितर' (Zeus-pitar)

अथवा जूपिटर (Jupiter) कहलाये। वही यहूदियोंके 'जेहोवा' (Jehova) और ईसाइयोंके 'यवेह' (Yaveh स्वर्गमें रहनेवाला पिता) हो गये।

ईश्वरके मातृरूपको ऋग्वेदमें 'अदिति' कहा गया है, जो विश्वका अटल अचल आधार है। ऋग्वेदके एक दूसरे सूक्तमें उसका यों वर्णन है—

'अदिति स्वर्गमें है, तथा स्वर्ग और भूलोकके बीचका जो द्युलोक (अन्तरिक्ष) है वहाँ भी विद्यमान है। वह समस्त देवताओंकी जननी है, और चराचर भूतोंकी रचनेवाली है। सबकी पिता एवं रक्षक भी वही है। वह स्रष्टा और सृष्टि दोनों है। अपने उपासकोंकी आत्माओंको वह अपनी अनुकम्पाद्वारा पापोंसे मुक्त कर देती है। वह अपनी सन्तानको देनेलायक सभी कुछ दे डालती है। वह सभी देवताओं अथवा दिव्य आत्माओंके विग्रहमें निवास करती है। भूत एवं भव्य सब कुछ उसीका रूप है। वही सब कुछ है। (ऋ० २।६।१७) इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतमें प्राचीनकालमें ईश्वरकी भावना विश्वके माता और पिता दोनों रूपोंमें हुई है। सगुण परमात्माका जगत्के मातापिता तथा निमित्त एवं उपादान कारण दोनों रूपोंमें वर्णन वेदके सिवा किसी भी ग्रन्थमें और हिन्दूधर्मके सिवा किसी धर्ममें नहीं हुआ है।

जबतक ईश्वरको विश्वातीत एवं निष्क्रिय प्रकृतिसे भिन्न एवं बाहर मानते हैं तबतक उसकी जगत्के पिता अथवा निमित्त कारणके रूपमें प्रतीति होती है और प्रकृतिकी उसके उपादान कारणके रूपमें प्रतीति होती है। परन्तु ज्यों-ज्यों हमारी समझमें यह आता जायगा कि ईश्वर प्रकृतिमें ओत-प्रोत एवं प्रकृतिसे अभिन्न हैं उतना ही स्पष्ट रूपमें हम समझने लगेंगे कि ईश्वर हमारी माता भी है और पिता भी। जब हमें इस बातका अनुभव हो जायगा कि जगत्की उपादानभूता प्रकृति अथवा ईश्वरका नारीरूप ईश्वरके व्यक्त स्वरूपका ही एक अंश है और विराट्पुरुष अथवा परमात्माके पुरुषरूपसे सर्वथा अभिन्न है, तब यह बात हमारी समझमें आ जायगी कि ईश्वर इस जगत्की रचना बढ़ई अथवा कुम्हारकी भाँति ऐसे उपादानोंसे नहीं करता जो उसके शरीरसे बाहर हैं अपितु वह एक मकड़ीकी भाँति सब कुछ अपने शरीरमेंसे ही निकालता है और संसारके सभी पदार्थ और शक्तियाँ उसके शरीरमें ही विद्यमान रहती हैं। उपर्युक्त सिद्धान्त विश्वव्यापिनी शक्तिके वैज्ञानिक स्वरूपके साथ भी पूरा-पूरा मेल खाता है।

आधुनिक विज्ञान सनातनशक्तिको ही समस्त बाह्य प्रपञ्चका कारण मानता है। विकासवादका सिद्धान्त तथा शक्तियोंके परस्पर सम्बन्ध एवं शक्तिकी नित्यता आदि सिद्धान्तोंसे यह बात स्पष्टतया प्रमाणित होती है कि अखिल विश्वकी स्थूल घटनाएँ तथा बाह्य एवं आन्तरिक जगत्की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ एक सनातन शक्तिकी अभिव्यक्तिमात्र हैं। विकासवादका सिद्धान्त तो केवल उस प्रक्रियाका निदर्शन करता है जिसके अनुसार वह सनातन शक्ति इस बाह्य प्रपञ्चको रचती है। विज्ञानने इस प्राचीन मतवादका खण्डन कर दिया है कि, एक विश्वातीत परमात्माकी आज्ञा-से—शून्यसे जगत्की उत्पत्ति हुई है और इस बातको प्रमाणित कर दिया है कि अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। विज्ञान हमें सिखलाता है कि विश्व उस आदिशक्तिके अन्दर अव्यक्तरूपमें विद्यमान था और धीरे-धीरे विकास-क्रमसे जो कुछ अव्यक्त था वह व्यक्त हो गया, प्रकट हो गया।

वह सनातन शक्ति जड़ अथवा अचेतन नहीं है, चेतन है। बाह्य अथवा अभ्यन्तर जगत्में जहाँ कहीं हमारी दृष्टि जाती है वहाँ हम स्थूल पदार्थों तथा जड़शक्तियोंके आकस्मिक संयोगका ही विलास नहीं पाते अपि तु एक निश्चित उद्देश्यके अनुकूल नियमोंकी क्रियाको देखते हैं। यह जगत् अव्यवस्थित नहीं है अपि तु एक सुव्यवस्थित एवं सुसङ्गठित संस्था है। यह परिवर्तनोंकी एक निरुद्देश्य शृङ्खलामात्र नहीं है जिसे हम विकास कहते हैं प्रत्युत विकासके पग-पगपर एक सुनियमित उद्देश्य छिपा हुआ है। इसीसे वह शक्ति ज्ञानसम्पन्न कही जाती है। हम इस स्वतन्त्र, ज्ञानसम्पन्न, सनातन विराट् शक्तिको विश्वकी जननी कह सकते हैं। वह अनन्त शक्तियों और अनन्त प्राकृतिक घटनाओंका मूलस्रोत है। इस सनातन शक्तिको संस्कृतमें 'प्रकृति' और लैटिन भाषामें प्रोक्रियेट्रिक्स (Procreatrix) कहते हैं जिसका अर्थ है—विश्वकी उत्पादिका शक्ति।

हिन्दूशास्त्रोंमें उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे॥

'हे शिवे ! तुम्हीं परब्रह्म परमात्माकी परा प्रकृति हो,

तुम्हींसे सारे जगत्की उत्पत्ति हुई है, तुम्हीं विश्वकी जननी हो।'

प्रकृतिकी जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सब ईश्वरीय शक्तिकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इसीसे उस मूलशक्तिको सर्व-सामर्थ्ययुक्त कहा गया है। विश्वमें जहाँ कहीं शक्तिका स्फुरण दीखता है वहाँ सनातन प्रकृति अथवा जगदम्बाकी ही सत्ता है। उस शक्तिको पिता न कहकर माता कहना अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है क्योंकि जननीकी भाँति वह सृष्टिको विकासके पूर्व अपने उदरमें रखती है। उसकी वृद्धि एवं पोषण करती है, उसका प्रसार करती है तथा उत्पन्न हो जानेपर उसकी रक्षा करती है। वह ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी जननी है। वह समस्त क्रियाकी मूल है। वही क्रियाशील 'शक्ति' है। सृष्टिकर्ता अपनी सृजनकारिणी शक्तिसे हीन होनेपर सृष्टिकर्ता नहीं रह जाता। उत्पादिका शक्ति भी उस परम सनातन शक्तिकी अभिव्यक्ति मात्र है इसीलिये हिन्दूधर्मशास्त्र सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, सृष्टिपालक विष्णु एवं सृष्टिसंहारक रुद्रको उस जगज्जननीसे उत्पन्न हुए मानते हैं।

ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तमें आदिशक्ति जगदम्बा कहती हैं—

'मैं ब्रह्माण्डकी अधीश्वरी हूँ। मैं ही सारे कर्मोंका फल भुगतानेवाली और ऐश्वर्य देनेवाली हूँ। मैं चेतन एवं सर्वज्ञ हूँ। मैं एक होते हुए भी अपनी शक्तिसे नानारूप भासती हूँ। मैं मानवजातिकी रक्षाके लिये युद्ध ठानती हूँ और शत्रुका संहारकर पृथ्वीपर शान्तिकी स्थापना करती हूँ। मैं ही भूलोक और स्वर्गलोकका विस्तार करती हूँ। मैं जनककी भी जननी हूँ। जैसे वायु अपने आप चलती है वैसे ही मैं भी अपनी इच्छासे समस्त विश्वकी स्वयं रचना करती हूँ। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ। मुझपर किसीका प्रभुत्व नहीं है। मैं आकाश और पृथ्वीसे परे हूँ। अखिल विश्व मेरी विभूति है। मैं अपनी शक्तिसे यह सब कुछ हूँ।'

इस प्रकार जगदम्बाको सब कुछ कहा गया है। उस जगज्जननीके अन्दर ही हम जीवन धारण करते हैं, चलते-फिरते हैं और अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। ईश्वरीय शक्ति अपनी लीलाका संवरण कर ले तो फिर किसकी मजाल है जो क्षणभर भी जीवित रह सके। संसारमें जो कुछ होता है वह सब उसीकी प्रेरणासे होता है। एक आदमी भला मालूम होता है तथा आध्यात्मिक एवं ईश्वरीय गुणोंसे युक्त प्रतीत होता है, और इसके विपरीत दूसरा दुरात्मा एवं पापी नजर आता है। यह सब उसीका खेल है क्योंकि सत्पुरुषको सत्कर्म करनेकी और दुष्कृतिको दुष्कर्म करनेकी शक्ति वही देती है। परन्तु यह सब होते हुए भी वह स्वयं सत्-असत्से परे है, पाप-पुण्यसे अलग है। उसकी शक्तियाँ न तो अच्छी हैं और न बुरी ही हैं। हमें अपने-अपने दृष्टिकोणसे तथा आपेक्षिक दृष्टिसे वे भली-बुरी प्रतीत होती हैं।

जब वह सर्वव्यापिनी ईश्वरीय शक्ति अपनेको अभिव्यक्त करती है तब वह दो परस्परविरोधी शक्तियोंके रूपमें प्रकट होती है। उनमेंसे एक शक्ति ईश्वरोन्मुख होती है; इसे संस्कृतमें 'विद्या' कहते हैं; दूसरी शक्ति संसारप्रवण होती है और 'अविद्या' कहलाती है। पहली मोक्ष और आनन्दकी देनेवाली है और दूसरी बन्धन और दुःखका कारण होती है।

विद्याशक्तिको ही हिन्दू लोग जगज्जननी मानकर दुर्गा, काली, भवानी आदि विभिन्न रूपोंमें और विभिन्न नामोंसे पूजते हैं। अविद्याशक्ति उस विद्याशक्तिकी अनुचरी एवं अधीनवर्तिनी मानी जाती है। जो लोग जगज्जननीकी पूजा करते हैं वे निम्नलिखित शब्दोंमें उसकी स्तुति करते हैं—

'हे जगज्जननी! तुम्हीं सनातन शक्ति हो, तुम्हीं विश्वके अनन्तकी मूलस्रोत हो। व्यक्त अनेक नामरूपोंमें तुम्हारी ही शक्ति अभिव्यक्त हो रही है। तुम्हारी अविद्याशक्तिसे मोहित होकर हम तुम्हें भूल जाते हैं और संसारके तुच्छ पदार्थोंमें सुखका अनुभव करने लगते हैं। परन्तु जब हम तुम्हारी पूजा करते हैं और तुम्हारी शरण आते हैं तब तुम हमें अज्ञानसे एवं संसारकी आसक्तिसे मुक्त कर देती हो और अपने बच्चोंको शाश्वत सुख प्रदान करती हो।'

शक्ति शक्तिमान्से पृथक् नहीं है

(लेखक—स्वामी श्रीतपोवनजी महाराज)

वैशेषिक-मतके माननेवाले आरम्भवादी तथा कुछ और दूसरे मतवाले शक्ति-पदार्थको नहीं मानते, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि शक्ति गगनकुसुमके समान है ही नहीं। उनका इस शक्तितत्त्वको निषेध करना प्रामाणिक नहीं है। वे प्रमाणके द्वारा शक्तितत्त्वका निषेध नहीं कर सकते। जो तत्त्व शब्द, अनुमान आदि प्रमाणोंसे सिद्ध है उसे कौन किस प्रकार, केवल साहसमात्र-से निषेध कर सकता है? निश्चय ही शक्ति नामक पदार्थ है। अग्निशक्ति, पुरुषशक्ति इत्यादिरूपमें लोकमें शक्ति पदार्थ प्रसिद्ध ही है। अग्निस्वरूपके अतिरिक्त अग्निशक्ति और पुरुषस्वरूपके अतिरिक्त पुरुषशक्ति यद्यपि प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं होती, तथापि इतनेसे ही उसका अभाव नहीं सिद्ध होता। प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्राप्त न होनेपर भी अनुमानादिके द्वारा उसकी प्राप्ति होती है। स्फोट आदि कार्यके द्वारा सबको निश्चयपूर्वक अग्निशक्तिका अनुमान होता है। और उसी प्रकार युद्ध आदि कार्योंके द्वारा पुरुषशक्तिका अनुमान होता है। अपि च मणिमन्त्रादिके द्वारा शक्तिस्तम्भन करनेसे शक्तिके कार्य स्फोटादिका अवरोध हो जाता है, इससे उन स्फोटादिका अग्न्यादि शक्तिका कार्य होना प्रसिद्ध है। अग्न्यादि स्वरूपोंके प्रत्यक्ष सिद्ध होनेके कारण उनके प्रतिबन्धकी सम्भावना करना उचित नहीं, उससे अतिरिक्त शक्तियोंका ही प्रतिबन्ध मणिमन्त्रादिके द्वारा होता है, तथा इसीलिये दहनादि व्यापार उन-उन शक्तिके ही कार्य हैं, अग्न्यादि स्वरूपके नहीं, यह सब भलीभाँति सिद्ध होता है केवल पुराने आचार्य ही इस प्रकार अनुमानादिके द्वारा शक्तितत्त्वका समर्थन नहीं करते बल्कि आजकलके दार्शनिक भी वैज्ञानिक रीतिसे तत्तत्कार्यकरणसामर्थ्यरूपा शक्ति अग्नि आदि तत्तत् लौकिक पदार्थोंमें है, ऐसा सप्रमाण सिद्ध करते हैं—यह बात आजकल सर्वसम्मत हो गयी है।

जिस प्रकार लौकिक पदार्थोंमें स्फोटादि कार्यजनिका ज्वलन आदि उनकी शक्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्ममें सर्व जगत्की उपादानभूता महान् अलौकिक शक्ति वर्तमान है, इसमें तनिक भी अनुपपत्ति नहीं है। असङ्ग कूटस्थ चिन्मात्रस्वरूप परमात्मा कभी जगदुत्पत्तिका कारण नहीं हो सकता, उसमें रहनेवाली कोई शक्ति ही जगत्सर्जनादि सब क्रियाओंमें समर्थ सृष्टिका उपादान है, यह उसके सामर्थ्यसे जाना जाता है। इसी प्रकार अग्नि आदि लौकिक शक्तिके समान पराशक्ति भी परमात्माके समाश्रित होकर प्रत्यक्षसे अनुपलब्ध होते हुए भी प्रपञ्चरूप कार्यसे अनुमान की जाती है, उसकी सत्तामें लेशमात्र भी शङ्काका अवसर नहीं है। सांख्यकारिकामें कहा भी है—

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात्कार्यतस्तदुपलब्धेः।

अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण जगत्के उपादानस्वरूप उस शक्तिकी प्रत्यक्ष उपलब्धि नहीं होती, उसके असत् होनेके कारण नहीं; क्योंकि जगत्रूप कार्यके द्वारा उस कारणात्मिकाका ज्ञान नियमपूर्वक सबको होता है—यही उपर्युक्त कारिकाका अर्थ है। परमात्मशक्तिकी सिद्धिमें जो यहाँ कार्यलिङ्गयुक्त अनुमान प्रदर्शित किया गया है वह स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि प्रबल श्रुतिमूलक है, इसलिये उसकी अप्रतिष्ठामें लेशमात्र भी शङ्काका अवसर नहीं है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

जगत्के काल-स्वभावादि कारण हैं, इन सिद्धान्तोंमें दोष देखनेवाले मुनियोंने जगत्के कारणके जाननेकी अभिलाषासे ध्यानयोगमें स्थित होकर द्युतिमान् स्वप्रकाश चिदात्मा परमात्माकी शक्तिको स्वगुणोंसे आवृतरूपमें प्रत्यक्ष किया था, और यह निश्चय किया था कि जगत्का उपादान कारण केवल परमात्मशक्ति ही है, कोई दूसरा नहीं। तथा—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ (श्वेता०)

ब्रह्मकी जगत्कारणरूप परमोत्कृष्ट शक्ति ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि रूपसे अनेक प्रकारकी है—ऐसा श्रुतियोंने वर्णन किया है।

इस प्रकार श्रुति और युक्तिके अवलम्बनसे परमात्मशक्ति जगत्का उपादान कारण है—इसे बहुतेरे मुक्तकण्ठसे स्वीकार

करते हैं, इसलिये इस सिद्धान्तको उच्छृङ्खल तर्कमूलक माननेके लिये लेशमात्र भी शङ्काका अवसर नहीं है। यही परब्रह्ममें रहनेवाली परा प्रकृति-शक्ति 'महामाया', 'प्रकृति', 'प्रधान' आदि विभिन्न नामोंसे विभिन्न शास्त्रोंमें पुकारी जाती है। विचित्र कार्य करनेके कारण 'महामाया', सब जगत्का प्रकृष्ट निधान (आश्रय) होनेके कारण 'प्रधान' और सब जगत्का उपादान कारण होनेसे 'प्रकृति' नाम प्रसिद्ध है। प्रकृति शब्दकी इसी प्रकारकी व्याख्या देवी-भागवतमें भी है, इस अर्थग्रहणके समर्थनमें उसका अवतरण यहाँ दिया जाता है—

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

सृष्टिमें जो प्रकृष्ट है अर्थात् मुख्यरूपसे जो सब जगत्की सृष्टिकर्त्री है, वही प्रकृति है।

परन्तु यद्यपि उस शक्तिका यहाँ परमात्मस्वरूपसे अलग वर्णन किया गया है तथापि जिस प्रकार घट पटसे अथवा अश्व महिषसे अत्यन्त भिन्न होता है उस प्रकार वह परमात्मासे अत्यन्त भिन्न नहीं है। जिस प्रकार घट पटस्वरूपके अतिरिक्त स्वतन्त्ररूपसे स्थित हो सकता है, उस प्रकार शक्ति शक्तिमान्के स्वरूपसे अलग स्वतन्त्र सत्तामें स्थित नहीं हो सकती। अतः शक्ति परमार्थतः शक्तिमान्का स्वरूप ही है, उससे अतिरिक्त वस्तु नहीं है। शक्ति कभी शक्तके बिना नहीं रह सकती। शक्ति शक्तके ही आधारपर ठहरी है, कहीं केवल शक्तिमात्र बिना आधारके नहीं रह सकती। इसीलिये विद्यारण्य स्वामीने कहा है—

सर्वथा शक्तिमात्रस्य न पृथग्गणना क्वचित्।

कहीं भी, किसी प्रकार भी शक्तिमात्रकी पृथग्वस्तुके रूपमें गणना नहीं होती। शक्ति निश्चयपूर्वक शक्तस्वरूपा है—यही आचार्य विद्यारण्य स्वामीका आशय है। अग्नि-शक्ति अग्निस्वरूपके आश्रयके बिना स्वतन्त्ररूपसे नहीं रहती और न अग्निसे पृथक् उसकी गणना होती है, अतः वह अग्निस्वरूपा ही है; इसी प्रकार पुरुषशक्ति पुरुषस्वरूपके आश्रयके बिना नहीं रहती, और न पुरुषसे पृथक् उसकी गणना ही होती है अतः वह पुरुषस्वरूपा ही है। इसलिये शक्तिके बिना शक्तिमान् तथा शक्तिमान्के बिना शक्ति नहीं है, फलतः शक्ति और शक्तिमान्में अभेद है। शक्ति और शक्त इन दोनों वाचकोंमें ही भेद है, वाच्यमें भेद नहीं है—यह सिद्धान्त निश्चित हुआ।

उपर्युक्त रीतिसे यदि शक्ति शक्तके आश्रयके बिना नहीं रहती, तो वह शक्तस्वरूपिणी ही है; इसी प्रकार परा-शक्ति भी शक्तिमान् परमेश्वरके बिना अपनी सत्तासे स्थित नहीं हो सकती, अतः यह सिद्ध होता है कि वह परब्रह्म-स्वरूपिणी ही है।

'अव्यक्तात्पुरुषः परः।' (कठोपनिषद्)
'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्कले सम्प्रलीयते।
(विष्णुपुराण)

इस प्रकार शतशः श्रुति-स्मृतिके वाक्य अव्यक्त माया-पदवाच्य जगत्की मूलभूता प्रकृति-शक्तिकी स्वतन्त्र सत्ताका प्रतिषेध कर उसे परम पुरुषके आश्रित वर्णन करते हैं। इसलिये सांख्योंका स्वतन्त्रप्रधानवाद भ्रान्तिविलास-मात्र है। इस प्रकार पराशक्ति और पराशक्तकी सप्रमाण अपृथक्ता सिद्ध होनेपर, सच्चिदानन्दत्व, जगन्नियामकत्व, जगदुदयस्थितिभङ्गकर्तृत्व, सर्वकर्मफलप्रदत्व आदि ब्रह्मके धर्म शक्तिमें भी पूर्णतया घटित होते हैं, इसमें तनिक भी अनुपपत्ति नहीं है। इसीलिये शक्तिपरक ग्रन्थ श्रीदेवी उपनिषद्, श्रीदेवीभागवत आदिमें तथा अन्य तन्त्रग्रन्थोंमें जगत्सर्जनरक्षणसंहरण आदि क्रियाको देवीकी लीलाके रूपमें वर्णित देखा जाता है। यदि शक्ति ब्रह्म-स्वरूपिणी न होती, ब्रह्मसे पृथक् होती तो इस प्रकारके वर्णन अर्थशून्य उन्मत्तप्रलापवत् परित्याज्य होते। देवी उपनिषद्में ऐसा ही कहा गया है—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः; कासि त्वं महादेवि। साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी। अजाहमनजाहं अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक्चाहम्।

ब्रह्मादि सब देवता देवीके समीप जाकर पूछने लगे—'हे देवि! तुम्हारा स्वरूप क्या है?' देवीने कहा—'मैं परब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। परमार्थतः अजन्मा होते हुए भी व्यवहारतः नाना देवदेवीरूपमें मैं जन्म लेती हूँ; मैं ही ऊपर, नीचे बगलमें सर्वत्र पूर्ण हूँ तथा देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न हूँ, यह आपलोग जान लें'—यही उपनिषद्-वाक्यका अर्थ है।

यदि शक्ति शक्तब्रह्मस्वरूपिणी है, ब्रह्मसे अतिरिक्त नहीं है, तो वही निश्चयपूर्वक सर्व जगत्के रूपमें, सर्व देव-देवीके रूपमें स्थित है, उसके सिवा कुछ भी नहीं है—यह

बात निर्विवाद है। यही बात सीतोपनिषद्में कही गयी है—

सा सर्ववेदमयी सर्वदेवमयी सर्वलोकमयी।

इत्यादि

परन्तु यद्यपि उपर्युक्त रीतिसे प्रकृत शक्तिके ब्रह्ममूर्ति तथा सर्वात्मिका होनेपर भी जिस प्रकार शक्तमें पुरुषत्व, ईश्वरत्व, जगत्पितृत्व कल्पित होता है उसी प्रकार शक्तिमें स्त्रीत्व, ईश्वरीत्व तथा जगन्मातृत्वकी कल्पना कर महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती, सीता, राधा आदि विभिन्न रूपोंमें, जिनका भेद तत्तदुपाधिप्रयुक्त अर्थात् तत्तत् निमित्तको लेकर है, उस एक एवं अद्वितीया पराशक्तिकी ही लोग उपासना करते हैं।

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।
सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता॥

(सीतोपनिषद्)

—इस श्लोकका अर्थ स्पष्ट होनेके कारण नहीं लिखा जाता है। साकारभावको प्राप्त परब्रह्मकी ही मूर्ति दाशरथि, वासुदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देवविशेषके सम्बन्धसे देवीभावमें स्थित वही शक्ति सीता, राधा, सरस्वती, लक्ष्मी, महेश्वरी आदि विविध नामरूपोंमें विभिन्न उपासकोंके द्वारा आराधित होती है। एक ही देवीके निमित्तभेदसे विभिन्न नामरूप कल्पित करके लोग उपासना करते हैं, यह बात श्रुतिस्मृतिके जाननेवालोंको अविदित नहीं है।

दुर्गात्संत्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते।

(देवी उपनिषद्)

मुख्य शक्तिके जो तत्तद् उपासकोंके प्रिय काली, लक्ष्मी आदि गौण साकार स्वरूप हैं, वे भी गौणशक्त अर्थात् शिव, विष्णु आदिसे अलग नहीं हैं। गौण जितने शक्तिमान् हैं सभी मुख्य शक्त परमात्माके स्वरूप ही हैं। इसी प्रकार गौण-शक्तिके भेद भी सभी मुख्य शक्त परमात्माके स्वरूप हैं। केवल मुख्य शक्तिका ही नहीं, बल्कि गौण शक्तियोंका अर्थात् विभिन्न उपासकोंकी उपास्य विभिन्न देवियोंका भी, जगत्की उत्पत्ति आदिके कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्त, मुक्त पुरुषोंके द्वारा प्राप्य, नित्य, कूटस्थ, सुखघनात्मा परमात्माके साथ तनिक भी भेद नहीं है। इस प्रकार शक्ति, शक्तिमान्का अभेद सब प्रकारसे सिद्ध होता है, और यही इस निबन्धका प्रकृत विषय है तथा यह निबन्ध इसी बातको सिद्ध करनेकी इच्छासे लिखा गया है। तथा च जिज्ञासु और मुमुक्षु गौण शक्तिभेदोंमेंसे देवीके किसी खास रूपकी भी अनन्य भक्तिद्वारा सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे आराधना–उपासना कर सकते हैं, तथा ऐसे उपासक भी धन्य-धन्य और कृतकृत्य होते हैं—इस विषयमें विशेष लिखना अनावश्यक है।

इस प्रकार सरस्वती, लक्ष्मी, राधा, सीता आदि सभी शक्तिके भेद शक्तिस्वरूप तथा शक्तिपदवाच्य ही हैं—ऐसी स्थितिमें भी शक्ति-शब्द आजकल रूढ़िसे महाकालीके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है, यह सर्वविदित है। इस विषयमें विचारवान् पुरुष यह अनुमान करते हैं कि कालीके उपासक तान्त्रिकोंके शाक्तमतका भारतवर्षमें सर्वत्र व्यापकरूपसे प्रचार ही इस रूढ़िका मूल है तथा उन कालीके उपासकों-के समयसे ही शक्तिपद केवल कालीवाचक हो गया। यह विश्वविदित शाक्तमत कब, कैसे और किसके द्वारा प्रचलित हुआ—इसका अनुसन्धान हमारे निबन्धके प्रकरणसे बाहर है, इससे इसपर विचार नहीं किया जाता। परन्तु शक्ति-(काली) पूजकोंके कुछ भ्रान्तिमूलक आचरण श्रेयोमार्गके लिये अत्यन्त ही प्रतिबन्धक हैं, ऐसा समझकर उस विषयमें कुछ कहकर इस निबन्धका उपसंहार किया जायगा।

कालीशक्ति मांसप्रिया तथा मांसभक्षण करनेवाली है, ऐसा मानना लोगोंका दुर्विचार है। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी जगन्माता, सर्वभूतोंके हितमें रत रहनेवाली कारुण्यमूर्ति, अपने सन्तानभूत प्राणियोंकी हिंसा तथा उनके मांसा-स्वादनकी रसिका कैसे हो गयी, यह समझमें नहीं आता। शक्तिसिद्धान्तके पण्डितोंके द्वारा बलिदानादिसे शक्ति-की परितृप्तिमें जिन हेतुओंका वर्णन किया जाता है, उनका उद्धरण करने अथवा उनके उद्देश्यकी समीक्षा करनेमें लेखविस्तारभयसे मैं प्रवृत्त नहीं होना चाहता। बलिदानसे ही शक्ति प्रसन्न होती है, अन्य उपाय-से नहीं—यह विश्वास चाहे जिस कारणसे शास्त्रोंमें बद्धमूल हुआ हो, परन्तु है यह भ्रमरूप एवं महान् अनर्थकारी; इसलिये यहाँ केवल बलिदानादि क्रियाका निषेध किया जाता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अनादिकालसे प्रचलित बलिदानादि धार्मिक कर्मोंका प्रतिषेध क्यों और किस कारणसे किया जाता है? बात यह है कि प्राणिहिंसा चाहे घरमें हो, बाजारमें हो अथवा देवालयमें हो, यह प्राणिहिंसा ही होगी। प्राणिहिंसा तथा मांसभक्षणमें नाना प्रकारके दोष हैं, यह विचारशील पुरुषोंको अविदित नहीं। ऐसी दशामें यह प्रश्न हो सकता है कि कल्याणकी बहुमूल्य पंक्तियोंको मैं व्यर्थ क्यों रोकता हूँ। यदि ऐसा कहें

कि शक्ति बलिदानसे ही सन्तुष्ट होती है, अन्य क्रियासे नहीं—इसमें शास्त्र और शिष्टाचार प्रमाण हैं, तो मैं कहूँगा कि यह मांसप्रेमियोंका महामोह है। पुराणादिमें जहाँ कहीं भी मांसादिसे देवताओंको तृप्त करनेका वर्णन मिलता है वहाँ उनका वैसा तात्पर्य कदापि नहीं है। उनसे निवृत्ति ही महाफल प्रदान करती है, अतः विवेकशील पुरुषोंके लिये ये वाक्य नहीं हैं, यह बात हम संक्षेपसे निःशङ्क होकर कह सकते हैं। रही शिष्टाचारकी बात, तो मेरी समझसे शिष्ट पुरुष मांसप्रेमी नहीं थे। परन्तु कोई मान भी ले तो सिद्धान्त यह है कि सभी शिष्टकर्म शिष्टाचारके रूपमें सदा प्रमाणयुक्त नहीं होते—यह विषय विद्वानोंको अज्ञात नहीं है। शिष्ट पुरुष जिन निर्दोष प्रमाणसिद्ध कर्मोंको करते हैं उन्हींका आचरण दूसरोंको करना चाहिये, निर्विशेषरूपसे सबका नहीं।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि।

—इस तैत्तिरीय श्रुतिका अनुसन्धान यहाँ करना चाहिये। यही बात मधुसूदन स्वामीने भी गीताकी टीकामें लिखी है—

शिष्टैर्धर्मबुद्धयानुष्ठीयमानस्यालौकिकव्यवहारस्यैव तदाचारत्वात्, अन्यथा निष्ठीवनादेरप्यनुष्ठानप्रसङ्गात्।

'शिष्टपुरुष धर्मबुद्धिसे जो अनुष्ठान करते हैं, वही सदाचार समझा जाता है, न कि निष्ठीवन (थूकना) आदि उनके द्वारा किये जानेवाले लौकिक कर्म।' तथा शिष्टपुरुष धर्मकी भ्रान्तिसे जो अनुष्ठान करते हैं वह भी भ्रान्तिरूप होनेके कारण शिष्टाचारमें नहीं गिना जा सकता। अतः पूर्वकालके पुरुषोंके जिस किसी काममें भी शिष्टाचारकी कल्पना करना अथवा शिष्टाचारके वेषमें अधर्माचरणको धर्म कल्पित करना विवेकयुक्त नहीं है, बल्कि महान् अनर्थका कारण है। इसे भावुक और श्रेयःसाधनकी इच्छावाले पुरुषको बिल्कुल ही सत्य मानना चाहिये।

भूमण्डलमें, सर्वोत्तम हिमगिरिशिखर-देशमें, सुरसरित्-प्रवाहसे पवित्र उत्तर खण्डमें अहिंसानिधि महर्षियोंकी प्रियतर आवासभूमि थी। आजकल भी वहाँ बहुत-से अहिंसक परमहंस महात्मा विचरण करते तथा निवास करते हैं, तथापि अत्यन्त शोकका विषय है कि वहाँ भी देवताके समीप बलिदान आदिका घृणित आचरण प्रचलित है—यह अत्यन्त लज्जाकी बात है। हाय! अज, महिष आदि निर्दोष पशुओंके मरणक्रन्दनसे तथा उनके कण्ठसे निकली हुई रक्तधारासे पवित्रतम उत्तराखण्डकी वसुन्धराके उत्तरकाशी आदि पुण्यक्षेत्र अत्यन्त कलुषित किये जाते हैं, इसे अनेकों बार देखकर वहाँ रहते समय मेरे मनमें भी अत्यन्त ही पीड़ा होती थी। वहाँके लोगोंके लिये इसके निषेधका उपदेश भी ऊसर भूमिमें वृष्टिके समान कुछ भी लाभदायक नहीं होता। दुःखका विषय है कि यह बुद्धिहीन व्यापार वहाँ दृढ़मूल हो गया है। तथापि उस प्रान्तमें 'कल्याण' के बहुतेरे पाठक हैं, अतः इस विषयके विविध सुन्दर विचारोंसे युक्त श्री-शक्ति-अङ्क पाठकोंके द्वारा वहाँ रहनेवाले पुरुषोंके मनमें सद्बुद्धि का उदय करे, जिससे मूढ़परम्परासे प्रचलित इस घृणित कर्ममें लोगोंको घृणा उत्पन्न हो, और शीघ्र ही वहाँके मांसरक्तभोजी देवता तादृश तामस अन्नोंको त्यागकर फल-मूल-तण्डुल-दुग्धादि सात्त्विक अन्नोंकी ओर प्रवृत्त होवें—ऐसी आशा है।

ॐ श्रीमूलशक्त्यै नमः

शिव और शक्ति

(लेखक—स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती)

शिव, जो शक्तिमान् हैं, उनसे शक्ति भिन्न नहीं है। अधिष्ठानसे अध्यस्तकी सत्ता भिन्न नहीं होती, वह तो अधिष्ठानरूप ही है। शिव एकरस, अपरिणामी हैं और शक्ति परिणामी है। यह जगत् परिणामी शक्तिका ही विलास है। शिवसे शक्तिका आविर्भाव होते ही तीनों लोक और चौदहों भुवन उत्पन्न होते हैं और शक्तिका तिरोभाव होते ही जगत्का अत्यन्त अभाव हो जाता है। वेदान्तसे नीचेके श्लोकमें इसी बातको स्पष्ट किया गया है—

शक्तिजातं हि संसारं तस्मिन् सति जगत्त्रयम्।
तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः॥

अर्थात् शक्तिका कार्य यह संसार है। शक्तिके आविर्भावसे तीनों ही जगत् उत्पन्न होते हैं और शक्तिका तिरोभाव होनेपर जगत्का अत्यन्त अभाव हो जाता है। इस कारण उसी (शक्ति)का विचार करना चाहिये।

चित्त-विलास प्रपंच यह, चिद्-विवर्त चिद्रूप।
ऐसी जाकी दृष्टि है, सो विद्वान अनूप॥

शिवकी आद्यस्पन्दरूपा अव्यक्त शक्ति भक्तोंके भावनानुसार अनेक व्यक्त (प्रकट) रूपोंको धारण करती है; जैसे दुर्गा, महाकाली, राधा, ललिता, त्रिपुरा, महालक्ष्मी, महासरस्वती, अन्नपूर्णा इत्यादि। क्रियाके अनुसार

शक्तिके अनेक नाम हैं; चूँकि शिवसे इसकी भिन्न सत्ता नहीं है, इस कारण इसको शिवकी शक्ति कहते हैं; संसारको उत्पन्न करनेकी विशेष क्रिया इसमें है, इस कारण इसे प्रकृति कहते हैं; यह इन्द्रजालके समान अनेक पदार्थोंको क्षणभरमें बना देती है, इस कारण इसे अघटन-घटनापटीयसी माया भी कहते हैं; जहाँ कोई पदार्थ विद्यमान नहीं है वहाँ यह क्षणभरमें अनेक पदार्थ विद्यमान कर देती है, इस कारण इसे अविद्या भी कहते हैं।

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति-
रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥

भगवान् शङ्कराचार्यजी कहते हैं कि 'परमात्माकी अव्यक्त नामवाली शक्ति, जिसने इस समस्त संसारको उत्पन्न किया है, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका और जगत्‌रूपी कार्यके परे है। कार्यरूप जगत्‌को देखकर ही शक्तिरूपी मायाकी सिद्धि होती है।' बालक माताके उदरमें नौ मास रहता है; पिता तो एक क्षणमें वीर्य प्रदान कर देता है। दीर्घकालतक उदरमें तो माता ही रखती है। इस लौकिक दृष्टान्तके समान ही तीनों लोक, चौदहों भुवन और समस्त दृश्यमान संसार शक्तिरूपी माताके उदरमें स्थित है, वही हमारा पालन-पोषण करती है। यही बात श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गीताके निम्नलिखित श्लोकोंमें कही है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥
यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि 'हे अर्जुन ! मेरी शक्तिरूपी योनि गर्भाधानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतनरूप बीज स्थापित करता हूँ। इन दोनोंके संयोगसे संसारकी उत्पत्ति होती है। अनेक प्रकारकी योनियोंमें जितने शरीरादि आकारवाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें त्रिगुणमयी शक्ति तो गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजका स्थापन करनेवाला पिता हूँ। मुझ अधिष्ठानके सकाशसे मेरी शक्ति चराचर संसारको उत्पन्न करती है; इसी कारण यह संसार जन्ममरणरूपी चक्रमें घूमता रहता है। जितना स्थावर-जङ्गम संसार दीख पड़ता है, वह सब क्षेत्रज्ञ और क्षेत्रके संयोगसे उत्पन्न हुआ है।' विद्यारण्य मुनि भी यही बात कहते हैं—

न केवलं ब्रह्मैव जगत्कारणं, निर्विकारत्वात् । नापि केवलं शक्तिः कारणं स्वातन्त्र्याभावात् । तस्मादुभयं मिलित्वैव जगत्कारणं भवति ।

'केवल ब्रह्म जगत्‌का कारण नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है; और केवल शक्ति भी जगत्‌का कारण नहीं, क्योंकि उसमें स्वतन्त्रताका अभाव है। इस कारण ब्रह्म और शक्ति–दोनोंके संयोगसे संसार उत्पन्न होता है।' उपनिषद् भी शक्तिकी महिमासे भरे पड़े हैं। नीचेके कुछ मन्त्रोंसे यह स्पष्ट हो जायगा। लेख बढ़ जानेके भयसे अधिक प्रमाण नहीं दिये जाते।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥

अर्थात् 'मायाको प्रकृति जानो; मायाका अधिपति और प्रेरक महेश्वर है। महेश्वरके अवयवरूप भूतोंसे यह जगत् भरा पड़ा है। महेश्वर और मायाको व्यापक समझो। ब्रह्मका न कोई कार्य है, न करण, न उसके समान कोई है, न कोई अधिक है। परमात्माकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, शक्तिमें ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक है। मुनियोंने ध्यानके बलसे अपने ही गुणोंसे निगूढ़ आत्मशक्ति (प्रकृति) और ईश्वरको देखा, जो कालस्वभावादि कारणोंके भी कारणरूपमें एक होकर अधिष्ठित है।' मुनियोंने योगबलसे यह सिद्धान्त निकाला कि इस जगत्‌के कारण शिव और शक्ति दोनों हैं।

दुर्गासप्तशतीमें भी शिवकी अव्यक्ता स्पन्दरूपा शक्तिदेवीने अनेक रूप धारण किये हैं। पाँचवें अध्यायमें शक्तिरूपी देवीकी विलक्षण शक्तियोंका खूब स्पष्ट वर्णन आया है। जैसे—

यह शिवकी शक्ति अव्यक्तरूपसे दृश्यमात्र जगत्में और सब शरीरोंमें विष्णुकी माया, चेतना, बुद्धि, शक्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति आदि नामोंसे आप ही स्थित है, दृश्यमान जगत्की और सब इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री है और दृश्य-अदृश्य जगत् मात्रमें व्याप्त है और चेतनारूप है। ऐसी जगन्माता देवीको बारंबार प्रणाम है। यही शक्तिरूपी देवी अव्यक्तरूपसे ऊपरके नामोंको धारण करती है और भक्तोंकी भावनाके अनुसार अव्यक्त होकर भी व्यक्त (प्रकट) रूपोंको धारण करती है। दुर्गा, महाकाली, राधा, अन्नपूर्णा, महासरस्वती, महालक्ष्मी, तारा इत्यादि अनेक रूपोंको धारण करती है। देवीमें अनन्त सामर्थ्य है। जैसे बीजसे अङ्कुर भिन्न नहीं है, वैसे ही शक्तिमान्से शक्ति भिन्न नहीं है; सूर्यकी किरणें जैसे सूर्यसे भिन्न नहीं, वैसे ही शिवसे शक्ति भिन्न नहीं। सूर्यकी किरणोंका आश्रय लेकर हम सूर्यमें लीन हो सकते हैं, वैसे ही शक्तिकी उपासनारूपी आश्रय लेकर हम ब्रह्ममें लीन हो सकते हैं; सविकल्प समाधिका आश्रय लेकर हम निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लेते हैं। सविकल्प समाधि साधनरूप है, निर्विकल्प उसका फल है; वैसे ही शक्तिकी उपासना साधनरूप है, ब्रह्ममें लीन होना उसका फल है। अव्यक्तरूपा शक्ति सब शरीरोंमें कुलकुण्डलिनीके नामसे स्थित है, वह सब इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री है। योगी लोग कुण्डलिनीकी उपासना करके उसको पूर्णतया जाग्रत करते हैं। कुण्डलिनीके जाग्रत् होनेपर सम्यक् ब्रह्मज्ञान करामलकवत् हो जाता है और साधक संसाररूपी जालसे छूटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अगर सब साधकलोग कुण्डलिनी शक्तिकी उपासना करें तो पृथिवीभरमें मत-मतान्तर रहें ही नहीं। घेरण्डसंहितामें शक्तिकी उपासना करनेकी जरूरत बतलायी गयी है।

मूलाधारचक्रमें कुण्डलिनीरूप परमात्माकी शक्ति साढ़े तीन लपेटे लेकर सर्पाकारमें सुप्त है। उसको जबतक जाग्रत नहीं किया जाता तबतक मनुष्यका ज्ञान पशुवत् भ्रमात्मक रहता है, सम्यक् ज्ञान होता ही नहीं, चाहे योगके दूसरे करोड़ों साधन क्यों न किये जायँ। योगमें सर्वोत्तम साधन कुण्डलिनीको जाग्रत करना ही है। जैसे कुंजीसे ताला खुल जाता है, वैसे ही कुण्डलिनीको जाग्रत करनेसे ब्रह्मद्वार खुलकर ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है और मुक्ति हो जाती है। इसी कारण शक्तिकी उपासनाकी अत्यन्त आवश्यकता है। मुमुक्षुजनोंको ब्रह्म-साक्षात्कारार्थ शक्तिकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। सच्ची भावनावालोंको देवी मायाके पदार्थ भी अवश्यमेव देती है।
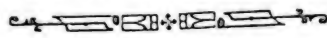
शक्तिसाधना

(लेखक-महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०)

जो विचारशील हैं तथा साधनराज्यमें प्रविष्ट हैं, वे जानते हैं कि साधनामात्र ही शक्तिकी आराधना है। क्योंकि किसी भी मनुष्यकी अन्तर्दृष्टिके सम्मुख चाहे कैसा भी आदर्श लक्ष्यरूपमें प्रतिष्ठित क्यों न हो, यदि वह शक्ति सञ्चय करते हुए अपनी दुर्बलताका परिहार न कर सके तो सम्यक्रूपसे उस आदर्शकी उपलब्धि कर उसे आत्मस्वरूपमें परिणत करनेमें वह समर्थ न होगा। समस्त सिद्धियाँ शक्तिसापेक्ष हैं। अतएव साधकको चाहे जैसी सिद्धि अभीष्ट हो, उसका आत्मशक्तिके अनुशीलन बिना प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

इस प्रकार विचार करनेसे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा अन्य किसी भी देवताकी उपासना मूलतः शक्तिकी ही उपासना है। इस प्रकारसे वैष्णवादि समस्त सम्प्रदायोंकी सारी साधनाएँ शक्ति-साधनाके अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात् भावसे भी शक्तिकी साधना हो सकती है। हम इस प्रबन्धमें इस साक्षात् शक्तिसाधनाके सम्बन्धमें ही संक्षेपमें कुछ आलोचना करेंगे।

हम इन्द्रियद्वारमें रूप, रसादि जिस पाञ्चभौतिक स्थूल जगत्का अनुभव करते हैं, वह इन्द्रियोंकी उपशान्त अवस्थामें तद्रूपमें वर्तमान नहीं रहता। वस्तुतः एक तरहसे बाह्य जगत् इन्द्रियोंका ही बहिर्विलासमात्र है। चक्षुसे ही रूपका विकास होता है, तथा चक्षु ही पुनः उस रूपका दर्शन करता है। समष्टिचक्षु रूपका स्रष्टा है और व्यष्टि-चक्षु उसका भोक्ता है। इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। अतएव समष्टिभावापन्न पञ्चेन्द्रियसे भौतिक जगत्का विकास होता है तथा व्यष्टिगत

पञ्चेन्द्रिय उस जगत्का सम्भोग करती हैं। इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके मूल स्थानमें लीन कर सकनेसे एक ओर जहाँ बाह्य जगत्का लोप हो जाता है, उसी प्रकार दूसरी ओर इन्द्रियोंके अभावके कारण उनकी सम्भोगसम्भावना भी निवृत्त हो जाती है। यदि पहलेसे ही चित्तक्षेत्रमें ज्ञानका सञ्चार हो तो इस अवस्थामें विशुद्ध अन्तःकरणका आविर्भाव होता है, तथा साथ-ही-साथ अन्तर्जगत्का स्फुरण होता है। बाह्य जगत्की भाँति अन्तर्जगत्में भी समष्टिभूत अन्तःकरण स्रष्टा है, तथा व्यष्टि-अन्तःकरण उसका भोक्ता है। जिसे अन्तर्जगत् या अतिवाहिक जगत्के नामसे वर्णन करते हैं, वह वस्तुतः विशुद्ध अन्तःकरणका बाह्य विकासमात्र है। बाह्य इन्द्रियोंकी भाँति अन्तःकरण भी निरुद्धवृत्तिक अवस्थाको प्राप्त होनेपर अन्तर्जगत्का लोप हो जाता है। तब अतिवाहिक जगत्का कोई भोक्ता भी नहीं रह जाता। इसके पश्चात् जीव शुद्ध कारणभूमिमें स्थान पाता है। तब समष्टिकारणबिन्दुका स्फुरणात्मक कारण जगत् ही दृश्य होता है और व्यष्टिकारणबिन्दु तदात्मकभावमें उस दृश्यका दर्शन करता है। सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूल ग्रन्थिको भेद कर पाता है तो वह मूल अविद्याके विलासस्वरूप इस मिथ्या प्रपञ्चके पाशजालसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है।

उपर्युक्त आलोचनासे यह प्रतीत होता है कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् तदनुरूप शक्तिके ही विकासमात्र हैं। शक्तिके इन तीन विभागों अर्थात् आत्मा, देवता तथा भूतरूपमें शक्तिकी तीन प्रकारकी अवस्थितिका अनुसरण करते हुए उसका परिणामस्वरूप जगत् भी कारणादि त्रिविध रूपमें प्रकटित होता है। शक्तिके बहिर्मुख होकर घनीभाव तथा स्थूलत्वको प्राप्त करनेपर एक ओर जहाँ भौतिक तत्त्वोंका आविर्भाव होता है, दूसरी ओर उसी प्रकार वह क्रमशः विरल होते-होते अन्तःसङ्कोच अवस्थाको प्राप्तकर 'आत्मा' अथवा 'बिन्दु' पदवाच्य हो जाती है। अतएव तथाकथित आत्मा, देवता और भूत एक ही आद्या-शक्तिकी त्रिविध अवस्थामात्र हैं। वैसे ही कारण, लिङ्ग तथा स्थूल—यह त्रिविध जगत् भी एक ही मूल सत्ताके तीन प्रकारके परिणामके सिवा और कुछ नहीं है। शक्तिके साथ सत्ताका क्या सम्बन्ध है, सम्प्रति हम उसकी आलोचना नहीं करेंगे। परन्तु यह स्मरण रखना होगा कि दोनोंके वैषम्यसे ही जगत्की सृष्टि तथा सम्भोग, अर्थात् ईश्वरभाव और जीवभावका उन्मेष होता है। किन्तु जब साम्य-अवस्था उदय होती है तब एक ओर जहाँ जीव और ईश्वरका पारस्परिक भेद तिरोहित हो जाता है उसी प्रकार दूसरी ओर सृष्टि और दृष्टि एकार्थबोधक व्यापार हो जाते हैं। तब भूमिभेदके अनुसार साम्यकी उपलब्धि होते-होते, त्रिविध साम्यके बाद स्वाभाविक नियमसे परमाद्वैत अथवा महासाम्यका आविर्भाव होता है। जो शक्ति और सत्ता स्थूलभूमिमें आत्मप्रकाश किये हुए हैं, उनका साम्य ही प्रथम साम्य है। उसी प्रकार सूक्ष्म और कारण जगत्के सम्पर्कमें रहनेवाली शक्ति और सत्ताका साम्य क्रमशः द्वितीय और तृतीय साम्यके नामसे पुकारा जाता है। यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेदका परिहार कर जिस महासाम्यमें एकत्व लाभ करता है वही परमाद्वैत या ब्रह्मतत्त्व है। महाशक्तिके उद्बोधनके बिना इस अद्वैततत्त्वमें स्थिति लाभ करना तो दूर रहा, प्रवेशाधिकार पानेकी भी सम्भावना नहीं है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि भूमिभेदसे प्रत्येक स्तरमें शक्तिके उद्बोधनकी आवश्यकता है। नहीं तो तत्तत् भूमिकी सत्ता अचेतनभावको त्यागकर स्वयं-प्रकाश चैतन्यके साथ एकीभूत नहीं हो सकती। क्योंकि अनुद्बुद्ध शक्ति सत्ताकी प्रकाशक नहीं होती और अप्रकाश-मान सत्ता कभी चिद्भावापन्न नहीं हो सकती। वह असत्कल्प एवं जडताका ही नामान्तरमात्र होती है।

उपर्युक्त विश्लेषणसे समझा जा सकता है कि शक्तिकी आराधनाके बिना एक ओर जिस प्रकार स्थूलभावको आयत्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दूसरी ओर आत्म-सत्ताकी भी उपलब्धि नहीं हो सकती। पृथ्वीमें जितने प्रकारके धर्मसम्प्रदाय हैं, जानमें हो या अनजानमें अथवा साक्षात्रूपसे हो या पारम्परिकभावसे हो, शक्तिकी आराधना किये बिना किसीका काम नहीं चलता।

यह अनन्त वैचित्र्यमय विश्व, जिसे हम निरन्तर नाना प्रकारसे अनुभव करते हैं, वस्तुतः शक्तिके आत्मप्रकाशके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सुसूक्ष्म कारण-जगत्, लिङ्गात्मक सूक्ष्म-जगत् और इन्द्रियगोचर स्थूल-जगत् शक्तिके ही विभिन्न विकासमात्र हैं। इस विश्वके मूलमें जो पूर्ण सत्ता पारमार्थिक रूपमें वर्तमान है वही शक्तिका परम रूप है। विशुद्ध चैतन्यके नामसे वर्णन करनेपर भी इसका ठीक परिचय नहीं दिया जा सकता, सच्चिदानन्द शब्दसे वर्णन करनेपर भी इसका ठीक-ठीक निर्देश नहीं किया जा सकता। इस वाणी और मनके अगोचर अनिर्देश्य अवर्णनीय परमार्थसत्ताको ही शास्त्रमें 'परम पद' कहा गया है। यह सत् है

या असत्–यह विषय लौकिक विचारके विषयीभूत न होनेपर भी विचारदृष्टिसे देखनेपर आलोचनाप्रसङ्गसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसमें प्रकाश और विमर्श– ये दोनों अंश अविनाभूतरूपमें वर्तमान हैं। प्रकाशके बिना जिस प्रकार विमर्श असम्भव है, उसी प्रकार विमर्शको त्याग कर प्रकाशकी स्थिति भी सम्भव नहीं है। यह शिवशक्ति-स्वरूप प्रकाश और विमर्शका नित्य सम्बन्ध ही चैतन्यरूपसे महापुरुषोंकी अनुभूतिमें आता है तथा शास्त्रमें प्रचारित होता है। परन्तु चैतन्य होनेपर भी वह प्रकाश और विमर्शकी साम्यावस्थामें अव्यक्त ही रह जाता है। इसी अवस्थाका दूसरा नाम 'परम पद' है, इसमें सन्देह नहीं। इस साम्यावस्थामें महाशक्तिस्वरूपा अनादिशक्ति परम शिवके साथ सामरस्य भावापन्न होकर अद्वयरूपमें विराजमान रहती है। स्वरूपदृष्टिसे इस अवस्थाको एक प्रकारसे परब्रह्म-भावका ही नामान्तर कहा जा सकता है, परन्तु इसमें इसके स्वरूपभूत स्वातन्त्र्यके नित्य वर्तमान रहनेके कारण यह ब्रह्म-तत्त्वसे विलक्षण ही है। महाशक्तिस्वरूप इस परम पदकी जो बात यहाँ कही गयी है उससे कोई भ्रमवश यह न समझें कि यही निष्कल अथवा पूर्णकल परमेश्वर है। क्योंकि निष्कल, निष्कल सकल तथा स-कल—ये विश्वकी ही तीन अवस्थाएँ हैं। परन्तु महाशक्ति सर्वातीत होनेके कारण विश्वात्मक होते हुए भी वस्तुतः विश्वोत्तीर्ण है। इस विश्वातीत परम पदसे इसीके स्वातन्त्र्यस्वरूप आत्मविलाससे नित्य साम्यके भग्न न होते हुए भी एक प्रकारकी भग्नवत् अवस्थाका उद्भव होता है, तथा इस वैषम्यके फलस्वरूप गुणप्रधान भावमें छत्तीस तत्त्वसमन्वित विश्वका आविर्भाव होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अखण्ड परमार्थ-स्वरूप शिवशक्तिसे अभिन्न रूप होते हुए भी स्वातन्त्र्यजनित विक्षोभके कारण उसके द्वारा अथवा उसीमें भेदमय विश्व-प्रपञ्चका उदय होता है। अतएव त्रिविधविभागविशिष्ट समस्त विश्व मूलतः शक्तिका ही विकास है, यह सुनिश्चित है।

जब वह पराशक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्वको अर्थात् प्रकाशको देखनेके लिये उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति और शिव साम्यभावापन्न होकर एक बिन्दुरूपमें परिणत होते हैं, जिससे पारमार्थिक चैतन्य प्रतिफलित होकर ज्योतिर्लिङ्गरूपमें प्रकटित होता है। यही बिन्दु तान्त्रिक परिभाषामें 'कामरूपपीठ' के नामसे प्रसिद्ध है। और इस पीठमें अभिव्यक्त चैतन्य स्वयम्भूलिङ्गके नामसे परिचित है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह शक्तिपीठ एक मात्रा शक्ति-अंश और एक मात्रा शिवांशको समभावमें लेकर संघटित होती है। शक्ति और शिवके इस अंशद्वयको शान्ताशक्ति और अम्बिकाशक्तिके नामसे आचार्यगण वर्णन करते हैं। इस पीठमें महाशक्तिका आत्म-प्रकाश परावाक्रूपमें प्रख्यात है। जिन्होंने तन्त्रानुमोदित योगसाधनका यथाविधि अभ्यास किया है वे जानते हैं कि यहींसे शब्दराज्यकी सूचना होती है। यही प्रणवका परम रूप अथवा वेदका स्वरूप है। इसके पश्चात् शक्तिके क्रमिक विकासके होते-होते शान्ताशक्ति 'इच्छा' रूपमें परिणत होती है, तथा शिवांश अम्बिकाशक्ति भी 'वामा' रूपमें आविर्भूत होती है। इन दोनों शक्तियोंके पारस्परिक वैषम्यका परिहार होनेपर जिस अद्वय सामरस्यमय बिन्दुका आविर्भाव होता है, उससे तदनुरूप चैतन्यका स्फुरण होता है। इस बिन्दुको 'पूर्णगिरिपीठ' एवं इस चिद्विकासको बाणलिङ्गके नामसे समझना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टिसे यह 'पश्यन्ती वाक्' की अवस्था है। पराशक्ति शब्दकी प्रथम भूमिमें अथवा कामरूप पीठमें आत्मगर्भस्थ विश्वको नित्य वर्तमानरूपमें देखती है। यहाँ अतीत और अनागतरूप खण्डकालकी सत्ता नहीं है, तथा दूर और निकटका व्यवधान भी नहीं है। कार्य और कारणका कठोर नियम यहाँ अपरिज्ञात है। इस नित्य मण्डलमें किसी प्रकारका आवरण नहीं है और न किसी प्रकारका विक्षोभ या चाञ्चल्य देखा जाता है। यह शान्तिमय अवस्था है। इसके बाद इच्छाशक्तिके उन्मेषके साथ-साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है। जिसे नित्यमण्डल कहा गया है, वह शक्ति-गर्भस्थ बीजभूत विश्व है। इच्छाके प्रभावसे जब उसकी गर्भके एक देशसे विसृष्टि होती है, तभी उसे सृष्टि नाम प्राप्त होता है। इस भूमिसे ही कालका प्रभाव प्रारम्भ होनेके कारण यह सृष्टिक्रिया एक साथ न होकर क्रमा-नुसार होती है। इसी प्रकार देश और कार्यकारणभावका स्फुरण भी यहींसे समझना चाहिये। इसकी परावस्थामें इच्छाशक्तिके उपराम होनेपर ज्ञानशक्तिका उदय होता है, तथा वह शिवांश ज्येष्ठाशक्तिके साथ अद्वैतभावमें मिलित होकर 'जालन्धरपीठ' रूप सामरस्य बिन्दुकी सृष्टि करता है। इस बिन्दुसे अभिव्यक्त चैतन्य इतरलिङ्ग नामसे प्रसिद्ध है। शक्तिके इस स्तरमें 'मध्यमा वाक्' आविर्भूत होती है, और इसके प्रभावसे सृष्ट जगत् तत्तद्भावमें

स्थित होता है। जब स्थितिशक्ति क्षीण हो जाती है, तब स्वभावके नियमसे ही अन्तर्मुख आकर्षणकी प्रबलता होनेके कारण संहारशक्तिकी क्रिया आरम्भ होती है। तब ज्ञान-शक्ति क्रियाशक्तिके रूपमें परिणत होकर शिवांश रौद्री शक्तिके साथ साम्यभावको प्राप्त हो जाती है। और उसके फलस्वरूप जिस अद्वैत बिन्दुका आविर्भाव होता है, उसे 'उड्डीयानपीठ' कहते हैं। इस बिन्दुसे चित्शक्ति महा तेजःसम्पन्न परलिङ्गरूपमें अभिव्यक्त होती है। यह शब्दकी 'वैखरी' नामक चतुर्थभूमि है। हम जिस संहारशील क्षयधर्मक जगत्का अनुभव करते हैं वह इस वैखरी शब्द-की ही विभूति है।

पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, शब्दकी जिन तीन अवस्थाओंके विषयमें कहा गया है वही प्रणवके 'अ'कार, 'उ'कार और 'म'कार हैं, अथवा ऋक्, यजु और साम—इस वेदत्रयरूपमें ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रतिभात होती हैं। त्रिलोक, त्रिदेवता, त्रिकाल प्रभृति अखण्ड परावाक् अथवा तुरीय-वाक्का ही त्रिविध परिणाममात्र हैं। बिन्दुगर्भित जो महा-त्रिकोण समस्त विश्वब्रह्माण्डके मूलरूपमें शास्त्रोंमें सर्वत्र व्याख्यात हुआ है वह इसी चतुर्विध शब्दके सम्बन्धसे प्रकटित होता है। इस त्रिकोणकी तीन रेखाएँ पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीरूप तीन प्रकारके शब्द; सृष्टि, स्थिति और संहाररूप तीन प्रकारके व्यापार; वामा, ज्येष्ठा और रौद्री किंवा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप तीन प्रकारके शिवांश; अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप तीन शक्त्यंशके प्रतिनिधिमात्र हैं। त्रिकोणका मध्य बिन्दु परावाक् अथवा अम्बिका और शान्ता इन दो शिव-शक्त्यंशका साम्यभावापन्न स्वरूप है। यद्यपि बिन्दुमें शिव और शक्ति दोनोंका ही अंश है, एवं त्रिकोणमें भी वही है, तथापि बिन्दु प्रधानतः 'शिव' रूपमें, एवं इसी प्रकार त्रिकोण भी 'शक्ति' वा 'योनि' रूपमें परिणत हो जाता है। इस बिन्दुसमन्वित त्रिकोणमण्डलसे समस्त बाह्य जगत्का आविर्भाव होता है।

आद्याशक्ति तत्त्वातीत होते हुए भी सर्वतत्त्वमयी और प्रपञ्चरूपा है। वह नित्या, परमानन्दस्वरूपिणी तथा चराचर जगत्की बीजस्वरूपा है। वह प्रकाशात्मक शिवके स्वरूप-ज्ञानका उद्बोधक दर्पणस्वरूप है। अहंज्ञान ही शिवका स्वरूपज्ञान है। आद्याशक्तिका आश्रय लिये बिना इस आत्मज्ञानका प्रकाश नहीं हो सकता। आगमविद्‌गण कहते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने सामने स्थित स्वच्छ दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर उस प्रतिबिम्बको 'अहं' रूपमें पहचान लेता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी अधीन स्वकीया शक्तिको देखकर अपने स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं। आत्मशक्तिका दर्शन, एवं आत्मस्वरूपकी उपलब्धि और आस्वादन एक ही वस्तु है। यही पूर्णाहन्ता चमत्कार अथवा सच्चिदानन्दकी घनीभूत अभिव्यक्ति है। 'मैं पूर्ण हूँ'—यह ज्ञान ही नित्य सिद्ध आत्मज्ञानका प्रकृत स्वरूप है। वस्तुका सामीप्य सम्बन्ध न होनेपर जैसे दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण नहीं कर सकता अथवा वस्तुका सान्निध्य होनेपर भी प्रकाशके अभावसे दर्पणमें स्थित प्रतिबिम्ब जैसे प्रतिबिम्बरूपमें नहीं भासता, उसी प्रकार पराशक्ति भी प्रकाश-स्वरूप परम शिवके सान्निध्यके बिना अपने अन्तःस्थित विश्वप्रपञ्चको प्रकटित करनेमें समर्थ नहीं होती। इसी कारण शुद्धशिव अथवा शुद्धशक्ति परस्पर सम्बन्धरहित होकर अकेले जगत्के निर्माणका कार्य नहीं कर सकते। दोनोंकी आपेक्षिक सहकारिताके बिना सृष्टिकार्य असम्भव है। सारे तत्त्व इन दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धसे ही उद्भूत होते हैं। इससे कोई यह न समझे कि शिव और शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श परस्पर विभिन्न और स्वतन्त्र पदार्थ हैं।

शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।

—शास्त्रका यही अन्तिम सिद्धान्त है। तथापि संहारकार्यमें शिवका और सृष्टिकार्यमें शक्तिका प्राधान्य स्वीकार करना होगा। पराशक्ति स्वतन्त्र होनेके कारण परावाक् प्रभृति क्रमका अवलम्बन कर विश्वसृष्टिका कार्य सम्पादन करती है और तदनन्तर सृष्ट विश्वके केन्द्रस्थानमें अवस्थित होकर उसका नियमन करती है। यही स्वातन्त्र्य उपर्युक्त रीतिसे क्रमशः इच्छा, ज्ञान और क्रियाका आकार प्राप्तकर वैचित्र्यका आविर्भाव करता है और विश्वरूप धारण करता है। शिव तटस्थ और उदासीन रहकर निरपेक्ष साक्षिरूपमें आत्मशक्तिकी यह लीला देखा करते हैं। यह नाना तत्त्वमय विश्वसृष्टि ही पराशक्तिका स्फुरण है। अतएव शक्तिकी एक अव्यक्त वा प्रलीन अवस्था है जहाँ शक्ति शिवके साथ एकाकार होकर शिवरूपमें ही विराजमान रहती है, तथा उसकी एक अभिव्यक्त अवस्था भी है जिसमें उसमें और उसके द्वारा तत्त्वमय विश्व या देवताचक्र एक साथ ही एवं क्रमशः आविर्भूत होते हैं। पराशक्तिद्वारा अपने स्फुरणका दर्शन और विश्वका आविर्भाव एक ही बात

है। क्योंकि इस आदिम भूमिमें दृष्टि और सृष्टि समानार्थक हैं। परन्तु इस क्रमिक आविर्भावकी एक प्रणाली है।

सृष्टिके आदिमें अनादिकालसे जो अव्यक्त, पूर्ण, निराकार और शून्यस्वरूप वस्तु विराजमान है वह तत्त्वातीत, प्रपञ्चातीत तथा व्यवहारपथके भी अतीत है। वही शाक्तोंकी महाशक्ति हैं और शैवोंके परम शिव हैं। वाणी और मनके अगोचर होनेके कारण ही इसे अनुत्तर कहा जाता है। वस्तुतः इसका वर्णन न तो कोई कभी कर सका है और न आगे कर सकनेकी ही सम्भावना है। इसे विशुद्ध प्रकाश कहें तो अन्तर्लीन विमर्शके कारण यह अप्रकाशमान है। अतएव इसमें स्वयंप्रकाशभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार इसे विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्रकाशहीन विमर्श असत्कल्प है। इस तत्त्वातीत और अनुत्तर अवस्थाके लिये शास्त्रमें वाचकरूपमें आदिवर्ण 'अ' कारका प्रयोग होता है। इसके बाद दोनोंकी सामरस्य अवस्था है, 'अ' काररूप प्रकाशके साथ 'ह' काररूप विमर्शका अर्थात् अग्निके साथ सोमका साम्यभाव ही 'काम' अथवा 'रवि' नामसे प्रसिद्ध है। शास्त्रमें जिस अग्नीषोमात्मक बिन्दुका उल्लेख पाया जाता है, वह भी यही है। शिव ही 'अ' और शक्ति ही 'ह' है—बिन्दुरूपमें यही 'अहं' अथवा पूर्णाहन्ता हैं। साम्यभङ्ग होनेपर यह बिन्दु प्रस्पन्दित होकर शुक्ल और रक्त बिन्दुरूपमें आविर्भूत होता है। इस प्रस्पन्दन-कार्यसे जो अभिव्यक्त होता है उसे ही शास्त्रमें संवित् अथवा चैतन्यके नामसे वर्णन किया जाता है। इसीका दूसरा नाम चित्कला है। अग्निके सम्पर्कसे घृत जिस प्रकार गलकर धारारूपमें बहने लगता है, उसी प्रकार प्रकाशात्मक शिवके सम्पर्कसे विमर्शरूपा पराशक्ति द्रुत होती है तथा उससे एक परमानन्दमय अमृतकी धाराका स्राव होता है। यही धारा एक प्रकारसे उपर्युक्त चित्कला एवं दूसरे प्रकारसे ब्रह्मानन्दका स्वरूप है। निष्कल चैतन्यमें कलाका आरोप सम्भवनीय नहीं है। अतएव यह चित्कला महाशक्तिके स्वातन्त्र्यके उन्मेषके कारण शिवशक्तिके आपेक्षिक वैषम्यसे उत्पन्न शक्तिभावके प्राधान्यसे प्रकाशांश और विमर्शांशके घनीभूत संश्लेषणसे उद्भूत होती है। शुद्ध प्रकाश किंवा शुद्ध विमर्श बिन्दुपद-वाच्य नहीं है। जिस विमर्शशक्तिमें निखिल प्रपञ्च विलीन रहता है, उसके संसर्गसे अनुत्तर अक्षरस्वरूप प्रकाश बिन्दुरूप धारण करता है। यह संसर्ग विमर्शशक्तिमें प्रकाशके अनुप्रवेशके सिवा और कुछ नहीं है। इस बिन्दुका नामान्तर प्रकाशबिन्दु है, जो विमर्शशक्तिके गर्भमें स्थित रहता है। इसके पश्चात् विमर्शशक्तिके प्रकाशबिन्दुमें अनुप्रविष्ट होनेपर यह बिन्दु उच्छून हो जाता है अर्थात् पुष्टिलाभ करता है, तब उससे तेजोमय बीजस्वरूप नाद निर्गत होता है। इस नादमें समस्त तत्त्व सूक्ष्मरूपसे निहित रहते हैं। नाद निर्गत होकर त्रिकोणाकार रूप धारण करता है। यही 'अहम्' नामक बिन्दुनादात्मक प्रकाश विमर्शका शरीर है। इसमें प्रकाश शुक्लबिन्दु है और विमर्श रक्तबिन्दु है, तथा दोनोंका पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक साम्य मिश्र-बिन्दु है। इसी साम्यका दूसरा नाम परमात्मा है। इसीको 'रवि' या 'काम' के नामसे पुकारते हैं, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अग्नि और सोम इसी कामके कला-विशेष हैं। अतएव कामकला कहनेसे तीनों बिन्दुओंका बोध होता है। इन तीन बिन्दुओंका समष्टिभूत महात्रिकोण ही दिव्याक्षरस्वरूपा आद्याशक्तिका अपना रूप है। इसके मध्यमें रविबिन्दु देवीके मुखरूपमें, अग्नि और सोमबिन्दु स्तनद्वयरूपमें तथा 'ह' कारकी अर्धकला अथवा हार्धकला योनिरूपमें कल्पित होती है। यह हार्धकला अति रहस्यमय गुह्य तत्त्व है, इसका विशेष विवरण इस निबन्धमें देना अनावश्यक है। तथापि सम्प्रति जिज्ञासु साधककी तृप्तिके लिये इतना कहा जा सकता है कि शिवशक्तिके मिलनसे उत्पन्न अमृतकी धारा प्रवाहित होनेपर उससे जिस लीलारूप तरङ्गकी उत्पत्ति होती है वही तान्त्रिक परिभाषामें हार्धकलाके नामसे विख्यात है। यह जो त्रिकोणके विषयमें कहा गया है, वह पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन त्रिविध शब्दोंका परस्पर संश्लेषात्मक सम्मिलित स्वरूप है। और इसका केन्द्रस्थित बिन्दु, जिसका स्वरूप अहंरूपमें वर्णित हुआ है, वह परमातृकाका विलासक्षेत्र सदाशिवतत्त्वका स्वरूप है। मध्यबिन्दु तथा मूल त्रिकोणसे समस्त तत्त्वोंकी और पदार्थों-की उत्पत्ति होती है। चाहे किसी भी देवता या किसी भी स्तरके मूलतत्त्वका अनुसन्धान करो, उसकी चरमावस्थामें यह लिङ्गयोनिका समन्वयरूप त्रिकोणमध्यस्थ बिन्दु अथवा बिन्दुगर्भित त्रिकोण दिखलायी देगा। इसी कारण तन्त्र-शास्त्रमें जिस किसी भी देवताके चक्रका वर्णन आया है, उसमें सर्वत्र ही यह बिन्दु और त्रिकोण मूलस्थानमें साधारणभावसे वर्तमान है। चतुरस्र प्रभृति पीठका वर्णन

होनेपर भी अन्तर्दृष्टिसे देखनेपर उनके भी मूलमें त्रिकोणकी सत्ता अवस्थित देखी जाती है। त्रिकोणके विभिन्न स्पन्दनसे वासनाकी विचित्रता तथा तदनुरूप चक्रकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ निष्पन्न होती हैं। वर्तमान प्रबन्धमें उसकी आलोचना प्रासङ्गिक न होगी।

महाबिन्दु अनन्त कलाकी समष्टि होनेपर भी तत्तद् ब्रह्माण्डके अभिव्यक्त उपादानकी मात्राके अनुसार निर्दिष्ट-संख्यक कलाद्वारा गठित होकर अव्यक्त-गर्भसे अहंरूपमें आविर्भूत होता है। यह दर्शनशास्त्रका एक गभीरतम रहस्य है। वेदान्तादि निखिल शास्त्र—निष्कल अव्यक्त सत्ता किस प्रकारसे 'अहम्' रूपमें आत्मप्रकाश करता है, इसे अनादिसिद्ध स्वीकार करते हैं। किन्तु इस 'अहम्' की उत्पत्तिप्रणाली और तिरोभावप्रणाली योगसम्पत्तिसम्पन्न तान्त्रिक द्रष्टाके सिवा अन्य किसी साधकको अपरोक्षभावसे अनुभूत नहीं होती। व्यष्टि, समष्टि एवं महासमष्टि—सर्वत्र एक ही प्रणालीकी क्रिया देखनेमें आती है। कलाकी निरन्तर और क्रमिक पूर्णतासे एक ओर जिस प्रकार बिन्दुरूप पूर्णकला अथवा अहंतत्त्वका विकास होता है, उसी प्रकार उसके निरन्तर और क्रमिक क्षयसे क्रमशः शून्यस्वरूप अहंभाववर्जित आत्मभावका आविर्भाव होता है। दोनोंमें ही पूर्णकलाकी एक कला नित्य साक्षीरूपमें प्रपञ्चके लय होनेके बाद भी जाग्रत् रहती है। यही एक कला निर्वाणकलारूपमें जीवकी उन्मनी अवस्थामें रहती है। इसकी भी निवृत्ति हो जानेपर जिस निष्कल अवस्थाका विकास होता है, वही शिवशक्तितत्त्व है, वही महाबिन्दु है; अतएव यह शिवत्व सदाशिवका नाममात्र है। ब्रह्माण्डकी चरमावस्था जिस प्रकार अस्मितामें पर्यवसित होती है, जो प्रकृति और पुरुषका अवलम्बन करके आत्मलाभ करती है, उसी प्रकार समस्त विश्वके पर्यवसानमें इस विराट् अस्मिरूप अर्थात् बिन्दुस्वरूप सदाशिवतत्त्वका आविर्भाव होता है, जिसमें अधिष्ठित होकर शिवशक्तिरूप मूलवस्तु लीलामय भावमें आत्मप्रकाश करती है। अतएव बिन्दुरूप अहङ्कारके आत्मसमर्पणके बिना महाबिन्दु या पूर्णाहन्ताके स्वरूपकी उपलब्धि सम्भवनीय नहीं है। इस उपलब्धिमें पञ्चदशकलात्मक संसारी जीव, एवं षोडश अथवा निर्वाणकलात्मक मुक्त जीव, किसीकी सत्ता नहीं रहती। यह जीवभाव-विनिर्मुक्त शिवभाव है, यह पहले ही कहा जा चुका है। पाशजालसे मुक्त होकर जीव जबतक शिवरूपमें प्रकाशित नहीं होता तबतक पूर्णस्वरूपा महाशक्तिका यथार्थ सन्धान पाना बहुत ही कठिन है। शिवभाव प्राप्त होनेपर भी शवरूपमें परिणत हो शवासन परिग्रह न कर सकनेपर अपने भीतर महाशक्तिका उन्मेष नहीं प्राप्त हो सकता।

स्थूल जगत्, जिसे हम सर्वदा अनुभव करते हैं, दीपकलिकासे विकीर्ण प्रभामण्डलकी भाँति एक बिन्दुका बाह्य प्रसारण अथवा विकिरण मात्र है। इन्द्रियोंके प्रत्याहारसे इस रश्मिमालाको उपसंहृत कर सकनेपर बाह्य जगत् स्वभावतः बाह्य बिन्दुमें विलीन हो जाता है। इसी प्रकार लिङ्गात्मक आभ्यन्तरिक जगत् भी विक्षुब्ध अन्तःकरणका बाह्य विलासमात्र है तथा वह भी विलीन होनेपर तदनुरूप बिन्दुस्वरूपमें अव्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार कारणजगत् उपसंहारको प्राप्त होकर कारण-बिन्दुमें पर्यवसित होता है। यह तीनों जगत् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाके द्योतक हैं। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीनों बिन्दु ही त्रिकोणके तीन प्रान्तोंके तीन बिन्दु हैं। इन्हें 'अकार', 'उकार' और 'मकार' के नामसे भी साङ्केतिक भाषामें निर्देश किया जा सकता है। अन्तर्मुख प्रेरणासे जब ये तीनों बिन्दु रेखारूपमें भीतरकी ओर प्रवाहित होकर एक महाबिन्दुरूपमें पर्यवसान-को प्राप्त होते हैं तो वही तुरीय बिन्दु अथवा महाकारण-रूपमें अभिहित होनेके योग्य होते हैं। यही त्रिकोणका अन्तःस्थित मध्यबिन्दु है, जिसके विषयमें पहले कहा जा चुका है। इस बिन्दुमें अनादिकालसे दिव्य मिथुन शिव-शक्तिका अथवा परमपुरुष और पराप्रकृतिके शृङ्गारादि अनन्त भावोंका विलास चलता रहता है। राधाकृष्णका युगलमिलन, आदि बुद्ध एवं प्रज्ञापारमिताका युगनद्धस्वरूप, God the Father तथा God the Son का Holy Ghost के अभ्यन्तर पारस्परिक सम्मिलन इसीका द्योतन करते हैं। यह त्रिकोण ही प्रणयका स्वरूप है। सार्धत्रिवलयाकारा भुजङ्गविग्रहा सुषुप्ता कुण्डलिनी शक्ति भी इसीका नामान्तर है। कुण्डलिनीका प्रबुद्ध भाव सम्यक्‌रूपसे सिद्ध होनेपर शिव-शक्तिका भेद विगलित हो जाता है तथा साथ-ही-साथ जीवके साथ शिवका अथवा शक्तिका पार्थक्य तिरोहित हो जाता है, तब चक्र या यन्त्र अव्यक्तगर्भमें विलीन हो जाता है। बिन्दु एवं त्रिकोणका भेद दूर होनेके कारण बिन्दुका बिन्दुत्व तथा त्रिकोणका त्रिकोणत्व कुछ

भी अवशिष्ट नहीं रहता। जो रहता है उसका किसी नाम-रूपद्वारा निर्देश नहीं होता। वह सब तत्त्वोंका मूलकारण होनेपर भी किसी विशिष्ट तत्त्वके रूपमें अभिहित होनेके योग्य नहीं रहता। वह चित्, अचित् और ईश्वरका अनादिभूत आदिकारण होनेपर भी चित्, अचित् वा ईश्वर किसी भी नामसे वर्णित नहीं हो सकता।

शक्तिसाधनाका मूलसूत्र नादानुसन्धान अथवा शब्दका क्रमिक उच्चारण है। विन्दु या कुण्डलिनी विक्षुब्ध होकर नादका विकास करती है। पूर्ण परमेश्वरकी स्वातन्त्र्य-शक्तिसे बिन्दुका विक्षोभकार्य सम्पन्न होता है। इसीका दूसरा नाम गुरुकृपा या परमेश्वरका अनुग्रह है। इस चिदाकाशस्वरूप बिन्दुको दूसरी कोई निम्नभूमिस्थ शक्ति विक्षुब्ध नहीं कर सकती। कुण्डलिनी जब मूलाधारके नीचे ऊर्ध्वमुख सहस्रार अथवा अकूलकमलमें विराजमान रहती है तब वह अव्यक्त नामसे विश्वोत्तीर्ण अवस्थाके अन्तर्गत रहती है। परन्तु स्वातन्त्र्यवश उसकी अभिव्यक्ति होनेपर मूलाधारमें ही उसकी अनुभूति होती है। निराधार निरालम्ब सत्तासे यहींसे आधारभावकी सूचना होती है। क्रमशः इस शक्तिके उद्बोधनकी मात्राके अनुसार आधार-भाव पुनः क्षीण हो जाता है एवं परिशेषमें सर्वतोभावेन तिरोहित होकर ऊर्ध्वस्थ अधोमुख सहस्रदल कमलमें पुनः अकूल सागरमें निमग्न हो जाता है। अकूलसे ही शक्तिका उद्बोधन और अकूलमें ही उसका लय होता है, मध्यस्थ व्यापार केवल पूर्ण चैतन्य-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये हैं। जो अनन्त गर्भमें अचेतनभावसे अनादिकालसे सुषुप्ता-वस्थामें था वह पूर्णरूपमें प्रबुद्ध होकर चैतन्यस्वरूप-अवलम्बनपूर्वक पुनः उस अनन्त गर्भमें प्रविष्ट हो जाता है। यह एक अकूलसे दूसरे अकूलपर्यन्त जो मार्ग है वही विश्वजगत्का मूलीभूत चक्र है। वृत्ताकार मार्गमें मनुष्य जिस स्थानसे चलता है, निरन्तर सरलतापूर्वक आगे बढ़ता जाय तो वह पुनः उसी स्थानपर लौट आता है। मध्यका आवरण चक्रका स्वरूप है। इस प्रकारके चक्र कितने हैं, इसका संख्याद्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता। तथापि साधकजन अपने-अपने प्रयोजन और उद्देश्यके अनुसार उनका कुछ निर्देश कर गये हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिकाग्र और आज्ञा—ये सब अज्ञानराज्यके अन्तर्गत हैं। यद्यपि अधोवर्ती चक्रकी अपेक्षा ऊर्ध्ववर्ती चक्रमें शक्तिकी सूक्ष्मता तथा निर्मलताका विकास अधिक है तथापि ये अज्ञानकी सीमाके अन्तर्गत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ज्ञानके सञ्चारके साथ-साथ ही आज्ञाचक्रका भेदन हो जाता है, अथवा दूसरे प्रकारसे यह कह सकते हैं कि आज्ञाचक्रका भेदन करनेसे ज्ञानका उदय होता है। आज्ञाचक्रके बाद ही विन्दुस्थान है, यही विन्दु योगियोंका तृतीय नेत्र अथवा ज्ञानचक्षु कहलाता है। इसी बिन्दुसे ज्ञानभूमिकी सूचना मिलती है। चित्तको एकाग्र करके उपसंहृत किये बिना, अर्थात् विक्षिप्त अवस्थामें, विन्दुमें स्थिति नहीं हो सकती। विन्दु-अवस्थामें स्थिति होनेपर भी यथार्थ लक्ष्यकी प्राप्तिमें अनेकों व्यवधान रह जाते हैं। यद्यपि विन्दुभूमिमें साधक अहंभावमें प्रतिष्ठित होकर आपेक्षिक द्रष्टा बनकर निम्नवर्ती समस्त प्रपञ्चको निरपेक्षभावसे देखनेमें समर्थ होता है, तथापि जबतक वह बिन्दु पूर्णतः तिरोहित नहीं हो जाता, अर्थात् पूर्णतः अहंभावका विसर्जन अथवा आत्मसमर्पण नहीं होता, तबतक महाविन्दु अथवा शिवभावकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसी-लिये बिन्दुभावको प्राप्त होकर साधकको क्रमशः कलाक्षय करते-करते पूर्णतया विगतकल अवस्थामें उपनीत होना पड़ता है। बिन्दुके बाद उल्लेखयोग्य प्रधान चक्र बिन्दु-अर्ध अथवा अर्धचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध है। बिन्दुको चन्द्रबिन्दु कहा जाता है, इसीलिये यह अवस्था अर्धचन्द्र नामसे वर्णित होती है। इसी अवस्थामें अष्टकला शक्तिका विकास होता है। इसके आगे अर्थात् शक्तिकी नव कलाके क्षीण होनेपर एक अवरोधमय घोर आवरणस्वरूप विलक्षण अवस्थाका उदय होता है। बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी इस स्तरका भेदन करके ऊपर उठना कठिन है। परन्तु अनुग्रह-शक्तिके विशिष्ट प्रभावसे भाग्यवान् साधक इस चक्रका भेदनकर ऊपर उठनेमें समर्थ होता है। शास्त्रमें यह अवस्था 'रोधिनी' नामसे प्रसिद्ध है। इस आवरणका भेदन करनेसे ही साधक नादभूमिमें उपनीत होता है। नाद चैतन्यका अभिव्यञ्जक है, अतः इस अवस्थामें चित्शक्ति क्रमशः अधिकतर स्पष्ट हो जाती है। ब्रह्मरन्ध्रके जिस स्थानमें नादका लय होता है, यह वही स्थान है। इसके बाद साक्षात् चित्शक्तिका आविर्भाव होता है। इसी शक्तिसे समस्त भुवन विधृत हो रहे हैं। इस अवस्थाके आगे त्रिकोणस्वरूपा 'व्यापिका' है, वह बिन्दुके विलासस्व-रूप वामादि शक्तित्रयसे सङ्घटित है। तदनन्तर सर्वकारण-

भूता समनाशक्तिका आविर्भाव होता है। यह शिवाधिष्ठित है और समस्त ब्रह्माण्डोंकी भरणशीला है। एतदारूढ़ शिव ही परम कारण और पञ्चकृत्यकारी हैं। यह चिदानन्दरूपा पराशक्ति है, यहीं मनोराज्यका अन्त होता है। इसके आगे मन, काल, देश, तत्त्व, देवता तथा कार्यकारणभाव सभी सदाके लिये तिरोहित हो जाते हैं। जो जपादि क्रियाके द्वारा नादके उत्थानका अभ्यास करते हैं, वे जानते हैं कि आज्ञाचक्रपर्यन्त अर्थात् जहाँतक अक्षमाला या वर्णमालाका आवर्तन होता है वहाँतक उच्चारण अथवा ऊर्ध्वचालनका काल एक मात्रासे न्यून नहीं हो सकता। विन्दुमें वह अर्धमात्रामें पर्यवसित होता है। इसके बाद वह क्रमशः क्षीण होते-होते समनाभूमिमें एक क्षण रूपमें परिणत होता है। इसके आगे मनके स्पन्दनशून्य हो जानेके कारण देश, काल नहीं रह जाते तथा समस्त मानसिक विक्षोभ या कल्पनाजालके उपशान्त होनेपर निर्विकल्पक निवृत्तिभावका उदय होता है। यह निवृत्तिभाव होनेपर भी—देश, काल और निमित्तके अतीत तथा मनोभूमिके अगोचर होनेपर भी—वस्तुतः नितान्त निष्कल अवस्था नहीं है। क्योंकि इस अवस्थामें इसमें विशुद्ध चिद्रूपा एक कला शेष रहती है, जो निर्वाणकलारूपसे शास्त्रमें प्रसिद्ध है तथा योगिजन जिसे द्रष्टा या साक्षि-चैतन्यके नामसे पुकारते हैं। सांख्यका कैवल्य इसी अवस्थाकी सूचना देता है। क्योंकि सांख्यकी प्रकृति पञ्चदशकलात्मिका है और उसका पुरुष षोडशी या निर्वाणकलाका स्वरूप है।

पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्।

इस कलासे ऊपर उठे बिना महाविन्दु वा परमात्मस्वरूप शिवतत्त्वकी उपलब्धि नहीं हो सकती। सांख्यभूमिसे अग्रसर होनेपर वेदान्तकी साधना होती है,—इस एक कलामात्रावशिष्ट निर्वाणभूमि वा उन्मनाभूमिको पार कर महाविन्दुरूप पूर्णाहन्तामय अवस्थामें पदार्पण करना भी वही है। पूर्णाहन्तास्वरूप शिवभावकी स्फूर्ति होनेपर जब इसका भी परिहार होता है—जब विन्दुका क्रमशः क्षय होते-होते उन्मनी अवस्थाका अवसान होनेपर विन्दु शून्य हो जाता है, तब पूर्णस्वरूप महाशक्तिका आविर्भाव होता है। अर्थात् महाविन्दुके पूर्ण रूपमें स्थित होनेपर उसमें पराशक्तिकी नित्य अभिव्यक्ति होती है। पक्षान्तरमें महाविन्दुके रिक्त हो जानेपर परमशिवका आविर्भाव होता है। वस्तुतः शिव-शक्तिके विभिन्न न होनेके कारण तथा महाविन्दुकी पूर्ण और रिक्त अवस्था भी नित्य-सिद्ध होनेके कारण शून्य और पूर्णत्वका आविर्भाव नित्य ही मानना होगा। जो रिक्त दिशा है, लौकिक दृष्टिसे वही अमावस्या है और जो पूर्ण दिशा है वही पूर्णिमा है। महाशक्तिके प्राधान्यको अङ्गीकार कर अमावस्याकी ओर जो उसकी स्फूर्ति होती है वही कालीरूपमें तथा जो पूर्णिमाकी ओर स्फूर्ति होती है वही षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी वा श्रीविद्याके रूपसे साधकसमाजमें परिचित होती है। कालीकुल और श्रीकुलका यही गुप्त रहस्य है। मध्यपथमें तारा वा तारिणी विद्या है। यहाँ उसकी आलोचना नहीं करनी है। हमने जो कुछ कहा है वह महाशक्तिका प्राधान्य अङ्गीकार करके ही कहा है। परन्तु प्रकाश या शिवस्वरूपका प्राधान्य अङ्गीकार करनेपर इस अवस्थामें कुछ भी कहनेको नहीं रह जाता।

स-कल, निष्कल और मिश्र—शक्तिकी ये तीन अवस्थाएँ हैं, अतः शक्तिकी उपासना भी स्वभावतः इन तीन श्रेणियोंमें ही अन्तर्भुक्त हो जाती है। उपासनाके क्रमसे स-कल भावकी उपासना निकृष्ट है, मिश्रभावकी उपासना मध्यम है एवं निष्कल उपासना ही श्रेष्ठ है। परन्तु हमलोग जिसे साधारणतः उपासना कहते हैं वह इन तीन श्रेणियोंमेंसे किसीके अन्तर्गत नहीं है। क्योंकि जबतक गुरुकी कृपादृष्टिसे कुण्डलिनी शक्तिका उद्बोधन तथा सुषुम्नाके मार्गमें प्रवेश नहीं हो जाता तबतक उपासनाका अधिकार नहीं उत्पन्न होता। मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त चक्रेश्वरीरूपमें शक्तिकी आराधना ही निकृष्ट उपासना है। परन्तु जो साधक इन्द्रिय और प्राणकी गतिका अवरोध कर कुलपथमें प्रविष्ट नहीं हो सकता उसके लिये देवीकी अधम उपासना भी सम्भव नहीं है। साधक क्रमशः अधमभूमिसे यथाविधि साधनाद्वारा निर्मलचित्त होकर मध्यम भूमिकी उपासनाका अधिकारी होता है। तदनन्तर उत्तम अधिकार प्राप्तकर भगवतीकी अद्वैत उपासनासे सिद्धिलाभ करता है। मनुष्य जबतक द्वन्द्वमय भेदराज्यमें वर्तमान रहता है तबतक उसके लिये निम्नभूमिकी उपासना ही स्वाभाविक है। कर्म ही इसका रूप है। चतुरस्रसे वैन्दवचक्रपर्यन्त अथवा मूलाधारसे सहस्रदलकमलपर्यन्त सदल आवरण-देवतादिसहित समग्र देवीचक्रको उपासना ही कर्मात्मक अपरा पूजा है। इस पूजा अर्थात् षट्चक्रके क्रियारूप अनुष्ठानका अवलम्बन कर अग्रसर न हो सकनेसे चित्तमें

कदापि अभेदज्ञानका उदय नहीं हो सकता। स्वयं शङ्कर भी भगवतीकी अपरा पूजा किया करते हैं। यह महाजनोंका सिद्धान्त है। इसीलिये ज्ञानीके लिये भी चक्रपूजा उपेक्षणीय नहीं है। साधक अपनी देहमें विभिन्न प्रकारके गणेश, ग्रह, नक्षत्र, राशि, योगिनी एवं पीठका विधिपूर्वक न्यास या स्थापन कर सकनेपर केवल इसीके प्रभावसे साक्षात् परमेश्वरतुल्य अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।*

निम्नभूमिकी उपासनाके प्रभावसे साधकका अधिकार-बल बढ़ जानेपर वह मध्यम भूमिमें उपनीत होकर भेदाभेद-अवस्थाको उपलब्ध करता है। तब समुचित ज्ञान और कर्मका आविर्भाव होता है और आन्तर अद्वैतधाममें क्रमशः बाह्य चक्रादिका लय हो जाता है। इसके बाद जब ज्ञानमें कर्मकी परिसमाप्ति हो जाती है तब अभेद या अद्वैत-भूमिकी स्फूर्ति होती है और साधक परापूजाका नित्य अधिकार स्वभावतः ही प्राप्त कर लेता है। एकमात्र परम-शिवकी स्फूर्ति या ब्रह्मज्ञान ही परापूजाका नामान्तर है। इस ज्ञान अथवा परम तत्त्वके विकासको लौकिक जगत्‌में कोई समझ नहीं सकता।

अधोमुख श्वेतवर्ण सहस्रदलकमल वा अकुल कमलकी अन्तर्कलिकामें वाग्भव नामक एक प्रसिद्ध त्रिकोण है। इस त्रिकोणसे परादिक्रमसे चार प्रकारके वाक् वा शब्द उत्पन्न होनेके कारण इसका नाम वाग्भव है। इस त्रिकोणके मध्यमें विश्वगुरु परम शिवकी पादुका है। यह प्रकाश, विमर्श तथा इन दोनोंके सामरस्य-भेदसे तीन प्रकारकी है। इस पादुकासे निरन्तर परमामृत निकलता रहता है—इस स्निग्ध अमृतमय चन्द्ररश्मिद्वारा समस्त विश्वका सञ्जीवन, माधुर्यसम्पादन और तृप्ति होती है। यह पादुका समस्त जीवोंका आत्मस्वरूप है। इसके बाद शिवाद्वैतभावनारूप प्रसादको ग्रहण करनेसे समस्त तत्त्व विशुद्ध होकर विमल आनन्दका उदय होता है। तत्त्वशुद्धि और आनन्दसञ्चारके पश्चात् हृदयाकाशमें जिस परम नादका उदय होता है उसका चिन्तन करनेपर आद्याशक्तिके आनन्दमय रूपकी उपलब्धि होती है। साधकके हृदयमें इस प्रकारके नादकी अभिव्यक्ति ही आन्तर जप या मानस जपके नामसे प्रसिद्ध है। चित्तके बाह्य प्रदेशसे लौटकर अन्तर्मुखमें एकाग्र होनेपर इसका अनुभव होता है। इससे अश्रु, पुलक, स्वेद, कम्प प्रभृति सात्त्विक विकारोंका उन्मेष होता है। इस आन्तर जप या नादानुसन्धानके समय इन्द्रियसञ्चार नहीं रहता, इसीलिये इसे बाह्य जप नहीं कहा जा सकता। बाह्य जप विकल्पका ही प्रकारभेद है। परन्तु आन्तर जपमें विकल्पका व्यापार शून्य हो जाता है। यही निष्कल चिन्तन अथवा ध्यानका स्वरूप है। वस्तुतः यह चित्तकी निरन्तर अन्तर्मुखताके सिवा और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारका चिन्तन तबतक उदित नहीं हो सकता जबतक शुद्ध चैतन्यका सङ्कोचभाव दूर नहीं हो जाता। पर चित्कला महाशक्तिका उल्लास होनेपर स्वतः ही इस सङ्कोचका नाश हो जाता है। तब पूर्णाहन्ता स्वयमेव विकसित हो जाती है। इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले शब्द, स्पर्श प्रभृतिके द्वारा आत्मदेवताकी जो पूजा होती है, उसे स्वाभाविक पूजा या सहज उपासना कहकर महायज्ञरूपसे शास्त्रमें उसकी प्रशंसा की गयी है। विषयानुभवजन्य आनन्द महानन्दके साथ मिलनेपर जिस वैषम्यहीन अवस्थाका उदय होता है वही भगवतीकी उत्तम उपासनाका प्रकृत तत्त्व है।

हमने अत्यन्त संक्षेपमें शक्तिसाधनाके साधारण तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ निवेदन किया। द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत—यह त्रिविध उपासनाएँ शक्तिसाधनाके ही अन्तर्गत हैं। अतः समस्त देवताओंकी साधना तथा योग, कर्म प्रभृति सब इसके अन्तर्गत हैं। काली, तारा प्रभृति भेदसे साधनाके प्रकारभेद अप्रासङ्गिक समझकर यहाँ आलोचित नहीं हुए हैं। बीजतत्त्व और मन्त्रविज्ञान, नादविन्दुकलाका स्वरूपालोचन, मन्त्रोद्धार और मन्त्रचैतन्य प्रभृति क्रियाएँ, दीक्षा और गुरुतत्त्व, दीक्षातत्त्व, अध्वशुद्धि, भूत और चित्तकी शोधनक्रिया, मातृका और पीठविचार, न्यास और प्राणप्रतिष्ठा—इस प्रकार अनेकों विषय शाक्त साधनाकी विस्तृत आलोचनासूचीके अन्तर्गत हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शक्ति-उपासनाके सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इन सब प्रासङ्गिक विषयोंका भी ज्ञान होना आवश्यक है।

* जिन्होंने सत्य सत्य ही स्वदेहमें देवताओंका न्यास करना सीख लिया है, उनके सामर्थ्यकी तुलना नहीं हो सकती। इस प्रकारका मनुष्य यदि न्यासरहित साधारण मनुष्यको प्रणाम कर ले तो उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।
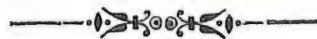
तत्त्व

(लेखक—श्री सर जॉन वुडरफ)

मन्त्रशास्त्रके ज्ञानके लिये छत्तीस शैव-शाक्ततत्त्वोंका समझना भी आवश्यक है। उदाहरणतः यह कहा जाता है कि शक्तितत्त्वके अन्दर शक्ति है, सदाख्यतत्त्वके अन्दर नाद है, ईश्वरतत्त्वके अन्दर बिन्दु है। तब प्रश्न यह होता है कि ये तत्त्व क्या हैं जिनका उल्लेख शैव एवं शाक्त दोनों प्रकारके तन्त्रोंमें मिलता है? तत्त्वोंको पूरी तरहसे समझे बिना मन्त्रशास्त्रके ज्ञानमें प्रगति नहीं हो सकती।

शैवशाक्तशास्त्रमें शक्तिके रूपमें प्रमा (ज्ञान) को विमर्श शब्दसे अभिहित किया गया है। प्रमाके दो अंश हैं—अहमंश और इदमंश, जिनमें पहला आत्माका ग्राहक अंश है और दूसरा ग्राह्य। क्योंकि यह बात ध्यानमें रहे कि एक आत्मा ही मायारूप उपाधिके कारण द्रष्टारूप अपनी ही दृष्टिमें अपनेसे भिन्न—अनात्म अथवा दृश्यरूपमें भासता है। मूलमें प्रमेय वस्तु प्रमातासे भिन्न नहीं है, यद्यपि इस बातका अनुभव तबतक नहीं होता जबतक प्रमाता और प्रमेयकी भेदप्रतीतिका कारणभूत मायारूप बन्धन शिथिल नहीं हो जाता। प्रमा अथवा प्रतीतिका अहमंश वह है जिसमें आत्मा दूसरेकी तरफ न देखता हुआ अपने ही प्रकाशमें स्थित रहता है (अनन्योन्मुखोऽहं-प्रत्ययः)। इसी प्रकार दूसरेकी ओर देखनेवाला विमर्श 'इदं प्रत्यय' कहलाता है (यस्त्वन्योन्मुखः स इदमिति प्रत्ययः)। परन्तु यह 'दूसरा' भी आत्मा ही है, क्योंकि वास्तवमें एक आत्माके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। हाँ, इसकी प्रतीति अवश्य ही भेदरूपसे होती है। परमावस्थामें आत्माका यह इदंरूप उसके अहमंशके साथ घुला-मिला—सम्पृक्त होकर रहता है। शुद्ध अवस्थामें, जो परमावस्था और मायाके बीचकी अवस्था है, इस 'दूसरे' की आत्माके अंशरूपमें ही प्रतीति होती है। अशुद्ध अवस्थामें, जिसमें मायाका आधिपत्य होता है, प्रमेय वस्तु परिच्छिन्न आत्मासे भिन्न प्रतीत होती है।

प्रतीति अथवा ज्ञानकी भी दो कोटियाँ हैं—(१) पूर्ण (सकल) विश्वका सकल ज्ञान, और (२) त्रिविध जगत्का परिच्छिन्न ज्ञान। इन दो कोटियोंके बीच ज्ञानकी माध्यमिक अवस्थाएँ भी हैं, जिनके द्वारा एक शुद्ध चैतन्य अथवा आत्मा जड प्रकृतिमें आबद्ध होता है। हरमीज (Hermes) नामक पाश्चात्य विद्वान्का एक आभाणक प्रसिद्ध है:– 'As above, so below.' अर्थात् जो ऊपर है वही नीचे भी है। इसी प्रकार विश्वसारतन्त्रमें भी लिखा है—'जो यहाँ है सो वहाँ भी है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है' (यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्)। शैवसिद्धान्त भी यही कहता है—'बाहर जो कुछ दीखता है वह इसीलिये दीखता है कि भीतर भी वही है।'

वर्त्तमानावभासानां भावानामवभासनम्।
अन्तःस्थितवतामेव घटते बहिरात्मना॥

'जो वस्तुएँ इस समय दिखायी देती हैं वे बाह्य पदार्थोंके रूपमें इसीलिये अवभासित होती हैं कि वे भीतर भी हैं।' इसलिये परमात्मासे प्रादुर्भूत हमारे ज्ञानमें जो पदार्थ है वह परम ज्ञानमें भी है, चाहे किसी दूसरे ही प्रकारसे क्यों न हो। परम ज्ञान, जिसे 'परा संवित्' कहते हैं, निरा सूक्ष्म निर्विषय ज्ञान नहीं है। वह तो 'अहम्' और 'इदम्' अर्थात् शिव और परा अव्यक्त शक्तिका अखण्ड ऐकात्म्य है—एकरूपता है। पहला अर्थात् 'अहम्' प्रकाश अथवा ग्राहक-रूप है और दूसरा विमर्श अथवा ग्राह्यरूप। परन्तु इस स्थितिमें दोनों इस प्रकारसे घुले-मिले हैं कि उनका पृथक्-रूपसे भान नहीं होता। इस परासंवित्में संवेदन (feeling) की अपरोक्षता (immediacy) रहती है। यही आनन्द है, जिसे 'स्वरूपविश्रान्ति' कहा गया है। मायिक जगत्में आत्माका सम्बन्ध उसीसे रहता है जिसे वह भूलसे अनात्म समझ लेता है। यहाँ जगत्, जो शिवके ज्ञानका विषय है, पूर्ण जगत् अर्थात् पराशक्ति है जो अपने ही ज्ञानस्वरूपकी दूसरी दिशा है। 'पराप्रवेशिका' नामक ग्रन्थमें उसे 'परमेश्वरका हृदय' (हृदयं परमेशितुः) कहा गया है। क्योंकि मायिक प्रमाताके लिये विश्व अपनेसे भिन्नरूपमें दृश्यमान पदार्थोंका व्यक्त जगत् ही है। परम शिव और शक्ति परस्पर आश्लिष्ट एवं प्रणयबद्ध होकर रहते हैं। निरतिशय प्रेमका ही नाम आनन्द है (निरतिशयप्रेमास्पद-त्वमानन्दत्वम्)। इस परम अवस्थाका बृहदारण्यक उप-निषद्में इस प्रकार वर्णन आया है—'वह आनन्दमें ऐसा

विभोर था जैसे स्त्री और पुरुष परस्पर आश्लिष्ट होकर रहते हैं' (स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ) । उस समय भीतर और बाहरका भेद नहीं रह जाता और प्रेमी, प्रेमास्पद एवं प्रेमकी त्रिपुटी एकताके आनन्दमें लीन हो जाती है । वह अनुभूति देशकालसे शून्य, पूर्ण, सर्वग्राहिणी एवं सर्वशक्तिशालिनी होती है। यह निष्कल अथवा परमशिवकी अवस्था है । यह तत्त्वातीत परा संवित् है, पूर्ण जगत्के रूपमें इसकी 'परनाद' एवं 'परा वाक्' संज्ञा होती है । परम शिव पूर्ण जगत् अर्थात् परनादकी ही अनुभूति है । इस प्रकार जगत् शुद्ध शक्तिस्वरूप होता है ।

हमारा प्रापञ्चिक ज्ञान मानों इन सबका मायाके कारण-रूप जलपर पड़ा हुआ उलटा प्रतिबिम्ब है । मायाशक्ति वह भेदबुद्धि है जिसके वशीभूत होकर पुरुष द्रष्टाके रूपमें जगत्को अपनेसे बाह्य एवं पृथक् असंख्य पदार्थोंके सहित देखता है । मायिक जगत्में प्रत्येक आत्मा अन्य सभी आत्माओंसे पृथक् सत्ता रखता है । परम अनुभूतिकी अवस्थामें एक ही आत्मा स्वयं अपना ही अनुभव करता है । माया एवं पञ्चकञ्चुकोंके अधीनस्थ चैतन्यका नाम ही पुरुष है; ये पञ्चकञ्चुक वे परिच्छेदक अथवा उपाधिभूत शक्तियाँ हैं जो आत्माकी नैसर्गिक पूर्णताको संकुचित कर देती हैं । इस प्रकार पूर्णावस्था आकृतिशून्य होती है, प्रपञ्चावस्था साकार होती है; पूर्णावस्था देशकालसे शून्य एवं सर्वव्यापिनी होती है, प्रपञ्चावस्था इससे विपरीत गुणवाली होती है । कालके द्वारा समयका आकलन—विभाग होता है । नियति स्वतन्त्रताकी संहारक होती है और पुरुषके लिये यह व्यवस्था कर देती है कि अमुक समयमें उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये । परम अवस्था पूर्णावस्था है, उसमें किसी बातकी त्रुटि नहीं रहती । राग-कञ्चुक पदार्थोंमें अनात्मरूपसे राग उत्पन्न कर कामना उत्पन्न करता है । परमशिवकी सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता विद्या और कलाके व्यापारसे परिच्छिन्न हो जाती हैं और पुरुष 'अल्पज्ञ' और 'अल्पकर्ता' बन जाता है।

मध्यवर्ती तत्त्वोंके द्वारा, जिनका आगे वर्णन किया जायगा, इस बातका स्पष्टीकरण होता है कि परा संवित्—पूर्ण अनुभूतिके सर्गात्मक (सकल) रूपसे किस प्रकार अपूर्ण प्रपञ्चज्ञानकी उत्पत्ति होती है । शिवके दो रूप हैं—(१) विश्वातीत (Transcendental) तथा (२) विश्वोत्पादक (Creative) एवं विश्वात्मक (Immanent) । निष्कल परम शिवके सकल रूपको शिवतत्त्व कहते हैं, जो उन्मनी शक्तिका अधिष्ठान है । अपने सकलरूपमें क्रियाशील होकर शिव व्यक्त जगत्के रूपमें अपना ही प्रमेय अथवा ज्ञेय बन जाता है । क्योंकि वास्तवमें परम शिवके अतिरिक्त किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं है। शिवतत्त्व निस्पन्द परमशिवका प्रथम स्पन्द है । शक्तितत्त्व शिवतत्त्वका एकमात्र निषेधक रूप है । निषेध ही शक्तिका व्यापार है (निषेधव्यापाररूपा शक्तिः)। चैतन्यरूपा वह स्वयं अपना ही निषेध करती है—प्रत्याख्यान करती है । अर्थात् प्रमा (ज्ञान) को ग्राह्यत्वांशसे शून्य कर देती है, जो अपना ही पराशक्तिरूप है । इस प्रकार ज्ञानकी दूसरी दिशा ही बच रहती है, जो प्रकाशमात्र है अर्थात् जिसे हम अहमिदमात्मक ज्ञानका अहमंश कह सकते हैं, चूँकि इस ज्ञानमें ग्राह्यता (Objectivity) का लेश भी नहीं है। चाहे वह व्यक्त अथवा अव्यक्तरूपसे परा संवित्में रहनेवाली हो अथवा उससे नीचेके कार्यरूप (derived) ज्ञानमें रहनेवाली हो, इसलिये शिवतत्त्वको शून्यातिशून्य कहते हैं । यह वह ज्ञान है जिसमें आत्मा अपनेसे अन्य किसीकी ओर नहीं देखता (अनन्योन्मुखोऽहं प्रत्ययः) । ज्ञानका ग्राह्य स्वरूप एक प्रकारसे निरा निषेधात्मक है। ग्राह्य स्वरूपसे शून्य होनेके कारण ही उसकी 'शून्य' संज्ञा है । शक्तितत्त्वको शिवकी अव्यक्त एवं सन्ततसमवायिनी इच्छा भी कहते हैं ।

शक्तिके व्यापारका यह वर्णन अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन है, क्योंकि उससे इस बातका स्पष्टीकरण होता है कि परम ऐकात्म्यज्ञान अथवा अभेदज्ञान ही भेद अथवा द्वैतज्ञानका भी मूलकारण है । इस प्रकारका द्वैतज्ञान तथा उसके पूर्ण विकासकी श्रेणियाँ तभी प्रादुर्भूत हो सकती हैं जब हम एक ऐसी अवस्था स्वीकार करें जिसमें ऐकात्म्यज्ञान विशकलित हो जाता है—छिन्न-भिन्न हो जाता है । ऐसा करनेके लिये सर्वप्रथम परा संवित्मेंसे उसके विषय अर्थात् पूर्णजगत् (पराशक्ति, परनाद) को निकालना होता है, जिससे केवल ग्राहकतामात्र रह जाती है । ग्राहकताके इस प्रकार उन्मुक्त हो जानेपर—निखर जानेपर विश्वका फिरसे धीरे-धीरे उन्मेष अथवा विकास होता है, पहले अव्यक्तरूपमें और पीछे मायाके द्वारा व्यक्त शक्तिके रूपमें । परा संवित्में 'अहम्' और 'इदम्' एकरूप होकर विद्यमान थे—घुलेमिले-से थे ।

शिवतत्त्वमें सम्बद्ध शक्तितत्त्वके व्यापारसे ज्ञानका इदमंश निकल जाता है और केवल अहंविमर्श शेष रह जाता है। इस अहंविमर्शके साथ 'इदम्' अथवा जगत् फिरसे धीरे-धीरे सम्पर्कमें आता है। उस समय 'अहम्' और 'इदम्' का ऐकात्म्य नहीं रहता, किन्तु दोनों अलग-अलग आत्माके अंशरूपमें रहते हैं। अन्ततोगत्वा 'अहम्' और 'इदम्' का यह समुदितरूप छिन्न-भिन्न हो जाता है, 'अहम्' और 'इदम्' अलग-अलग हो जाते हैं। अवशिष्ट तत्त्वोंके वर्णनसे इस पार्थक्यकी प्रक्रिया भी समझमें आ जायगी। शिवशक्ति-तत्त्व कार्यरूप नहीं है क्योंकि सृष्टि अथवा प्रलयमें भी वह एकरस रहता है। वह अखिल ब्रह्माण्डका बीज एवं योनि है।

ज्ञानके प्रथम आभासको 'सदाख्य' अथवा 'सदाशिव' तत्त्व कहते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देनेकी है कि कारण कार्यमें भिन्नरूप भासता हुआ भी सदा एकरूप, एकरस रहता है। परा संवित् अपने सकल (सर्गात्मक) रूपमें जगत्की उत्पादिका होनेपर भी सदा निर्विकार—अपरिणामिनी रहती है। यह आभास मायावादियोंके विवर्तसे मिलता जुलता-सा है, अन्तर केवल इतना ही है कि आभासवादियोंके मतमें कार्य सत् है और मायावादियोंके मतमें वह असत् है। यह अन्तर 'सत्ता' के लक्षणपर भी निर्भर करता है।

यथार्थ परिणाम—जिसके अनुसार एक वस्तु दूसरी वस्तुमें परिणत हो जानेपर अपने प्राक्तनरूपमें नहीं रहती, अपना पूर्वरूप खो बैठती है—जड जगत्के मिश्रित (Compounded) पदार्थोंमें ही होता है।

सदाशिव-तत्त्वमें सङ्कल्पोंकी आदिम अन्तर्मुखी रचना प्रारम्भ होती है। इसकी 'निमेष' संज्ञा है और ज्ञानकी इसके आगेकी अवस्था, जो इससे विपरीत होती है, 'उन्मेष' कहलाती है; निमेषावस्थामें शक्तिरूप विश्वकी झलकमात्र दिखायी देती है। यहाँ आत्मा अपनेको ग्राह्यरूपमें अस्पष्टतया अनुभव करता है। सृष्टि अथवा विकासकी यह पहली सीढ़ी है और प्रलय अथवा सङ्कोचका अन्तिम सोपान है। जगत्के स्फुटत्व एवं बाह्यत्वको 'उन्मेष' कहते हैं। 'अहम्' 'इदम्' की एक ही आत्माके अंशरूपमें बहुत ही अस्पष्ट झलक पाता है, इसलिये विमर्शके अहमंशकी प्रधानता रहती है। सदाशिव वही हैं जिन्हें वैष्णव विष्णुके नामसे पुकारते हैं और बौद्ध अवलोकितेश्वर कहते हैं, जो सबपर समानरूपसे करुणाकी वृष्टि करते हैं। शास्त्रपरम्पराके अनुसार अवतारों-के बीज यही हैं। मन्त्रशास्त्रमें जिसे नादशक्ति कहते हैं वह इसी तत्त्वमें निवास करती है।

विकासोन्मुख ज्ञानकी तीसरी अवस्थाको ईश्वरतत्त्व कहते हैं, जो सदाशिव-तत्त्वका बाह्यत्व अथवा बाह्य रूप है। 'अहम्' जगत् ('इदम्') का स्पष्टरूपसे किन्तु एक आत्मा-के अंशरूपमें आत्मासे अभिन्नरूपमें अनुभव करता है। जिस प्रकार पिछले विमर्शमें 'अहम्' की प्रधानता थी उसी प्रकार यहाँ 'इदम्'की प्रधानता है। मन्त्रशास्त्रमें इसे 'बिन्दु' तत्त्व कहते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ ज्ञानका अव्यक्त 'इदम्' के रूपमें जगत्के साथ पूर्ण अभेद हो जाता है और इस प्रकार जगत् ग्राहकरूप बन जाता है और ज्ञान उसके साथ मिलकर एक ज्ञानबिन्दुके रूपमें परिणत हो जाता है। उदाहरणार्थ मन पूर्णतया ग्राहकरूप हो जाता है और हम सबके लिये एक गणितके बिन्दुरूपमें अवस्थित रहता है, यद्यपि शरीर, जिस हदतक वह ग्राहक-रूप नहीं बन जाता, ग्राह्य अथवा परिमाणवाली वस्तु दीख पड़ता है।

चतुर्थ तत्त्वको 'विद्या', 'सद्विद्या' अथवा 'शुद्धविद्या' भी कहते हैं। ज्ञानकी इस अवस्थामें 'अहम्' और 'इदम्' का सामानाधिकरण्य होता है अर्थात् दोनोंकी समानरूपमें स्थिति रहती है। शिवतत्त्वमें अहंविमर्श होता है, सदाशिव-तत्त्वमें अहमिदंविमर्श होता है और ईश्वरतत्त्वमें इदमहंविमर्श होता है। इनमेंसे प्रत्येक स्थलमें प्रथम पदकी प्रधानता रहती है। विद्यातत्त्वमें विमर्शके अन्दर दोनों पदोंकी समानता रहती है। इस विमर्शमें 'अहम्' और 'इदम्' के सच्चे सम्बन्धका ज्ञान होता है, जिसका स्वरूप है दोनोंका एक ही अधिकरणपर—न कि मायाके वशीभूत लोगोंके अनुभवके अनुसार दो भिन्न-भिन्न अधिकरणोंपर—सङ्गमन (मेल) और जिसके द्वारा इस अनुभवमें रहनेवाले द्वैतका बाध हो जाता है।

'अहम्' और 'इदम्' की समानतासे इस विमर्शमें अगली अवस्थाकी तैयारी होती है, जिसमें उक्त दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। शुद्ध और अशुद्ध सृष्टिके बीचकी अवस्था होनेके कारण सद्विद्याको 'परापरदशा' कहते हैं। इसे भेदाभेद-विमर्शनात्मक मन्त्ररूप भी कहते हैं। इसे भेदविमर्श इसलिये कहते हैं कि 'इदम्' 'अहम्' से अलग हो जाता है और अभेद-विमर्श इसलिये कि ये दोनों अलग-अलग होनेपर भी एक ही आत्माके अंश माने जाते हैं। इस विमर्शकी द्वैतवादियोंके

ईश्वरसे तुलना की जाती है, जो जगत्‌को अपनेसे भिन्न-रूपमें देखता हुआ भी उसे अपना ही अंश एवं अपनेसे सम्बद्ध मानता है। 'यह सब कुछ मेरा ही विभाव है, मेरी ही विभूति है (सर्वो ममायं विभावः),' इस विमर्शको मन्त्ररूप इसलिये कहते हैं कि यहाँ हम शुद्ध आध्यात्मिक भावराज्यमें रहते हैं। अबतक हमारे जगत्‌में ऐसी बाह्य अभिव्यक्ति नहीं दृष्टिगोचर होती। इस तत्त्वके नीचे, कहते हैं, आठ पुद्गलों अर्थात् विज्ञानरूप जीवोंकी सृष्टि हुई और इसके अनन्तर सात करोड़ मन्त्रों और उनके मण्डलोंकी रचना हुई।

इस अवसरपर मायाशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो 'अहम्' और 'इदम्' को पृथक् कर देती है और कञ्चुक—अर्थात् चैतन्य (ज्ञान) की नैसर्गिक पूर्णताको परिच्छिन्न करनेवाली उपाधियाँ—उसे देश और काल, जन्म-मरण, परिच्छिन्नता और विषयवासनाके वशीभूत कर देती हैं और इन्हें अब यह अपनेसे भिन्न मनुष्यों और पदार्थोंके रूपमें देखने-समझने लगता है। यही पुरुष-प्रकृति-तत्त्व है। शैव-शाक्तदर्शनमें माया तथा कञ्चुकोंके वशीभूत आत्मा अथवा शिवको ही पुरुष कहते हैं। (कञ्चुक उन उपाधियोंको कहते हैं जिनके संसर्गसे शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा अपनी नैसर्गिक पूर्णताको खो बैठता है।)

प्रकृति सङ्कुचितरूपमें रहनेवाली शिवकी शान्त शक्ति है जो गुणोंकी साम्यावस्थाके रूपमें रहती है। ये गुण स्वयं इच्छा, क्रिया और ज्ञानशक्तियोंके स्थूल रूप हैं। सभी पदार्थ पुञ्जीभूत होकर उस भावमयीके अन्दर रहते हैं। पुरुष भोक्ता है और प्रकृति उसकी भोग्या है। यह प्रकृति प्रारम्भमें केवल ग्राह्यत्वरूपमें रहती है और पुरुष-रूप प्रमाता—आत्मासे भिन्नरूपमें दृष्टिगोचर होती है। इसके अनन्तर वह अन्तःकरण, इन्द्रिय एवं भूतोंमें, जो हमारे जगत्‌के उपादान हैं, विभक्त हो जाती है।

पुरुषका अर्थ केवल मनुष्य अथवा जीव नहीं है। जगत्‌की प्रत्येक वस्तु ही पुरुष है। उदाहरणतः एक सूक्ष्म रजःकण भी पुरुष अथवा चैतन्यरूप है, जो पृथिवीके साथ एकरूप होकर आणवी स्मृतिके रूपमें अथवा अन्य प्रकारसे अपनी परिच्छिन्न चेतनताको अभिव्यक्त करता है। चैतन्य अथवा ज्ञान जिस वस्तुका चिन्तन करता है अर्थात् जिस वस्तुके साथ तादात्म्यभावना करता है उसीके आकारका बन जाता है।

सारांश यह है कि परा संवित्‌का एक सर्गात्मक रूप (शिव-शक्ति-तत्त्व) भी होता है। इसीको 'अहंविमर्श' कहते हैं, जो धीरे-धीरे जगत् (इदम्) को अपने ही अंशरूपमें अनुभव करने लगता है—पहले अस्पष्टरूपसे जिसमें 'अहम्' की प्रधानता रहती है और पीछे स्पष्टरूपसे जिसमें 'इदम्' की प्रधानता रहती है और अन्तमें 'अहम्' और 'इदम्' की समानताके रूपमें जब दोनों मायाके द्वारा पृथक् होनेको तैयार रहते हैं। इसके अनन्तर मायाके द्वारा ज्ञानके दो विभाग हो जाते हैं और इस प्रकार ग्राहक और ग्राह्यका द्वैत स्थापित हो जाता है, यद्यपि ग्राह्य आत्मासे भिन्न नहीं होता—आत्मा ही स्वयं अपना ग्राह्य बन जाता है। अन्तमें शक्ति प्रकृतिरूपसे बहुसंख्यक भूतोंमें विभक्त हो जाती है, जिनसे यह विश्व बना है। परन्तु आदिसे अन्ततक एक एवं अद्वितीय शिवकी ही सत्ता दण्डायमान रहती है, चाहे वह परा संवित्‌के रूपमें हो, चाहे स्थूल भौतिक विग्रहको धारण किये हुए चैतन्यके रूपमें। मन्त्रशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार, जिसमें शब्दकी उत्पत्तिका विचार किया गया है, शक्ति, नाद और बिन्दु ही शक्तितत्त्व, सदाख्यतत्त्व और ईश्वरतत्त्व (जिसका इस निबन्धमें वर्णन हुआ है) हैं।

तत्त्वोंके साथ कलाओंका भी सम्बन्ध है। ये कलाएँ शक्तिरूपमें तत्त्वोंकी क्रियाएँ हैं। उदाहरणतः सृष्टि ब्रह्माकी कला है, पालन विष्णुकी कला है और मृत्यु रुद्रकी कला है। परन्तु इन उदाहरणोंमें जैसे कलाओंका सम्बन्ध तत्तत् तत्त्वोंके साथ स्पष्टतया परिलक्षित होता है उसी प्रकार सर्वत्र कलाओंका खास-खास तत्त्वोंके साथ सम्बन्ध निर्देश करना कठिन है। शाक्ततन्त्रोंमें चौरानबे कलाओंका उल्लेख मिलता है, जिनमेंसे उन्नीस कलाएँ सदाशिवकी, छः ईश्वरकी, ग्यारह रुद्रकी, दस विष्णुकी, दस ही ब्रह्माकी, उतनी ही अग्निकी, बारह सूर्यकी और सोलह चन्द्रमाकी मानी गयी हैं। 'सौभाग्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थके अनुसार निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, अमृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, मूलविद्यामन्त्रकला, महा-मन्त्रकला और ज्योतिषकला—ये उन्नीस कलाएँ सदाशिवकी

हैं। पीता, श्वेता, नित्या, अरुणा, असिता और अनन्ता—ये छः कलाएँ ईश्वरकी हैं; तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी, अमाया और मृत्यु—ये ग्यारह रुद्रकी कलाएँ हैं। जडा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति और दीक्षा ये दस विष्णुकी कलाएँ हैं। सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि—ये दस ब्रह्माकी कलाएँ हैं। धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा और कव्यवहा—ये दस कलाएँ अग्निकी हैं। तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा—ये बारह सूर्यकी कलाएँ हैं। अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता—ये सोलह कलाएँ चन्द्रमाकी हैं। इन चौरानबे कलाओंमेंसे पचास मातृका-कलाएँ हैं, जो पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भावोंके द्वारा स्थूल वर्णोंके रूपमें अभिव्यक्त होती हैं। उसी प्रसङ्गमें पचास मातृका-कलाओंके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जडा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वर्या, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी, मृत्युरूपा, पीता, श्वेता, असिता और अनन्ता—इन चौरानबे कलाओंका उस सुराकुम्भमें पूजन होता है जिसमें तारा द्रवमयी निवास करती हैं। इनका नाम संवित्कला है। यही बात योगिनीहृदय-तन्त्रमें कही गयी है*—

> देशकालपदार्थात्मा यद्यद्वस्तु यथा यथा।
> तत्तद्रूपेण या भाति तां श्रये संविदं कलाम्॥

षट् शक्ति

(लेखक—पं० श्रीभवानीशंकरजी)
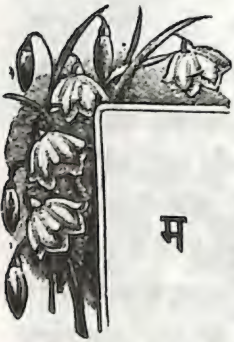
महेश्वर केवल पराशक्तिद्वारा ही प्रकाशित होते हैं, अन्यथा कदापि नहीं। समाधिनिष्ठ महर्षि भी इस महाविद्याशक्तिके प्रकाशके बिना न महेश्वरको देख सकते हैं और न पा सकते हैं। पराशक्ति ही महेश्वर-का दिव्य ज्योतिःस्वरूप है। अतएव सौन्दर्यलहरीमें इस शक्तिको सम्बोधित करके ठीक ही कहा गया है—

'त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा—शरीरार्द्धं शम्भोः।'

इसी शक्तिको गायत्री कहते हैं अर्थात् 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री'—जिसका अर्थ है, वह गान करनेवालेका त्राण करती हैं। गायत्री त्रिपाद है और प्रत्येक पादमें आठ अक्षर हैं। यह आठ दोकाघन अर्थात् क्यूब (Cube) है। इस दोका भाव है—(१) ज्योति (रूप) और (२) नाम। यह 'ज्योतिषां ज्योति' और परमा विद्या तथा जीव और चित्शक्तिका मूल है और इसके भीतर नाम अर्थात् शब्द-ब्रह्म है, जो अनादि और अव्यय है एवं जिसका बाह्य रूप प्रणव है। घन अर्थात् क्यूब व्यक्त किये जानेपर चतुष्कोण (Square) होता है। इस कारण दोके तीन घन व्यक्त होनेपर छः चतुष्कोण हुए अर्थात् त्रिपादसे चतुष्पाद हुआ। प्रत्येक पादमें चार अक्षर होनेसे गायत्रीमें चौबीस अक्षर हुए। ये छः चतुष्कोण छः शक्तियाँ हैं, जिनके नाम हैं—(१) पराशक्ति, (२) ज्ञानशक्ति, (३) इच्छाशक्ति, (४) क्रियाशक्ति, (५) कुण्डलिनीशक्ति और (६) मातृका-शक्ति।

---

* सर जॉन वुडरफ महोदय शक्ति-तत्त्वके बड़े अनुभवी विद्वान् माने जाते हैं। शरीरमें लकवा हो जानेके कारण वे खास तौर-पर शक्ति-अङ्कमें नहीं लिख सके। उनकी आज्ञासे उनका यह लेख "Garland of Letters" नामक पुस्तकसे अनुवादित किया गया है। अङ्गरेजी जाननेवाले शक्तितत्त्व-प्रेमी पाठकोंको वुडरफ साहबके ग्रन्थ गणेश एण्ड कम्पनी, मद्राससे मँगवाकर पढ़ने चाहिये।

(१) पराशक्ति—सब शक्तियोंका मूल और आधार है तथा यह परम ज्योतिरूपा है।

(२) ज्ञानशक्ति—यह यथार्थमें विज्ञानमूलक होनेके कारण सब विद्याओंका आधार है। इसके दो रूप हैं— (क) पाञ्चभौतिक उपाधिसे संयुक्त होनेपर यह मन, चित्त, बुद्धि और अहङ्कारका रूप धारण कर लेती है, जो मनुष्यका मनुष्यत्व है और क्रियामात्रका कारण है। (ख) पाञ्चभौतिक उपाधिके रज-तम-भावसे मुक्त होनेपर इसके द्वारा दूरदर्शन, अन्तर्ज्ञान, अन्तर्दृष्टि आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(३) इच्छाशक्ति—इसके द्वारा शरीरके स्नायु-मण्डलमें लहरें उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्मेन्द्रियाँ इच्छित कार्यके करनेके निमित्त सञ्चालित होती हैं। उच्च कक्षामें सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर इस शक्तिके द्वारा बाह्य और अन्तरमें समान भाव उत्पन्न होकर सुख और शान्तिकी वृद्धि होती है और इसके द्वारा उपयोगी तथा लोकहितैषी कार्य होते हैं।

(४) क्रियाशक्ति—यह आभ्यन्तरिक विज्ञानशक्ति है। इसके द्वारा सात्त्विक इच्छाशक्ति कार्यरूपमें परिणत होकर व्यक्त फल उत्पन्न करती है। एकाग्रताकी शक्ति प्राप्त होनेपर इस शक्तिके द्वारा इच्छित विशेष मनोरथ भी सफल हो जाता है। योगियोंकी सिद्धियाँ इन्हीं सात्त्विक और आध्यात्मिक इच्छा एवं क्रियाशक्तिद्वारा व्यक्त होती हैं।

(५) कुण्डलिनीशक्ति—इसके समष्टि और व्यष्टि दो रूप हैं। सृष्टिमें यह प्राण अर्थात् जीवनी-शक्ति है, जो समष्टिरूपमें सर्वत्र नाना रूपोंमें वर्तमान है। आकर्षण और विश्लेषण दोनों इसके रूप हैं। विद्युत् और आन्तरिक तेज भी इसीके रूपान्तर हैं। प्रारब्धकर्मानुसार यही शक्ति बाह्याभ्यन्तरमें समानता सम्पादन करती है और इसीके कारण पुनर्जन्म भी होता है।

व्यष्टिरूपमें मनुष्यके शरीरके भीतर यह तेजोमयी शक्ति है। यह पञ्चप्राण अर्थात् जीवनी शक्तिका मूल है, जिन प्राणोंके द्वारा ही इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। इसी शक्तिके द्वारा मन भी सञ्चालित होता है। इस शक्तिके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेसे अर्थात् इसको अपनी सात्त्विक इच्छाके अनुसार शिवोन्मुख सञ्चालित करनेसे ही मायाके बन्धनसे मुक्ति मिलती है। साधारण मनुष्यके लिये, जिसने इस शक्तिके साथ साक्षात् सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है, यह शक्ति प्रसुप्तकी भाँति है। हृदय-चक्रकी साधनासे यह शक्ति जाग्रत् होती है। यह सर्पाकार शक्ति है। जो मनुष्य हृदयके विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदिको दूर किये बिना, और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान आदिसे हृदयको परिप्लुत किये बिना ही केवल बाह्य क्रियाद्वारा (जैसे हठयोगकी साधना) इस शक्तिको जाग्रत करना चाहता है, वह किञ्चित् चमत्कारिक सिद्धियाँ भले ही प्राप्त कर ले, किन्तु अध्यात्मदृष्टिसे उसका अवश्य अधःपतन होता है। उसके दुर्गुण और विकार बढ़ जाते हैं, जिस तरह पवित्र हृदयवाले साधकके सद्गुण इस शक्तिकी जाग्रतिसे वृद्धि पाते हैं। ऐसे अपवित्र हठी साधक हृदयमें अष्टदल कमल देखते हैं, जहाँ महाविद्याका यथार्थ वासस्थान नहीं है। किन्तु राजयोगी, पवित्रात्मा उपासक साधक श्रीसद्गुरुकी कृपासे हृदयमें अष्टदल कमलके चक्रको देखता है जो विद्याशक्तिका ठीक वासस्थान है और उनकी कृपा प्राप्तकर तथा अविद्यान्धकार पारकर वह शिवमें संयोजित होता है।

(६) मातृकाशक्ति—यह अक्षर, बीजाक्षर, शब्द, वाक्य तथा यथार्थ गानविद्याकी भी शक्ति है। मन्त्र-शास्त्रके मन्त्रोंका प्रभाव इसी शक्तिपर निर्भर करता है। इसी शक्तिकी सहायतासे इच्छाशक्ति अथवा क्रियाशक्ति फलप्रदा होती है। कुण्डलिनीशक्तिका आध्यात्मिक भाव भी न तो इस शक्तिकी सहायताके बिना जाग्रत होता है और न लाभदायक ही। जब सात्त्विक साधकके निरन्तर सात्त्विक मन्त्रका जप करने और ध्यानका अभ्यास करनेसे मन्त्रकी सिद्धि होती है तब उसकी इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और कुण्डलिनीशक्ति भी स्वयं अनुसरण करती हैं। अतएव यह मन्त्रशक्ति सब शक्तियोंका मूल है। क्योंकि शब्द ही सृष्टिका कारण है। सृष्टिके सब नाम इसी शक्तिके रूपान्तर हैं और रूप भी इसीके अधीन हैं। बीजमन्त्र इसी शक्तिका व्यक्त रूप भूलोकमें है। मन्त्र सिद्ध हो जानेपर वह पवित्रात्माका उद्धार माताकी भाँति करता है, किन्तु अपवित्रात्मा और कामासक्तको अधोगति देता है।

शक्ति और शक्तिमान्‌की अभिन्नता

(लेखक—श्रीआनन्दस्वरूपजी 'साहेबजी महाराज', दयालबाग़)

जाड़ेका दिन था और प्रातःकालकी बेला। उषाकी लाल-लाल कोमल किरणें क्षितिज-पर खेल रही थीं। प्रभातमें नवजीवन-के सञ्चारके साथ-साथ पशु, पक्षी, मनुष्यमें भी एक नवीन चेतनाका आविर्भाव हो रहा था। शीघ्र ही हवामें सङ्गीत, तुमुल ध्वनि और हास्य भर गया! प्राची-का महामहिम अधिपति आकाशमें अपने चमकते हुए सोनेके रथपर आरूढ़ दिखलायी दिया। प्रकृति माताने हँसते हुए उनका अभिवादन किया—उन्होंने अपनी सुनहरी किरणें फैला दीं, उसे प्यारसे चूम लिया, सहलाया। माता प्रकृति प्रेममें खिलखिलाकर हँस पड़ी—और फिर अन्य जीवों, पशु, पक्षी, मनुष्यका क्या कहना!

'प्यारे, भोले पक्षियो! प्राचीका यह महान् सम्राट् 'कौन है?'—मैंने पूछा।

वे केवल चहचहाते रहे।

'पशुओ! तुम बतलाओगे?'

वे केवल रँभाते रहे।

'माँ, प्यारी माँ! तुम मेरी सहायता करोगी?'

'वह मेरा प्रेमी है'—कुछ सकुचाते हुए, शर्माते हुए माँने कहा।'

'क्या तुम उसकी रानी नहीं हो?'

'ऊ हूँ; यदि मैं उनकी रानी होती, वह रातदिन मेरे महलमें बसते!'

'परन्तु·································'

'मैं व्यस्त हूँ—परन्तु-वरन्तुके लिये समय नहीं'—माँने बीचमें ही ज़रा तेजीसे रोक दिया।

सुनहला रथ धीरे-धीरे पश्चिमकी ओर बढ़ता चला और माँ उदास, उद्विग्न और खिन्न हो गयी।

मैंने कहा, "पशुओ और पक्षियो! नित्य प्रातःकाल तुम 'देवता' को देखते हो, उसकी कृपाका आस्वादन करते हो, चहचहाते हो, रँभाते हो······और फिर भूल जाते हो! और माँ! तुम भी उसका नित्यप्रति अभिवादन किया करती हो, उसके प्यार और स्नेहको पीती हो और पुनः उसे भूल जाती हो!"

'हम सभी बहुत अधिक व्यस्त हैं'— वे एक साथ बोल उठे, मेरी ओर पीठ फेरकर और मुझे आश्चर्यमें छोड़कर चल दिये, मैं रोता रहा।

मैं एकान्तमें सोचता रहा, "तो क्या मनुष्यके ही हिस्से 'अपरिचित' के लिये अमर उत्कण्ठा मिली है? शेष सभी—माता प्रकृति भी व्यस्त है—केवल मनुष्यको अवकाश प्राप्त है! परन्तु इसका कारण? प्रभुकी इस दैनमें कोई विशेष प्रयोजन होगा। हमें आँखें मिली हैं और सामने प्रकृति-के अमित सौन्दर्यका भाण्डार खुला पड़ा है—देखनेके लिये और आनन्द लूटनेके लिये! रसास्वादनके लिये हमें जिह्वा मिली है और साथ ही प्रकृतिका सुस्वादु, सरस उपकरण भी—जिसका हम आस्वादन कर सकें! इसके साथ ही, इसी प्रकार प्रभुने कृपाकर जिज्ञासाकी कुतूहलपूर्ण वृत्तिकी दैन दी है, उसकी भूखप्यास मिटानेके लिये भी तो कुछ विधान अवश्य होगा। परन्तु केवल सूर्यके लिये ही हमारी जिज्ञासा क्यों हो? आकाशमें इसके समान तो करोड़ों ज्योतिः-पुञ्ज हैं और यह ब्रह्माण्डके विराट् विस्तारका एक छोटा-सा विन्दुमात्र है। क्यों न विश्वके कर्त्ता-धर्ताको ही जाननेकी लालसा रक्खें? क्यों न हम उस महान् अज्ञात तत्त्वको जाननेके लिये उत्सुक हों? सहसा मुझे एक हलके आघात-का अनुभव हुआ—जिसने मुझे रोक दिया! मैं रुका और अह! हृदयके अन्तस्‌से एक ध्वनि आयी!

'यदि तुम वैसा करो तो तुम वस्तुतः सर्वोचित बात करोगे'—उस वाणीके ये कोमल शब्द थे। कितने कोमल, फिर भी कितने दृढ़तापूर्ण!

मेरे अधरोंपर एक मन्द मुसकान जग उठी! न चाहते हुए भी मैं मुसकाया। मैंने इसे रोका और अपनेमें लौटने-की शीघ्र चेष्टा करने लगा। परन्तु विश्वका कर्त्ता और धर्त्ता है कौन? न पक्षी, न पशु और न मनुष्य ही! जहाँ क्रिया है वहाँ शक्ति अवश्य होनी चाहिये। 'वह' शक्तिका अगाध महासागर होगा।

'इससे काम न चलेगा'—अन्तस्‌की वाणीने अधिकार-पूर्ण शब्दोंमें कहा।

'वह' परम चिद्घन शक्तिका समुद्र होगा ।

'फिर चेष्टा करो'—भीतरकी वाणीने कहा । 'वह' परम आध्यात्मिक शक्तिका अनन्त निर्झर होगा ।

'बस'—उस वाणीने कहा । इस विश्वका कर्त्ता-धर्त्ता परम आध्यात्मिक शक्तिका एक अनन्त निर्झर है ! और इसी हेतु कि वह शक्तिका अजस्र निर्झर है—सृष्टिके आदिमें उसमेंसे एक आध्यात्मिक धारा फूट निकली होगी, क्योंकि क्रियाशील शक्तिका अत्यधिक उपचय सदैव प्रखर प्रवाहका रूप धारण कर लेता है ।

नम्रतापूर्वक धीरेसे संकेतरूपमें अन्तस्की वाणी बोली—'समुद्र और समुद्रकी लहर एक ही वस्तु हैं ।'

हाँ, समुद्र और लहर अभिन्न और अनन्य हैं । एक ही वस्तुके दो रूप हैं । यही बात परम आध्यात्मिक शक्तिके अनन्त निर्झर और सृष्टिके आदिमें उससे निकले हुए अनन्त आध्यात्मिक स्रोतके सम्बन्धमें होनी चाहिये । एक ही परम आध्यात्मिक तत्त्वके दो रूप—परम आध्यात्मिक शक्तिका अनन्त निर्झर और आध्यात्मिक शक्तिका स्रोत । एक स्थिरताका बोधक है और दूसरा है गतिशीलताका । 'शक्ति' के निर्झरमें उपप्लव हुए बिना उसमेंसे शक्तिकी धारा प्रवाहित नहीं हो सकती । अस्तु, परम आध्यात्मिक शक्तिके अनन्त निर्झरमें भी एक बार उफान आया, उपप्लव हुआ; और इसी उफान अथवा उपप्लवसे परम आध्यात्मिक स्रोतका आविर्भाव हुआ !

'यह धारा ही 'राधा' है, वह ह्रद है 'स्वामी' !'—उस वाणीने धीरेसे कहा ।

अस्तु, 'राधा' और 'स्वामी' एक ही तत्त्वके दो रूप हैं । राधा शक्ति है, स्वामी शक्तिमान् । धन्य है 'राधास्वामी' का नाम ।

कल्याण

सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वमय, समस्तगुणाधार, निर्विकार, नित्य, निरञ्जन, सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता, विज्ञानानन्दघन, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं । वे एक ही अनेक भावों और अनेक रूपोंमें लीला करते हैं । हम अपने समझनेके लिये मोटे रूपसे उनके आठ रूपोंका भेद कर सकते हैं । एक—नित्य, विज्ञानानन्दघन, निर्गुण, निराकार, मायारहित, एकरस ब्रह्म; दूसरे—सगुण, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त निराकार परमात्मा; तीसरे—सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा; चौथे—पालनकर्त्ता भगवान् विष्णु; पाँचवें—संहारकर्त्ता भगवान् रुद्र; छठे—श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदुर्गा, काली आदि साकाररूपोंमें अवतरित रूप; सातवें—असंख्य जीवात्मारूपसे विभिन्न जीवशरीरोंमें व्याप्त और आठवें—विश्व-ब्रह्माण्डरूप विराट् । ये आठों रूप एक ही परमात्माके हैं । इन्हीं समग्ररूप प्रभुको रुचिवैचित्र्यके कारण संसारमें लोग ब्रह्म, सदाशिव, महाविष्णु, ब्रह्मा, महाशक्ति, राम, कृष्ण, गणेश, सूर्य, अल्लाह, गॉड आदि भिन्न-भिन्न नामरूपोंमें विभिन्न प्रकारसे पूजते हैं । वे सच्चिदानन्दघन अनिर्वचनीय प्रभु एक ही हैं, लीलाभेदसे उनके नामरूपोंमें भेद है । और इसी भेदभावके कारण उपासनामें भेद है । यद्यपि उपासकको अपने इष्टदेवके नाम-रूपमें ही अनन्यता रखनी चाहिये तथा उसीकी पूजा शास्त्रोक्त पूजन-पद्धतिके अनुसार करनी चाहिये, परन्तु इतना निरन्तर स्मरण रखना चाहिये कि शेष सभी रूप और नाम भी उसीके इष्टदेवके हैं । उसीके प्रभु इतने विभिन्न नामरूपोंमें समस्त विश्वके द्वारा पूजित होते हैं । उनके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं । तमाम जगत्में वस्तुतः एक वही फैले हुए हैं । जो विष्णुको पूजता है वह अपने आप ही शिव, ब्रह्मा, राम, कृष्ण आदिको पूजता है और जो राम, कृष्णको पूजता है वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको । एककी पूजासे स्वाभाविक ही सभीकी पूजा हो जाती है, क्योंकि एक ही सब बने हुए हैं, परन्तु जो किसी एक रूपसे अन्य समस्त रूपोंको अलग मानकर औरोंकी अवज्ञा करके केवल अपने इष्ट एक ही रूपको अपनी ही सीमामें आबद्ध रखकर पूजता है वह अपने परमेश्वरको छोटा बना लेता है, उनको सर्वेश्वरत्वके आसनसे नीचे उतारता है । इसलिये उसकी पूजा सर्वोपरि सर्वमय भगवान्की न होकर एकदेशनिवासी स्वल्प देवविशेषकी होती है और उसे वैसा ही उसका अल्प फल भी मिलता है । अतएव पूजो एक ही रूपको, परन्तु शेष सब रूपोंको समझो उसी एकके वैसे ही शक्तिसम्पन्न अनेक रूप ।

× × ×

असलमें वह एक महाशक्ति ही परमात्मा हैं जो विभिन्न रूपोंमें विविध लीलाएँ करती हैं। परमात्माके पुरुषवाचक सभी स्वरूप इन्हीं अनादि, अविनाशिनी, अनिर्वचनीया, सर्वशक्तिमयी, परमेश्वरी आद्यामहाशक्तिके ही हैं। यही महाशक्ति अपनी मायाशक्तिको जब अपने अन्दर छिपाये रखती हैं, उससे कोई क्रिया नहीं करतीं, तब निष्क्रिय, शुद्ध ब्रह्म कहलाती हैं। यही जब उसे विकासोन्मुख करके एकसे अनेक होनेका संकल्प करती हैं तब स्वयं ही पुरुषरूपसे मानों अपनी ही प्रकृतिरूप योनिमें संकल्पद्वारा चेतनरूप बीज स्थापन करके सगुण, निराकार परमात्मा बन जाती हैं। इसीकी अपनी शक्तिसे, गर्भाशयमें वीर्यस्थापनसे होनेवाले विकारकी भाँति उस प्रकृतिमें क्रमशः सात विकृति होती हैं (महत्तत्त्व—समष्टि बुद्धि, अहंकार और सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएँ—मूल प्रकृतिके विकार होनेसे इन्हें विकृति कहते हैं; परन्तु इनसे अन्य सोलह विकारोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इन सातोंके समुदायको प्रकृति भी कहते हैं) फिर अहंकारसे मन और दस (ज्ञानकर्मरूप) इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्रासे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। (इसीलिये इन दोनोंके समुदायका नाम प्रकृतिविकृति है। मूलप्रकृतिके सात विकार, सप्तधा विकाररूपा प्रकृतिसे उत्पन्न सोलह विकार और स्वयं मूलप्रकृति—ये कुल मिलाकर चौबीस तत्त्व हैं) यों वह महाशक्ति ही अपनी प्रकृतिसहित चौबीस तत्त्वोंके रूपमें यह स्थूल संसार बन जाती हैं और जीवरूपसे स्वयं पचीसवें तत्त्वरूपमें प्रविष्ट होकर खेल खेलती हैं। चेतन परमात्मरूपिणी महाशक्तिके बिना जड प्रकृतिसे यह सारा कार्य कदापि सम्पन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार महाशक्ति विश्वरूप विराट् पुरुष बनती हैं और इस सृष्टिके निर्माणमें स्थूल निर्माता प्रजापतिके रूपमें आप ही अंशावतारके भावसे ब्रह्मा और पालनकर्त्ताके रूपमें विष्णु और संहारकर्त्ताके रूपमें रुद्र बन जाती हैं। और ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रभृति अंशावतार भी किसी कल्पमें दुर्गारूपसे होते हैं, किसीमें महाविष्णुरूपसे, किसीमें महाशिवरूपसे, किसीमें श्रीरामरूपसे और किसीमें श्रीकृष्णरूपसे। एक ही शक्ति विभिन्न कल्पोंमें विभिन्न नामरूपोंसे सृष्टिरचना करती हैं। इस विभिन्नताका कारण और रहस्य भी उन्हींको ज्ञात है। यों अनन्त ब्रह्माण्डोंमें महाशक्ति असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनी हुई हैं। और अपनी मायाशक्तिसे अपनेको ढँककर आप ही जीवसंज्ञाको प्राप्त हैं। ईश्वर, जीव, जगत् तीनों आप ही हैं। भोक्ता, भोग्य और भोग तीनों आप ही हैं। इन तीनोंको अपनेहीसे निर्माण करनेवाली, तीनोंमें व्याप्त रहनेवाली भी आप ही हैं।

× × ×

परमात्मरूपा यह महाशक्ति स्वयं अपरिणामिनी हैं, परन्तु इन्हींकी मायाशक्तिसे सारे परिणाम होते हैं। यह स्वभावसे ही सत्ता देकर अपनी मायाशक्तिको क्रीडाशीला अर्थात् क्रियाशीला बनाती हैं, इसलिये इनके शुद्ध विज्ञानानन्दघन नित्य अविनाशी एकरस परमात्मरूपमें कदापि कोई परिवर्तन न होनेपर भी इनमें परिणाम दीखता है। क्योंकि इनकी अपनी शक्ति मायाका विकसित स्वरूप नित्य क्रीडामय होनेके कारण सदा बदलता ही रहता है और वह मायाशक्ति सदा इन महाशक्तिसे अभिन्न रहती है। वह महाशक्तिकी ही स्व-शक्ति है, और शक्तिमान्से शक्ति कभी पृथक् नहीं हो सकती, चाहे वह पृथक् दीखे भले ही। अतएव शक्तिका परिणाम स्वयमेव ही शक्तिमान्पर आरोपित हो जाता है, इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म या महाशक्तिमें परिणामवाद सिद्ध होता है।

× × ×

और चूँकि संसाररूपसे व्यक्त होनेवाली यह समस्त क्रीडा महाशक्तिकी अपनी शक्ति मायाका ही खेल है और मायाशक्ति उनसे अलग नहीं, इसलिये यह सारा उन्हींका ऐश्वर्य है। उनको छोड़कर जगत्में और कोई वस्तु ही नहीं; दृश्य, द्रष्टा और दर्शन तीनों वह आप ही हैं, अतएव जगत्को मायिक बतलानेवाला मायावाद भी इस हिसाबसे ठीक ही है।

× × ×

इसी प्रकार महाशक्ति ही अपने मायारूपी दर्पणमें अपने विविध श्रृंगारों और भावोंको देखकर जीवरूपसे आप ही मोहित होती हैं। इससे आभासवाद भी सत्य है।

× × ×

परमात्मरूप महाशक्तिकी उपर्युक्त मायाशक्तिको अनादि और सान्त कहते हैं। सो उसका अनादि होना तो ठीक ही है, क्योंकि यह शक्तिमयी महाशक्तिकी अपनी शक्ति होनेसे उसीकी भाँति अनादि है। परन्तु शक्तिमयी महाशक्ति तो नित्य अविनाशिनी है, फिर उसकी शक्ति माया अन्त-वाली कैसे होगी? इसका उत्तर यह है कि वास्तवमें वह अन्तवाली नहीं है। अनादि, अनन्त, नित्य, अविनाशी परमात्मरूपा महाशक्तिकी भाँति उसकी शक्तिका भी कभी

विनाश नहीं हो सकता। परन्तु जिस समय वह कार्यकरण-विस्ताररूप समस्त संसारसहित महाशक्तिके सनातन अव्यक्त परमात्मरूपमें लीन रहती है, क्रियाहीना रहती है, तबतकके लिये वह अदृश्य या शान्त हो जाती है और इसीसे उसे सान्त कहते हैं। इस दृष्टिसे उसको सान्त कहना सत्य ही है।

× × ×

कोई-कोई परमात्मरूपा महाशक्तिकी इस मायाशक्तिको अनिर्वचनीय कहते हैं, सो भी ठीक ही है। क्योंकि यह शक्ति उस सर्वशक्तिमती महाशक्तिकी अपनी ही तो शक्ति है। जब वह अनिर्वचनीय है, तब उसकी अपनी शक्ति अनिर्वचनीय क्यों न होगी?

× × ×

कोई-कोई कहते हैं कि इस मायाशक्तिका ही नाम महाशक्ति, प्रकृति, विद्या, अविद्या, ज्ञान, अज्ञान आदि है, महाशक्ति अलग वस्तु नहीं है। सो उनका यह कथन भी एक दृष्टिसे सत्य ही है। क्योंकि मायाशक्ति परमात्मरूपा महाशक्तिकी ही शक्ति है, और वही जीवोंके बाँधनेके लिये अज्ञान या अविद्यारूपसे और उनकी बन्धन-मुक्तिके लिये ज्ञान या विद्यारूपसे अपना स्वरूप प्रकट करती है, तब इनसे भिन्न कैसे रही? हाँ, जो मायाशक्तिको ही शक्ति मानते हैं और महाशक्तिका कोई अस्तित्व ही नहीं मानते वे तो मायाके अधिष्ठान ब्रह्मको ही अस्वीकार करते हैं, इसलिये वे अवश्य ही मायाके चक्करमें पड़े हुए हैं।

× × ×

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण! ये दोनों बातें भी ठीक हैं, क्योंकि उस एकके ही तो ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशीला रहती है तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती हैं। और जब वह महाशक्तिमें मिली रहती है तब महाशक्ति निर्गुण हैं। इस अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामञ्जस्य है। वह जिस समय निर्गुण हैं उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई मौजूद है और जब वह सगुण कहलाती है उस समय भी वह गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही हैं। उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसको उनका वैसा ही रूप भान होता है। असलमें वह कैसी हैं, क्या हैं इस बातको वही जानती हैं!

× × ×

कोई-कोई कहते हैं कि शुद्धब्रह्ममें मायाशक्ति नहीं रह सकती, माया रही तो वह शुद्ध कैसे? बात समझनेकी है। शक्ति कभी शक्तिमान्से पृथक् नहीं रह सकती। यदि शक्ति नहीं है तो उसका शक्तिमान् नाम नहीं हो सकता, और शक्तिमान् न हो तो शक्ति रहे कहाँ? अतएव शक्ति सदा ही शक्तिमान्में रहती है। शक्ति नहीं होती तो सृष्टिके समय शुद्धब्रह्ममें एकसे अनेक होनेका संकल्प कहाँसे और कैसे होता? इसपर कोई यदि यह कहे कि 'जिस समय संकल्प हुआ उस समय शक्ति आ गयी, पहले नहीं थी।' 'अच्छी बात है; पर बताओ, वह शक्ति कहाँसे आ गयी? ब्रह्मके सिवा कहाँ जगह थी जहाँ वह अबतक छिपी बैठी थी? इसका क्या उत्तर है?' 'अजी, ब्रह्ममें कभी संकल्प ही नहीं हुआ, यह सब असत् कल्पनाएँ हैं, मिथ्या स्वप्नकी-सी बातें हैं।' 'अच्छी बात है, पर यह मिथ्या कल्पनाएँ किसने किस शक्तिसे की और मिथ्या स्वप्नको किसने किस सामर्थ्यसे देखा? और मान भी लिया जाय कि यह सब मिथ्या है तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शुद्ध ब्रह्मका अस्तित्व किससे है? जिससे वह अस्तित्व है वही उसकी शक्ति है। क्या जीवनीशक्ति बिना भी कोई जीवित रह सकता है? अवश्य ही ब्रह्मकी वह जीवनीशक्ति ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। वही जीवनशक्ति अन्यान्य समस्त शक्तियोंकी जननी हैं, वही परमात्मरूपा महाशक्ति है। अन्यान्य सारी शक्तियाँ अव्यक्तरूपसे उन्हींमें छिपी रहती हैं—और जब वह चाहती हैं तब उनको प्रकट करके काम लेती हैं। हनूमान्में समुद्र लाँघनेकी शक्ति थी पर वह अव्यक्त थी, जाम्बवान्के याद दिलाते ही हनूमान्ने उसे व्यक्त रूप दे दिया। इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा या परमाशक्ति भी नित्य शक्तिमान् हैं; हाँ, कभी वह शक्ति उनमें अव्यक्त रहती है और कभी व्यक्त। अवश्य ही भगवान्की शक्तिको व्यक्त रूप भगवान् स्वयं ही देते हैं, यहाँ किसी जाम्बवान्की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसीसे ऋषिमुनियोंने इस शक्तिमान् परमात्माको महाशक्तिके रूपमें देखा।

× × ×

इन्हीं सगुण-निर्गुणरूप भगवान् या भगवतीसे उपर्युक्त प्रकारसे कभी महादेवीरूपके द्वारा, कभी महाशिवरूपके द्वारा, कभी महाविष्णुरूपके द्वारा, कभी श्रीकृष्णरूपके द्वारा, कभी श्रीरामरूपके द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, और यही

परमात्मरूपा महाशक्ति पुरुष और नारीरूपमें विविध अवतारोंमें प्रकट होती हैं। अपने पुरुषरूप अवतारोंमें स्वयं महाशक्ति ही लीलाके लिये उन्हींके अनुसार रूपोंमें उनकी पत्नी बन जाती हैं। ऐसे बहुत-से इतिहास मिलते हैं जिनमें महाविष्णुने लक्ष्मीसे, श्रीकृष्णने राधासे, श्रीसदाशिवने उमासे और श्रीरामने सीतासे, एवं इसी प्रकार श्रीलक्ष्मी, राधा, उमा और सीताने महाविष्णु, श्रीकृष्ण, श्रीसदाशिव और श्रीरामसे कहा है कि हम दोनों सर्वथा अभिन्न हैं, एकके ही दो रूप हैं, सिर्फ लीलाके लिये एकके दो रूप बन गये हैं; वस्तुतः हम दोनोंमें कोई भी अन्तर नहीं है।

× × ×

यही आदिके तीन जोड़े उत्पन्न करनेवाली महालक्ष्मी हैं; इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता बनते हैं, जिनसे विश्वकी उत्पत्ति होती है। इन्हींकी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पालन और संहार करते हैं। दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, कान्ति, लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तियाँ हैं। यही गोलोकमें श्रीराधा, साकेतमें श्रीसीता, क्षीरोदसागरमें लक्ष्मी, दक्षकन्या सती, दुर्गतिनाशिनी मेनकापुत्री दुर्गा हैं; यही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री और गायत्री हैं। यही सूर्यकी प्रभाशक्ति, पूर्णचन्द्रकी सुधावर्षिणी शोभाशक्ति, अग्निकी दाहिका शक्ति, वायुकी वहनशक्ति, जलकी शीतलताशक्ति, धराकी धारणाशक्ति, और शस्यकी प्रसूतिशक्ति हैं। यही तपस्वियोंका तप, ब्रह्मचारियोंका ब्रह्मतेज, गृहस्थोंकी सर्वाश्रम-आश्रयता, वानप्रस्थोंकी संयमशीलता, संन्यासियोंका त्याग, महापुरुषोंकी महत्ता और मुक्त पुरुषोंकी मुक्ति हैं। यही शूरोंका बल, दानियोंकी उदारता, मातापिताका वात्सल्य, गुरुकी गुरुता, पुत्र और शिष्यकी गुरुजनभक्ति, साधुओंकी साधुता, चतुरोंकी चातुरी और मायावियोंकी माया हैं। यही लेखकोंकी लेखनशक्ति, वाग्मियोंकी वक्तृत्वशक्ति, न्यायी नरेशोंकी प्रजापालनशक्ति और प्रजाकी राजभक्ति हैं। यही सदाचारियोंकी दैवी सम्पत्ति, मुमुक्षुओंकी षट्सम्पत्ति, धनवानोंकी अर्थसम्पत्ति और विद्वानोंकी विद्यासम्पत्ति हैं। यही ज्ञानियोंकी ज्ञानशक्ति, प्रेमियोंकी प्रेमशक्ति, वैराग्यवानोंकी विरागशक्ति और भक्तोंकी भक्तिशक्ति हैं। यही राजाओंकी राजलक्ष्मी, वणिकोंकी सौभाग्यलक्ष्मी, सज्जनोंकी शोभालक्ष्मी, और श्रेयार्थियोंकी श्री हैं। यही पतिकी पत्नीप्रीति और पत्नीकी पतिव्रताशक्ति हैं। सारांश यह कि जगत्में तमाम जगह परमात्मरूपा महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें खेल रही हैं। तमाम जगह स्वाभाविक ही शक्तिकी पूजा हो रही है। जहाँ शक्ति नहीं है वहीं शून्यता है। शक्तिहीनकी कहीं कोई पूछ नहीं। प्रह्लाद, ध्रुव भक्तिशक्तिके कारण पूजित हैं। गोपी प्रेमशक्तिके कारण जगत्पूज्य हैं। भीष्म, हनूमान्‌की ब्रह्मचर्यशक्ति; व्यास, वाल्मीकिकी कवित्वशक्ति; भीम, अर्जुनकी शौर्यशक्ति; युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्रकी सत्यशक्ति; शङ्कर रामानुजकी विज्ञानशक्ति; शिवाजी, प्रतापकी वीरशक्ति, इस प्रकार जहाँ देखो वहीं शक्तिके कारण ही सबकी शोभा और पूजा है। सर्वत्र शक्तिका ही समादर और बोलबाला है। शक्तिहीन वस्तु जगत्में टिक ही नहीं सकती! सारा जगत् अनादिकालसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे निरन्तर केवल शक्तिकी ही उपासनामें लग रहा है और सदा लगा रहेगा।

× × ×

यह महाशक्ति ही सर्वकारणरूप प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं, यही मायाधीश्वरी हैं, यही सृजन-पालन-संहारकारिणी आद्या नारायणीशक्ति हैं, और यही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर होती हैं। परा और अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा यही दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वैताद्वैत दोनोंका समावेश है। यही वैष्णवोंकी श्रीनारायण और महालक्ष्मी, श्रीराम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा, शैवोंकी श्रीशङ्कर और उमा, गाणपत्योंकी श्रीगणेश और ऋद्धि-सिद्धि, सौरोंकी श्रीसूर्य और उषा, ब्रह्मवादियोंकी शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या हैं और शाक्तोंकी महादेवी हैं। यही पञ्चमहाशक्ति, दशमहाविद्या, नवदुर्गा हैं। यही अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिताम्बा हैं। यही शक्तिमान् हैं, यही शक्ति हैं, यही नर हैं, यही नारी हैं। यही माता, धाता, पितामह हैं; सब कुछ यही हैं! सबको सर्वतोभावसे इन्हींके शरण जाना चाहिये।

× × ×

जो श्रीकृष्णरूपकी उपासना करते हैं वे भी इन्हींकी करते हैं। जो श्रीराम, शिव या गणेशरूपकी उपासना करते हैं वे भी इन्हींकी करते हैं। और इसी प्रकार जो श्री, लक्ष्मी, विद्या, काली, तारा, षोडशी आदि रूपोंमें उपासना करते हैं वे भी इन्हींकी करते हैं। श्रीकृष्ण ही काली हैं, माँ

काली ही श्रीकृष्ण हैं। इसलिये जो जिस रूपकी उपासना करते हों, उन्हें उस उपासनाको छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इतना अवश्य निश्चय कर लेना चाहिये कि 'मैं जिन भगवान् या भगवतीकी उपासना कर रहा हूँ, वही सर्वदेवमय और सर्वरूपमय हैं, सर्वशक्तिमान् और सर्वोपरि हैं। दूसरोंके सभी इष्टदेव इन्हींके विभिन्न स्वरूप हैं।' हाँ, पूजामें भगवानके अन्यान्य रूपोंका यदि कहीं विरोध हो या उनसे द्वेषभाव हो तो उसे जरूर निकाल देना चाहिये। साथ ही किसी तामसिक पद्धतिका अवलम्बन किया हुआ हो तो उसे भी अवश्य ही छोड़ देना चाहिये।

× × ×

तामसिक देवता, तामसिक पूजा, तामसिक आचार सभी नरकोंमें ले जानेवाले हैं, चाहे उनसे थोड़े कालके लिये सुख मिलता हुआ-सा प्रतीत भले ही हो। देवता वस्तुतः तामसिक नहीं होते, पूजक अपनी भावनाके अनुसार उन्हें तामसिक बना लेते हैं। जो देवता अल्प सीमामें आबद्ध हों, जिनको तामसिक वस्तुएँ प्रिय हों, जो मांस-मद्य आदिसे प्रसन्न होते हों, पशुबलि चाहते हों, जिनकी पूजामें तामसिक गन्दी वस्तुओंका प्रयोग आवश्यक हो, जिनके लिये पूजा करनेवालेको तामसिक आचारकी प्रयोजनीयता प्रतीत होती हो, वह देवता, उनकी पूजा और उन पूजकोंके आचार तामसी हैं और तामसी पापाचारीको बार-बार नरकोंकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

यद्यपि तन्त्रशास्त्र समस्त श्रेष्ठ साधनशास्त्रोंमें एक बहुत उत्तम शास्त्र है, उसमें अधिकांश बातें सर्वथा अभिनन्दनीय और साधकको परमसिद्धि—मोक्ष प्रदान करानेवाली हैं, तथापि सुन्दर बगीचेमें भी जिस प्रकार असावधानीसे कुछ जहरीले पौधे उत्पन्न हो जाया करते और फूलने-फलने भी लगते हैं, इसी प्रकार तन्त्रमें भी बहुत-सी अवाञ्छनीय गन्दगी आ गयी है। यह विषयी कामान्ध मनुष्यों और मांसाहारी मद्यलोलुप अनाचारियोंकी ही काली करतूत मालूम होती है, नहीं तो श्रीशिव और ऋषिप्रणीत मोक्षप्रदायक पवित्र तन्त्रशास्त्रमें ऐसी बातें कहाँसे और क्यों आतीं? जिस शास्त्रमें अमुक-अमुक जातिकी स्त्रियोंका नाम ले-लेकर व्यभिचारकी आज्ञा दी गयी हो और उसे धर्म तथा साधन बताया गया हो, जिस शास्त्रमें पूजाकी पद्धतिमें बहुत ही गन्दी वस्तुएँ पूजासामग्रीके रूपमें आवश्यक बतायी गयी हों, जिस शास्त्रके माननेवाले साधक (!) हजार स्त्रियोंके साथ व्यभिचारको, और अष्टोत्तरशत नरबालकोंकी बलिको अनुष्ठानकी सिद्धिमें कारण मानते हों वह शास्त्र तो सर्वथा अशास्त्र और शास्त्रके नामको कलङ्कित करनेवाला ही है। व्यभिचारकी आज्ञा देनेवाले तन्त्रोंके अवतरण 'शिव' ने पढ़े हैं और तन्त्रके नामपर व्यभिचार और नरबलि करनेवाले मनुष्योंकी घृणित गाथाएँ विश्वस्त सूत्रसे सुनी हैं। ऐसे महान् तामसिक कार्योंको शास्त्रसम्मत मानकर भलाईकी इच्छासे इन्हें करना सर्वथा भ्रम है, भारी भूल है और ऐसी भूलमें कोई पड़े हुए हों तो उन्हें तुरन्त ही इससे निकल जाना चाहिये। और जो जान-बूझकर धर्मके नामपर व्यभिचार, हिंसा आदि करते हों, उनको तो जब माँ चण्डीका भीषण दण्ड प्राप्त होगा, तभी उनके होश ठिकाने आवेंगे। दयामयी माँ अपनी भूली हुई सन्तानको क्षमा करें और उसे रास्तेपर लावें, यही प्रार्थना है।

× × ×

इसके अतिरिक्त पञ्चमकारके नामपर भी बड़ा अन्याय-अनाचार हुआ तथा अब भी बहुत जगह हो रहा है, उससे भी सतर्कतासे बचना चाहिये। बलिदान तथा मद्यप्रदान भी सर्वथा त्याज्य हैं। माताकी जो सन्तान, अपनी भलाईके लिये—मातासे ही अपनी कामना पूरी करानेके लिये, उसी माताकी प्यारी भोलीभाली सन्तानकी हत्या करके उसके खूनसे माँको पूजती है, जो माँके बच्चोंके खूनसे माँके मन्दिरको अपवित्र और कलङ्कित करता है, उसपर माँ कैसे प्रसन्न हो सकती हैं? माँ दुर्गा काली जगज्जननी विश्वमाता हैं। स्वार्थी मनुष्य अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये—धन-पुत्र, स्वार्थ, वैभव, सिद्धि या मोक्षके लिये भ्रमवश निरीह बकरे, भैंसे और अन्यान्य पशु-पक्षियोंके गलेपर छुरी फेरकर मातासे सफलताका वरदान चाहता है, यह कैसी असंगत और असम्भव बात है। निरपराध प्राणियोंकी नृशंसतापूर्वक हत्या करने-करानेवाला कभी सुखी हो सकता है? उसे कभी शान्ति मिल सकती है? कदापि नहीं। दयाहीन मांस-लोलुप मनुष्योंने ही इस प्रकारकी प्रथा चलायी है। जिसका शीघ्र ही अन्त हो जाना चाहिये। जो दूसरे निर्दोष प्राणियोंकी गर्दन काटकर अपना भला मनावेगा, उसका यथार्थ भला कभी नहीं हो सकता। यह बात स्मरण रखनी चाहिये। खयाल करो। तुम्हें खूँटेसे बाँधकर यदि कोई मारे या तुम्हारे गलेपर छुरी फेरे तो तुम्हें कितना

कष्ट होगा ? नन्हीं-सी सुई या काँटा चुभ जानेपर ही तलमला उठते हो। फिर इस पापी पेटके लिये और राक्षसोंकी भाँति मांससे जीभको तृप्त करनेके लिये गरीब पशु-पक्षियोंको धर्मके नामपर—अरे, माताके भोगके नामपर मारते तुम्हें शरम नहीं आती ? मानों उन्हें कोई कष्ट ही नहीं होता। याद रक्खो, वे सब तुम्हारा बदला लेंगे। और तब तुम्हें अपनी करनीपर निरुपाय होकर हायतोबा करना पड़ेगा। अतएव सावधान! माताके नामपर गरीब निरीह पशु-पक्षियोंको बलि देना तुरन्त बन्द कर दो, माताके पवित्र मन्दिरोंको उसीकी प्यारी सन्तानके खूनसे रँगकर माँके अकृपाभाजन मत बनो।

बलिदान जरूर करो, परन्तु करो अपने स्वार्थका और अपने दोषोंका। माँके नामपर माँकी दुखी सन्तानके लिये अपना न्यायोपार्जित धन दानकर धनका बलिदान करो; माँकी दुखी सन्तानका दुःख दूर करनेके लिये अपने सारे सुखोंकी, और अपने प्यारे शरीरकी भी बलि चढ़ा दो। न्योछावर कर दो निष्कामभावसे माँके चरणोंपर अपना सारा धन, जन, बुद्धि, बल, ऐश्वर्य, सत्ता और साधन, उसकी दीन, हीन, दुखी, दलित सन्तानको सुखी करनेके लिये! तुमपर माँकी कृपा होगी। माँके पुलकित हृदयसे जो आशीर्वाद मिलेगा, माँकी गद्गद्वाणी तुम्हें अपने दुखी भाइयोंकी सेवा करते देखकर जो स्वाभाविक वरदान देगी उससे तुम निहाल हो जाओगे। तुम्हारे लोक, परलोक दोनों बन जायँगे। तुम प्रेय और श्रेय दोनोंको अनायास पा जाओगे, माँ तुम्हें गोदमें लेकर तुम्हारा मुख चूमेंगी और फिर तुम कभी, उनकी शीतल सुखद नित्यानन्दमय परमधाममय गोदसे नीचे नहीं उतरोगे!

बलिदान करना है तो बलि चढ़ाओ—कामकी, क्रोधकी, लोभकी, हिंसाकी, असत्यकी, और इन्द्रियविषयासक्तिकी; माँ तुम्हारी इन चीजोंको नष्ट कर दे, ऐसी माँसे प्रार्थना करो। माँके चरणरजरूपी तीक्ष्णधार तलवारसे इन दुर्गुणरूपी असुरोंकी बलि चढ़ा दो। अथवा प्रेमकी कटारीसे ममत्व और अभिमानरूपी राक्षसोंकी बलि दे दो! तुम कहोगे 'फिर माँके हाथमें नरमुण्ड क्यों है ? माँ भैंसेको क्यों मार रही हैं ? माँ राक्षसोंका नाश क्यों कर रही हैं ? क्या वे माँके बच्चे नहीं हैं ? उन अपने बच्चोंकी बलि माँ क्यों स्वीकार करती हैं ?' तुम इसका रहस्य नहीं समझते। उनकी बलि दूसरा कोई चढ़ाता नहीं, वे स्वयं आकर बलि चढ़ जाते हैं। अवश्य ही वे भी माँके बच्चे हैं, परन्तु वे ऐसे दुष्ट हैं कि माँके दूसरे असंख्य निरपराध बच्चोंको दुःख देकर, उन्हें पीड़ा पहुँचाकर, उनका स्वत्व छीनकर, उनके गले काटकर स्वयं राजा बने रहना चाहते हैं। स्वयं माँ लक्ष्मीको अपनी भोग्या बनाकर मातृगामी होना चाहते हैं, माँ उमासे विवाह करना चाहते हैं, ऐसे दुष्टोंको भी माँ मारना नहीं चाहती, शिवको दूत बनाकर उनके समझानेके लिये भेजती। पर जब वे किसी प्रकार नहीं मानते, तब दयापरवश हो उनका उद्धार करनेके लिये उनको बलिके लिये आह्वान करती हैं और वे आकर जलती हुई अग्निमें पतङ्गकी भाँति माँके चरणोंपर चढ़ जाते हैं। माँ दूसरे सीधे बालकोंको आश्वासन देने और ऐसे दुष्टोंको शासनमें रखनेके लिये ही मुण्डमाला धारण करती हैं। मारकर भी उनका उद्धार करती हैं। इन असुरोंकी इस बलिके साथ तुम्हारी आजकी यह स्वार्थपूर्ण बकरे और पक्षियोंकी निर्दयता और कायरतापूर्ण बलिसे कोई तुलना नहीं हो सकती। हाँ, यह तुम्हारा आसुरीपन राक्षसीपन अवश्य है। और इसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। अतएव राक्षस न बनो, माँकी प्यारी, दुलारी, सन्तान बनकर उसकी सुखद गोदमें चढ़नेका प्रयत्न करो।

× × ×

रागद्वेषपूर्वक किसीका बुरा करनेके लिये माँकी आराधना कभी न करो। याद रक्खो, माँ तुम्हारे कहनेसे अपनी सन्तानका बुरा नहीं कर सकतीं। जो दूसरेका बुरा चाहेगा, उसकी अपनी बुराई होगी। स्त्रीवशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये भी उनको मत पूजो, उन्हें पूजो दैवी-गुणोंकी उत्पत्तिके लिये, सबकी भलाईके लिये, अथवा मोक्षके लिये।

× × ×

सच तो यह है, परमात्मरूपिणी माँकी उपासना करके उनसे कुछ भी मत माँगो। ऐसी दयामयी सर्वेश्वरी जननीसे जो कुछ भी तुम माँगोगे, उसीमें ठगा जाओगे। तुम्हारा वास्तविक कल्याण किस बातमें है–इस बातको तुम नहीं समझते, माँ समझती हैं। तुम्हारी दृष्टि बहुत ही छोटी सीमामें आबद्ध है। माँकी दूरदृष्टि ही नहीं है, वह ईश्वरी माता, वह श्रीकृष्ण और श्रीरामरूपा माता, वह दुर्गा, सीता, उमा, राधा, काली, तारा सर्वज्ञ हैं। तुम्हारे लिये जो भविष्य

है, उनके लिये सभी वर्त्तमान है। फिर उनका हृदय दयाका अनन्त समुद्र है। वह दयामयी माता तुम्हारे लिये जो कुछ मंगलमय होगा—कल्याणकारी होगा, उसीका विधान करेंगी, स्वयं सोचेंगी और करेंगी; तुम तो बस, निश्चिन्त और निर्भय होकर अबोध शिशुकी भाँति उसका पवित्र आँचल पकड़े उनके वात्सल्यभरे मुखकी ओर ताकते रहो। डरना नहीं, काली तारा तुम्हारे लिये भयावनी नहीं हैं, वह भयदायिनी राक्षसोंके लिये हैं। भगवान् नृसिंहदेव सबके लिये भयानक थे परन्तु प्रह्लादके लिये भयानक नहीं थे। फिर, मातृरूप तो कैसा भी हो, अपने बच्चेके लिये कभी भयावना होता ही नहीं, सिंहनीका बच्चा अपनी माँसे कभी नहीं डरता। अतः उनकी गोदसे कभी न हटो, उनका आश्रय पकड़े रहो। माँ अपना काम आप करेंगी। माँगोगे, उसीमें धोखा खाओगे। पता नहीं, तुम्हें कहीं राज्य मिलनेकी बात सोची जा रही हो और तुम मोहवश कौड़ी ही माँग बैठो। असलमें तो तुम्हें माँगनेकी बात याद ही क्यों आनी चाहिये? तुम्हारे मनमें अभावका ही—कमीका ही बोध क्यों होना चाहिये, जब कि तुम त्रिभुवनेश्वरी अनन्त ऐश्वर्यमयी माँकी दुलारी सन्तान हो?' माँका सारा खजाना तो तुम्हारा ही है। परन्तु तुम्हें खजानेसे भी क्यों सरोकार होना चाहिये। छोटा बच्चा खजाने और धन-दौलतको नहीं जानता, वह तो जानता है केवल माँकी गोदको, माँके आँचलको, और माँके दूधभरे स्तनोंको। बस, इससे अधिक उसे और क्या चाहिये? माँ बहुत ही मूल्यवान् वस्तु देकर भी उसे अपनेसे अलग करना चाहे तब भी वह अलग नहीं होगा। वह उस बहुमूल्य वस्तुको—भोग और मोक्षको तृणवत् फेंक देगा। परन्तु माँका पल्ला कभी छोड़ना नहीं चाहेगा। ऐसी हालतमें राजराजेश्वरी सर्वलोकमहेश्वरी माँ भी उसे कभी नहीं छोड़ सकतीं। इसके सिवा शिशु सन्तानको और क्या चाहिये? अतएव तुम भी माँके छोटे भोले-भाले बच्चे बन जाओ। खबरदार, कभी माँके सामने सयाने बननेकी कल्पना भी मनमें न आने पावे!

× × ×

कुण्डलिनी और षट्चक्रोंकी बात भी सब ठीक है, परन्तु वर्तमान समयमें योगसाधन बड़ा कठिन है। उपयुक्त अनुभवी गुरु भी प्रायः नहीं मिलते। इस स्थितिमें योगके चक्करमें न पड़कर सरल शिशुपनसे आत्मसमर्पणभावसे उपासना करके माँको स्नेहसूत्रमें बाँध लो। माँकी कृपासे सारी योगसिद्धियाँ तुम्हारे चरणोंपर बिना ही बुलाये आ-आकर लोटने लगेंगी। मुक्ति तो पीछे-पीछे फिरेगी, इस आशासे कि तुम उसे स्वीकार कर लो; परन्तु तुम माताकी सेवामें ही सुख माननेवाले उसकी ओर नज़र उठाकर ताकना भी नहीं चाहोगे!

× × ×

तुम्हें माँ विचित्र-विचित्र लीलाएँ दिखलावेंगी—अपनी लीलाका एक पात्र बना लेंगी। कभी तुम व्रजकी गोपी बनोगे तो कभी मिथिलाकी सीतासखी; कभी उमाकी सहचरी बनोगे तो कभी माँ लक्ष्मीकी चिरसङ्गिनी सहेली। कभी सुदामा-श्रीदाम बनोगे, तो कभी लक्ष्मण-हनूमान्; कभी वीरभद्र-नान्दी बनोगे, तो कभी नारद और सनत्कुमार, और कभी चामुण्डा बनोगे तो कभी चण्डिका! मतलब यह कि तुम माँकी विश्वमोहिनी लीलामें लीलारूप बन जाओगे—फिर तुम्हें मोक्षसे प्रयोजन ही नहीं रहेगा, क्योंकि मोक्षका अधिकार तो माँकी लीलासे अलग रहनेवाले लोगोंको ही है। मोक्ष तुम्हारे लिये तरसेगा; परन्तु तुमको महेश्वर-महेश्वरीका ताण्डव-लास्य, राधेश्यामका नाचगान, देखनेसे और डमरूध्वनि या मुरलीकी मधुर तान सुननेसे ही कभी फुरसत नहीं मिलेगी। इससे बढ़कर धन्यजीवन और परम सुख और कौन-सा होगा?

× × ×

माँकी कृपासे मिलनेवाले इस आत्यन्तिकसे भी परेके श्रेष्ठतम सुखको छोड़कर जो केवल सांसारिक रूप, धन और यशके फेरमें पड़ा रहता है और उन्हें पानेके लिये ही माँकी आराधना करता है वह तो बड़ा ही भोला है। और वह तो अधम ही है जो इन सुखोंके लिये माँकी पूजाके नामपर पापाचार करता है और दूसरे प्राणियोंको पीड़ा पहुँचाकर लाभ उठाना चाहता है।

× × ×

सौन्दर्यकी—रूपकी दधकती आगमें पड़कर खाक हो जानेवाले पतङ्गे नरनारियो! सोचो, तुम्हारी कल्पनाके रूपमें कहाँ सौन्दर्य है? हाड़, मांस, मेद, मज्जा, चमड़ी, विष्ठा, मूत्र, केश, नख आदिमें कौन-सी वस्तु सुन्दर है? क्या गठीला शरीर सुन्दर है! अरे, चार दिन खूनके पचास-पचास दस्त हो जायँ तो वह हड्डियोंका ढाँचा रह जायगा। काले केश सुन्दर हैं! बुढ़ापा आने दो, चाँदीकी-सी शक्ल उनकी हो जायगी।

ऊपरकी चिकनाईमें सुन्दरता है तो अन्दर देखो—पेटके थैलेमें और नसोंमें मलमूत्र और रक्त भरा है, कीड़े किलबिला रहे हैं। कोढ़ीके शरीरके घावोंको देखो, वही तुम्हारे भीतरका असली नमूना है। देखते ही घिन होती है, नाक सिकुड़ जाती है, आँखें फिर जाती हैं। मरनेके बाद एक ही दिनमें शरीरसे असहनीय दुर्गन्ध निकलने लगती है। तुम क्यों इस लौकिक मिथ्या रूपकी झूठी कल्पनापर पागल हो रहे हो ? रूपके मोहको छोड़ दो और उस अपरूप रूपमाधुरीका सेवन करो जो सारे रूपोंका अनन्त, सनातन और नित्य समुद्र है।

यही हाल धनका है। संसारमें कौन-सा धनी शान्त है और सुखी है ? धनकी लालसा कभी मिटती नहीं। ज्यों-ज्यों धन बढ़ेगा त्यों-ही-त्यों कामना और लालसा बढ़ेगी और त्यों-ही-त्यों दुःख भी बढ़ेगा। पाप, अभिमान आदि प्रायः धनसे ही होते हैं। खुशामदी लुच्चे बदमाश धनपर ही, मैलेपर मक्खियोंकी भाँति मँडराया करते हैं और धनवानोंको सदा बुरे मार्गपर ले जानेकी कोशिश करते रहते हैं। धनवान्‌को असली महात्माका सत्संग मिलना तो बहुत ही कठिन होता है, क्योंकि वह तो धनके मदमें कहीं जानेमें अपनी पोजीशनकी हानि समझता है, और खुशामदियों, चाटुकारों और चीनीपर चिपटे हुए चींटों-की भाँति धन चूसनेवाले लोगोंसे घिरे हुए उसके पास कोई निःस्वार्थी असली महात्मा क्यों जाने लगे ? यदि कभी कोई कृपावश चले भी जाते हैं तो धनीसे उनका मिलना कठिन होता है और यदि मिलना भी हुआ तो वह उन्हें कोई भिखमंगा समझकर तिरस्कार करता है, क्योंकि उसके पास प्रायः ऐसे ही लोग आया करते हैं; इससे उसको सभी वैसे ही दिखायी देते हैं। झंझटोंका तो धनियोंके पार नहीं रहता, निकम्मे कामोंसे कभी उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती। नरककी सामग्री भोगोंका वहाँ बाहुल्य रहता है, जिससे नरकका मार्ग क्रमशः अधिकाधिक साफ होता रहता है। अतएव धनके लोभको छोड़ दो और परमधनरूप माँकी सेवामें लग जाओ। यदि पार्थिव धन पास हो तो उसको अपना मानकर अभिमान न करो और कुसंगतिसे पिण्ड छुड़ाकर उस धनको माताकी पूजाकी सामग्री समझकर उसे माँकी यथार्थ पूजा—उसकी दुखी सन्तान-को सुख पहुँचानेके कार्यमें लगाकर माँके कृपाभाजन बनो!

× × ×

पद-प्रतिष्ठा और मान-बड़ाई तो बहुत ही हानिकर है। जो मान-बड़ाईके मोहमें फँस गया, उसके धर्म, कर्म, साधना, पुरुषार्थ 'सब भाँगके भाड़ेमें' चले गये। उसने मानों परमधन परमात्मप्रेमको विषपूर्ण स्वर्णकलशरूप मान-बड़ाईके बदलेमें खो दिया। अतएव रूप, धन, पद-प्रतिष्ठा, मान-बड़ाई आदिके लिये चिन्तित न होओ और न इनकी प्राप्ति चाहो। ये परमार्थका साधन नष्ट करनेवाले महान् दुःखदायी और नरकप्रद हैं। माँकी उपासना करके उसके बदलेमें तो इन्हें कभी माँगो ही मत। अमृतके बदले जहर पीनेके समान ऐसी मूर्खता कभी न करो। माँसे माँगो सच्चा प्रेम, माँका वात्सल्य, माँकी कृपा, माँका नित्य आश्रय और माँकी सुखमयी गोद ! माँसे माँगकर वैराग्यशक्ति ले लो और उससे विषयासक्तिरूप वैरीको मार भगाओ। याद रक्खो, वैराग्यशक्तिमें अद्भुत सामर्थ्य है। जिन विषयोंके प्रलोभनोंमें बड़े-बड़े धीर, वीर और विद्वान् पुरुष फँस जाते हैं, वैराग्यवान् पुरुष उनकी ओर ताकता भी नहीं।

× × ×

इसी प्रकार सदाचार-शक्ति और दैवीसम्पद्-शक्तिको बढ़ाओ। जिसकी सदाचार और दैवीसम्पद्-शक्ति जितनी बढ़ी हुई होगी वह उतना ही अधिक परमात्मरूपा माँका प्रियपात्र होगा और उतना ही अधिक शीघ्र माँके दर्शनका अधिकारी होगा। स्मरण रक्खो, माँके विभिन्न रूप केवल कल्पना नहीं हैं, सत्य हैं और तुम्हें माँकी कृपासे उनके साक्षात् दर्शन हो सकते हैं।

× × ×

माँके दर्शनका सर्वोत्तम उपाय है—दर्शनके लिये व्याकुल होना। जैसे छोटा बच्चा जब किसी वस्तुमें न भूलकर एकमात्र माँके लिये व्याकुल होकर रोने लगता है, केवल माँ-माँ पुकारता हो और किसी बातको सुनना ही नहीं चाहता, तब माँ हजार जरूरी कामोंको छोड़कर उसके पास दौड़ी आती है और उसके आँसू पोंछकर उसे तुरन्त अपनी गोदमें छिपाकर मुँह चूमने लगती है। इसी प्रकार वह परमात्मरूपा जगज्जननी माँ काली या माँ श्रीकृष्ण भी तुम्हारा रोना सुनकर—पुकार सुनकर तुम्हारे पास आये बिना नहीं रहेंगे। अतएव उत्कण्ठित हृदयसे व्याकुल होकर रोओ—अपने करुणाक्रन्दनसे करुणामयी

माँके हृदयको हिला दो—पिघला दो। राम, कृष्ण, हरि, शङ्कर, दुर्गा, काली, तारा, राधा, सीता आदि नामोंकी निर्मल और ऊँची पुकारसे आकाशको गुँजा दो। भगवती माँ तुम्हें जरूर दर्शन देंगी। करुणापूर्ण नामकीर्तन माँको बुलानेका परम साधन है। समस्त मन्त्रोंमें यह नाममन्त्र मन्त्रराज है, और इसमें कोई विधिनिषेध नहीं है, कोई भय नहीं है। हम-सरीखे बच्चोंके लिये तो यही माँको बाँध रखनेकी मजबूत और कोमल रेशमकी डोरी है।

× × ×

माँके उपदेशोंपर ध्यान दो। उनके सारे उपदेश तुम्हारी भलाईके लिये ही हैं। देवीभागवतमें ऐसे बहुत-से उपदेश हैं। भगवती गीता ऐसे उपदेशोंका सुन्दर संग्रह है। और न हो तो, माँके ही श्रीकृष्णरूपसे उपदिष्ट भगवद्गीता-को माँके उपदेशोंका खजाना समझो—उसीको आदर्श बनाओ, पथदर्शक बनाओ, उसीके उज्ज्वल और निर्दोष प्रकाशके सहारे माँका अनन्य आश्रय लिये हुए, माँके नामोंका रटन करते हुए माँको पुकारो—माँकी सेवा करो। गीता-शक्तिमें भगवतीकी सारी शक्ति निहित है।

× × ×

श्रद्धा-शक्तिको बढ़ाओ, झूठे तर्क न करो, तर्कोंसे कभी भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो सकती, मातापिताके लिये तर्क करना उनका अपमान करना है। अतएव तर्क छोड़कर माँके भक्तोंकी वाणीपर विश्वास करो और श्रद्धापूर्वक माँकी सेवामें लगे रहो। इसका यह अर्थ नहीं है कि शुद्ध बुद्धि-शक्तिका तिरस्कार करो। जो भगवान्‌में अविश्वास उत्पन्न कराती है वह तो बुद्धि ही नहीं है, बुद्धि—शुद्ध बुद्धि तो वही है जिससे परमात्माका निश्चय होता है और उनके भजन-में मन लगता है। ऐसी शुद्ध बुद्धि-शक्तिको बढ़ाओ। इस बुद्धि-शक्तिकी अधिष्ठात्री देवता सरस्वतीजी हैं; बुद्धिके साथ ही माँकी सेवाके लिये धन भी चाहिये—अतएव न्यायपूर्वक सत्य-शक्तिका आश्रय लिये हुए धनोपार्जन भी करो, धनकी अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मीजी हैं। और साथ ही शारीरिक शक्तिका भी विकास करो, शरीरकी अधिष्ठात्री देवी कालीजी हैं। अतएव बुद्धि, धन और शरीरकी रक्षा और स्वस्थताके लिये महाशक्तिके त्रिरूप महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकालीकी श्रद्धापूर्वक उपासना करो। परन्तु इस बातको स्मरण रक्खो कि बुद्धि, धन और शरीरकी आवश्यकता भी केवल माताकी निष्काम सेवाके लिये ही है, सांसारिक—इहलोक और परलोकके सुखोपभोगके लिये कदापि नहीं!

× × ×

मानसिक शक्तिको बढ़ाओ, तुम्हारी मानसिक शक्ति शुद्ध होकर बढ़ जायगी तो तुम इच्छामात्रसे जगत्‌का बड़ा उपकार कर सकोगे। शारीरिक शक्तिको बढ़ाओ, शरीर बलवान् और स्वस्थ रहेगा तो उसके द्वारा कर्म करके तुम जगत्‌की बड़ी सेवा कर सकोगे। इसी प्रकार बुद्धिको भी बढ़ाओ, शुद्ध प्रखरबुद्धिसे संसारकी सेवाएँ करनेमें बड़ी सुविधा होगी। इच्छा, क्रिया और ज्ञान अर्थात् मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति और बुद्धिशक्ति तीनों-की ही जगज्जननी माँकी सेवाके लिये आवश्यकता है। और माँसे ही यह तीनों मिल सकती हैं। परन्तु इनका उपयोग केवल माँकी सेवाके लिये ही होना चाहिये, कहीं दुरुपयोग हुआ, कहीं भोग और परपीड़ाके लिये इनका प्रयोग किया गया तो सब शक्तियोंके मूलस्रोत महाशक्तिकी ईश्वरी-शक्ति इन सारी शक्तियोंको तुरन्त हरण कर लेगी।

× × ×

पशुबल, मानवबल, असुरबल और देवबल ये चारों ही बल ईश्वरी-शक्तिके सामने नहीं ठहर सकते। महिषासुरमें विशाल पशुबल था, कौरवोंमें मानवशक्तिकी प्रचुरता थी, रावणादिमें असुरबल अपार था और इन्द्रादि देवता देवबलसे सदा बलीयान् रहते हैं। परन्तु ईश्वरीय-शक्तिने चारों-को परास्त कर दिया। महिषासुरका साक्षात् ईश्वरीने बध किया, कौरवोंको भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित पाण्डवोंने नष्ट कर दिया, रावणका भगवान् श्रीरामने स्वयं संहार किया और भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने इन्द्रको हार माननी पड़ी। इन चारोंमें पशुबल और असुरबल तो सर्वथा त्याज्य हैं। मनुष्यबल और देवबल ईश्वराश्रित होनेपर ग्राह्य हैं। परम बल तो परमात्म-बल है। वह बल समस्त जीवोंमें छिपा हुआ है। आत्मा परमात्माका सनातन अंश है। उस आत्माको जाग्रत करो, आत्मबलका उद्बोधन करो, अपनेको जड शरीर मत समझो, चेतन विपुल शक्तिमान् आत्मा समझो, याद रक्खो, तुममें अपार शक्ति है। तुम्हारा अणु-अणु शक्तिसे भरा है। पुरुषार्थ करके उस शक्तिके भण्डारका

द्वार खोल लो। अपनेको हीन, पापी समझकर निराश मत होओ। शक्ति-माताकी अपार शक्ति तुममें निहित है। उस शक्तिको जगाओ, शक्तिकी उपासना करो, शक्तिका समादर करो, शक्तिको क्रियाशीला बनाओ। फिर शक्तिकी कृपासे तुम जो चाहो सो कर सकते हो।

× × ×

तुम नर हो या नारी हो,—भगवान् या भगवतीके रूप हो। नारी नरका अपमान न करे और नर नारीका कभी न करे। दोनोंको शुद्ध प्रेमभावसे एक दूसरेकी यथार्थ उन्नति और सुखसाधनामें लगे रहना चाहिये। इसीमें दोनोंका कल्याण है। जगत्की सारी नारियोंमें देवी भगवतीकी भावना करो। समस्त स्त्रियोंको माँकी साक्षात् मूर्ति समझकर उनका आदर करो, उन्हें सुख पहुँचाओ, उन्हें भोग्य पदार्थ न समझकर दुर्गा समझो। किसी भी नारीको कभी मत सताओ! शास्त्रोंमें कुमारीपूजाका बड़ा माहात्म्य लिखा है। लड़कीको लड़केके समान ही आदरसे पालो, घरमें उसका भी स्वत्व समझो, उसे दुत्कारो मत, उसका अपमान न करो।

× × ×

विलाससामग्रीका सब्जबाग दिखलाकर नारीको विलासमयी बनाना, भोगकी ओर प्रवृत्त करना और पवित्र सतीधर्मसे च्युत करना भी उसका अपमान ही है। नारीका अपमान माँ दुर्गाका अपमान है। इससे सदा सावधान रहो।

× × ×

विधवा नारीको तो साक्षात् दुर्गा समझकर उसका सम्मान करो, आदरपूर्वक हृदयसे उसकी पूजा करो; वह त्यागकी मूर्ति है। उसे विषयका प्रलोभन कभी मत दो, उसे ब्रह्मचर्यसे डिगाओ मत, सताओ मत, दुखी न करो; माँ विधवाके शापसे तुम्हारा सर्वनाश और उसके आशीर्वादसे तुम्हारा परम कल्याण हो सकता है।

× × ×

नारीजातिको विलासमें मत लगाओ, इससे नारी-शक्तिका ह्रास होगा। नारी-शक्तिका उद्बोधन करो। नारियो! तुम भी सजग रहो, विलासी पुरुषोंके वाक्जालमें मत फँसो। संयम और त्यागके अपने परम पवित्र अति सुन्दर देवपूज्य स्वरूपको कभी न छोड़ो। इन्द्र तुमसे काँपते थे, सूर्य तुम्हारी जबानपर रुक जाते थे, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुम्हारे सामने शिशु होकर खेलते थे, रावण-से दुर्वृत्त राक्षस तुमसे थर्राते थे। तुम साक्षात् भगवती हो। संयम और त्यागको भूलकर भी न छोड़ो। पुरुषोंके मिथ्या प्रलोभनोंमें मत फँसो। उनको सावधान कर दो। आज विवाह और कल सम्बन्धत्याग, इस पातकी आदर्शको कभी न अपनाओ, जीवनकी अखण्ड पवित्रताको दृढ़तापूर्वक सुरक्षित रक्खो। संसारके मिथ्या सुखोंमें कभी न भूलो। अपनी शक्तिको प्रकट करो। त्याग, प्रेम, शौर्य और वात्सल्यकी सबको शिक्षा दो। जो तुम्हारी भक्ति करे, तुम्हें देवीके रूपमें देखे, उसके लिये लक्ष्मी और सरस्वती बनकर उसका पालन करो। और जो दुष्ट तुम्हारी तरफ बुरी नजर करे, उसके लिये साक्षात् रणरङ्गिणी काली और चण्डीका स्वरूप प्रकाश करो, जिससे तुम्हें देखते ही वह डर जाय, उसके होश ठिकाने आ जायँ।

× × ×

शक्ति ही जीवन है, शक्ति ही धर्म है, शक्ति ही गति है, शक्ति ही आश्रय है, शक्ति ही सर्वस्व है, यह समझकर परमात्मरूपा महाशक्तिका अनन्यरूपसे आश्रय ग्रहण करो। परन्तु किसी भी दूसरेकी इष्टशक्तिका अपमान कभी न करो। गरीब दुखी प्राणियोंकी अपनी शक्तिभर तन-मन-धनसे सेवाकर महाशक्तिकी प्रसन्नता प्राप्त करो। पापाचार, अनाचार, व्यभिचार, लौकिक पञ्चमकार आदिको सर्वथा त्यागकर माताकी विशुद्ध निष्काम भक्ति करो। इसीमें अपना कल्याण समझो। मेरी माँ दुर्गा सबका कल्याण करें।

'शिव'

शक्ति-उपासना

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया)

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

क्ति-उपासना प्राचीन है । अवश्य ही वर्तमानकालीन शक्ति-उपासनामें, मध्ययुगकी उपासनाके अनुसार अति प्राचीन कालकी उपासनासे बहुत कुछ भिन्नता आ गयी है । काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, योगमाया तथा अन्य किसी भी देवीकी उपासना साधारणतः शक्तिकी उपासना कही जाती है । हाँ, अपने भाव और उद्देश्यके भेदके अनुसार पूजाविधिमें भेद है, वैदिक, पौराणिक तथा तान्त्रिक उपासनामें भी भेद है । मैं यहाँ पूजाके भेदोंकी विस्तारसे समालोचना करना नहीं चाहता, पर यह अवश्य है कि आधुनिक शक्ति-उपासनामें प्रायः कई बड़े दोष आ गये हैं और वे मध्ययुगकी तान्त्रिक उपासनाकी रीतिपर अभीतक चल रहे हैं । यद्यपि इधर उनमें कई प्रकारके हेरफेर हुए हैं, परन्तु हिंसात्मक विधि अभीतक बनी ही हुई है । उदाहरणतः देवीपूजामें जहाँ-तहाँ बकरे, महिष तथा अन्य पशुओंकी बलिकी रीति अभीतक प्रचलित पायी जाती है । मध्ययुगकालमें यह बलिप्रथा यहाँतक बढ़ गयी थी कि पूजा और धर्मके नामपर नरबलितक भी की जाती थी । वह प्रथा यद्यपि अब नहीं है, पर पशुओंकी बलि रागद्वेष और भोगकामनाके वशीभूत होकर मन्दिर और देवस्थानोंमें अब भी दी जा रही है । हाँ, कुछ प्रदेशोंमें और कुछ जातियोंमें आज भी वैदिक, पौराणिक रीत्यनुसार बिना पशुबलिके शक्तिपूजा होती दिखायी देती है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं । बड़े खेदकी बात है कि मातृपूजाके लिये पशुओंकी हत्या करनेमें अच्छे-अच्छे विद्वान् पण्डित भी सम्मत हैं और शास्त्रोंमें भी पशुबलिकी सम्मति और निषेध दोनों प्रकारके वचन मिलते हैं । ऐसी अवस्थामें शक्ति-उपासक भाई यदि उदार हृदयसे निस्स्वार्थ भावसे इस विषयपर गम्भीर विचार करें तो यह उनके समझमें आ जायगा कि ऐसी हिंसात्मक रीति निस्सन्देह अवैध और अयौक्तिक है । धर्मके नामपर ऐसे अनाचार सर्वथा त्याज्य हैं । महात्मा बुद्धदेवके अवतरणके पूर्व पशुहिंसायुक्त उपासनाका प्रचलन था और उन्होंने इस अनाचारको सर्व प्रकार अकल्याणकारी समझकर इसके मूलोच्छेदनके लिये भगीरथप्रयत्न किया था और उसमें उन्हें सफलता भी मिली थी । उन्होंने सारे जगत्में उस समय 'अहिंसा परमो धर्मः' सिद्धान्तका प्रचार किया था और करोड़ोंकी संख्यामें इस धर्मके माननेवाले हो गये थे । परन्तु अफसोस ! समयके परिवर्तनके साथ-साथ मनुष्योंकी भोगलोलुपताकी पुनः वृद्धि हुई और फिर देव-देवीकी पूजाके नामपर अपनी रसनेन्द्रियको चरितार्थ करनेवाली हिंसात्मक पूजा बढ़ने लगी । कोई भी हृदयवान् पुरुष इसको युक्तिसंगत कहनेका साहस नहीं करेगा । यह केवल उन्हीं लोगोंद्वारा प्रतिष्ठित है जो आमिषभोजी हैं और वही अपने स्वार्थवश इसका समर्थन भी करते हैं । इस बातको सभी स्वीकार करेंगे कि देव और देवी उसीको कहेंगे जो दैवीसम्पदासे पूर्ण हो और दैवीसम्पदाका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायके १, २, ३ श्लोकमें इस प्रकार किया गया है—

> **अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।**
> **दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥**
> **अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।**
> **दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥**
> **तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।**
> **भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥**

इन छब्बीस प्रकारके गुणोंमें अभय, सत्त्वसंशुद्धि, अहिंसा, भूतेषु दया, अलोलुपता, मार्दव—ये विशेष विचारणीय हैं । 'अभय' से यहाँ स्वयं निर्भय होना और अन्य सब जीवोंको अपनी ओरसे अभयदान देना अभिप्रेत है । 'सत्त्वसंशुद्धि' से यहाँ 'अन्तःकरणकी सब प्रकारकी निर्मलता' समझनी चाहिये । 'अहिंसा' से यहाँ बतलाते हैं कि मन, वाणी और शरीरसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुँचाना । 'भूतेषु दया' का अर्थ है सब जीवोंके प्रति निस्स्वार्थभावसे दया करना । 'अलोलुपता' का मतलब है भोग तथा लोलुपताका अभाव । 'मार्दव'का अर्थ हृदयकी कोमलता है ।

प्रिय पाठकगण ! आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि कोई देवी या देवता अपने लिये पूजाके बहाने किसी जीवकी हत्या करनेसे प्रसन्न होगा, या बलिदानको अङ्गीकार करेगा ? जो देवी चराचर जगत्की माता है वह अपने लिये जीवहिंसाकी स्वीकृति कैसे दे सकती है ? पाठकगण यह न समझें कि मैं देवी-उपासनाका विरोधी हूँ या उसे निन्दनीय समझता हूँ, मैं तो शक्ति-उपासनाका पक्षपाती ही हूँ । हाँ, उपर्युक्त हिंसात्मक विधिसे मेरी सहानुभूति नहीं है, कोई भी कल्याणकामी शक्ति-उपासनामें इस प्रथाको पसन्द नहीं करेगा । यह प्रथा आमिषभोजी उपासकोंने अपनी वासनासे ही प्रचलित की है । सभी कल्याणकामी भाइयोंसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि शक्ति-उपासनामें जीवहिंसात्मक प्रथाको सर्वथा निकालकर शुद्ध सात्त्विक पूजा करें और यदि बलि देना है तो माताके सम्मुख आत्माभिमानका बलिदान दें । माताका सच्चा सेवक वही है जो जगत्की ममता और अभिमानको बलि देकर माताकी आज्ञानुसार अथवा माता जैसे चलाती है वैसे चलता है । जैसे परमहंस श्रीरामकृष्णजी महाराज अपने लिये कहा करते थे, 'तुमि यन्त्री आमि यन्त्र, तुमि गृही आमि घर, तोमार कर्म तुमि करो माँ लोके बोले करि आमि' । अर्थात् 'मैं बाजा हूँ, आप बजानेवाली हैं; मैं घर हूँ, आप घरमें रहनेवाली मालकिन हैं; आप ही सब कुछ कर रही हैं, अज्ञानतासे लोग अपनेको कर्त्ता मानते हैं ।' भाव यह कि जैसे माता चलावें वैसे ही चले । अपना कर्तृत्वाभिमान जरा भी न रक्खे, इसीको आत्मबलिदान कहते हैं । यह बलिदान कल्याणमार्गमें अवश्य सहायक है । यदि कोई भाई ऐसा प्रश्न करें कि कल्याणकामीको पशुहिंसा नहीं करनी चाहिये पर सांसारिक भोगसुखके चाहनेवाले यदि ऐसा करें तो क्या हानि है ? उत्तरमें मेरा यह निवेदन है कि संसारके सुख प्रारब्धसे अतिरिक्त हिंसात्मक कृत्यसे कभी नहीं मिल सकते, और फिर उन्हें देगा ही कौन ? क्योंकि कोई देव या देवी तो हिंसा चाहते नहीं । हिंसा तो एक आसुरी कृत्य है, फिर जो अचिन्त्य असीम शक्ति है, जो सबके शुभाशुभ कार्योंके फलको देनेवाली है वह शक्तिमाता ऐसी हिंसात्मक आसुरी पूजा क्योंकर स्वीकार करेगी ? अधिकन्तु हिंसाका फल दुःख और कष्ट ही मिलता है । अतएव माताके नामपर कोई भाई भी ऐसी भूल न करें । जगत्में कोई कैसा भी बलवान्, धनी, विद्वान्, सामर्थ्यवान् क्यों न हो, ईश्वरीय न्यायराज्यमें उसे पापका फल दुःख और कष्ट तथा धर्मका फल सुख और आनन्द भोगना ही पड़ता है । उस अमित शक्तिके सामने सभीको झुक जाना पड़ता है । उसके न्यायके विरुद्ध कोई कुछ भी नहीं कर सकता । आप लोग जानते हैं, सब धर्मोंने अहिंसाको परम धर्म माना है और सभी शास्त्र और ऋषियोंने भी इसे स्वीकार किया है । जो लोग अहिंसाधर्मका पालन करनेवाले हैं उनसे कोई भी धर्माचरण बाकी नहीं रह जाता । सब धर्म इसके अन्दर आ जाते हैं ।

मैं तो यही कहूँगा कि जो लोग माताके नामपर हिंसाके पक्षपाती हैं वे केवल परम्परागत प्रथा, भोगलालसा और अज्ञानके वशीभूत होकर ऐसा करते हैं । आधुनिक युगमें इस रहस्यको जाननेवाले कई ऐसे शक्तिके अनन्य उपासक हो गये हैं जिनके पास हिंसाकी गन्ध भी नहीं थी, तथापि उन्होंने उस अचिन्त्यशक्तिरूपा देवीका साक्षात् दर्शन और उससे सम्भाषण किया था । उनकी कृपासे अनेक जीवोंका हित हुआ है और अब भी हो रहा है । यद्यपि वे लोग पाञ्चभौतिक शरीरसे इस समय वर्तमान नहीं हैं, परन्तु उनके उपदेश और आचरण सदैव चिरस्मरणीय हैं । ऐसे महापुरुषोंके दो एक नाम आपलोगोंके सम्मुख मैं प्रकट करूँगा, जिनकी कृपावर्षा भारतमें ही नहीं बल्कि भारतसे बाहर भी हो रही है ! परम श्रद्धेय पूज्यपाद परमहंस श्रीरामकृष्णदेव तथा भक्तशिरोमणि रामप्रसाद महात्माको कौन नहीं जानता ? बङ्गालमें तो घर-घरमें इनकी गुणगाथा गायी जाती है । ऐसे तत्त्ववेत्ता ज्ञानियोंकी पूजा परिच्छिन्न नहीं थी । वे लोग अनन्त चेतनशक्तिकी ही देवीरूपसे उपासना करते थे । कल्याणकामी उपासकको चाहिये कि अपने उपास्यमें कभी भी परिच्छिन्न भाव न आने दें । उपासना चाहे किसी भी रूपकी क्यों न हो और किसी भी भावसे क्यों न हो, इसमें कोई आपत्ति नहीं । गीतामें कहा है—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥

मैं ही इस सम्पूर्ण जगत्का धाता अर्थात् धारण-पोषण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला तथा पिता, माता और पितामह हूँ और जाननेयोग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ । यहाँपर यह दिखलाया

गया है कि उस सर्वव्यापी चेतन सत्ताकी मातारूपसे या पितारूपसे अथवा स्वामीरूपसे—किसी भी रूपसे उपासना कर सकते हैं, पर भाव पूर्ण और अनन्य होना चाहिये । पूर्णकी उपासनासे ही पूर्णकी प्राप्ति होती है और अपूर्णकी उपासनासे अपूर्णकी । ईशोपनिषद्में लिखा है—

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।

बंगालमें मातृभावसे उपासनाकी प्रथा अधिक प्रचलित है, क्योंकि जीवमात्रको माता सबसे अधिक प्रिय और श्रद्धेय होती है । माता-जैसा कोमल, दयालु हृदय किसीका भी लोकमें दृष्टिगोचर नहीं होता । सन्तान कैसी भी दुष्ट-से-दुष्ट, स्वेच्छाचारी, मातृसेवासे विमुख क्यों न हो, फिर भी माँ अपनी ऐसी सन्तानकी भी सदैव हितैषिणी ही रहती है और स्वयं सन्तानकी सेवा करके प्रसन्न होती है । अपनी सन्तानका यह कभी त्याग नहीं करती । एक भक्तने कहा है—

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥

'माँ' शब्दमें कितना प्रेमामृत भरा हुआ है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता । पुत्र जब अपनी माँको 'माँ' 'माँ' कहकर पुकारता है तब माताका हृदय प्रेमसे भर आता है । ऐसे ही भक्तजन जब 'माँ' 'माँ' कहकर अपने उपास्य देवको पुकारते हैं तब उनके हृदयमें एक दिव्य आनन्दकी धारा बहने लगती है । इसको सभी प्रत्यक्ष उपलब्ध कर सकते हैं । एक भक्तने कहा है 'माता ! मैं तुझे माँ-माँ कहकर इतना पुकारता हूँ, परन्तु तू अभीतक सामने नहीं आती । इसका क्या कारण है ? 'माँ' शब्द मेरे हृदयको बहुत प्रिय है और मेरी माताको भी अत्यधिक प्रिय था । जब मैं 'माँ' कहकर उसे पुकारता था तो वह गद्गद हो जाती थी । माता ! तुझको भी मालूम होता है 'माँ' शब्द अत्यन्त प्रिय है, इससे तू यह सोचती होगी कि इस बच्चेके पास यदि मैं प्रकट हो जाऊँगी तो शायद यह 'माँ' की आवाज लगाना बन्द कर देगा । शायद इसी भयसे और 'माँ'की आवाज सुननेके लोभसे ही तू नहीं आती ।' यह सब माताके पुजारीके भाव हैं । परमहंस रामकृष्ण स्वामी जब 'माँ, माँ' कहकर पुकारते थे तो शरीरकी सुध भूल जाते थे और विह्वल हो जाते थे ।

सृष्टिकी उत्पत्तिमें पुरुष और प्रकृति दोनों ही हेतु हैं । जैसे गीतामें कहा है—

यावत्संजायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

यावन्मात्र—जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम वस्तु उत्पन्न होती है उसको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न हुई जान । अर्थात् प्रकृति और पुरुषके पारस्परिक संयोगसे ही सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है, वास्तवमें सम्पूर्ण जगत् नाशवान् और क्षणभङ्गुर होनेसे अनित्य है ।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

'नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भको धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ ।'

जैसे बालककी उत्पत्तिमें माता और पिता दोनों ही हेतु हैं, वैसे ही जगत्की उत्पत्तिमें पुरुष और प्रकृति दोनों ही हेतु हैं और ये दोनों अनादि हैं । अब यह उपासककी चाहपर निर्भर है कि वह माताको प्रधान रखकर उपासना करे अथवा पिताको । इसका निर्णय भक्तकी अन्तःप्रवृत्तिपर निर्भर है । फलमें कोई भेद नहीं होता । भाव यदि सर्वोच्च हो तो फल भी सर्वोच्च ही होगा । उस अनन्त चेतनको कोई पुरुष कहता है, कोई अनन्त चेतनशक्ति भी कह सकता है । यह ध्यान रखनेकी बात है कि जो उपास्य-शक्ति-देवी है उसको केवल जड प्रकृति या माया नहीं समझना चाहिये । उसे चेतनशक्तियुक्त प्रकृति अथवा केवल चेतनशक्ति ही समझ सकते हैं । यही अचिन्त्यशक्ति सर्वरूपसे सबमें सब काल व्याप्त है । जैसे कहा है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।

कहीं—

या देवी······चेतनेत्यभिधीयते ।

कहीं—

या देवी······बुद्धिरूपेण संस्थिता ।

कहीं—

या देवी······शक्तिरूपेण संस्थिता ।

कहीं—

या देवी······मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

उसीको—

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नमः॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।

—इत्यादि शब्दोंसे पता लगेगा कि एक ही यह शक्ति अनेक रूपसे संसारमें व्याप्त है। इसीको कोई देवी, कोई काली, कोई शक्ति, कोई ईश्वर, विष्णु, शिव इत्यादि अनेक नामोंसे वर्णन करते हैं। तत्त्वज्ञ ज्ञानीजन इस एक सत्ताके सिवा अन्य किसी भी सत्ताको नहीं देखते। सर्वत्र, सबमें, सब कुछ उसी अपनी अधिष्ठात्री शक्तिको देखते हैं और जो कुछ भी है सब उसीकी विभूति है। जिस समय निशुम्भ दैत्यको देवीने मारा था और उसके भाई शुम्भने देवीके बहुत-से रूप देखकर कहा था कि तुम्हारे साथ अनेक सहायक हैं इसीलिये तुम जीत रही हो, तब देवीने उत्तर दिया था कि—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥

अर्थात्—'इस जगत्‌में मैं ही अकेली हूँ और अद्वितीय हूँ, अन्य क्या है? अर्थात् अन्य कुछ भी नहीं है। रे दुष्ट! जो कुछ तुझे अन्य भासता है सो सब मेरी विभूतियाँ हैं, यह देख सब मेरेमें विलीन होती हैं।' इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि एक चेतन शक्ति ही है और उसके सिवा कुछ नहीं है और वह पूर्ण है। कल्याणकामी भक्तजन इसी भावसे उसे उपासते हैं। उस शक्तिके इस भावको हृदयङ्गम करना ही सच्ची शक्ति-उपासना है।

तन्त्र

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

शक्तिपूजा और योगरहस्य

हिन्दुओंकी समस्त साधनाकी कुञ्जी (key) है 'तन्त्र'। सब सम्प्रदायोंकी सब प्रकारकी साधनाका गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्रमें निहित है। तन्त्र केवल शक्ति-उपासनाका ही प्रधान अवलम्बन नहीं है, वह सभी साधनाओंका एकमात्र आश्रय है। इसमें स्थूलतम साधनप्रणालीसे लेकर अति गुह्य मन्त्रशास्त्र और अति गुह्यतर योगसाधनादिके समस्त क्रियाकौशलोंका सविस्तर वर्णन है। तन्त्रान्तर्गत दार्शनिक तत्त्व भी कम सूक्ष्म नहीं हैं। हाँ, ये प्रचलित दर्शनशास्त्रोंके समान जटिल भाष्य, टीका और विविध मतवादद्वारा भाराक्रान्त या दुर्बोध्य नहीं हैं। परन्तु इनके दुर्बोध्य न होनेपर भी जिन्हें साम्प्रदायिक साधनसङ्केत ज्ञात नहीं हैं उनके लिये तन्त्रोक्त साधनजालमें प्रवेश प्राप्त करना सहजसाध्य नहीं है।

जिस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति सात्त्विक, राजसिक और तामसिकभेदसे तीन प्रकारकी है, उसी प्रकार तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारका है तथा इसकी साधनप्रणाली भी उसी प्रकार गुणभेदसे तीन प्रकारकी व्याख्यात होती है। जिसकी जैसी प्रकृति वा रुचि हो, तदनुसार ही साधनपथको ग्रहणकर साधन करनेसे वह जीवनको कृतकृत्य कर सकता है। शक्ति जिस प्रकार देवस्वभाव या दैवीगुणयुक्त जीवोंकी जननीरूपा हैं, उसी प्रकार वह असुरगुणयुक्त अथवा असुरोंकी भी जननी हैं। इसी कारण असुर और देवता दोनों ही उनकी उपासनामें प्रवृत्त होते हैं तथा दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुसार उपासनाकी प्रणालीका अवलम्बन करते हैं, एवं उनका साधनफल भी साधनाकी प्रकृतिके अनुसार ही होता है। इसी कारण शास्त्र दोनों प्रकारकी साधनप्रणाली बतलाते हैं।

भारतवर्षमें जो वेदोंका अनुसरण करते हुए चलते हैं, वे साधारणतः पञ्च उपासकसम्प्रदायमें विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव और शैव। ये लोग वस्तुतः पृथक्-पृथक् देवताओंके उपासक नहीं हैं, सब उस एक ही विश्वतोमुख भगवान्‌की पृथक्-पृथक् पञ्चभावोंमें उपासना करते हैं। अतः इन सब देव-देवियोंमें भेदकल्पना करना निरी मूर्खता है। पद्मपुराणमें श्रीभगवान् कहते हैं—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा भिन्नः क्रीडार्थं भुवनेऽखिले॥

'वर्षाका जल जिस प्रकार चारों ओरसे आकर समुद्रमें गिरता है, उसी प्रकार गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और

शाक्त सभी आकर मुझे ही प्राप्त होते हैं। मैं ही लीलाके लिये जगत्‌में पाँच रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ।'

इसीसे साधकप्रवर पुष्पदन्त कहते हैं—वेद, सांख्य, योग, पाशुपत और वैष्णवमत प्रभृति भिन्न-भिन्न भावोंमें तुम्हारी ही व्याख्या करते हैं। मनुष्य अपनी-अपनी रुचिके अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गोंका अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य करके चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियोंका पथ विभिन्न होते हुए भी अन्तमें सब एक ही समुद्रमें आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्गमें होकर कोई जाय, अन्तमें सब कोई भगवान्‌के चरणतलमें ही जा पहुँचेंगे।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

इसीलिये शास्त्र जीवको उपदेश देते हैं—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद् यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्मा हैं वही हरि हैं, जो हरि हैं वही महेश्वर हैं। जो काली हैं वही कृष्ण हैं, जो कृष्ण हैं वही काली हैं। देव-देवीको लक्ष्य करके कभी मनमें भेदभाव उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवताके चाहे जितने नाम और रूप हों, सभी एक हैं। यह जगत् शिव-शक्तिमय ही है।

श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

'तीन भावों (शिव, शक्ति, विष्णु) में किसी भावको जो पृथक् नहीं समझते, वही उसका सर्वभूतात्माके रूपमें दर्शन कर सकते हैं और वही शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।'

इस प्रकार यद्यपि पञ्चदेवता उस एक ही भगवान्‌के विभिन्न स्फुरणमात्र हैं, तथापि मनुष्य अपने मनमाने तौरपर उपास्य देवताका ग्रहण नहीं कर सकता, करनेसे ठीक नहीं होता। शास्त्रविधिके अनुसार ही सब कार्य होने आवश्यक हैं। सद्गुरु ही जीवकी प्रकृतिका विचार कर उसके उपास्य देवताका निर्देश कर सकते हैं। भिन्न-भिन्न मनुष्योंकी जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसमें आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीवकी भी प्राक्तन कर्म और स्वभावके वश भिन्न-भिन्न देवतामें आसक्ति होती है तथा अपने-अपने स्वभावके अनुसार ही किसी जीवकी पुरुष देवताके प्रति, किसीकी स्त्री देवताके प्रति एवं उन देवताओंके विविध वर्णोंके प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन सब बातोंका कुछ भी विचार न करके देवताका नामजप और रूपध्यान करनेसे साधक शुभ फलको प्राप्त नहीं कर सकता। तन्त्रशास्त्रमें इस विषयके बहुत-से विचार और सिद्धान्तोंका वर्णन है।

तन्त्रके मतसे देवीकी उपासना ही एकमात्र शक्ति-उपासना नहीं है। गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी शक्तिके उपासक हैं। पुरुष निर्गुण है, निर्गुणकी उपासना नहीं होती। उपास्य देवता पुरुष होनेपर भी वास्तवमें वहाँ भी उसकी शक्तिकी ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञानका विषय होती है; शक्तिमान् या पुरुष ज्ञानातीत सत्तामात्र है, वह किसी समय किसीके बोध (ज्ञान) का विषय नहीं होता।

वेद और तन्त्रमें ब्रह्मको सच्चिदानन्द कहा गया है। इसमें सदंश ही पुरुषभाव या निर्गुणभाव है तथा चित् और आनन्दांश ही गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है—इस प्रकृतिके द्वारा ही पुरुषका परिचय मिलता है।

सांख्यदर्शन पुरुष और प्रकृतिका ही विचार करता है। यहाँ सांख्यदर्शनोक्त कुछ विचारोंका उल्लेख किया जाता है, जिससे तन्त्रोक्त प्रकृति-पुरुषरहस्यके समझनेमें कुछ सुविधा होगी।

सांख्यके मतसे दुःखके अत्यन्त विनाशको ही मुक्ति कहते हैं। सुखदुःखादि बुद्ध्यादिके स्वभाव हैं। स्वभाव किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सकता। अतः बुद्धिके अतिरिक्त किसी सत्ताको स्वीकार न करनेसे दुःखादिसे मुक्तिलाभ करना असम्भव है। इसीलिये बुद्धिके अतिरिक्त सुखदुःखादिरहित एक अतिरिक्त वस्तु या आत्माको स्वीकार करना पड़ता है। यह आत्मा ही सुखदुःखादि-रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्ध्यादिके सुखदुःखादि धर्म पुरुषमें आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुखदुःखादि धर्मके अपगत होनेपर ही मुक्तिलाभ होता है। बुद्ध्यादि अचेतन पदार्थ हैं, चेतनके सान्निध्यसे इनकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है। यह चेतन अधिष्ठाता ही पुरुष है। बुद्ध्यादि

समस्त जड पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं, परन्तु भोक्ताके बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थमात्रका अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है वही पुरुष है।

सांख्यकारिकामें पुरुषके सम्बन्धमें कहा गया है—

तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥

त्रिगुणादिके विपर्यास अर्थात् विपरीत धर्म हैं—अत्रिगुणत्व, विवेकित्व, अविषयत्व, असाधारणत्व, चेतनत्व और अप्रसवधर्मित्व। पुरुष चेतन और अविषय है, इसलिये वह साक्षी और द्रष्टा हो सकता है। अचेतन द्रष्टा नहीं हो सकता। चेतन ही द्रष्टा होता है। जिसके उद्देश्यसे जिसको प्रकृति शब्दादि विषयोंका दर्शन कराती है, वह पुरुष ही साक्षी है। अचेतन विषयके लिये विषयका प्रदर्शन नहीं किया जा सकता, अतः पुरुष विषयके अतिरिक्त साक्षी-स्वरूप है। पुरुषमें गुणत्रयके अभाववश ही सुखदुःखादि नहीं रहते, एवं सुखदुःखादि पुरुषमें नहीं होनेसे ही उसे कैवल्यलाभ होता है। यह कैवल्य पुरुषके लिये प्रयत्नसाध्य नहीं है, बल्कि स्वभावसिद्ध है। पुरुष त्रैगुण्यरहित होनेके कारण ही मध्यस्थ अर्थात् अपक्षपाती है। उसे सुखमें तृप्ति नहीं होती और दुःखमें द्वेष नहीं होता, वह विवेकी है अर्थात् मिलित होकर कार्य नहीं करता; वह अप्रसवधर्मी है, अतः कर्त्ता नहीं है।

उपर्युक्त युक्तिद्वारा चेतन कर्त्ता नहीं है, यह सिद्ध हुआ। अतएव चैतन्यरहित 'महत्' प्रभृति पुरुषके सान्निध्य-से चेतनके समान होते हैं तथा विकाररहित उदासीन पुरुष 'महत्'—बुद्ध्यादिके कर्तृत्वमें कर्त्ताके सदृश होता है। कारिकामें लिखा है—

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् ।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः ॥

इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषके संयोगद्वारा चराचर विश्व उत्पन्न हुआ है। गीतामें श्रीभगवान् कहते हैं—

यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

हे भरतर्षभ! जो कुछ स्थावर-जङ्गम सत्त्व उत्पन्न होते हैं, वह सब क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगसे उत्पन्न होते हैं यह जान।

सांख्यके मतसे चेतन निर्विकार कूटस्थ पुरुष कोई कार्य नहीं कर सकता। बुद्धि यद्यपि क्रियाशक्तिविशिष्ट है तथापि जड है। जड कर्त्ता नहीं हो सकता। दोनों मिलित होनेपर ही कार्यक्षम होते हैं। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं; तथा इनका संयोग अनादि होनेके कारण ही यह जगत्लीला अनादि कालसे चली आती है।

पुरुषके बिना प्रकृतिका परिणाम बुद्ध्यादिका ज्ञान नहीं होता और प्रकृतिके बिना पुरुषकी मुक्ति नहीं होती—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।

प्रकृतिके साथ संयुक्त होकर पुरुष बद्ध होता है। बद्धावस्थामें विविध सन्तापोंसे क्लिष्ट होकर वह मुक्तिका उपाय खोजता है। परन्तु पुरुषके इस दुःख ग्रहण करनेका हेतु क्या है? इसका उत्तर 'पुरुषका अज्ञान' नहीं कहा जा सकता। यह संयोग अनादि बतलाया जाता है, तो क्या पुरुष अनादिकालसे अज्ञानमें है? विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि इस संयोगके होते हुए भी पुरुष विकारी नहीं है।

प्रधान अर्थात् प्रकृतिके कार्यको जब पुरुष देखता है तभी भोक्तृभोग्यसम्बन्ध होता है। अतएव प्रकृति जब भोग्या होती है तभी उसे भोक्ता पुरुषकी अपेक्षा होती है। और जब प्रकृति अनादि है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।

—तब अनादिभोग्या प्रकृतिके भोक्ताका भी अनादि होना अनिवार्य है। दोनोंके संयोगका यही कारण है। इसके बाद यह प्रश्न आता है कि जब पुरुषप्रकृतिका भोक्ताभोग्य सम्बन्ध अनादि है तब उसकी दूसरे प्रकारकी प्रवृत्ति अर्थात् मुक्तिकी इच्छा कैसे होती है?

जो हो, इस प्रकार प्रकृतिके साथ सम्बन्धयुक्त होकर पुरुषको प्रकृत सुख नहीं मिलता, प्रकृतिके धर्म दुःखत्रयको अपना मानकर उसके द्वारा पुरुष अपनेको अत्यन्त निपीडित समझता है। तब उससे मुक्तिलाभ करनेकी उसे इच्छा होती है, परन्तु यह मुक्ति मिले किस उपायसे? सांख्यशास्त्र कहता है कि बुद्धि (प्रकृतिका कार्यरूप बुद्धि) और पुरुषके भेदका साक्षात्कार होनेसे ही मुक्ति होती है। यही ज्ञान है। सांख्यके मतसे दुःखनिवृत्तिका एकमात्र उपाय ज्ञान ही है—

तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ।
(सां० का०)

व्यक्त विकृति, अव्यक्त प्रकृति और ज्ञ पुरुष है। शास्त्रमें अन्यान्य उपाय भी बतलाये गये हैं; परन्तु वे सब उपाय

पापादि दोषसे दूषित हैं, इनसे विपरीत जो हैं वह पापादि दोषसे दूषित नहीं हैं। प्रकृति-पुरुषके भेदका साक्षात्कार ही यह श्रेष्ठ उपाय है। वह ज्ञान क्या वस्तु है? व्यक्त अर्थात् विकृति, अव्यक्त प्रकृति, और ज्ञ अर्थात् पुरुष—इनका विशेषरूपसे ज्ञान होनेपर ही प्रकृति-पुरुषका विवेक-रूप ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

सांख्यके मतसे पुरुषके संयोगद्वारा अचेतन बुद्ध्यादि चेतनके समान हो जाते हैं तथा बुद्ध्यादिके संयोगसे अकर्त्ता पुरुष कर्त्ताके समान हो जाता है। सांख्यके पुरुष-प्रकृति कोई भी पारस्परिक साहाय्यके बिना स्वयं संसारकी रचनामें समर्थ नहीं होते। किन्तु इसमें भगवत्-इच्छाका कोई प्रयोजन नहीं होता। परन्तु यह बात तन्त्रमें स्वीकृत नहीं हुई है। इसकी आलोचना आगे की जायगी। यहाँ यह दिखलाना है कि सांख्यका यह अभिमत उपनिषद् और पुराणसम्मत भी नहीं है। प्रकृति और पुरुषको इनमेंसे कोई चरम पदार्थ नहीं मानते। श्वेताश्वतर उपनिषद्में आता है—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।

क्षर प्रधान (प्रकृति) है, अक्षर अमृत (पुरुष) है, जो अद्वितीय देवता क्षर और आत्माका प्रभु है वही ईश्वर या परमात्मा है। प्रश्नोपनिषद्में है—

तस्मै स होवाच–प्रजाकामो वै प्रजापतिः, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्चेति एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।

पिप्पलाद ऋषिने उपर्युक्त प्रश्न करनेवाले कबन्धीसे कहा कि–'प्रजापतिने प्रजाकी कामनासे तपस्या की और तपस्या करके सृष्टिके साधन रयि (अन्न–जीवभोग्य अन्नादि चन्द्रकिरणसे पुष्टिलाभ करते हैं, इसी कारण चन्द्रको भी भोग्य कहा गया है) और प्राण–अर्थात् अग्निरूप भोक्ता, इस मिथुनकी सृष्टि की। यही भोक्ता और भोग्य (सूर्य और चन्द्र) हमारे प्रजागणको अनेक प्रकारसे परिणत करेंगे।'

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च; तस्मान्मूर्तिरेव रयिः। (प्रश्नोपनिषद् १। ५)

उनमें आदित्य ही प्राण, भोक्ता, अग्निस्वरूप है, और चन्द्र ही रयि अर्थात् सोम वा अन्नस्वरूप है। अतः यह भोक्ता और अन्न दोनों ही एक प्रजापतिस्वरूप हैं। मिथुन (दोनों ही) एक हैं परन्तु इन दोनोंमें भोक्ता और भोग्यभावके कारण ही भेद होता है। जो मूर्त्त है वह स्थूल है और जो अमूर्त्त है वह सूक्ष्म है। अमूर्त्त पदार्थसे पृथक् जो मूर्त्तरूप है वही रयि है अर्थात् मूर्त्तमात्र ही अमूर्त्तके उपभोग्य हैं।

इन रयि और प्राण अर्थात् चन्द्र और सूर्य, क्षर और अक्षर–दोनोंका मिश्रण ही जगत् है। यह क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष दोनों प्रलयके समय पुरुषोत्तममें लीन हो जाते हैं। पुनः सृष्टिकालमें मातरिश्वा या हिरण्यगर्भ उन्हींकी सहायतासे जीवकी प्राणधारणादि समस्त क्रिया और क्रिया-फल सम्पादन करते हैं। यह मातरिश्वा ही सूत्रात्मा वायु है, यही विश्वविधाता या हिरण्यगर्भ है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

क्षर और अक्षर—दो प्रकारके पुरुष लोकमें प्रसिद्ध हैं। उनमें समस्त भूत क्षर पुरुष हैं और कूटस्थ अक्षर पुरुष। इनके सिवा और भी एक उत्तम पुरुष है, जिसे परमात्मा कहा जाता है। वही ईश्वर है। वह निर्विकार होते हुए भी लोकत्रयमें प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डका परिपालन करता है। गीताके मतसे यह भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं। प्रकृति और पुरुष—दोनों इनकी शक्तिमात्र हैं। श्रीमन्मधुसूदन सरस्वती गीताके चौदहवें अध्यायके प्रथम श्लोककी टीकामें कहते हैं कि 'निरीश्वर सांख्यमतके निवारणके लिये ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगका ईश्वराधीन होना भगवान्‌ने यहाँ बतलाया है।

तत्र निरीश्वरसांख्यमतनिराकरणेन क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-संयोगस्य ईश्वराधीनत्वं वक्तव्यम्।

श्रीभगवान् गीताके चौदहवें अध्यायमें कहते हैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

'हे भारत! महद्ब्रह्म (प्रकृति) मेरी योनि अर्थात् परमेश्वरका गर्भाधानस्थान है। उसमें मैं गर्भ अर्थात् जगत्-विस्तारके लिये चिदाभास निक्षेप करता हूँ। इसीसे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होती है। हे कौन्तेय! मनुष्यादि सब

योनियोंमें जो स्थावरजङ्गमात्मक मूर्तियाँ उद्भूत होती हैं, उन सबमें महद्ब्रह्म अथवा मातृस्थानीया प्रकृति है और मैं गर्भाधानकर्त्ता पिता हूँ ।

श्रीमद्भागवत (३ । २६ । १९) में भी लिखा है—

दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।
आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥

'(हे माता !) जीवके अदृष्टके कारण प्रकृतिके सब गुणोंके क्षुब्ध होनेपर परम पुरुष अपने प्रकाशस्थानरूप प्रकृति—योनिमें अपने वीर्यका आधान करते हैं, तब उस प्रकृतिसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है ।'

तन्त्रोक्त प्रकृति तन्त्रोक्त प्रकृति भी सांख्यकी प्रकृतिकी तरह जड नहीं है, वह पूर्ण चैतन्यमयी है । तन्त्रके मतसे शिव साक्षात् परब्रह्म हैं, वह जाग्रदवस्थाभिमानी, स्वप्नावस्थाभिमानी तथा सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष नहीं हैं । वह तुरीय ब्रह्म हैं । शारदातिलक नामक तन्त्रग्रन्थमें लिखा है—

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥
सच्चिदानन्दविभवात् सकलात्परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः ॥

शिव साक्षात् परम ब्रह्म हैं । उनके दो विभाव हैं—सगुण और निर्गुण । मायोपहित परब्रह्म ही सगुण हैं तथा वह ब्रह्म जब मायासे अनुपहित होते हैं, तब वह निर्गुण हैं । सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मके मायासे उपहित होनेपर ही उनमें शक्तिका आविर्भाव होता है, उस शक्तिसे नाद या महत्तत्त्व और नादसे बिन्दु या अहङ्कारतत्त्व उत्पन्न होता है । (क्रमशः)

विजयिनी शक्ति

(रचयिता—कविसम्राट् श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

चतुष्पद

जिसे है मानवताका ज्ञान ।
नहीं पशुतासे जिसकी प्रीति ।
बिना त्यागे विनयनका पंथ ।
लोकनियमन है जिसकी नीति ।१।

क्रोध जिसका है शान्तिनिकेत ।
लोभ जिसका लालसाविहीन ।
मोह जिसका है महिमावान ।
काम जिसका अकामनाधीन ।२।

न मदमें मादकताका नाम ।
न तनमें अतनतापका लेश ।
रूप जिसका है लोकललाम ।
अवनिरंजन है जिसका वेश ।३।

न मस्तकपर कलंकका अंक ।
न जिसका लहू भरा है हाथ ।
निहरती रहती है सब काल ।
लोकलालनता जिसके साथ ।४।

जलदसम कर जन-जनको सिक्त ।
बरसती रस जिसकी अनुरक्ति ।
भरा है जिसमें भवका प्यार ।
वही है विश्वविजयिनी शक्ति ।५।

कोमलतम शक्ति

चतुष्पद

प्रेमका वह अनुपम उद्यान ।
जहाँ थे भावकुसुम कमनीय ।
सुरभि थी जिसकी भुवन-विभूति ।
मंजुता भव जन अनुभवनीय ।१।

हो रहा है वह क्यों छविहीन ।
छिना क्यों उसका सरस विकास ।
बना क्यों अमनोरंजन हेतु ।
विमोहक उसका विविध विलास ।२।

रहा जो मानस शुचिताधाम ।
रहे बहते जिसमें रसस्रोत ।
मिले जिसमें मोती अनमोल ।
भर रहे हैं उसमें क्यों पोत ।३।

वचन जो करते बहुत विमुग्ध ।
सुधारसका था जिसमें वास ।
मिल रहा है उसमें क्यों नित्य ।
अवाञ्छित असरसता आभास ।४।

सरलता मृदुता मंजुल वेलि ।
हृदयरंजन था जिसका रंग ।
बन रही है किसलिये अकांत ।
मंजु मन मधु-ऋतुका तज संग ।५।

हो गयी गरलवलित क्यों आज ।
सुधासिञ्चित सुन्दर अनुरक्ति ।
बनी क्यों कुसुमसमान कठोर ।
कुसुम-जैसी कोमलतम शक्ति ।६।

दश महाविद्या

(लेखक—पं० श्रीमोतीलालजी शर्मा गौड़, सम्पादक, 'शतपथ ब्राह्मण')

जिसकी अनुकम्पासे चतुर्मुख ब्रह्मा सृष्टि-रचनामें समर्थ होते हैं, विष्णु जिसके कृपा-कटाक्षसे विश्वका पालन करनेमें समर्थ होते हैं, रुद्र जिसके बलसे विश्व-संहार करनेमें समर्थ होते हैं, आज उसी सर्वेश्वरी जगन्माता महामायाके दश स्वरूपोंका संक्षिप्त वैज्ञानिक चरित्र कल्याणेप्सु पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया जाता है। शिव 'कल्याण' के अधिष्ठाता हैं। परन्तु कल्याण-मूर्ति शिवका कल्याण शक्ति-सत्तापर निर्भर है। अतएव जहाँ कल्याणको अपने स्वरूप-परिचयके लिये शिवाङ्क निकालना पड़ा, वहीं उसे शिव-स्वरूप-रक्षाके लिये शक्त्युपासनाकी भी आवश्यकता प्रतीत हुई। उसीका फलस्वरूप शक्त्यङ्क आज आपके सामने उपस्थित है, पढ़िये। मनन करिये। शक्ति-सञ्चय कर शिव-तत्त्वको सुरक्षित रखते हुए कल्याणके भागी बनिये।

आजका युग वैज्ञानिक युग है। विगत शताब्दियोंकी तरह आजके इस विज्ञानप्रधान युगमें अन्धविश्वासको स्थान नहीं मिल सकता। 'हमारे महर्षियोंने ऐसा कहा है, इसलिये उसमें जरा भी नच नुच किये उसे नतमस्तक होकर मान लेनेमें ही हमारा कल्याण है'—सहस्रों रुपये व्यय करके जीवनके सारभागको विश्वविद्यालयोंके अर्पण करनेवाला, अपने आपको सत्यशोधक समझनेका गर्व रखनेवाला पाश्चात्यशिक्षा-दीक्षित आजका भारतीय समाज आज हमारी ऐसी बातें सुनना पसन्द नहीं करता। धर्मके नामसे आज उनकी भौंहें तन जाती हैं। 'विज्ञान-शून्य भारतीय धर्मने देशका सर्वनाश कर डाला है। भारतकी उन्नतिका बाधक अन्धविश्वासकी भित्तिपर टिका हुआ एकमात्र धर्म ही है। ऐसे धर्मको न माननेमें ही देश एवं जातिका कल्याण है'—ये हैं आजके सुशिक्षित भारतीयोंके भारतीय धर्मके प्रति स्पष्ट उद्गार। क्या सचमुच भारतीय धर्म ऐसा ही है? नहीं! सर्वथा नहीं!! 'नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म,' 'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः' आदि श्रौत-स्मार्त-वचन धर्म-सृष्टिके प्रवर्त्तक मूलभूत ज्ञानमूर्ति ब्रह्म-तत्त्वको जब नित्य विज्ञानमय बतलाते हैं, तो ऐसी अवस्थामें भारतीय धर्मको विज्ञान-शून्य बतलाना दुःसाहस है। अनधिकार चेष्टा है। अपराध है। अपराध ही नहीं, अक्षम्य अपराध है। हम उन महानुभावोंको यह बतला देना चाहते हैं कि जिस धर्म-तत्त्वको वे विज्ञान-शून्य अतएव अनुपादेय समझते हैं, वह सर्वथा विज्ञानघन होता हुआ सम्पूर्ण विश्वकी प्रतिष्ठा है। वस्तुके वास्तविक स्वरूपको स्वस्वरूपमें सुरक्षित रखकर जो शक्ति उस वस्तुद्वारा धृत रहती है, वही शक्ति-तत्त्व शास्त्रोंमें 'धर्म' शब्दसे व्यवहृत हुआ है। ताप अग्निका धर्म है। प्रकाश सूर्यका धर्म है। प्रतिष्ठा पृथिवीका धर्म है। जबतक इनमें ताप, प्रकाश, प्रतिष्ठा है तभीतक इनकी स्वरूपसत्ता है। जिस दिन इनके तापादि स्वरूपधर्म उच्छिन्न हो जायँगे उसी दिन इनकी सत्ता उच्छिन्न हो जायगी। वस्तुकी सत्ता तभीतक है जबतक उसकी शक्ति (स्वरूपधर्म) उसमें प्रतिष्ठित है। शक्तिसत्तामें कल्याणभावको प्राप्त होता हुआ पदार्थ शिव है। निदान-सिद्धान्तके अनुसार 'इ' अक्षरसे व्यवहृत शक्तिके बिना वह पदार्थ शव है—मुर्दा है। शक्तिशब्दापरपर्यायक धर्मशब्दकी पूर्वोक्त सूक्ष्म व्याख्यासे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि धर्म ही धर्मीकी प्रतिष्ठा है। जिस दिन धर्म न रहेगा, धर्मी न रहेगा। यही सामान्य व्यवस्था मनुष्य-धर्म, वर्ण-धर्म, जाति-धर्म, कुल-धर्म, देश-धर्म आदिके विषयमें समझनी चाहिये। मनुष्य तभीतक मनुष्य है जबतक उसमें मनुष्य-धर्म है। अन्यथा वह पशु है। पूर्वोक्त अवान्तर सारे धर्मोंके समुच्चयका ही नाम 'हिन्दू-धर्म' किंवा भारतीय धर्म है। जबतक हिन्दू-धर्म है, तभीतक हिन्दू-जाति स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित है। जिस दिन हिन्दू-जाति अपने धर्मको छोड़ देगी, विश्वास कीजिये उस दिन वह अपना हिन्दूपना ही खो देगी। ऐसी अवस्थामें जाति-रक्षा, एवं देशकी सभ्यताकी रक्षाके लिये धर्मको अपनानेकी नितान्त आवश्यकता है। अब प्रश्न बच जाता है केवल ढोंगका। आजके युगके विचारसे सनातनधर्म केवल ब्राह्मणोंकी स्वार्थ-लीला है। इसके उत्तरमें हम अधिक कुछ न कह केवल यही कहना चाहते हैं कि जो महानुभाव भारतीय धर्मको अवैज्ञानिक समझते हैं वे भारतीय धर्मके गभीरतम मौलिक सिद्धान्तोंसे सर्वथा अपरिचित ही हैं। उन्हें स्मरण

रखना चाहिये कि भारतीय धर्म अपना नाम सनातन-धर्म रखता है। सनातन-शब्दका अर्थ है सदा रहनेवाला। सदा रहनेवाला धर्म केवल प्राकृतिक (प्रकृतिसिद्ध नित्य-धर्म) ही हो सकता है। इस प्रकार सुतरां सनातन-धर्मका वैज्ञानिकत्व अतएव उपादेयत्व सिद्ध हो जाता है। आजके इस छोटे-से निबन्धमें हम सर्वधर्ममूलभूत अतएव महाशक्ति-नामसे प्रसिद्ध महाविद्या नामके शक्तितत्त्वका ही संक्षिप्त वैज्ञानिक स्वरूप पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे, और बतलायेंगे कि भारतीय-धर्म कितने गहरे विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है।

आगम-निगम-रहस्य

विचार-कक्षाके अन्तस्तलपर पहुँचे हुए विदितवेदितव्य महामहिमशाली महामहर्षियोंने सम्पूर्ण शब्दराशिको आगम-निगम-भेदसे दो भागोंमें विभक्त किया है। कारण इसका यही है कि प्रकृतिसिद्ध नित्य-शब्द ब्रह्म इन्हीं दो भागोंमें विभक्त है। यद्यपि 'अथो वागेवेदं सर्वम्' (ऐ०आ० ३।१।६) 'याचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता' (तै०ब्रा० २।८।८।४।५) इत्यादि श्रौत-सिद्धान्तोंके अनुसार वाक्-तत्त्वसे प्रादुर्भूत होनेवाले शब्द-प्रपञ्चसे कोई भी स्थान खाली नहीं है, तथापि स्तम्बरूप तमोविशालसर्ग; कृमि, कीट, पक्षी, पशु, मनुष्य-भेद-भिन्न पञ्चविध रजोविशालसर्ग; यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, पित्र्य, ऐन्द्र, प्राजापत्य, ब्राह्म-भेदभिन्न अष्टविध सत्त्वविशालसर्ग नामसे प्रसिद्ध १४ प्रकारके भूत-सर्गके साथ प्रधानरूपसे अग्निवाक् और इन्द्रवाक्का ही सम्बन्ध है। 'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी' (शत० १४।९।७।२०) के अनुसार पृथिवी अग्निमयी है। द्युलोकोपलक्षित सूर्य इन्द्रमय है। यद्यपि इन दोनों लोकोंसे अतिरिक्त तीसरा अन्तरिक्ष (भुवः) लोक और है। भूः (पृथिवी), भुवः (अन्तरिक्ष), स्वः (द्यौः—सूर्य) इन तीनों लोकोंसे प्रजा-निर्माण होता है। पृथिवीमें अग्निकी सत्ता है। इससे मनुष्य-प्रजाका सम्बन्ध है। अतएव पृथिवीको मनुष्यलोक कहा जाता है। अन्तरिक्षमें चन्द्रमाकी सत्ता है। इससे पितर-प्रजाका सम्बन्ध है। इसी आधारपर 'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति' (सिद्धान्त-शिरोमणि) यह कहा जाता है। यही दूसरा पितृलोक है। द्युलोकमें सूर्यकी सत्ता है। इससे देव-प्रजाका सम्बन्ध है। इसी आधारपर 'चित्रं देवानामुदगात्' यह कहा जाता है। यही तीसरा देवलोक है। तीनों ही 'वागिति पृथिवी' (जै० उ० ४।२२।११) 'वाग्घ चन्द्रमा भूत्वोपरिष्टात्तस्थौ' (शत० ८।१।२।७) 'सा या सा वाक्—असौ स आदित्यः' (शत० १०।५।१।४) के अनुसार वाङ्मय है। तथापि प्रधानता पृथिवी और सूर्य-वाक्की ही मानी जाती है। कारण इसका यही है कि पार्थिव एवं सौर अग्नि अन्नाद (अन्न खानेवाले) हैं। मध्यपतित चान्द्रसोम—'एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः' (श० १।६।४।५) के अनुसार इन अग्नियोंका अन्न बन रहा है। अन्न जब अन्नादके उदरमें चला जाता है तो केवल अन्नाद-सत्ता ही रह जाती है। अन्नकी स्वतन्त्रता हट जाती है। जैसा कि श्रुति कहती है—

'द्वयं वा इदम्—अत्ता चैवाद्यञ्च। तद्यदोभयं समागच्छति—अत्तैवाख्यायते नाद्यम्। स वै यः सोऽत्ताग्निरेव सः।'

(शत० १०।६।३।१) इति।

इसीलिये त्रैलोक्यके लिये 'द्यावापृथिवी' व्यवहार ही होता है। इस प्रकार प्रधानरूपसे पृथिवीलोक, सूर्यलोक, दो ही लोक रह जाते हैं। दोनों अग्निमय हैं। पार्थिवाग्नि गायत्राग्नि है। सौर-अग्नि सावित्राग्नि है। 'तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' (श० १०।५१।१) के अनुसार दोनों ही अग्नियोंको हम 'वाक्' कहनेके लिये तैयार हैं। वैज्ञानिक परिभाषानुसार पृथिवीकी 'वाक्' 'अनुष्टुप्' कहलाती है। सूर्यकी वाक् 'बृहती' कहलाती है। अनुष्टुप् वाक्से क-च-ट-त-प आदिरूपा वर्णवाक्का प्रादुर्भाव होता है। बृहतीवाक्से अ-आ-इ आदिरूपा स्वरवाक्का विकास होता है। दूसरे शब्दोंमें वर्णवाक् अनुष्टुप् है। स्वरवाक् बृहती है। 'स्वरोऽक्षरम्' (प्रातिशाख्य) के अनुसार स्वर अक्षर है। अविनाशी है। वर्ण क्षर है। विनाशी है। अर्थ-सृष्टिमें भौतिक क्षरकूटकी प्रतिष्ठा जैसे अक्षर तत्त्व है, एवमेव—

शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

—के अनुसार अर्थ-ब्रह्मकी समान धारामें प्रवाहित होनेवाले शब्द-ब्रह्ममें भी क्षररूप वर्णकी प्रतिष्ठा अक्षररूप

१ चन्द्रमामें पितर रहते हैं, इस विषयका विशद निरूपण हमारे लिखे हुए 'श्राद्धकी वैज्ञानिकता' नामके निबन्धमें देखना चाहिये।

स्वरतत्त्व ही है। अर्थ-ब्रह्ममें जैसे अक्षररूप सूर्य-सत्ताको छोड़कर क्षररूपा पृथिवी स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित नहीं रह सकती, एवमेव सूर्यवाङ्मूलक स्वरतत्त्वके विना पृथिवी-मूलिका वर्णराशि भी स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित नहीं रह सकती। विना स्वरके सहारे आप कथमपि व्यञ्जनका उच्चारण नहीं कर सकते। बस, स्वरमूलक इस सूर्यविद्याका ही नाम त्रयी-विद्या है, सूर्यबिम्ब ऋग्वेद है। सूर्यका अर्चिमण्डल (रश्मि-मण्डल) सामवेद है। सूर्यमें रहनेवाला अग्निपुरुष यजुर्वेद है। सूर्य क्या तप रहा है, त्रयीविद्या तप रही है। इसी आधारपर 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति' (शत० १०।५।२।२) यह कहा जाता है। 'त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः' का भी यही रहस्य है। यह वेदतत्त्व नित्यतत्त्व है। स्वयं प्रादुर्भूत है। स्वयं ब्रह्मके मुखसे विनिर्गत है। अतएव ऋषियोंने इसे 'निगम' नामसे व्यवहृत किया है। निर्गत ही परोक्षभावसे निगम कहा जाता है। निष्कर्ष यही हुआ कि त्रयीविद्या नामसे प्रसिद्ध सूर्यविद्याका नाम ही 'निगम-विद्या' है। दूसरी है आगम-विद्या। शनि, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र, बुध, पृथिवी आदि सूर्यके उपग्रह हैं। सूर्यका ही प्रवर्ग्य-भाग (अलग निकला हुआ भाग) शनि आदि रूपमें परिणत होकर सूर्यके चारों ओर घूम रहा है। सूर्य-विद्याका अंश-भूत पृथिवी-लोक सूर्यके चारों ओर घूम रहा है। पृथिवी-विद्या सूर्य-विद्यासे आयी है। इसी रहस्यको समझानेके लिये ऋषियोंने पृथिवी-विद्याका नाम 'आगम' रक्खा है। सूर्य-विद्यावत् पृथिवीविद्या स्वयं निर्गत नहीं है। अपितु निगमसे आयी है, अतएव 'निगमात् आगतः' इस व्युत्पत्तिसे पृथिवीविद्या 'आगम' नामसे प्रसिद्ध हुई। हम बतला आये हैं कि पृथिवीकी वाक् वर्णवाक् है। स्वरसे भिन्न है। अतएव आगमशास्त्रोक्त प्रयोगोंका उदात्तादि स्वरोंसे विशेष सम्बन्ध नहीं माना जाता। वहाँ केवल शब्दकी आवृत्ति (जप) से ही सिद्धि हो जाती है। परन्तु निगमविद्या (वेदविद्या) में यह बात नहीं है। वहाँ स्वरवाक्की प्रधानता है। अतएव निगमोक्त (वैदिक) प्रयोगोंमें उदात्त अनुदात्तादि स्वरोंपर पूरा ध्यान रखना पड़ता है।

> दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
> मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
> स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
> यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

—के अनुसार बिना स्वरके निगमकाण्ड निरर्थक है। अनिष्टकर है। क्योंकि स्वरवाक् ही उसका मूल है। सूर्य-विद्या निगमविद्या है, पृथिवीविद्या आगमविद्या है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि निगममें केवल सूर्यका ही निरूपण है, आगमविद्यामें केवल पृथिवीका ही निरूपण है। अपितु दोनोंमें सारे विश्वका निरूपण है। लक्ष्यभेदमात्र है। निगमशास्त्र सूर्यको प्रधान मानकर सारे विश्वका निरूपण करता है, एवं आगमशास्त्र पृथिवीको मूल मानकर आगे चलता है। 'द्यौष्पितः पृथिवि मातः' (ऋक्० ४।८।११) के अनुसार द्युलोकोपलक्षित सूर्य पिता है। पृथिवी माता है। पिता पुरुष है। माता प्रकृति है। पुरुष रेतोधा है। प्रकृति योनि है। पुरुष-शास्त्र निगम है। अतएव निगमको वेद-पुरुष कहा जाता है। प्रकृतिशास्त्र आगम है। अतएव आगमको आगमविद्या कहा जाता है। बिना आगमके निगम अप्रतिष्ठित है। जैसा कि अनुपदमें ही स्पष्ट होने-वाला है। निगममें भी आगमका साम्राज्य है। अतएव पुरुष-वेदको वेदविद्या भी कहा जाता है। सूर्य साक्षात् रुद्र है। एवं सूर्यकी अनन्त रश्मियाँ अनन्त रुद्र हैं। अनन्तर रुद्र विट्रुद्र (प्रजारुद्र) हैं। सूर्यरुद्र क्षत्ररुद्र हैं। जहाँ वैज्ञानिक रश्मिगत त्रैलोक्यव्यापक अनन्त रुद्रोंका—

'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः,' 'ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः'

—इत्यादि रूपसे निरूपण करते हैं, वहाँ उस सूर्यरूप एकाकी क्षत्ररुद्रको लक्ष्यमें रखकर—

> एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
> र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
> (श्वेता० ३।२)

—यह कहते हैं। इस रुद्ररूप सौर-अग्निके—'अग्निर्वा रुद्रः। तस्यैते द्वे तन्वे घोरान्या च शिवान्या च।' के अनुसार घोर-शिव-भेदसे दो शरीर हैं। आप अपने अध्यात्म-जगत्में दोनों मूर्तियोंका साक्षात्कार कर सकते हैं। प्रारम्भमें अग्निको अन्नाद बतलाया गया है। अन्न खाना अग्निका स्वाभाविक धर्म है। अग्नि प्रज्वलित हो रहा है। जबतक आप उसमें काष्ठान्न देते रहेंगे तभीतक वह स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित रहेगा। अग्निका इन्धन (प्रज्वलन) काष्ठाहुतिपर निर्भर है। अतएव काष्ठको इन्धन (ईंधन) कहा जाता है। यही अवस्था शरीराग्निकी है। लोम, केश, नखोंके अग्रभागको छोड़कर सर्वाङ्ग शरीरमें वैश्वानर-अग्नि धधक

रहा है। जहाँ स्पर्श करते हैं, वहीं ऊष्मा पाते हैं। यही इस अग्निका प्रत्यक्ष दर्शन है। नाक, कान बन्द कर लेनेपर जो नाद सुनायी पड़ता है, वही इसकी श्रुति है। इस अन्नाद-अग्निकी सत्ताके लिये सायं-प्रातः अन्न खाना पड़ता है। बस, जबतक इस अन्नादमें अन्नकी आहुति रहती है तबतक शरीर स्वस्थ रहता है। कारण इसका यही है कि अन्न सोमतत्त्व है। सोम शान्ततत्त्व है। इसकी आहुतिसे रुद्राग्नि शान्त होता हुआ शिव बन जाता है। यदि अन्नाहुति बन्द कर दी जाती है तो वह रुद्र घोर रूपमें परिणत होकर पहले रसासृग्मांसमेदादि शरीर-धातुओंको खाने लगता है। एवं उनके नष्ट हो जानेपर स्वयं भी उत्क्रान्त हो जाता है। निष्कर्ष यही हुआ कि अन्नाहुतिसे रुद्र-तनू शिवभावमें परिणत होकर पालन करती है, एवं अन्नाभावमें वही घोर-तनू बनकर नाशका कारण बनती है। हम जो प्रतिदिन अन्न खाते हैं, उससे उग्र रुद्र शान्त होते हैं। इसीलिये वैज्ञानिकोंने इस अन्नका नाम 'शान्तदेवत्य' किंवा शान्तरुद्रिय (जिस अन्नसे रुद्र-देवता शान्त होते हैं वह अन्न) रक्खा है। परोक्षप्रिय देवताओंकी परोक्ष भाषामें वह शान्तरुद्रिय अन्न 'शतरुद्रिय' नामसे प्रसिद्ध है, इसी पूर्व-विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर याज्ञवल्क्य कहते हैं—

अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। स एषोऽत्र रुद्रो देवता। स दीप्यमानोऽतिष्ठदन्नमिच्छमानः। तस्माद्देवा अबिभयुः—यद्वै नोऽयं न हिंस्यात् इति। तस्मै एनदन्नं समभरत् शान्तदेवत्यम्। तेनैनमशमयन्। शान्तदेवत्यं ह वै शतरुद्रियमित्याचक्षते परोक्षम्। परोक्षकामा हि देवाः।
(श० ९। १। १। १) इति।

माताके गर्भाशयमें अग्निकी क्रमिक चितिसे क्रमशः प्रवृद्ध होनेवाला गर्भ नौ मासके अनन्तर जब पूर्णभावको प्राप्त हो जाता है तो सर्वात्मना संस्कृत रुद्राग्निके आघातसे, एवयामरुत्की प्रेरणासे गर्भ गर्भाशयसे जननेन्द्रियद्वारा बाहर निकल पड़ता है। उस समय सारे इन्द्रिय-देवता डरने लगते हैं। अपनी रक्षाके लिये वे उसमें अन्नाहुति डालते हैं। अन्नके आहुत होते ही रुद्राग्नि-सन्तापसे रोता हुआ शिशु चुप हो जाता है। इस प्रकार वही रुद्राग्नि अन्न-सम्बन्धसे शिव बनकर संसारकी रक्षा करते हैं। अन्नाभावमें वही नाशके कारण बन जाते हैं। यही दोनों भाव सूर्यमें समझिये। सूर्य साक्षात् रुद्र है। प्राणियोंको सन्तप्त करनेवाला है। परन्तु पार्थिव ओषधि, वनस्पत्यादि अन्न इसमें निरन्तर आहुत होते रहते हैं। पार्थिव रसको सूर्य रश्मियोंद्वारा लिया करता है। अतएव वह शिव बन रहा है। पूर्वकथनानुसार पृथिवी माता है, शक्ति है। सूर्य पिता है, शिव है। परन्तु इस शिवका शिवत्व शक्ति-समन्वयपर ही निर्भर है। जिस दिन पार्थिवान्न-सम्बन्ध हट जायगा सूर्य-रुद्र घोर रूपमें परिणत होता हुआ सम्पूर्ण विश्वको भस्मसात् कर डालेगा। सौर-तेज हिरण्मय है। इसकी सत्ता सोमपर (अन्नपर) निर्भर है। इसमें प्रविष्ट महदक्षररूपा चित्-शक्ति ही हैमवती उमा है। वाल्लभ इसे ही भगवच्छक्ति कहते हैं। यही अद्वैतवादियोंकी माया है। उपासकोंकी राधा है। रामानुजियोंकी लक्ष्मी है। वैज्ञानिकोंकी हैमवती उमा है। 'मम योनिर्महद् ब्रह्म' के अनुसार पारमेष्ठ्य महत् सोम ही चिदात्मा (अव्यय पुरुष) की प्रतिष्ठा है। वह सोम सौर-मण्डलमें आकर हैमवती चिच्छक्तिसे युक्त हो जाता है। अतएव 'उमासहितस्तत्त्वः' के अनुसार वह पारमेष्ठ्य तत्त्व 'सोम' कहलाने लगता है। यही उमा ब्राह्मणग्रन्थोंमें विषय-भेदसे अम्बिका, अम्बा, माता, जनि, धारा, जाया, आप आदि नामोंसे व्यवहृत हुई है। सौर इन्द्र शिव है। इसकी शक्ति पार्थिव प्राज्ञ-सोमरूपा हैमवती उमा है। सोम स्वस्वरूपसे कृष्ण है। परन्तु सौर-विज्ञान-मण्डलमें आकर अग्निदाहकतासे वही चमकीला बन जाता है। आप सूर्यमें जो प्रकाश देख रहे हैं, वह इसी सोमाहुतिका प्रभाव है। इसी आधारपर 'त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ' (ऋक्० १। ९१। २२) कहा जाता है। 'त्वमा ततन्थोर्वान्तरिक्षम्' (ऋक् १। ९१। २२) के अनुसार वह सोम विशाल आकाशमें सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। यह सोममयी शक्ति उसी चिद्घन अव्यय पुरुषकी प्रकृति है। इन्द्रादि देवताओंको उसका ज्ञान आकाशस्थ इसी महामायाकी कृपासे होता है। बिना शक्तिको आगे किये ब्रह्मज्ञान असम्भव है। इसी शक्ति-विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर उपनिषच्छ्रुति कहती है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीम्। तां होवाच किमेतद्यक्षमिति॥ सा ब्रह्मेति होवाच। ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति। ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ (केन० ३। १२; ४। १)

उपनिषद्-विद्याका सारभूत गीताशास्त्र भी ब्रह्मज्ञानके लिये शक्तिकी आराधनाको ही प्रधान बतलाता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(७। १४)

—से स्पष्ट ही शक्तिवादकी प्रधानता सिद्ध है। युद्धकालमें विजय-प्राप्त्यर्थ अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे पहले उसी शक्तिकी आराधना करता है। यह है शिव-शक्तिका मौलिक रहस्य। सौरप्राणकी प्रधानतासे पुरुष-सृष्टि होती है। चान्द्रसोमगर्भित पार्थिव प्राणकी प्रधानतासे स्त्री-सृष्टि होती है। सम्पूर्ण स्त्रियाँ शक्तिरूपा हैं। सम्पूर्ण पुरुष शिवरूप हैं। सारा विश्व शिव-शक्तिमय है, दोनों अविनाभूत हैं। चूँकि आगमशास्त्र माता पृथिवीसे सम्बन्ध रखता है, अतएव उसमें शक्तिकी ही प्रधानता है। आज इसी आगमविद्या-की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया जाता है।

विद्या-शब्द-रहस्य*

हम बतला आये हैं कि आगमका आगमन निगमसे हुआ है। यही कारण है कि आगमके सारे सिद्धान्त निगम-सिद्धान्तोंपर ही प्रतिष्ठित हैं। जैसे निगमशास्त्रके लिये निगमाचार्योंने 'सैषा त्रयी विद्या' इत्यादि रूपसे विद्या-शब्द प्रयुक्त किया है, एवमेव आगमाचार्योंने 'विद्यासि सा भगवती' इत्यादि रूपसे आगमके लिये भी विद्या-शब्दका प्रयोग किया है। इस प्रकरणमें विद्या-शब्दका ही निर्वचन किया जायगा।

निगममें 'त्रयं ब्रह्म', 'त्रयी विद्या', 'त्रयो वेदाः' इत्यादि रूपसे ब्रह्म, विद्या, वेद तीनोंको अभिन्नार्थक माना है। परमार्थ-दृष्टिसे तीनों अभिन्न हैं। विश्वदृष्ट्या तीनों भिन्न हैं। शक्तितत्त्व 'विद्या' किंवा 'महाविद्या' शब्दसे क्यों व्यवहृत हुआ? इसका उत्तर इन्हीं तीनोंके स्वरूप-ज्ञानपर निर्भर है। अनन्त ज्ञानघन, क्रियाघन, अर्थघन तत्त्वविशेषका नाम ही अक्षर ब्रह्म है। वह सर्वज्ञानमय है, सर्वक्रियामय है, सर्वार्थमय है। दूसरे शब्दोंमें वह अक्षरतत्त्व मनः-प्राण-वाङ्मय है। जैसे क्षर पुरुषका आलम्बन अक्षर पुरुष है, एवमेव सबका आलम्बन पुरुषोत्तम-नामसे प्रसिद्ध अव्यय पुरुष है। वह स्वयं ज्ञान-क्रिया-अर्थशक्तिरूप है। अव्ययकी ज्ञान-शक्तिका उक्थ (प्रभव) मन है। क्रिया-शक्तिका उक्थ प्राण है। अर्थ-शक्तिका उक्थ वाक् है। इन तीन कलाओंके अतिरिक्त आनन्द-विज्ञान-नामकी दो कलाएँ और हैं। इन पाँचों कलाओंमें पाँचवीं वाक्कला उपनिषदोंमें 'अन्नब्रह्म' नामसे प्रसिद्ध है। तैत्तिरीय उपनिषद्में इन पाँचों (आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, अन्न) ब्रह्म-कोषोंका विस्तारसे निरूपण किया गया है। सुप्रसिद्ध आनन्दादि अव्यय पुरुषकी पाँच कलाएँ हैं। दूसरे शब्दोंमें वह अव्यय पञ्चकल है। पञ्चकलात्मक वह अव्यय पुरुष स्वयं शक्तिरूप है। 'सामान्ये सामान्याभावः' के अनुसार आनन्दमें आनन्द नहीं। विज्ञानमें विज्ञान नहीं। मनमें मन नहीं। प्राणमें प्राण नहीं। वाक्में वाक् नहीं। अतएव अक्षरसे भी परे रहनेवाले इस तत्त्वका—

> **दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।**
> **अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥**
> (मुण्डक० २। १। २)

—इत्यादि रूपसे निरूपण किया जाता है। अप्राण एवं अमनमें क्रिया नहीं, अतएव वह अव्यय पुरुष कर्तृत्व-करणत्वादि धर्मोंसे रहित होता हुआ सृष्टिविद्याके बहिर्भूत है। न वह करता है, न लिप्त होता है। इसी भावका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

> **न तस्य कार्यं करणं च विद्यते**
> **न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।**
> **परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते**
> **स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥**
> (श्वेता० ६। ८)

इन्हीं कारणोंसे हम अव्यय पुरुषको निर्धर्मक माननेके लिये तैयार हैं। अव्यय पुरुष है। पुरुष चेतन है। चिदात्मा है। ज्ञानमूर्ति है। अतएव निष्क्रिय है। अतएव च क्रियासापेक्ष सक्रिय विश्वकी निर्माण-प्रक्रियासे बहिर्भूत है। सृष्टि संसृष्टि है। योषा, वृषा नामसे प्रसिद्ध रयि, प्राण नामके दो तत्त्वोंका रासायनिक संयोग ही संसृष्टि है। संसर्ग व्यापार है। व्यापार क्रिया है। इसका उसमें अभाव है। अतएव वह अकर्ता है। यद्यपि पञ्चकलाव्यय पुरुष प्राणरूप होनेसे क्रियाशून्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु कोरी क्रिया कुछ नहीं कर सकती। क्रिया क्रियावान् कर सकता है। अव्यय क्रियावान् नहीं, क्रियारूप है। क्रियावान् है वही पूर्वोक्त अक्षर पुरुष। यह अक्षर पुरुष ही अव्यक्त, परा प्रकृति, परमब्रह्म आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। वह पुरुष इस प्रकृतिके साथ समन्वित होता है। 'तत्तु समन्वयात्' (शारीरकदर्शन—व्याससूत्र) के अनुसार इस प्रकृति-पुरुषके समन्वयसे ही विश्वरचना होती है। इस समन्वयसे अव्ययकी शक्तियाँ

* इस विषयका विशद निरूपण श्रीगुरु (श्रीमधुसूदनजी ओझा)-प्रणीत 'वेदसमीक्षा' में देखना चाहिये।

अक्षरमें संक्रान्त हो जाती हैं। उसकी शक्तियोंसे अक्षर शक्तिमान् बन जाता है। अतएव हम अक्षरको आनन्दवान्, विज्ञानवान्, मनस्वी, क्रियावान्, अर्थवान् माननेके लिये तैयार हैं। अक्षर शक्तिमान् है, सक्रिय है। एक बात और। पूर्वोक्त अव्यय-कलाओंमें आनन्द प्रसिद्ध है। विज्ञान चित् है। मन, प्राण, वाक्की समष्टि सत् है। सत्, चित्, आनन्दकी समष्टि ही सच्चिदानन्द ब्रह्म है। अक्षर तीनोंसे युक्त है। अतएव हम इसे अवश्य ही आनन्दवान्, विज्ञानवान् कह सकते हैं। आनन्दविज्ञान मुक्तिसाक्षी अव्यय है। प्राणवाक् सृष्टि-साक्षी अव्यय है। मध्यपतित मन 'उभयात्मकं मनः' के अनुसार दोनों ओर जाता है। मुक्तिका सम्बन्ध आनन्द, विज्ञान, मनसे है; सृष्टिका सम्बन्ध मन, प्राण, वाक्से है। अतएव सृष्टि-साक्षी आत्माको 'स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः' इत्यादि रूपसे मनःप्राणवाङ्मय ही बतलाया जाता है। सृष्टि-साक्षी अव्ययमें हमने ज्ञानघन मन, क्रियाघन प्राण, अर्थघना वाक्की सत्ता बतलायी है। इन तीनोंमें ज्ञानकलाका विकास स्वयं अव्यय पुरुष है। उसमें इसी कलाकी प्रधानता है। क्रियाका विकास अक्षर-पुरुष है। अर्थका विकास क्षर-पुरुष है। अर्थप्रधान क्षर-पुरुष भी निष्क्रिय है। ज्ञानप्रधान अव्यय पुरुष भी निष्क्रिय है। सक्रिय है मध्यपतित क्रियाप्रधान एकमात्र अक्षर-पुरुष। क्रिया करना एकमात्र अक्षरका ही धर्म है। अतः हम तीनों पुरुषोंमेंसे एकमात्र अक्षरको ही सृष्टिकर्ता माननेके लिये तैयार हैं। अव्यक्त अक्षर प्रकृति ही विश्वका प्रभव, प्रतिष्ठा, परायण है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर श्रुति कहती है—

> यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः
> सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
> तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः
> प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति॥
> (मुण्डक० २।१।१)

> अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
> रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
> (गीता ८।१८)

> अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
> अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥
> (गीता २।२८)

—आदि स्मार्त-वचन भी इसी भावको प्रकट करते हैं। जैसे प्रजापति (कुम्भकार) भूपृष्ठपर बैठकर समुदायरूपसे सर्वथा गतिशून्य अवयवरूपसे सर्वथा गतिशील चक्रपर मिट्टी रखकर घट निर्माण किया करता है, एवमेव अक्षरप्रजापति-रूप कुम्हार आनन्दविज्ञानमनोघन मुक्तिसाक्षी अव्ययरूप धरातलपर बैठकर मनःप्राणवाग्घन सृष्टिसाक्षी अव्ययरूप चक्रपर क्षररूप मिट्टीसे उक्थ त्रिलोकीरूप घटका निर्माण किया करता है। त्रिभुवन-विधाता उस अक्षर प्रजापतिमें और बुध्न (पेंदा), उदर, मुखरूप त्रैलोक्यभावापन्न घट निर्माण करनेवाले मनुष्य प्रजापतिमें निरन्तर स्पर्धा होती रहती है। जो क्रम घट-सृष्टिका है, वही उस ईश्वर प्रजापति-का है। इसी विद्याको समझानेके लिये ऋषियोंने कुम्भकार-की 'प्रजापति' संज्ञा रक्खी है। पूर्वोक्त क्षर पुरुष उस अव्यय पुरुषकी अपरा प्रकृति है। अक्षर पुरुष परा प्रकृति है। अव्यय आलम्बन कारण है। अक्षर असमवायि (निमित्त) कारण है। क्षर समवायि (उपादान) कारण है। तीनोंमें कर्ता अक्षर है। क्योंकि वही क्रियामय है। एक ओरसे चिदात्मा अव्ययके ज्ञानभागको लेकर वह सर्वज्ञ बन रहा है, दूसरी ओरसे क्षररूप अर्थको लेकर सर्ववित् बन रहा है। क्षर उपादान होनेसे 'ब्रह्म' कहलाता है। इसी अभिप्रायसे 'ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्' यह कहा जाता है। अक्षरसे ही क्षर-ब्रह्म प्रादुर्भूत होता है। इसीको अवर-ब्रह्म भी कहा जाता है। अक्षर पुरुष क्षरापेक्षया पर, और अव्ययापेक्षया अवर होनेसे परावर कहलाता है। व्यक्त क्षर, अव्यक्त अक्षर दोनों-से पर होनेके कारण अव्यय 'पर' कहलाता है। मध्यपतित परावर अक्षरमें परसम्पत्ति (अव्ययसम्पत्ति) भी है, एवं ब्रह्मसम्पत्ति (क्षर सम्पत्ति) भी है। अतएव इसे हम 'पर' 'ब्रह्म'—दोनों कह सकते हैं। इसके ज्ञानसे सब कुछ गतार्थ हो जाता है। इसी अभिप्रायसे श्रुति कहती है—

> एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म ह्येतद्ध्येवाक्षरं परम्।
> एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
> (कठ० १।२।१६)

> भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥ इति॥
> (मुण्डक० २।२।८)

दश महाविद्याओंके द्वारा सृष्टितत्त्वका निरूपण किया गया है। अतएव अप्रासङ्गिक होनेपर भी प्रकरण-सङ्गतिके लिये सृष्टि-कर्ताका स्वरूप बतलाना पड़ा। अव्यय, एवं क्षरानुगृहीत अक्षर ही सृष्टि-कर्ता है—यह सिद्ध हो चुका। यद्यपि अक्षर

ज्ञान, क्रिया, अर्थ तीनोंसे ही युक्त है, तथापि क्रिया और अर्थका पूर्ण विकास क्रियार्थघन विश्वमें ही होता है। सृष्टिसे पहले केवल ज्ञानकी ही प्रधानता रहती है। इसीलिये अक्षरके तपको (क्रियाको) ज्ञानमय ही बतलाया जाता है। इसीलिये अक्षर 'चेतना' नामसे प्रसिद्ध है। अव्यय, क्षराविनाभूत अतएव सर्वज्ञ, सर्ववित् इस अक्षरके ज्ञानमय तपसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिका क्या स्वरूप है ? इसका समाधान करती हुई श्रुति कहती है—

> यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
> तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नञ्च जायते॥
> (मुण्डक० १। १। ९)

प्रतिष्ठा, ज्योति, यज्ञका ही नाम क्रमशः ब्रह्म, नामरूप, अन्न है। इन तीनोंमें सम्पूर्ण सृष्टिका अन्तर्भाव है। अक्षर पुरुष सर्वप्रथम इन्हीं तीन रूपोंमें विकसित होता है। प्रतिष्ठा-तत्त्वका नाम ब्रह्मा है। ज्योतितत्त्वका नाम इन्द्र है। यज्ञतत्त्वका नाम विष्णु, अग्नि, सोम है। प्रत्येक पदार्थमें आप जो एक ठहराव देखते हैं, स्थिति देखते हैं, अस्तित्व देखते हैं, वही प्रतिष्ठा है। यही तत्त्व सृष्टिका मूलाधार है। स्थिरभावमें ही सृष्टि-क्रिया हो सकती है। गतिकी प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा (स्थिति) ही है। बीजको भूगर्भमें प्रतिष्ठित करो, तभी अङ्कुर-सृष्टि होगी। शुक्रको गर्भाशयमें प्रतिष्ठित करो, तभी प्रजा-सृष्टि होगी। उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंमें उत्पत्ति-रूप क्रियाका आधारभूत पहले प्रतिष्ठाब्रह्म ही उत्पन्न होता है। वस्तुमात्रमें पहले जन्म धारण करनेवाला, एवं वस्तुमात्रका आधारभूत यही तत्त्व है। इसी आधारपर वस्तु-सृष्टि होती है। 'ब्रह्म वै सर्वस्य प्रतिष्ठा', 'ब्रह्म वै सर्वस्य प्रथमजम्' (शत० ६। १। १), 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।' आदि वचन इसीको मुख्य बतलाते हैं। यह ब्रह्मा किंवा प्रतिष्ठा है क्या ? इसका उत्तर है गतिसमुच्चय। सर्वतोदिग्गति अथवा दिग्द्वयगतिका समन्वय ही स्थिति है। अतएव समान बलवाले दो मल्लोंके विरुद्धदिग्गतिबलसे रस्सा स्थिर हो जाता है। यही पहली सृष्टि है। इसीके लिये 'तस्मादेतद् ब्रह्म' कहा है। दूसरी सृष्टि है नामरूपात्मिका। नामरूपको कर्मका उपलक्षण समझना चाहिये। प्रत्येक वस्तुमें पहले उसकी प्रतिष्ठाका जन्म होता है। अनन्तर नाम-रूप-कर्म तीनोंके सम्बन्धसे वस्तुस्वरूप सम्पन्न हो जाता है। नाम-रूपके बिना वस्तु अन्धकारमें है। नाम-रूप ही वस्तु-भान (ज्ञान) का कारण है। यह भाति ही ज्योति है। यह ज्योति ('अयं घटः' इत्याकारक वस्तुस्वरूपप्रकाश) साक्षात् इन्द्र है। 'रूपं रूपं मघवा बोभवीति' (ऋक्संहिता), 'इन्द्रो रूपाणि करी-क्रुदचरत्' (ऋक्संहिता) इत्यादि श्रुतियाँ इन्द्रको रूप-ज्योतिर्मय बतलाती हैं। अतएव इस नामरूपात्मिका ज्योतिःसृष्टिको हम अवश्य ही इन्द्र कहनेके लिये तैयार हैं। वस्तुस्वरूप सम्पन्न हो गया। सम्पन्न होते ही उसमें अन्नादानविसर्गात्मक यज्ञ प्रारम्भ हो जाता है। जड हो या चेतन, सभी पदार्थ अन्न खाते हैं। सबमें निरन्तर अन्नकी आहुति होती रहती है। बस, जो सूत्र अन्न खींचता है उसीका नाम विष्णु है। यह अन्न-यज्ञ विष्णुद्वारा होता है, अतएव 'यज्ञो वै विष्णुः', 'विष्णुर्वै यज्ञः' इत्यादि रूपसे यज्ञ और विष्णुका अभेद माना जाता है। अन्न खींचने-वाला, अन्न, एवं जिसमें अन्न आहुत होता है वह—इस प्रकार तीन शक्तियोंके मेलसे यज्ञस्वरूप सम्पन्न होता है। अन्न खींचनेवाली शक्ति विष्णु है। अन्न सोम है। जिसमें अन्नाहुति होती है वह अग्नि है। इस प्रकार अन्नरूप यज्ञमें विष्णु, अग्नि, सोम तीन देवताओंका अन्तर्भाव सिद्ध हो जाता है। यही तीसरी सृष्टि है। अक्षरको हमने क्रिया-घन बतलाया है। क्रिया गति है। अतएव अक्षरको हम गति-तत्त्व माननेके लिये तैयार हैं। वही गति पूर्वोक्त पाँच रूप धारण कर लेती है। अक्षररूप गति-तत्त्व समुचित भावमें स्थिति है। वही ब्रह्मा है। विक्षेपण-भावमें(गति-भावमें)वही इन्द्र है। आकर्षण (आगति) भावमें वही विष्णु है। यदि गति, आगति स्वतन्त्र हैं तब तो दोनों क्रमशः इन्द्र, विष्णु हैं। यदि दोनों स्थितिरूप ब्रह्म-तत्त्वके गर्भमें चली जाती हैं तो यही अग्नि सोम-रूपमें परिणत हो जाती है। स्थिति-गर्भित गति (इन्द्र) अग्नि है। स्थिति-गर्भित आगति (विष्णु) सोम है। इस प्रकार एक ही गत्यात्मक अक्षरतत्त्व गतिसमुच्चय, शुद्ध गति, शुद्ध आगति, स्थितिगर्भिता गति, स्थितिगर्भिता आगति, इन पाँच भावोंमें परिणत होकर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, अग्नि, सोम नाम धारण कर लेता है। एक ही अक्षर गति-तारतम्य-से पञ्चाक्षर बन जाता है। जिस प्रकार शब्द-सृष्टि अ, इ,

१ इस विषयका विस्तृत विवेचन हमारे लिखे हुए 'कठ' के भाषाभाष्यमें देखना चाहिये।

१ इस गतिविज्ञानका विशद निरूपण 'शतपथ'के प्रथम वर्षमें निकल चुका है। अधिक जिज्ञासा रखनेवालोंको वहीं देखना चाहिये।

उ, ऋ, ऌ, इन पाँच अक्षरोंसे होती है उसी प्रकार अर्थ-सृष्टि पूर्वोक्त पाँच अक्षरोंसे होती है। जो क्रम शब्द-सृष्टिका है, वही अर्थ-सृष्टिका है। शब्द-ब्रह्मको पहचान लो, अर्थ-ब्रह्म गतार्थ है। शब्दार्थका अभिन्न सम्बन्ध है। उत्पन्न-सृष्ट नहीं अपितु उत्पत्ति-सृष्ट सम्बन्ध है। ब्रह्मा सृष्टि-कर्त्ता हैं। इन्द्र (रुद्र) संहारक हैं। विष्णु पालक हैं। अग्नी-षोम उपादान हैं। जबतक इस त्रिमूर्त्तिके साथ अग्नी-षोमात्मक यज्ञका सम्बन्ध रहता है तबतक इन्द्र (रुद्र) शिव बने रहते हैं। अग्नीषोमात्मक यज्ञके उच्छिन्न होनेपर वही इन्द्र घोररूपमें परिणत होकर विश्वका संहार कर डालते हैं। बारह प्रकारके आदित्य-प्राणोंमेंसे शासक, सर्व-व्यापक, अमृतरूप अन्यतम प्राणका ही नाम इन्द्र है। अतएव द्वादशादित्य-घन सूर्यको त्वष्टा, भग, पूषा आदि और-और आदित्योंके नामसे व्यवहृत न कर 'अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः' (शत० ८। ५। ३। २), 'एष वा इन्द्रो य एष तपति' (शत० २। ३। ४। १२) के अनुसार इन्द्र-शब्दसे ही व्यवहृत किया जाता है। यह सूर्यरूप इन्द्र, अग्नि, सोम (चन्द्रमा) तीनों ज्योतिर्मय पदार्थ हैं। तीनोंसे विश्व प्रकाशित है। इन तीनोंकी समष्टि ही शिव है। अन्न-यज्ञपर शिवस्वरूप प्रतिष्ठित है। अग्नी-षोमके समन्वयका ही नाम यज्ञ है। पुराणशास्त्र ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इस त्रित्व-विज्ञानको प्रधान मानता है। एवं निगमशास्त्र ब्रह्मादि पञ्चाक्षर-विज्ञानपर प्रतिष्ठित है। निरूपणी या शैलीमात्रमें भेद है। बात एक ही है। पुराण—इन्द्र, अग्नि, सोमके भेदको उन्मुग्ध मानकर तीनोंका शिव-शब्दसे निरूपण करता है। वेद तीनोंका उद्बुद्धरूपसे निरूपण करता है। सारे प्रपञ्चका निष्कर्ष यही हुआ कि वह अक्षरतत्त्व सृष्टि-कामुक बनकर अपने ज्ञानमय तपसे ब्रह्म, नाम-रूप, अन्न; दूसरे शब्दोंमें प्रतिष्ठा, ज्योति, यश; तीसरे शब्दोंमें ब्रह्मादि पञ्चाक्षररूपमें परिणत होता है। इन पाँचों अक्षरोंमें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तीनों वस्तुके हृदय (केन्द्र) में प्रतिष्ठित होकर उसका सञ्चालन करते हुए अन्तर्यामी नामसे प्रसिद्ध होते हैं। एवं अग्नी-षोमसे वस्तुस्वरूप बनता है। इसी आधारपर 'अग्नी-षोमात्मकं जगत्' यह कहा जाता है। पाँच अक्षरोंमें परिणत होना अक्षरकी पहली सृष्टि है।

ब्रह्म	= प्रतिष्ठा	= ब्रह्मा		अक्षरकी पहली सृष्टि
नामरूप	= ज्योति	= इन्द्र		
अन्न	= यज्ञ	= विष्णु, अग्नि, सोम		

प्रजा-सृष्टिका अधिष्ठाता होनेके कारण पूर्वोक्त अक्षर-तत्त्व 'प्रजापति' कहलाता है। 'अर्द्धं ह वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्' (शत० १०। १। ३। १) के अनुसार उस प्रजापतिका आधा भाग अमृत है। वह कभी विकृत नहीं होता। वह सर्वथा अविपरिणामी है। आधा भाग मर्त्य है। उसीसे विकार-सृष्टि होती है। यही दोनों भाग अक्षर, क्षर हैं। प्रजापतिका अमृत-भाग अक्षर है। मर्त्य भाग क्षर है। इसीसे विश्व उत्पन्न होता है। यही उपादान है। जो ब्रह्मादि पाँच कलाएँ अक्षरकी हैं, वे ही इस क्षरकी हैं। अक्षरके व्यापारसे इन ब्रह्मादि पाँचों क्षर कलाओंसे क्रमशः प्राण, आप, वाक्, अन्नाद, अन्न इन पाँच विकारोंका जन्म होता है। वैकारिकी सृष्टि इन्हींसे होती है। अतएव इनको 'विश्वसृट्' कहा जाता है। इन पाँचों-के सर्वहुत-यज्ञसे (जो कि सर्वहुतयज्ञप्रक्रियादर्शनमें 'पञ्ची-करण' नामसे प्रसिद्ध है) पञ्चजन उत्पन्न होते हैं। आधेमें प्राण, आधेमें शेष चारों, आधेमें आप, आधेमें शेष चारों, इस क्रमसे प्राणादि पाँचोंकी पाँचोंमें आहुति होनेसे जो पञ्चीकृत प्राणादि उत्पन्न होते हैं, वही पञ्चजन नामसे प्रसिद्ध हैं। 'वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः' (व्याससूत्र—शा० द०) के अनुसार इनके नाम प्राण, आप, वाक् आदि ही रहते हैं। इन पाँचों पञ्चजनोंसे आगे जाकर क्रमशः वेद, लोक, प्रजा, भूत, पशु, ये पाँच पुरञ्जन उत्पन्न होते हैं। इन्हींसे ब्रह्मपुररूप विश्वका स्वरूप बननेवाला है, अतएव इन्हें 'पुरञ्जन' कहा जाता है। इन पाँचों पुरञ्जनोंमें सबका मूलाधार प्रथमज वेद नामका पुरञ्जन ही है। विश्व-पुरका प्रथमाधार वेद ही है। इसी आधारपर 'वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' (मनुः)—यह कहा जाता है। इन पूर्वोक्त पाँचों पुरञ्जनोंसे क्रमशः स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा, इन पाँच पुरोंका प्रादुर्भाव होता है। अपने क्षरभागसे विश्वसृट्, पञ्चजन, पुरञ्जन, क्रमसे इन पाँचों पुरोंको उत्पन्नकर 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु-प्राविशत्' के अनुसार अव्ययक्षरानुगृहीत वह अक्षरात्मा इनमें प्रविष्ट हो जाता है, अतएव 'विशत्यस्मिन्नात्मा' इस व्युत्पत्तिके अनुसार पञ्चब्रह्मपुर-समष्टिका नाम 'विश्व' होता है। आनन्दविज्ञान मनःप्राणवाक्भेदभिन्न पञ्च-कल अव्यय, अमृतब्रह्मादिभेदभिन्न पञ्चकल अक्षर, मर्त्यब्रह्मादिभेदभिन्न पञ्चकल आत्मक्षर, एवं विश्वातीत-परात्पर—इन चारोंकी समष्टि ही षोडशकल प्रजापति है।

इस षोडशी प्रजापतिका क्षरभाग ही विश्व बना है, अतएव हम कह सकते हैं कि प्रजापतिके अतिरिक्त विश्वमें कुछ नहीं है। इसी प्राजापत्य विज्ञानका निरूपण करते हुए वेद-पुरुष कहते हैं—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ **स्याम पतयो रयीणाम्॥**

(ऋ० १०। १२१४)

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳ**रराणस्त्रीणि ज्योती**ꣳ**षि सचते स षोडशी।**

(यजु० ८। ३६)

पूर्वोक्त सारा विषय निम्नलिखित तालिकासे स्पष्ट हो जाता है—

विश्वेश्वर प्रजापतिकी कलाएँ[1]

षोडशी प्रजापतिः				विश्वम्			
१	५ अव्यय	५ अक्षर	५ आत्मक्षर	विश्वसृट्	पञ्चजन	पुरञ्जन	पुर
१ विश्वातीत परात्पर	१ आनन्द	अमृत ब्रह्मा	मर्त्य ब्रह्मा	शुद्ध प्राण	पञ्चीकृत प्राण	वेद	स्वयम्भू
	२ विज्ञान	,, विष्णु	,, विष्णु	,, आप	,, आप	लोक	परमेष्ठी
	३ मन	,, इन्द्र	,, इन्द्र	,, वाक्	,, वाक्	प्रजा	सूर्य
	४ प्राण	,, अग्नि	,, अग्नि	,, अन्नाद	,, अन्नाद	भूत	पृथिवी
	५ वाक्	,, सोम	,, सोम	,, अन्न	,, अन्न	पशु	चन्द्रमा

ज्ञानघन वह 'षोडशी' प्रजापति, विश्वमें संसृष्ट होकर सोपाधिक बनता हुआ वेद, ब्रह्म, विद्या—इन तीन स्वरूपोंमें परिणत हो जाता है। एक ही सौरप्रकाश हरित, नील, रक्तवर्णके आदर्श (काच)-भेदसे सोपाधिक बनता हुआ जैसे भिन्न-भिन्न तीन वर्णोंमें परिणत हो जाता है, एवमेव यह ज्ञानघन अक्षरप्रधान प्रजापति वेदादि उपाधि-भेदसे तीन स्वरूप धारण कर लेता है। विश्वसृष्टिमें वेद, ब्रह्म, विद्या—इन तीन तत्त्वोंका ही साम्राज्य है। शब्दब्रह्म वेदतत्त्व है। विषयब्रह्म ब्रह्मतत्त्व है, एवं संस्कारब्रह्म विद्यातत्त्व है। उदाहरणरूपसे प्रजापतिके अंशभूत जीव-प्रजापतिको सामने रखिये। राम, कृष्ण, देवीदत्त, घट, पट, गृह आदि अनेक प्रकारके शब्द आप सुनते रहते हैं। साथहीमें अश्व, गज, मनुष्य, वन, उपवन आदि अनेक प्रकारके पदार्थ भी देखते रहते हैं। शब्द सुननेसे भी आपको ज्ञान होता है। पदार्थोंको देखनेसे भी ज्ञान होता है। गो-शब्दके सुननेसे आपका ज्ञान गो-शब्दा-काराकारित हो जाता है। गो-पशु देखनेसे भी ज्ञान तदाकाराकारित हो जाता है। इस प्रकार शब्द-विषय-भेदसे ज्ञान दो भागोंमें विभक्त है। बस, इन दोनोंमेंसे शब्दावच्छिन्न ज्ञानका ही नाम 'वेद' है। एवं विषया-वच्छिन्न ज्ञानका ही नाम ब्रह्म है। इन दोनोंसे अतिरिक्त एक तीसरा ज्ञान और है। शब्द सुननेसे और विषय देखनेसे सामान्यज्ञान होता है। यही सामान्यज्ञान आगे जाकर विशेषरूपमें परिणत हो जाता है। इसीका नाम संस्कार है। शब्द, विषय—दोनों ही सामान्यज्ञान करवाके लीन हो जाते हैं। यही सामान्यज्ञान अनुभवद्वारा आगे जाकर विशेष-भावको प्राप्त होता हुआ आत्मामें खचित हो जाता है। इसीको दार्शनिक परिभाषामें अनुभवाहित-संस्कार कहते हैं। वैज्ञानिक परिभाषानुसार यही विद्या-नामसे प्रसिद्ध है। इसीसे आगेका व्यवहार-मार्ग चलता है। जबतक संस्कार है तभीतक आप स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं। संस्काराभावमें आप विश्वातीत हैं। मुक्त हैं। विश्वसत्ता संस्कारसत्ता पर ही निर्भर है। अतएव शब्दरूप वेद, विषयरूप ब्रह्मकी अपेक्षा हम संस्काररूपा विद्याको ही प्रधानरूपसे विश्वकी स्वरूप-सम्पादिका माननेके लिये तैयार हैं। इसी ज्ञानपर चितिक्रमसे संस्कारपुट लगनेसे विश्व बन गया

१ सृष्टि-विद्या-सम्बन्धी इन सारे पदार्थोंका अतिविस्तृत वैज्ञानिक निरूपण हमारे लिखे हुए 'ईशोपनिषत्' के भाषाभाष्यमें देखना चाहिये। यह ग्रन्थ अभी मुद्रणसापेक्ष है।

है। जैसे हमारा विश्व हमारा संस्कार है तथैव यह महाविश्व उसका संस्कार है, अतएव हम विश्वको अवश्य ही विद्यारूप कहनेके लिये तैयार हैं। बस, संस्कारावच्छिन्न होता हुआ वह ज्ञान-मूर्ति विद्या है; शब्दावच्छिन्न होता हुआ वही वेद है एवं विषयावच्छिन्न बनकर वही ब्रह्म है। सृष्टिका सम्बन्ध पूर्वकथनानुसार विद्यासे ही है। निगम-आगम दोनों ही विश्वका निरूपण करते हैं। अतएव दोनों ही शास्त्र-विद्या नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ओषधि, वनस्पति, कृमि, कीट, पक्षी, पशु, मनुष्य, धातु, रस, विष आदि प्रत्येक पदार्थ एक-एक विद्या है। ये सब विश्वान्तर्गता क्षुद्र विद्याएँ हैं। एवं सम्पूर्ण विश्व-विद्या महाविद्या है। उस महाविश्व-विद्याको सृष्टि-क्रमके अनुसार ऋषियोंने दश भागोंमें विभक्त माना है। निगममें वह दशावयवविद्या 'विराड्विद्या' नामसे प्रसिद्ध है। एवं आगममें वही 'महाविद्या' नामसे प्रसिद्ध है, जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा। विश्व कैसे उत्पन्न हुआ ? उत्पन्न विश्वका क्या स्वरूप है ? उस विश्व-विद्याको समझनेसे हमारा क्या लाभ है ? बस, आगमाचार्योंने दश महाविद्याओंके द्वारा इन्हीं प्रश्नोंका समाधान किया है। आगमोक्त शक्तितत्त्वको 'महाविद्या' क्यों कहा जाता है ? इसका उत्तर हो चुका। अब प्रकृतका अनुसरण किया जाता है।

१० संख्या-रहस्य

पूर्व प्रकरणमें पुरुष-प्रकृतिके समन्वयसे विश्वरचना बतलायी गयी है। उस पुरुषके काल एवं यज्ञ-भेदसे दो विवर्त हैं। काल-पुरुष अनादि है, व्यापक है। यज्ञ-पुरुष सादि है, परिच्छिन्न है। व्यापक काल-पुरुषका ही यत्किञ्चित् प्रदेश परिच्छिन्न होकर यज्ञ-पुरुष कहलाने लगता है। काल-पुरुष सृष्टिका प्रथम प्रवर्त्तक है। स्वयं यज्ञ-पुरुष भी काल-पुरुषका सहारा लेकर ही विश्व-निर्माणमें समर्थ होता है। उस महाकालके उदरमें अनन्त विश्वचक्र भ्रमण कर रहे हैं। मन्त्र-संहिताओंमें 'काल' नामसे प्रसिद्ध तत्त्व उपनिषदोंमें 'परात्पर' नामसे प्रसिद्ध है। सर्वमृत्युघन अमृततत्त्वका नाम ही परात्पर है। अमृततत्त्व सत् है। मृत्युतत्त्व असत् है।

अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्।
(श० १०।५।२)

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥
(ईश० ५)

—के अनुसार दोनों दोनोंमें ओतप्रोत हैं। एक निरञ्जन, निर्गुण, शान्त, शाश्वत, अभय, पूर्ण, मृत्युलक्षण है तो दूसरा साञ्जन, सगुण, अशान्त, अशाश्वत, सभय, स्वलक्षण है। तमःप्रकाशवत् परस्परमें अत्यन्त विरुद्ध होते हुए भी दोनों अविनाभूत हैं। दोनोंमें कौन आधार है, कौन आधेय है—यह नहीं कहा जा सकता। अँगुलीमें क्रिया है या क्रियामें अँगुली है, इसका निर्णय करना कठिन है। दोनोंमें सर्वथा एक सत् ही है। उसका कभी विनाश नहीं। दूसरा सर्वथा असत् ही है। विनाश ही उसका स्वरूप है। सदसद्रूप अमृत-मृत्युकी समष्टि ही यह काल-पुरुष है। इसी आधारपर 'अमृतञ्चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।' (गीता)—यह कहा जाता है। वह केवल असत् ही नहीं है, इसलिये तो उसे असत् नहीं कहा जा सकता; एवं न केवल सत् ही है, इसलिये सत् भी नहीं कहा जा सकता। सत् और असत्में परस्पर विरोध है, इसलिये उसे सदसत् भी नहीं कहा जा सकता। फिर वह है क्या ? इसका उत्तर देते हुए वेदपुरुष कहते हैं—

नैवं वा इदमग्रेऽसदासीत्, नैव सदासीत्। आसीदिव वा इदमग्रे नेवासीत्। तस्मादेतद् ऋषिणाऽभ्युक्तं—नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् इति।
(शत० १०।४।१)

बस, इसी विलक्षण तत्त्वका नाम परात्पर है। यही काल-पुरुष है। उस असीम परात्परमें प्रतिक्षण विलक्षण-धर्मा मायाबलोंका उदय होता रहता है। जैसे दिग्देशकालसे अनन्त किन्तु संख्यामें एक महासमुद्रमें दिग्देशकालसे सान्त किन्तु संख्यामें अनन्त बुद्बुद उत्पन्न होते रहते हैं एवं क्षणानन्तर उसीमें विलीन होते रहते हैं, एवमेव दिग्देशकालसे अनन्त किन्तु संख्यामें एक उस अमृत[2]-समुद्रमें दिग्देशकालसे सान्त किन्तु संख्यामें अनन्त सीमाभाव पैदा करनेवाले अनन्त मायाबल प्रतिक्षण

---

१ इस विषयका निरूपण श्रीगुरुप्रणीत दशवादान्तर्गत 'सदसद्वाद' नामके ग्रन्थमें देखना चाहिये।

२ इस विषयका विशद विवेचन श्रीगुरुप्रणीत 'अमृतमृत्युवाद' में देखना चाहिये।

उत्पन्न होते रहते हैं। एवं क्षणानन्तर उसीमें विलीन होते रहते हैं। शान्तरस नित्य अशान्तिसे युक्त है। अशान्तिगर्भित नित्यशान्ति ही उसका स्वरूप है। शान्त अमृततत्त्वकी अपेक्षा वह सर्वथा कम्परहित है, बिल्कुल स्थिर है। अशान्त मृत्युतत्त्वकी अपेक्षा वह सर्वथा कम्परूप है, गतिरूप है। उसके इसी अचिन्त्यरूपका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

(ईशावास्योपनिषद् ४-५)

जो मायाबल उस असीमको ससीम बना डालता है, जिसके प्रभावसे यह विश्वातीत विश्वचर और विश्व बन जाता है, जो शक्ति (बल) कालको यज्ञरूपमें परिणत कर डालती है, उसी महामायाका नाम प्रकृति है। इसीके समन्वयसे वह कालपुरुष अपने यत्किञ्चित् प्रदेशसे सीमित बनकर कामनाके चक्रमें फँस जाता है। एक-एक मायासे एक-एक विश्वचक्र उत्पन्न होता है। मायाबल अनन्त है। अतएव उसमें अनन्तविश्वचक्र हैं। उसके रोम-रोममें एक-एक ब्रह्माण्ड है। अनन्तविश्वाधिष्ठाता वह कालपुरुष नियतिरूप खड्ग हाथमें लिये सबपर शासन कर रहा है। सात लोक, चौदह भूतसर्ग, सारे विश्वचक्र, सब उसीसे उत्पन्न हुए हैं। वह पूर्णपुरुष सबपर प्रतिष्ठित है। इसी सर्वेसर्वा कालपुरुषका निरूपण करती हुई अथर्वश्रुति कहती है—

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः॥
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चित-
स्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

× × ×

स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्
कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥

× × ×

स एव सं भुवनान्याभरत्
स एव सं भुवनानि पर्यैत्॥
पिता सन्नभवत् पुत्र एषाँ
तस्माद्वै नान्यत् परमस्ति तेजः॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
कालेह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते॥

× × ×

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत॥

× × ×

कालेयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः।

इमञ्च लोकं परमञ्च लोकं
पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः
स ईयते परमो नु देव इत्यादि॥

(अथर्व सं० १९। ६। ५३-५४)

अनुपाख्य, अनिरुक्त, निरुक्त-भेदसे 'तम' तीन प्रकारका है। काला रंग, कोयला, डामर आदि निरुक्त-क्रम है। आप इनका भलीभाँति निर्वचन कर सकते हैं। रात्रिका अन्धकार, आँख मींचनेपर होनेवाला अन्धकार अनिरुक्त तम है। इसका प्रत्यक्षमात्र होता है। किन्तु निर्वचन नहीं हो सकता। निरुक्त विश्व-सत्ता है, अहः काल है, सृष्टि है। अनिरुक्त रात्रिकाल है, प्रलय है। अहोरात्रि दोनोंकी समष्टि विश्व है। विश्वाभाव 'अनुपाख्य' तम है। यह अनुपाख्य तम प्रलयकालमें अनिरुक्त-तमसे आवृत रहता है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर अनिरुक्त-तमसे आवृत अनुपाख्य-तमका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥

(ऋ० ७। १२९। ३)

यह विश्वातीत अनुपाख्यतम ही हमारा सुपरिचित कालपुरुष है। वह विश्वाभावरूप है। अतएव सद्रूप होनेपर भी हमारे ज्ञानचक्षुसे अतीत होनेके कारण ऋषि

उसे 'असत्' कहते हैं। असत्का अर्थ अभाव नहीं है। अपितु इस विश्वकालमें वह इससे विलक्षण किन्तु सत् है—यही तात्पर्य है। इसी अभिप्रायसे—

असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत्। कथमसतः सज्जायेत। तत् समभवत्। तद् आण्डं निरवर्त्तत।

—इत्यादि कहा जाता है। वही असत् किन्तु सत् काल-पुरुष महामायासे परिच्छिन्न हो जाता है। अपरिमितमें किसीका अभाव नहीं। वह आप्तकाम है। अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिये कामना होती है। उस व्यापकमें सब कुछ है। अतएव उसमें कामनाका अभाव है। परन्तु उसीका मायी प्रदेश सीमित बनकर अनाप्तकाम होता हुआ काममय बन जाता है। उसकी कामनाका 'एकोऽहं बहु स्याम्' यही रूप है। माया-बलके अव्यवहितोत्तर-कालमें ही उसमें हृदयबल (केन्द्रशक्ति) उत्पन्न हो जाता है। बस, केन्द्रस्थ वही रसबलात्मक तत्त्व कामनामय होता हुआ 'मन' नाम धारण कर लेता है। कामना मनका ही व्यापार है। एवं 'हृत्प्रतिष्ठम्' (यजुः) के अनुसार मन हृदयमें ही प्रतिष्ठित रहता है। सबसे पहले इस मनसे विश्वरेत- (उपादानभूत शुक्र) भूत कामनाका ही उदय होता है। जैसा कि ऋषि कहते हैं—

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

(ऋक्० १०। १२९। ४)

उसकी इस कामनासे पूर्वोक्त पञ्चजनादि क्रमसे प्रथम वेद नामके पुरञ्जनका ही प्रादुर्भाव होता है। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व-भेदसे वेद चार प्रकारका है। त्रयीवेद अग्निवेद है। अथर्व सोमवेद है। त्रयी-ब्रह्म स्वायम्भुवब्रह्म है। अथर्व पारमेष्ठ्य सुब्रह्म है। ब्रह्म आग्नेय होनेसे पुरुष है। सुब्रह्म सौम्य होनेसे स्त्री है। त्रयी-ब्रह्मके मध्यपतित 'यजुः' भागमें यत्-जू दो तत्त्व हैं। यत् गतितत्त्व है, यही प्राण और वायु-नामसे प्रसिद्ध है। जू स्थितितत्त्व है। यही वाक्, आकाश नामसे प्रसिद्ध है। प्राणवाक्, किंवा वाय्वाकाशरूप स्थिति-गतितत्त्वकी समष्टि ही यजुर्वेद है। प्राणरूप यत्के काम, तप, श्रमसे वाक्रूप जू-भागसे सर्वप्रथम पानी ही उत्पन्न होता है। इसी आधारपर 'सोऽपसृजत वाच एव लोकात्—वागेव सासृज्यत' (शत०६।१।१), 'अप एव ससर्जादौ' (मनुः१।८)-यह कहा जाता है। त्रयी-ब्रह्मके वाक्भागसे उत्पन्न इसी आपतत्त्वका नाम अथर्ववेद है। यजुरूप स्वायम्भुव ब्रह्मका पसीना ही 'अथर्वरूप सुब्रह्म है' (देखो गोपथ १।१।१)। पूर्वोक्त यजुके यत्-जूका निर्वचन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—'अयमेवाकाशो जूः—यदिदमन्तरिक्षम्। तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षञ्च, यच्च जूश्च तस्माद्यजुः। तदेतद्यजुर्ऋक्सामयोः प्रतिष्ठा। ऋक्सामे वहतः' (शत० १०। २। ३। ६। १)। इस प्रकार ऋक्, साम, यत्, जू-भेदसे अग्निवेद चतुष्कल हो जाता है। दूसरा है आपोमय सोम (अथर्व) वेद। यह भृगु, अङ्गिरा-भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। घन, तरल, विरल इन तीन अवस्थाओंके कारण भृगु—आप, वायु, सोम इन तीन अवस्थाओंमें परिणत हो जाता है। एवं अङ्गिरा—अग्नि, यम, आदित्य तीन अवस्थाओंमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार आपोवेद षट्कल हो जाता है। भृग्वङ्गिरारूप आपोवेदके साथ चतुष्कल त्रयीवेदका समन्वय होता है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर श्रुति कहती है—

आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापो भृग्वङ्गिरोमयम्।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः॥

पूर्वोक्त षट्कलसुब्रह्म, सौम्य होनेसे स्त्री है। चतुष्कल-त्रयी-ब्रह्म आग्नेय होनेसे पुरुष है। दोनोंके समन्वयसे ब्रह्म-सुब्रह्मात्मक विराट् पुरुषका जन्म होता है। यह वेदमूर्ति पूर्ण पुरुष अपने आपको इन्हीं दो भागोंमें विभक्त कर विराट्को उत्पन्न करता है। इसी अभिप्रायसे मनु कहते हैं—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥

(मनु० १।३२)

ऋक्, साम, यत्, जू, आप, वायु, सोम, अग्नि, यम, आदित्य-भेदसे वह विराट् दशकल है। पूर्वोक्त वही अक्षर प्रजापति वेदरूपमें परिणत होकर दशकल बन जाता है। इसी आधारपर 'दशाक्षरा वै विराट्' (शत०१।१।२) यह कहा जाता है। अग्नीषोमरूप ब्रह्म-सुब्रह्मके समन्वयसे उत्पन्न होनेवाले इस विराट्पुरुषको हम अवश्य ही यज्ञ-पुरुष कहनेके लिये तैयार हैं। क्योंकि अग्नीषोमके सम्बन्धका ही नाम यज्ञ है। उस कालपुरुषका अवयवभूत 'तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः' (मनु०१।३३) के अनुसार सृष्टिकर्ता दशाक्षर विराट्पुरुष ही दूसरा यज्ञ-

पुरुष है। इसीसे सारी प्रजा उत्पन्न होती है। अतएव हम इसे प्रजापति कहनेके लिये तैयार हैं। विश्वका प्रत्येक पदार्थ यज्ञपुरुष है। अग्नीषोमात्मक है। विराट्रूप है। अतएव प्रजापतिस्वरूप है। यह विश्वरूप विराट्प्रजापति चूँकि दशावयव है, अतएव इस प्राजापत्या विश्वविद्याको पूर्वोक्त निगम-विद्याके आधारपर हम अवश्य ही दशावयव माननेके लिये तैयार हैं। इसीको दशहोता, दशाह आदि नामोंसे भी व्यवहृत करते हैं। यही सारे विश्वकी प्रतिष्ठा है। जैसा कि निम्नलिखित निगम-अनुगम श्रुतियोंसे स्पष्ट हो जाता है—

१—**यज्ञो वै दशहोता** (तै० ब्रा० २।२।१।६)
२—**विराड् वा एषा समृद्धा यद्दशाहानि** (तां० ब्रा० ४।८।६)
३—**विराट् वै यज्ञः** (शत० १।१।१)
४—**दशाक्षरा वै विराट्** (शत० १।१।१)
५—**यज्ञ उ वै प्रजापतिः** (कौ० ब्रा० १०।१)
६—**प्रजापतिर्वै दशहोता** (तै० ब्रा० २।२।१।६)
७—**अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः** (तै० ब्रा० २।२।६।१)
८—**प्रतिष्ठा दशमहः** (कौ० ब्रा० २७।२)
९—**एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद् विराट्** (कौ० १४।२)
१०—**विराड् विरमणाद् विराजनाद्वा** (दे० ३।१२) इत्यादि।

'न्यूनाद्वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते' (११।१।२।४) इस श्रौत-सिद्धान्तके अनुसार न्यून विराट्से ही सृष्टि होती है। पुरुष-पुरुषके संयोगसे, स्त्री-स्त्रीके संयोगसे कभी सृष्टि सम्भव नहीं। पुरुष-स्त्रीके समन्वयसे ही सृष्टि होती है। स्त्री सौम्या होनेसे भोग्य है। पुरुष आग्नेय होनेसे भोक्ता है। अतएव वह स्त्रीसे प्रबल है। स्त्री पुरुषापेक्षया न्यून है। इस न्यून सम्बन्धसे ही प्रजोत्पत्ति होती है। उधर हमारे विराट्में भी त्रयी-ब्रह्म आग्नेय होनेसे भोक्ता है। सुब्रह्म सौम्य होनेसे भोग्य है। ब्रह्म प्राण है। सुब्रह्म रयि है। प्रश्नोपनिषद्में[1] रयि-प्राण शब्दसे ही दोनोंको व्यवहृत किया है। कहना यही है कि दशाक्षरपूर्ण विराट्से सृष्टि नहीं होती, ९ अक्षरके न्यून विराट्से ही सृष्टि होती है। 'न वै एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्'—इस श्रौत-सिद्धान्तके अनुसार एक अक्षर कम हो जानेपर भी विराट्का विराट्पना अक्षत रहता है। सबसे पहले कुछ न था। शून्य विन्दु था। विन्दुका अर्थ शून्य नहीं है, अपितु पूर्ण है। अतएव ज्योतिष-विज्ञान शून्यको पूर्ण कहता है। यह उस ब्रह्माक्षरका पहला उन्मुग्धरूप है। उससे ९ अक्षरका ही विराट् उत्पन्न होता है। यत्-जूको उन्मुग्ध माननेसे पूर्वोक्त विराट् ९ अक्षरका ही रह जाता है। ९ ही प्रधान है। इसी रहस्यको बतलानेके लिये ९ संख्याको ही प्रधानता दी गयी है। असली संख्या ९ ही है। पहले शून्य विन्दु था। उससे क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ इन ९ संख्याओंका विकास हुआ। ९ पर संख्या समाप्त हो गयी। ९ के समाप्त होनेपर शून्यके साथ एकका सम्बन्ध हो जाता है। वही १० है। पुनः ११, १२ इत्यादि क्रमसे १९ पर समाप्ति है। अनन्तर उस शून्यका २ से सम्बन्ध हो जाता है, वही २० है। २९ पर इसकी समाप्ति है। इस क्रमसे ९ पर ही संख्याका अवसान होता है। यही कारण है कि ९ संख्याको छोड़कर १, २, ३ आदि किसी संख्याका सङ्कलन-फल समान नहीं आता। ९ मेंसे एकको पृथक् कीजिये, ८ संख्या जोड़िये, १८ हो जायँगे। २ में ७, ३ में ६, ४ में ५, ५ में ४, ६ में ३, ७ में २, ८ में १, इस क्रमसे अन्तमें ९ ही बचते हैं। ९+९=१८ होते हैं। १+८=९ हैं। ९ मिलानेसे २७ हैं। २+७=९ हैं। और ९ मिलानेसे ३६ होते हैं। ३+६=९ है। यही क्रम आगे समझिये। अन्ततोगत्वा ९ ही शेष रह जाते हैं। १० वाँ वही पूर्णरूप है। वही महाकाल नामका विश्वातीत परात्पर है। उस शून्यरूप पूर्णपुरुषके पेटमें ९ वाँ अक्षर विराट्रूप यज्ञपुरुष समा रहा है। उसी पूर्णरूपको १० वाँ प्रतिष्ठा नामका 'अहः' बतलाया गया है। इसी पूर्णेश्वरका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

१० संख्यामें एकका स्वतन्त्र विभाग है। वही विन्दु है। ९ का स्वतन्त्र विभाग है। वही विराट् है। नीचे लिखी तालिकासे पूर्वोक्त संख्याविज्ञान स्पष्ट हो जाता है—

[1] रयि-प्राणका विशद विज्ञान हमारे लिखे हुए प्रश्नोपनिषद्के वैज्ञानिक भाषाभाष्यमें देखना चाहिये।

०पूर्णब्रह्म=कालपुरुष
१+८=१८-९
२+७=२७-९
३+६=३६-९
४+५=४५-९
५+४=५४-९
६+३=६३-९
७+२=७२-९
८+१=८१-९
९+०=९०-९

शिव विष्णु ब्रह्म विश्वेश्वर

इस दशसंख्याविज्ञानसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि वास्तवमें निगमोक्ता सृष्टिविद्या १० भागोंमें विभक्त है। एक ही पुरुष १० भागोंमें विभक्त हो रहा है। एक पुरुष १० पुरुष बन रहा है। पुरुष प्रकृतिसे अविनाभूत है। बस, निगम-मूलक आगम-शास्त्र सृष्टि-विद्यारूपा इन्हीं १० शक्तियोंका निरूपण करता है। वही शक्ति-प्रपञ्च १० महाविद्यानामसे प्रसिद्ध है। वे दशों महाविद्याएँ—१ महाकाली, २ उग्रतारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ छिन्नमस्ता, ६ भैरवी, ७ धूमावती, ८ वल्गामुखी, ९ मातङ्गी, १० कमला—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन सबमेंसे महाकाली-के स्वरूपकी ओर ही पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है—

महाकाल-पुरुष और उसकी शक्ति 'महाकाली' १

परात्पर-नामसे प्रसिद्ध विश्वातीत महाकाल-पुरुषकी शक्तिका ही नाम महाकाली है। शक्ति शक्तिमान्से अभिन्न है। अतएव अद्वैतवाद अक्षुण्ण रहता है। अग्निकी दाहक-शक्ति जैसे अग्निसे अभिन्न है, प्रकाश-शक्ति जैसे सूर्यसे अभिन्न है, तथैव चिदात्माकी शक्ति चिदात्मासे अभिन्न है। वह एक ही तत्त्व शिव-शक्तिरूपमें परिणत हो रहा है। अर्द्धनारीश्वरकी उपासनाका यही मौलिक रहस्य है। शक्ति-शक्तिमान्में स्त्री-पुंभाव-भेद मानना अनुचित है। इसी आधारपर रहस्य-शास्त्र कहता है—

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥
अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् सदपि नारद॥
(दे० भा० ९। १। १०-११)

अपि च—

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत् किञ्चिन्नगाधिप!
तदात्मरूपं चित्संवित् परब्रह्मैकनामकम्॥
तस्य काचित् स्वतःसिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः॥
स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
(दे० भा० ७। ३२। ६)

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत् सर्वं चराचरम्।
सापि मत्तः पृथङ् माया नास्त्येव परमार्थतः॥
(दे० भा० ७। ३३। ५)

हम कह आये हैं कि जब कुछ न था, उस समय केवल अनुपाख्य तम था। उसी स्थितिका निरूपण करते हुए भगवान् मनु कहते हैं—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
(मनु० १। ५)

वह अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य तत्त्व ही महाकाल है। उसीकी शक्ति महाकाली है। सृष्टिसे पहले इसी महाविद्याका साम्राज्य रहता है। वह पहला स्वरूप है। अतएव महाकाली आगमशास्त्रमें प्रथमा, आद्या, आदि नामोंसे व्यवहृत हुई है। रात्रि प्रलयकालका स्वरूप है। उसमें भी रात्रिके १२ बजेका समय तो घोरतम है। यही महाकाली है। सूर्योदयसे पहले, रात्रिके १२ बजेसे बीचका सारा समय महाकाली है। उत्तरोत्तर तमका ह्रास है। इतने समयको तमके तारतम्यके कारण ऋषियोंने ८४ विभागोंमें विभक्त किया है। वही महाकालीके ८४ अवान्तर विभाग हैं। प्रत्येकका स्वरूप भिन्न-भिन्न है। शक्तिके उन्हीं स्वरूपोंको समझानेके लिये निदान-विद्याके आधारपर ऋषियोंने उनकी मूर्त्तियोंका निर्माण किया है। सभी शक्तियाँ अचिन्त्या हैं। निर्गुण हैं। प्रत्यक्षसे परे हैं। परन्तु—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

—इस आर्ष-सिद्धान्तके अनुसार उनके स्वरूप-ज्ञान एवं उपासनाके लिये उनकी कल्पित मूर्त्तियाँ बनायी गयी हैं। धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, रहस्य, गाथा आदिवत् दुर्भाग्यसे आज निदानशास्त्र भी लुप्त हो गया है। मूर्त्तियोंके रचना-वैचित्र्यपर आज जो सन्देह हो रहे हैं, उसका मूलकारण निदानविद्याका लोप है। दश महाविद्याओंके स्वरूपका निदान-से सम्बन्ध है, अतः संक्षेपसे निदान-शब्दका निर्वचन कर देना अनुचित न होगा—

सङ्केतका ही नाम निदान है। अमुकको अमुक समझो, यही निदान है। इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों भावोंमें निदानका समान सम्बन्ध है। शोकका निदान काला वस्त्र है। खतरेका निदान लाल वस्त्र है। निरुपद्रवताका निदान हरित वस्त्र है। कीर्त्तिका निदान श्वेत वस्त्र है। पृथिवीका निदान कमल है। मोहशक्तिका निदान 'सुरा' है। लक्ष्मीका निदान हस्ती है। विजयका निदान ध्वज है। संहारशक्तिका निदान कटा मस्तक है। न केवल भारतीय ही, अपितु संसारके मनुष्यमात्र हमारी इस निदानविद्याके उपासक हैं। पाश्चात्य मनुष्य शोकायसरपर काली पट्टी हाथमें बाँधते हैं। फाँसी-का हुक्म सुनानेवाला जज लाल वस्त्र पहनता है। भारतीय मूर्त्ति-निर्माणपर नाक-भौं सिकोड़नेवाले उन महानुभावोंसे हम पूछते हैं कि काले वस्त्रसे शोकका क्या सम्बन्ध है? इसके उत्तरके लिये उन्हें भारतीय निदानविद्याकी ही शरण लेनी पड़ेगी। परन्तु इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि इस निदानका सजातीय-भावसे ही सम्बन्ध रहता है। चाहे जिसपर सङ्केत-सम्बन्ध नहीं हो सकता। शोकसे ज्ञानप्रकाश मन्द हो जाता है। सारी चेतना-ज्योति शोक-सन्तापसे आवृत हो जाती है। इधर कृष्ण वस्त्र सारे प्रकाशको पी जाता है। इसी समानताको लक्ष्यमें रखकर काले वस्त्रको शोकका निदान माना गया है। कीर्त्ति मनुष्यमें रश्मिवत् निकलकर चारों ओर उस मनुष्यको प्रकाशित कर देती है। प्रकाशका रूप शुक्ल है। इधर शुक्ल वस्त्र भी शुक्ल है। साथहीमें कृष्ण वस्त्रवत् इसमें सौर-रश्मियाँ लीन न होकर प्रति-फलित होती हैं। इसी सादृश्यसे शुक्ल वस्त्रको कीर्त्तिका निदान माना गया। पानीमें रुद्रवायुके प्रवेशसे घनता आती है। वही घन पानी हरित काई बनती है। वही पुष्करपर्ण है। 'आपो वै पुष्करपर्णम्' (शत० ६।४।२।२) के अनुसार यह पत्ता पानीका है। यही आगे जाकर फेन, मृत्, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय, हिरण्य, इन रूपोंमें परिणत होकर पृथिवीपुररूपमें परिणत हो जाता है। पुरकर होनेसे ही इसे पुष्कर कहा जाता है। पृथिवीकी सृष्टि पुष्करपर्णसे ही हुई है। अतएव उसी पानीसे उत्पन्न होनेवाले कमलको पृथिवी-का निदान माना गया। जिस देवताके हाथमें आप कमल-पुष्प देखो विश्वास करो सम्पूर्ण भूमण्डलपर उस देव-प्राणका साम्राज्य है। मायाजनित मोहसे मनुष्यकी विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। उधर सुराका भी यही गुण है। अतएव सुराको मोह-शक्तिका निदान माना गया। भगवतीके हाथमें सुरापात्र है, इससे ऋषि यही सिखलाते हैं कि उस महामायाने अपनी मोह-मदिरासे सबको उन्मत्त बना रक्खा है। फाँसी रक्तपात है, अतएव रक्त वस्त्रको इसका निदान माना गया। खूब वृष्टि होनेपर वृक्षोंमें हरियाली आ जाती है। रूक्षता जाती रहती है। सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य हो जाता है। अतएव हरित वस्त्रको शान्तिरसका निदान माना गया। स्टेशनोंपर हरी झंडी निरुपद्रवताका निदान है। लाल झंडी खतरेकी द्योतक है। इन सब उदाहरणोंसे बतलाना यही है कि निदान अनुरूपभावसे ही सम्बन्ध रखता है। प्रकृतमें शक्ति-तत्त्व ही निरूपणीय है। अतः प्रधानरूपसे शक्तिसम्बन्धी निदानपर ही प्रकाश डाला जायगा। शक्तिप्रतिमाओंके अनेक रूप हैं। किसीके चौंसठ भुजाएँ हैं। किसीके बत्तीस, किसीके आठ, किसीके चार, किसीके दो ही। किसीने जिह्वा निकाल रक्खी है। किसीके हाथमें कमल है। किसीके हाथमें नरमुण्ड, किसीके कर्त्तरी (कैंची), किसीके परशु है। कोई मुर्देपर खड़ी है। कोई अट्टहास करती हुई सुरापान कर रही है। कोई नग्न है। न समझनेवाले उपहास भले ही करें; परन्तु जिस दिन उन्हें निदान-रहस्य मालूम हो जायगा, उस दिन अवश्य ही वे भारतीय संस्कृतिके सामने अपना मस्तक झुका देंगे। महाकाल-पुरुषकी महाशक्तिरूपा जिस महाकालीका पूर्वमें निरूपण किया गया है, सर्वप्रथम उसीके निदानकी ओर आपका ध्यान आकर्षित किया जाता है। तत्तद्देवताओंकी तत्तच्छक्तियोंको समझानेके लिये ऋषियोंने निदानद्वारा तत्तद्देवताओंका तत्तदनुरूप ध्यान बना डाला है। प्रत्येक देवताकी उपासना-विधिके प्रारम्भमें ही 'अथ ध्यानम्' लिखा रहता है। ऋषि आदेश करते हैं कि जिस देवताकी तुम उपासना करने चले हो, पहले उसके स्वरूपका ध्यान करो। यदि महाकालीकी उपासना करना चाहते हो तो निम्नलिखित ध्यानानुमोदित स्वरूपपर दृष्टि डालो—

> शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम्।
> चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम् ॥ १ ॥
> मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्।
> एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥ २ ॥
> (शाक्तप्रमोद—कालीतन्त्र)

'वह महाकाली मुर्देपर सवार है। उसकी शरीराकृति महाडरावनी है। उसकी दंष्ट्रा बड़ी तीक्ष्ण अतएव महाभया-वह है। ऐसे महाभयानक रूपवाली वह आदिमाया हँस

रही है। उसके चार हाथ हैं। एक हाथमें खड्ग है। एकमें नरमुण्ड है। एकमें अभय-मुद्रा है। एकमें वर है। गलेमें मुण्डमाल है। जिह्वा बाहर निकल रही है। वह सर्वथा नग्न है। श्मशान ही उसकी आवासभूमि है।' पूर्वोक्त ध्यानका यही अक्षरार्थ है। अब रहस्यार्थपर दृष्टि डालिये—

हम बतला आये हैं कि महाकाली नामकी महाशक्ति प्रलयरात्रिके मध्यकालसे सम्बन्ध रखती है। संसार जबतक शक्तिमान् रहता है, तभीतक वह शिव है। शक्ति निकल जानेपर वह 'शव' बन जाता है। दूसरे शब्दोंमें, उसका स्वरूप ही नष्ट हो जाता है। विश्वातीत परात्पर नामसे प्रसिद्ध महाकालकी शक्तिभूता महाकालीका विकास विश्वसे पहले है। विश्वका संहार करनेवाली कालरात्रि वही है। सृष्टिकाल उसकी प्रतिष्ठा नहीं है, प्रलयकाल उसकी प्रतिष्ठा है। दूसरे शब्दोंमें शक्तिमान् विश्व उसकी प्रतिष्ठा नहीं है, अपितु शक्तिशून्य अतएव शवरूप विश्व उसका आलम्बन है। प्रलयकालमें विश्व शवरूपसे पड़ा है। उसपर वह खड़ी है। इसी रहस्यको समझानेके लिये शवको शक्तिशून्य, अतएव शवरूप विश्वका निदान माना गया। वह अनुपाख्य तमरूपा है। नाश करनेवाली है। शत्रु-संहार करनेवाले योद्धाकी आकृति महाभयावह हो जाती है। साधारण मनुष्य तो उसकी ओर देख भी नहीं सकता। बस, प्रलय-रात्रि-रूपा संहारकारिणी शक्तिके इसी स्वरूपको बतलानेके लिये भयानक आकृतिको निदान माना गया। शत्रुपक्षकी सेनाको नष्टकर योद्धा अट्टहास करता है। उसका वह हँसना भीषणता लिये हुए होता है। उस समय उसीका साम्राज्य हो जाता है। यही स्थिति महाकालीकी है। अतएव उसके लिये 'हसन्मुखीम्' कहा गया। अपि च निर्बल मनुष्यके आक्रमणोंको विफलकर सबल मनुष्य उसकी निर्बलतापर हँसा करता है। आज वही दशा इस विश्वकी है। जो विश्व एवं विश्वकी प्रजा अपने आपको सर्वेसर्वा समझते थे आज वे उससे परास्त हैं। इस भावका निदान भी हँसना है। प्रत्येक गोल वृत्तमें ३६० अंश माने जाते हैं। उसमें ९०-९०के चार विभाग माने जाते हैं। यही उस वृत्तकी चार भुजाएँ हैं। इन्हींको 'ख स्वस्तिक' कहा जाता है। खगोलके वही चारों स्वस्तिक इन्द्रोपलक्षित चित्रा नक्षत्र, पूषोपलक्षित रेवती नक्षत्र, तार्क्ष्योपलक्षित श्रवण नक्षत्र, बृहस्पत्युपलक्षित लुब्धकबन्धु नक्षत्र, इन चार नक्षत्रोंसे सम्बन्ध है। चित्रासे श्रवण ठीक षड्भान्तरपर (१८०अंशपर) है। रेवतीसे लुब्धक इतने ही फासलेपर है। आकाशकी इन्हीं चारों भुजाओंका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

(यजु०)

बतलाना इससे यही है कि पूर्ण वृत्तमें चार भुजाएँ होती हैं। वह महाकाली पूर्णरूपा है—यह पूर्वोक्त संख्याविज्ञानमें स्पष्ट हो चुका है। अनन्ताकाशरूप महाअवकाशमें चतुर्भुजरूपमें परिणत होकर ही वह विश्वका संहार करती है। इसी रहस्यका निदान चार भुजाएँ हैं। नाश-शक्तिका निदान खड्ग है। नष्ट होनेवाले प्राणियोंका निदान कटा मस्तक है। स्थिति-विच्युतिका नाम कम्प है। कम्प ही भय है। यही क्षोभ है। विश्व ससीम है—अतएव वह सभय है। परन्तु व्यापकतत्त्वमें कम्परूप भयका अभाव है। उससे अतिरिक्त कोई स्थान नहीं, अतएव उसमें भय नहीं। ऐसा है एकमात्र विश्वातीत महाकाल-पुरुष। क्योंकि वह व्यापक है। 'अभयं गतो भवति' इत्यादि रूपसे उसी परात्परको उपनिषत् अभय बतलाता है। सुतरां उसकी शक्तिकी भी अभयरूपता सिद्ध हो जाती है। वह संहार करती है, डरावनी है, घोररूपा है, सभी कुछ है। परन्तु विश्वास करो, अभय-पद-प्राप्ति भी उसीकी आराधनापर निर्भर है। अभय-मुद्रा इसीका निदान है। विश्व-सुख क्षणिक है। अतएव दुःखरूप है। परम सुख तो उसीकी आराधनासे मिल सकता है। परम शिवरूपा तो वही है। जीवित दशामें जो सबका आधार थी, प्रलयकालमें भी वही सबका आधार है। ध्वस्त विश्वके निर्जीव प्राणियोंका निर्जीव भाग भी उसीपर प्रतिष्ठित है। उस व्यापक तत्त्वसे बाहर कोई कैसे बच सकता है। इसी परायणभावका निदान 'मुण्डमाल' है। विश्वसे उस शक्तिका आवरण हो जाता है। 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' के अनुसार वह शक्ति विश्व निर्माण कर उसके भीतर प्रविष्ट हो जाती है। विश्व ही उसका वस्त्र है। परन्तु विश्वनाशके अनन्तर वह स्व-स्वरूपसे उल्वण है। उस स्थितिमें आवरणका अभाव है। वहाँ केवल दिशाएँ ही वस्त्र हैं। इसी अवस्थाका निदान 'नग्न' भाव है। उस महाशक्तिका पूर्ण विकास काल है विश्वका प्रलयकाल। सारा विश्व जब श्मशान बन जाता है, तब उस तमोमयीका विकास होता है। श्मशान

इसी अवस्थाका निदान है। यह है महाकालीका स्वरूप। साधारण मनुष्य इस गम्भीर भावकी आराधना करनेमें असमर्थ हैं। अतएव उनके कल्याणके लिये परम कारुणिक महर्षियोंने निदानद्वारा पूर्वोक्त प्रतिमाओंकी कल्पना की है। प्रलयकालकी कैसी स्थिति है? उसके जाननेसे हमारा क्या लाभ है? पूर्वोक्त ध्यान-विज्ञानसे सबका उत्तर हो जाता है। अन्तमें उसी परमाराध्या आद्याका स्मरण करते हुए इस प्रथमा विद्याके निरूपणको समाप्तकर दूसरी विद्याकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं।

अक्षोभ्य पुरुष और उसकी महाशक्ति 'तारा' २

रात्रिके १२ बजेसे प्रातः ६ तक (सूर्योत्पत्तिसे पहले) चतुरशीति-(८४) भेदभिन्ना महाकालीकी सत्ता बतलायी गयी है। इसके बाद 'तारा' का साम्राज्य है। हिरण्यगर्भ-विद्याके अनुसार निगम-शास्त्रने सम्पूर्ण विश्वकी रचनाका आधार सूर्यको माना है। सौरमण्डल आग्नेय होनेसे हिरण्मय कहलाता है। क्योंकि अग्नि हिरण्यरेता है। उस हिरण्मय मण्डलके (आग्नेय सोलरसिस्टमके) केन्द्रमें वह सौर-ब्रह्म-तत्त्व प्रतिष्ठित है। अतएव सौर-ब्रह्मको 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है। भूः, भुवः, स्वः रूप रोदसी त्रिलोकीके निर्माता एवं अधिष्ठाता, स्वयम्भू परमेष्ठीरूप अमृतासृष्टि, पृथिवी-चन्द्रमारूपा मर्त्यासृष्टिके विभाजक एवं सञ्चालक, विश्व-केन्द्रमें प्रतिष्ठित इन्हीं भगवान् हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है।

> **हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे**
> **भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
> **स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां**
> **कस्मै देवाय हविषा विधेम॥**
>
> (यजु० २३। १)

यह श्रुति इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करती है। जैसे विश्वातीत कालपुरुषकी शक्ति महाकाली थी, वैसे ही विश्वाधिष्ठाता इस हिरण्यगर्भ-पुरुषकी शक्ति 'तारा' है। घोर तममें दीपक-बिम्ब तारा-सदृश प्रकाशित रहता है। उस महातमके केन्द्रमें उत्पन्न होनेवाले सूर्यकी वही स्थिति है। अतएव श्रुतिमें सूर्य 'नक्षत्र' नामसे प्रसिद्ध हैं (देखो शत० २। १। २। १८)। अतएव इनकी शक्ति आगमशास्त्रमें 'तारा' नामसे प्रसिद्ध हुई। यह पुरुष तन्त्र-शास्त्रमें 'अक्षोभ्य' नामसे प्रसिद्ध है। वैदिक सिद्धान्तके अनुसार सूर्य सर्वथा स्थिर है। बृहती-छन्द-नामसे प्रसिद्ध सुप्रसिद्ध विषुवद्वृत्तके ठीक मध्यमें क्षोभरहित होकर स्थिररूपसे भगवान् सूर्य तप रहे हैं—

> **'सूर्यो बृहतीमध्यूढस्तपति।'**
> **'उदयास्तमनञ्चैव दर्शनादर्शनं रवेः।'**

—इत्यादि वचन सूर्यको स्थिर ही बतलाते हैं। चूँकि यह क्षोभरहित है। अतएव ये 'अक्षोभ्य' नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्यको हमने प्रारम्भमें रुद्र कहा है। एवं शिव-घोर-भेदसे इसके दो शरीर बतलाये हैं। आपोमय पारमेष्ठ्य महासमुद्रमें घर्षणद्वारा आग्नेय परमाणु उत्पन्न हुए। अनन्तर 'श्वेतवाराह' नामसे प्रसिद्ध प्राजापत्य-वायुद्वारा उनका केन्द्रमें संघात हुआ। संघात होते-होते वह अग्नि-परमाणु-संघ पिण्डरूपमें परिणत होता हुआ सहसा प्रज्वलित हो पड़ा। उसीका नाम सूर्य हुआ। उत्पन्न होते ही इस रुद्राग्निने अन्नकी इच्छा की। क्योंकि अन्नाद अग्नि बिना अन्नाहुतिके क्षणमात्र भी प्रतिष्ठित नहीं रह सकता। इस अन्नाहुतिसे पहले वह सूर्य महाउग्र था। संसारको जला डालनेवाला था। बस, इस समयके उग्र सूर्यकी जो शक्ति थी वही 'उग्रतारा' नामसे प्रसिद्ध हुई। जबतक अन्नाहुति होती रहती है तबतक 'तारा' शान्त रहती है। अन्नाभावमें वही उग्र बनकर संसारका नाश कर डालती है। उसी उग्रभावका, उग्रशक्तिका निरूपण करता हुआ रहस्य कहता है—

> **प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा**
> **खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजाहुङ्कारबीजोद्भवा।**
> **खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता**
> **जाड्यं न्यस्य कपालकर्तृ जगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥**
>
> (शाक्तप्रमोद—तारातन्त्र)

महाकाली महाप्रलयकी अधिष्ठात्री थी, उग्रतारा सूर्य-प्रलयकी अधिष्ठात्री है। प्रलय करना दोनोंका समान धर्म है। अतएव महाकाली और उग्रताराके ध्यानमें थोड़ा ही अन्तर है। इसकी चारों भुजाओंमें सर्प लिपट रहे हैं। यह शक्ति प्रलयकालमें जहरीली गैससे ही विश्वका संहार करती है। प्रलयकालमें हवा जहरीली हो जाती है। दम घुटने लगता है। जिसका यत्किञ्चित् निदर्शन बिहारके परिहारसे स्पष्ट हो रहा है। इसीका निदान सर्प है। संसार नष्ट हो जाता है। उस शक्तिकी सत्ता विश्व-केन्द्रमें बतलायी है। शवरूप विश्व-केन्द्रमें वह प्रतिष्ठित है। इसी रहस्यको

बतलानेके लिये शवके हृदयपर उसे प्रतिष्ठित किया है। सौर-अग्नि अन्नाहुति बन्द होनेसे प्रबल वेग धारण कर लेता है। सायँ-सायँ शब्द करने लगता है। इसीका निदान 'अट्टहास' है। प्रलयकालमें पृथिवी, चन्द्रमा, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सबका रस उग्र सौर-तापसे सूख जाता है। सबका रसभाग वह उग्रतारा पी जाती है। रस प्राणियोंका श्रीभाग है। यह प्रधान रूपसे शिरःकपालमें रहता है। श्री (रस) भागके रहनेके कारण ही मस्तक 'शिर' कहलाता है (देखो शत० ६।१।१)। इन्हींको आधार बनाकर वह उस रसका पान करती है। इसीका निदान खप्पर है। 'नीलग्रीवो विलोहितः' (यजु० १६।७) के अनुसार उग्र सूर्य नीलग्रीव है। पिङ्गल है। इसकी शक्तिका भी वही रूप है। सूर्यरूप मस्तक-भागसे चारों ओर फैली हुई रश्मियोंका भी यही स्वरूप है। ये रश्मियाँ ही उसकी जटाएँ हैं। प्रति सौररश्मिमें उस महाभीषणकालमें जहरीला वायु भरा रहता है। इसी स्वरूपको बतलानेके लिये 'नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैक-नागैर्युता' यह कहा गया है। वह महाशक्ति इसी उग्ररूपमें परिणत होकर विश्वका संहार करती है। यही दूसरी सृष्टि-धारा है। महाकालीरूप विश्वातीत तत्त्वके अनन्तर सूर्यरूपा इस दूसरी महाशक्तिका विकास होता है।

पञ्चवक्त्र शिव और उसकी महाशक्ति 'षोडशी' ३

तीसरी है षोडशी। सूर्य उत्पन्न हुआ। उसमें पारमेष्ठ्य-सोमकी आहुति हुई। इससे उग्रता शान्त हो गयी। एवं रुद्रसूर्य शिव बन गया। बस, शिवभावापन्न सूर्य ही संसारका प्रभव है। शिवात्मक सूर्य ही पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौरूप त्रैलोक्यका, एवं उसमें रहनेवाली अमृत-मर्त्य प्रजाका निर्माण करते हैं। इसी आधारपर—

> नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः। (ऋक्०)
> निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। (यजु०)
> सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (यजु०)

—इत्यादि कहा जाता है। इस शिवात्मक सूर्यशक्तिका (जो शिव-तन्त्रमें 'पञ्चवक्त्र शिव' नामसे प्रसिद्ध है) ही नाम 'षोडशी' है। रुद्र-शक्ति तारा थी, शिव-शक्ति षोडशी है। घोर सूर्यको मध्याह्नका सूर्य समझिये। शिवसूर्यको प्रातःकालका शान्त सूर्य समझिये। उसकी शक्तिको उग्र समझिये। इसकी शक्तिको शिवा समझिये। षोडशीका निदान-रहस्य बतलावें, इसके पहले प्रसङ्गागत पञ्चवक्त्र शिवसम्बन्धी निदानका संक्षिप्त स्वरूप उपस्थित करते हैं।

> मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
> स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
> शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रपाशाङ्कुशान्
> पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥
> (तन्त्रसार)

शक्ति एवं कार्यभेदसे भगवान् शङ्करके अनेक रूप हो जाते हैं। एक ही शिवसूर्य पाँच दिशाओंमें व्याप्त होकर पञ्चमुख बन जाते हैं। पूर्वोक्त ध्यान उन्हीं पाँचों मूर्तियोंका स्वरूप बतलाता है। उस एकहीके वे पाँचों मुख पूर्वा, पश्चिमा, उत्तरा, दक्षिणा, ऊर्ध्वा दिग्-भेदसे क्रमशः—१ तत्पुरुष, २ सद्योजात, ३ वामदेव, ४ अघोर, ५ ईशान इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। पाँचों मुख क्रमशः चतुष्कल, अष्टकल, त्रयोदशकल, अष्टकल, पञ्चकल हैं। एवं पाँचों क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील, पीत वर्णके हैं। इस पञ्चवक्त्र शिवके १० हाथ हैं। दशोंमें १ अभय, २ टङ्क, ३ शूल, ४ वज्र, ५ पाश, ६ खड्ग, ७ अङ्कुश, ८ घण्टा, ९ नाग, १० अग्नि, ये १० आयुध हैं। ये शिव सर्वज्ञ हैं। त्र्यक्षरूप हैं। अनादिबोधस्वरूप हैं। स्वतन्त्र हैं। अलुप्तशक्ति हैं। अनन्त शक्तिमान् हैं। पाँच दिशाओंमें इनकी व्याप्ति है। पाँचों ओर इनका रुख है। रुख ही मुख है। पञ्चमुख इसी भावका निदान है। इस शिवके आग्नेय, वायव्य, सौम्य, तीन स्वरूपधर्म हैं। ये तीनों ही तीन-तीन प्रकारके हैं। आग्नेय-प्राणके अग्नि, वायु, इन्द्र, ये तीन भेद हैं। वायव्य-प्राणके वायु, शब्द, अग्नि, ये तीन भेद हैं। एवं सौम्य-प्राणके वरुण, चन्द्र, दिक्, ये तीन भेद हैं। इस प्रकार उस शिवकी ९ शक्तियाँ हो जाती हैं। ये नवों घोर हैं। उग्र हैं। एवं इन सबका आधारभूत परोरजा नामका सर्वप्रतिष्ठारूप शान्तिमय प्राजापत्य प्राण है। १० हाथ, १० आयुध इन्हीं दश शक्तियोंके निदान हैं। टङ्कसे आग्नेय-ताप सूचित किया जाता है। शूलका वायव्य-तापसे सम्बन्ध है। 'न वातेन विना शूलम्' यह निश्चित सिद्धान्त है। वज्रसे ऐन्द्र-ताप अभिप्रेत है। पाशसे वारुण-ताप अभिप्रेत है। 'वरुण्या वा एषा यद्रज्जुः' के अनुसार पाशके अधिष्ठाता वरुण ही हैं। खड्गका चान्द्रशक्तिसे सम्बन्ध है। अङ्कुशसे दिश्या हेतिका सम्बन्ध है। नागसे सञ्चर-नाडी और विवेले

वायुकी ओर इशारा है। जिस वायुसूत्रसे रुद्र प्रविष्ट होते हैं वही सञ्चर-नाड़ी कहलाती है। इस नाड़ीका नाक्षत्रिक सर्प-प्राणसे सम्बन्ध है। सारे ग्रह सर्पाकार हैं। इनमें वह सौर-तेज व्याप्त रहता है। सब ग्रहरूप सर्पोंके साथ रुद्र-सूर्यका भोग होता है। अतएव उनके सर्वाङ्ग शरीरमें सर्प लपेट दिये जाते हैं। इनकी दृष्टि प्रकाशरूपा है। इसीका निदान अग्नि-ज्वाला है। सोमाहुतिका निदान मस्तकस्थ इन्दु है। शान्तिरूप परोरजाः-प्राणका निदान अभय-मुद्रा है। आगम-रहस्यानुसार स्वर-वाक्के अधिष्ठाता यही हैं। इसीका निदान घण्टा है। नीचे लिखी तालिकासे सब स्पष्ट हो जाता है।

१	अभयम्	प्राजापत्यम्	शान्तिः	परोरजाः प्राणः
२	टङ्कः	आग्नेयतापः	अग्निः	आग्नेयप्राणः
३	शूलम्	वायव्यतापः	वायुः	,,
४	वज्रम्	ऐन्द्रतापः	इन्द्रः	,,
५	पाशः	वारुणहेतिः	वरुणः	सौम्यप्राणः
६	खड्गः	चान्द्रहेतिः	चन्द्रः	,,
७	अङ्कुशः	दिश्याहेतिः	दिक्	,,
८	घण्टा	ध्वनिः शब्दः	शब्दः	वायव्यप्राणः
९	नागः	सञ्चरनाडी	वायुः	,,
१०	अग्निः	प्रकाशः	अग्निः	,,

इसी पञ्चवक्त्र शिवकी शक्तिका नाम षोडशी है। पञ्चकल अव्यय, पञ्चकल अक्षर, पञ्चकल आत्मक्षर परात्पर-की समष्टिको पूर्वमें हमने षोडशी पुरुष बतलाया है। स्व, पर, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, इन पाँचोंमेंसे एकमात्र सूर्यमें ही उस षोडशीका पूर्ण विकास होता है। स्वयम्भू अव्यक्त है। अतएव वहाँ भी पूर्ण विकास नहीं। परमेष्ठीमें यज्ञवृत्तिके कारण विकास नहीं। वहाँ आया हुआ षोडशी अन्तर्लीन हो जाता है। परन्तु सूर्य अग्निमय होनेसे चितिधर्मा है। अतएव इसमें आया हुआ चिदात्मा पूर्णरूपसे उल्बण हो जाता है। स्वयम्भू आदि पाँचोंमें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सोम इन पाँच अक्षरोंकी प्रधानता है। पाँचोंमें इन्द्रात्मक सूर्यमें ही षोडशीका विकास है। अतएव इस सूर्यरूप इन्द्रके लिये 'इन्द्रो ह वै षोडशी' (शत० ४।२।५।१४) यह कहा जाता है। पञ्चकल अव्ययका सृष्टिसाक्षी भाग मन, प्राण वाग्रूप है। इसमें स्वयम्भूमें केवल वाक्का विकास है। परमेष्ठीमें वाक्-प्राण दोका विकास है। उधर पृथिवीमें केवल वाक्का विकास है। चान्द्र अन्तरिक्षमें वाक्प्राणका विकास है। परन्तु मध्यपतित चितिधर्मा सूर्यमें मन, प्राण, वाक् तीनोंका विकास है। इसी आधारपर—

१—वागिन्द्रः,

२—आदित्यं मनः,

३—प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः।

—इत्यादि कहा जाता है। 'स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः' (बृहदारण्यक) के अनुसार सृष्टिसाक्षी आत्मा मनःप्राणवाङ्मय है। सूर्यमें तीनोंकी सत्ता है। अतएव 'सूर्य आत्मा जगत-स्तस्थुषश्च' इत्यादि रूपसे सूर्यको स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वका आत्मा बतलाया जाता है। चूँकि इसमें षोडशकल पुरुषका पूर्ण विकास है, अतएव इसको हम अवश्य ही षोडशी कहनेके लिये तैयार हैं। इसीलिये इसकी शक्तिको भी अवश्य ही 'षोडशी' कहा जा सकता है। भूः, भुवः, स्वः-रूप तीनों ब्रह्मपुर इसी महा-शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव तन्त्रमें यह 'त्रिपुरसुन्दरी' नामसे भी प्रसिद्ध है। इसीका स्वरूप बतलाते हुए ऋषि कहते हैं—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे॥

(शाक्तप्रमोद--षोडशीतन्त्र)

सूर्यमें प्रकाश है, ताप (अग्नि) है, आहुतसोम (चन्द्रमा) है। 'त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी' के अनुसार उस शिव-शक्तिने इन्हीं तीन रूपोंसे विश्वको प्रकाशित कर रक्खा है। अतएव सूर्यको लोकचक्षु कहा जाता है। इन्हीं तीन ज्योतियोंका निदान तीन नेत्र हैं। सौरशक्ति सम्पूर्ण खगोलमें व्याप्त है। खगोल चतुर्भुज है। इसीका निदान चार भुजाएँ हैं। सोमाहुतिसे यह शान्त बन रही है। प्रातः कालका बालसूर्य इसकी साक्षात् प्रतिकृति है। बालार्क इसी अवस्थाका निदान है। सूर्यसे उत्पन्न होनेवाली प्रजा सौर

आकर्षण-सूत्रसे बद्ध रहती है। स्वयं पृथिवी भी उससे बद्ध है। अतएव वह कभी क्रान्तिवृत्तको नहीं छोड़ती। उस सौर-शक्तिने अपने आकर्षणरूप पाशसे सबको बद्ध कर रक्खा है। पाश इसीका निदान है। अक्षररूपा उस नियतिके डरसे सब अपना-अपना काम यथावत् कर रहे हैं। स्वयं सूर्य भी उसका लोहा मानता है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥
(कठ० २।६।३)

—के अनुसार वह सबपर अपना अंकुश रखती है। अंकुश इसीका निदान है। जो प्रधापराधसे शक्तिके उन अटल नियमोंका उल्लंघन करते हैं उनका वह नाश कर डालती है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ तीनों लोकोंमें व्याप्त रुद्रके अन्न, वायु, वर्षा तीन प्रकारके इषु (बाण) हैं। (यजु० १६।६६) वे इषु असलमें इस शक्तिके इषु हैं। इन्हींके द्वारा वह संहार करती है। शर इन्हींका निदान है। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु, संहारक रुद्र, खण्डप्रलयके अधिष्ठाता यम, चारों देवता उसके अधीन हैं। वह चारोंपर प्रतिष्ठित है। 'चतुर्ब्रांहाम्' इसी अवस्थाका निदान है। पूर्वोक्त ध्यान इसी स्वरूपको प्रकट करता है।

त्र्यम्बक शिव और उनकी महाशक्ति 'भुवनेश्वरी' ४

सूर्य उत्पन्न हुआ। पारमेष्ठ्य सोमकी आहुति हुई, इससे यज्ञ हुआ। यज्ञसे त्रैलोक्य निर्माण हुआ। तीनों भुवन उत्पन्न हो गये, विश्वोत्पत्तिके उपक्रममें षोडशीकी सत्ता थी। भुवनोंको उत्पन्नकर उनका सञ्चालन करती हुई वही शक्ति आज 'भुवनेश्वरी' बन गयी। यही चौथी सृष्टि-धारा है, चौथी सृष्टि-विद्या है। इसीका स्वरूप बतलाते हुए ऋषि कहते हैं—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥
(शाक्तप्रमोद—भुवनेश्वरीतन्त्र)

यदि सूर्यमें सोमाहुति न होती तो यज्ञ असम्भव था। बिना यज्ञके भुवन-रचनाका अभाव था। बिना भुवनके 'भुवनेश्वरी' उन्मुग्ध थी। सूर्यके मस्तक (ऊपर)-भागपर प्रतिष्ठित ब्राह्मणस्पत्य सोम आहुत हो रहा है। इसीसे भुवनोत्पत्ति है। इसीसे भुवनेश्वरी उद्बुद्ध है। 'इन्दुकिरीट' इसी अवस्थाका निदान है। तीन नेत्रोंका निदान पूर्वसे गतार्थ है। संसारमें जितनी भी प्रजा है सबको उसी त्रिभुवन-व्याप्ता भुवनेश्वरीसे अन्न मिल रहा है। ८४ लाख योनियाँ उसीसे अन्न लेकर जीवित हैं। इसीका निदान वरदा है। जो भुवन प्रलय-समुद्रमें विलीन था आज वही इसी शक्तिके प्रभावसे विकसित हो रहा है। मानों वह शक्ति अपनी उग्रता छोड़कर विश्वपर कृपादृष्टि कर रही है। 'स्मेरमुखी' शब्द इसी भावका निदान है। शासनशक्तिका निदान अंकुश-पाशादि है, जैसा कि पूर्वमें बतलाया जा चुका है।

कबन्ध शिव और उसकी महाशक्ति 'छिन्नमस्ता' ५

'पाङ्क्तो वै यज्ञः' (श० १।१।२) के अनुसार सृष्टिका मूल यज्ञ—पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, महायज्ञ, अतियज्ञ, शिरोयज्ञ-भेदसे पाँच भागोंमें विभक्त है। स्मार्त-यज्ञ पाकयज्ञ है। इसीको गृह्ययज्ञ, एकाग्नियज्ञ भी कहा जाता है। अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास्य, चातुर्मास्य, पशुबन्ध इत्यादि हविर्यज्ञ हैं। भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, ये पाँच महायज्ञ हैं। अग्निचयन, राजसूय, अश्वमेध, वाजपेय ये अतियज्ञ हैं। 'छिन्नशीर्षो वै यज्ञः' इस श्रुतिके अनुसार पूर्वोक्त सारे यज्ञ छिन्नशीर्ष हैं। सबका मस्तक कटा हुआ है। सुप्रसिद्ध पौराणिक हयग्रीवोपाख्यान-का (जिसमें गणपतिवाहन मूषककी कृपासे धनुषप्रत्यञ्चा-भङ्ग हो जानेसे शयान विष्णुके शिरश्छेदका निरूपण है) इसी छिन्नशीर्षसे सम्बन्ध है। प्रत्येक यज्ञके अन्तमें शिरःसन्धानके लिये जो यज्ञ किया जाता है उसे ही 'शिरो-यज्ञ' कहते हैं। बिना इसके किये यज्ञ बिना माथेका रहता है। यही यज्ञ ब्राह्मणग्रन्थोंमें—सम्राड्याग, प्रवर्ग्ययाग, घर्म-याग, महावीरोपासना इत्यादि अनेक नामोंसे व्यवहृत हुआ है। 'सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्,' सूर्यो वा ज्योतिष्टोमः' इत्यादिके अनुसार अग्नीषोमात्मक सूर्य यज्ञरूप है। इस यज्ञमूर्ति अतएव विष्णुनामसे प्रसिद्ध सूर्य-पुरुषका यज्ञा-त्मना निरूपण करते हुए वेद-पुरुष कहते हैं—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ आविवेश॥
(गो० ब्रा० ३।७)

'ऋग्, यजुः, साम, अथर्व—चारों वेद इसके चार सींग हैं। प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, सायंसवन, तीन सवन

इसके तीन पैर हैं। ब्रह्मौदन, प्रवर्ग्य, दो मस्तक हैं। मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण, इन तीनोंसे वह मर्यादित है। गायत्री आदि सात छन्द उसके सात हाथ हैं। ऐसा यह यज्ञ-वृषभ विश्वमें हुङ्कार कर रहा है। यही महादेव मरणधर्मा सब प्राणियोंका आत्मा बना हुआ है। सबमें आत्मरूपसे प्रविष्ट हो रहा है।' पूर्वोक्त यज्ञावयवोंमेंसे ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्यकी ओर ही आपका ध्यान आकर्षित किया जाता है। जिस वस्तुका आत्मासे नित्य सम्बन्ध रहता है वह उस आत्माका ब्रह्मौदन कहलाता है। वह अन्न उस ब्रह्मका ओदन है। सिवा उसके और कोई उसे नहीं ले सकता। एवं जो वस्तु उस आत्मासे पृथक् होकर दूसरे आत्माका अन्न बन जाती है वह प्रवर्ग्य कहलाती है। इसीको 'उच्छिष्ट' भी कहते हैं। सूर्यका जो ताप सूर्यसे बद्ध रहता है, यह उसका ब्रह्मौदन है। परन्तु जो ताप अलग होकर ओषधि, बनस्पति, मनुष्यादिके निर्माणमें उपयुक्त हो जाता है, वह प्रवर्ग्य है। धूपमें पानी रख दीजिये, गरम हो जायगा। सूर्य अस्त हो गया, परन्तु पानी अब भी गरम है। सूर्य अपने तापको इस पानीमें छोड़ गया। हवामें छोड़ गया। रात है, परन्तु हवा गरम चल रही है। यही उसका प्रवर्ग्य-भाग है, घर्म-भाग है। घर्म ही निरुक्त-क्रमानुसार घरमरूपमें परिणत होता हुआ 'गरम' बन गया है। ताप, सौर यच यावत् पदार्थोंका उपलक्षण है। सब सौर-पदार्थ सूर्यसे अलग होते रहते हैं। यदि सूर्य इस उच्छिष्टको नहीं छोड़ता तो विश्वनिर्माण असम्भव था। इसी आधारपर 'उच्छिष्टात् सकलं जगत्' यह कहा जाता है। यह प्रवर्ग्य पूर्व श्रुतिके अनुसार उस यज्ञका मस्तक है। यह अलग कट जाता है, इसी आधारपर यज्ञको छिन्नशीर्ष कहा जाता है। पार्थिवगणपतिकी प्राणप्रतिष्ठारूप मूषकका आत्मा बननेवाला घनवायु ही अपने व्यापारसे उस प्रवर्ग्यको यज्ञसे अलग करता है। मूषकद्वारा ही यज्ञविष्णुका मस्तक कटता है। कहना यही है कि ब्रह्मौदनसे आत्मरक्षा होती है, एवं प्रवर्ग्यसे सृष्टिका स्वरूप बनता है। बस, इस प्रवर्ग्यको ही निगममूलक आगमशास्त्र 'कबन्ध' नामसे व्यवहृत करता है। इस कबन्ध-पुरुषकी शक्तिका नाम ही 'छिन्नमस्ता' है। छिन्नमस्ता बनकर ही वह शक्ति संसार बनती है, एवं उसी रूपसे नाश भी करती है। यज्ञ-मूर्ति सूर्यसे उत्पन्न होनेवाले जड़चेतनरूप सभी पदार्थ यज्ञमूर्ति हैं। सबमेंसे प्रवर्ग्य-भाग निकल रहा है। हम उसके प्रवर्ग्यको लेकर जीवित हैं। साथ ही हमारा प्रवर्ग्य उसमें जा रहा है। सूर्य त्रैलोक्य एवं उसकी प्रजाको प्रवर्ग्यान्न देता है। साथ ही रश्मियोंसे लेता भी रहता है। विसर्गसे जैसे उस प्रजापतिका शरीर प्रतिक्षण विस्रस्त होता रहता है, आदानसे प्रतिक्षण उसका सन्धान भी होता रहता है। इसी प्रक्रियाका नाम शिरःसन्धान है। यही प्रवर्ग्ययाग है। मस्तक कटनेसे जैसे प्राणी निर्जीव हो जाता है, वैसे ही बिना इसके यज्ञस्वरूप ही नष्ट हो जाता है। अतएव ब्रह्मौदनवत् प्रवर्ग्य-भागको भी हम अवश्य ही यज्ञका मस्तक कहनेके लिये तैयार हैं। वह मुझे देता है। साथ ही मुझे खाता है। एवं साथ ही उस खानेवालेको मैं भी निरन्तर खा रहा हूँ। वस्तुमात्रमें यह आदानविसर्ग निरन्तर हो रहा है। जबतक आदान-विसर्गात्मक यज्ञ है तभीतक विश्वसत्ता है। इसी यज्ञ-रहस्यका निरूपण करती हुई श्रुति कहती है—

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य नाम।
यो मा ददाति स इदेवमावत् अहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥

मैं छिन्नशीर्ष अवश्य हूँ। परन्तु अन्नागमनरूप शिरःसन्धान यज्ञसे स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित हूँ। परन्तु जब यह शिरःसन्धानरूप अन्नागमन बन्द हो जायगा उस समय केवल छिन्नमस्ता ही रह जायगी। उस समय वह सर्वात्मना हमारा शोषण कर लेगी। जो महामाया षोडशी बनकर भुवनेश्वरी बनती हुई संसारका पालन करती है, वही अन्तकालमें छिन्नमस्ता बनकर नाश कर डालती है। उसीका निरूपण करते हुए ऋषि कहते हैं—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्त्रिकां
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कृतां
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेजवासन्निभाम्॥

दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्परं
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी।
देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्ती मुदा
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः॥
प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्तं पिबन्ती मुदा
सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी।

× × ×

शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी॥

(शाक्तप्रमोद—छिन्नमस्तातन्त्र)

विषय आवश्यकतासे अधिक लम्बा हो गया है, अतः आगेकी पाँच मूर्तियोंका ध्यानमात्र बतलाकर लेख समाप्त किया जाता है। पूर्वोक्त छिन्नमस्ताके ध्यानके विषयमें केवल यही समझ लेना पर्याप्त होगा कि कर्त्री, खर्पर, रक्त, नाग, दिगम्बरत्व आदि संहारशक्तिके निदान हैं।

दक्षिणामूर्ति कालभैरव और उनकी महाशक्ति 'भैरवी' ६

छिन्नमस्ताका महाप्रलयसे विशेष सम्बन्ध है, जैसा कि उसके ध्यानसे स्पष्ट हो जाता है। दूसरा है नित्य-प्रलय। प्रतिक्षण पदार्थ नष्ट होते रहते हैं। नष्ट करना रुद्रका काम है। यही विनाशान्मुख होकर 'यम' कहलाने लगते हैं। इसी याम्य-अग्निकी सत्ता प्रधानरूपसे दक्षिण दिशामें है। अतएव यमराजको दक्षिण दिशाका लोकपाल बतलाया जाता है। दक्षिणमें अग्निकी सत्ता है। उत्तरमें सोमका साम्राज्य है। सोम स्नेह-तत्त्व है, संकोचधर्मा है। अग्नि तेज-तत्त्व है, विशकलनधर्मा है। विशकलनक्रिया ही वस्तुका नाश करती है। यह धर्म दक्षिणाग्निका है। अतएव इस रुद्रको दक्षिणामूर्ति, कालभैरव आदि नामोंसे व्यवहृत किया जाता है। इनकी शक्तिका नाम ही भैरवी किंवा त्रिपुरभैरवी है। राजराजेश्वरी नामसे प्रसिद्ध भुवनेश्वरी जिन तीनों भुवनोंके पदार्थोंकी रक्षा करती है—यह त्रिपुरभैरवी उनका नाश करती रहती है। त्रिभुवनके पदार्थोंका क्षणिक विनाश इसी शक्तिपर निर्भर है—छिन्नमस्ता परा डाकिनी थी, यह अवरा डाकिनी है। कल्याणेच्छुकोंको उसका निम्नलिखित रूपसे निरन्तर ध्यान करना चाहिये—

> उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
> रक्तालिप्तपयोधरां जपपटीं विद्यामभीतिं वरम्।
> हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
> देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्॥
>
> (भैरवीतन्त्र)

पुरुषशून्या अतएव 'विधवा' नामसे प्रसिद्ध महाशक्ति 'धूमावती' ७

संसारमें दुःखके मूलकारण—रुद्र, यम, वरुण, निर्ऋति ये चार देवता हैं। विविध प्रकारके ज्वर, महामारी, उन्माद आदि आग्नेय (सन्ताप) सम्बन्धी रोग रुद्रकी कृपासे होते हैं। मूर्च्छा, मृत्यु, अङ्ग-भङ्ग आदि रोग यमकी कृपाका फल है। गठिया, शूल, गृध्रसी, लकवा आदिके अधिष्ठाता वरुण हैं। एवं सब रोगोंमें भयङ्कर शोक, कलह, दरिद्रता आदिकी सञ्चालिका निर्ऋति है। भिखारी, क्षतविक्षता पृथिवी, ऊसर भूमि, भग्न प्रासाद, फटे एवं जीर्ण वस्त्र, बुभुक्षा, प्यास, रुदन, वैधव्य, पुत्रसन्ताप, कलह आदि उसकी साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। इन सबका मूल प्रधानरूपसे दरिद्रता है। अतएव 'घोरा पाप्मा वै निर्ऋतिः' (शत० ७।२।१।१) इत्यादि रूपसे श्रुतिने उसे दरिद्रा नामसे व्यवहृत किया है। इसीको शान्त करनेके लिये 'निर्ऋति' इष्ट की जाती है। यह शक्ति यों तो सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु इसका खजाना ज्येष्ठा नक्षत्र है। वहींसे यह 'आसुरी कलहप्रिया' शक्ति निकलती है। अतएव ज्येष्ठा-नक्षत्रमें उत्पन्न होनेवाला प्राणी जीवनभर दारिद्र्य-दुःख भोग करता है। यही हमारी साक्षात् धूमावती है। इसमें मनुष्यका पतन है। अतएव इसे 'अवरोहिणी' भी कहा जाता है। यही 'अलक्ष्मी' नामसे प्रसिद्ध है। डरावनी शकल, दाँतोंका चौड़ा होना, रूक्षता आदि इसीकी कृपाका फल है। इसी शक्तिका निरूपण करते हुए ऋषि कहते हैं—

> विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
> विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरलद्विजा॥
> काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा।
> शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षा धूतहस्ता वरानना॥
> प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
> क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा॥
>
> (शाक्तप्रमोद—धूमावतीतन्त्र)

ध्यानसे ही निदान स्पष्ट है। आप्य-प्राणको असुर कहते हैं, आग्नेय एवं ऐन्द्रप्राण देवता-नामसे प्रसिद्ध हैं। आषाढ़शुक्ला एकादशीसे वर्षाकालका प्रारम्भ माना जाता है। एवं कार्तिकशुक्ला एकादशी वर्षाकी परम अवधि मानी जाती है। इन चार महीनोंमें पृथिवीपिण्ड और सौरप्राण आपोमय रहते हैं। अतएव चातुर्मास्यमें दोनों ही प्राण-देवता आसुर आप्यप्राणकी प्रधानतासे निर्बल हो जाते हैं। इनकी शक्ति दब जाती है। अतएव चातुर्मास्य देवताओंका सुषुप्तिकाल कहलाता है। इतने दिनतक आसुर-प्राणका साम्राज्य रहता है, अतएव दिव्यप्राणकी उपासना करने-

वाला भारतीय सनातन-धर्मी जगत् कोई दिव्य-कार्य (विवाह, यज्ञोपवीत, यात्रा आदि) नहीं करता। इसी चातुर्मास्यमें उस निर्ऋतिका साम्राज्य रहता है। कार्तिककृष्णा चतुर्दशी इसकी अन्तिम अवधि है। अतएव धर्माचार्योंने इसे 'नरकचतुर्दशी' नामसे व्यवहृत किया है। इसी रात्रिको दरिद्रारूपा इस अलक्ष्मीका गमन होता है, एवं दूसरे ही दिन रोहिणीरूपा कमला (लक्ष्मी) का आगमन होता है। कार्तिककृष्ण अमाको कन्याका सूर्य रहता है। कन्याराशिगत सूर्य नीचका कहलाता है। इस दिन सौरप्राण मलिन रहता है। एवं रात्रिमें तो यह भी नहीं रहता। उधर अमाके कारण चान्द्रज्योतिका भी अभाव है। एवं चार मासकी वृष्टिसे प्राकृतिकी प्राणमयी अग्निज्योति भी निर्बल हो रही है। 'त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी'के अनुसार इस अमाको तीनों ही ज्योतियोंका अभाव है। अतएव ज्योतिर्मय आत्मा इस दिन हीनवीर्य रहता है। इसी तमभावके निराकरणके लिये, एवं साथ ही कमलागमनके उपलक्ष्यमें ऋषियोंने इस दिन वैधप्रकाश (दीपावलि) और अग्निक्रीड़ा (आतिशबाजी) करनेका आदेश दिया है। कहना यही है कि निर्ऋतिरूपा धूमावती प्रधानरूपसे चातुर्मास्यमें रहती है। लक्ष्मीकामुक मनुष्योंको सदा इसकी स्तुति करते रहना चाहिये।

एकवक्त्र महारुद्र और उसकी महाशक्ति 'वल्गामुखी' ८

प्राणियोंके शरीरमेंसे एक अथर्वा नामका प्राणसूत्र निकला करता है। प्राणरूप होनेसे हम इसे स्थूल दृष्टिसे देखनेमें असमर्थ रहते हैं। यह एक प्रकारकी वायरलेस-टेलिग्राफी है। २००कोस दूर रहनेवाले आत्मीयके दुःखसे यहाँ हमारा चित्त जिस परोक्षशक्तिसे व्याकुल हो जाता है, उसी परोक्ष सूत्रका नाम 'अथर्वा' है। इस शक्तिसूत्रके विज्ञानसे सहस्रों कोस दूरस्थित व्यक्तिका आकर्षण किया जा सकता है। परमेश्वरकी विचित्र लीला है। जैसे प्राघुणिक (पाहुना) के आगमनका ज्ञान हमें नहीं होता, किन्तु काकको हो जाता है, उसी प्रकार जिस अथर्वासूत्रको हम नहीं पहचानते उसे श्वान पहचान लेता है। उसी शक्ति-ज्ञानके प्रभावसे कुत्ता जमीन सूँघता हुआ भागे हुए चोरका पता लगा लेता है। जिस मार्गसे चोर जाता है, उस मार्गमें उसका अथर्वा प्राण वासनारूपसे मिट्टीमें संक्रान्त हो जाता है। वस्त्र, नाखून, केश, लोम आदिमें वह प्राण वासनारूपसे प्रतिष्ठित रहता है। इन वस्तुओंके आधारपर उस व्यक्तिपर मनमाना प्रयोग किया जा सकता है। भौम-स्वर्गके अधिष्ठाता, आज दिन न्यू साइबीरिया नामसे प्रसिद्ध सौराष्ट्र नामके राष्ट्रान्तर्गत अमरावती नामके शहरमें रहनेवाले, पुराणोंमें हरिवाहन एवं वेदमें 'हरिवान' नामसे प्रसिद्ध मनुष्य इन्द्रने 'सरमा' नामकी कुत्तीकी सहायतासे बृहस्पतिकी गायोंको चुरा ले जानेवाले पणि नामके असुरोंका पता लगाया था (देखो ऋग्वेद), अपि च पुरायुगमें भौम मनुष्य-देवता इसी अथर्वासूत्रद्वारा असुरोंपर कृत्याप्रयोग (मारण-मोहन-उच्चाटन आदि) किया करते थे। अथर्ववेदके घोराङ्गिरा, अथर्वाङ्गिरा नामके दो भेद हैं; इनमें—घोराङ्गिरामें ओषधि-वनस्पति-विज्ञान है। एवं दूसरेमें—

> श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
> वाक् शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः॥
>
> (मनु० ११।३३)

—के अनुसार अभिचार-प्रयोग है। इसका उसी पूर्वोक्त अथर्वासूत्रसे सम्बन्ध है। बस, अथर्वासूत्ररूपा इसी महाशक्तिका नाम 'वल्गामुखी' है। यह इसका वैदिक नाम है। जैसा कि शतपथ-श्रुति कहती है—

> यद्वा वै कृत्यामुत्खनन्ति अथ सालसा, मोघा भवति। तथो एवैष एतद्यदस्मा अत्र कश्चिद् द्विषन् भ्रातृव्यः कृत्यां वल्गां निखनति तानेवैतदुत्किरति।
>
> (शत० ३।५।४।३)

निरुक्तक्रमानुसार संस्कृत-भाषामें जैसे 'हिंस' शब्द वर्णव्यत्ययके कारण 'सिंह' बन जाता है, लौकिकी भाषामें जैसे 'मतलब' 'मतबल' बन जाता है, इसी प्रकार निगमोक्त वल्गा-शब्द आगममें 'बगला' रूपमें परिणत हो गया है। निगम-शास्त्रकी वल्गा ही आगमकी 'बगलामुखी' है। इस कृत्याशक्तिकी आराधना करनेवाला मनुष्य अपने शत्रुको मनमाना कष्ट पहुँचा सकता है। जैसा कि उसके ध्यानसे स्पष्ट हो जाता है—

> जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
> गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥
>
> (शाक्तप्रमोद—बगलामुखीतन्त्र)

१ इस विषयका विशद निरूपण हमारे लिखे हुए 'हिन्दू-त्यौहारोंका वैज्ञानिक रहस्य' नामकी पुस्तकमें देखना चाहिये।

मतङ्गशिव और उसकी महाशक्ति 'मातङ्गी' ९

श्यामां शुभ्रांशुभालां त्रिनयनकमलां रत्नसिंहासनस्थां
भक्ताभीष्टप्रदात्रीं सुरनिकरकरासेव्यकञ्जाङ्घ्रियुग्माम् ।
नीलाम्भोजांशुकान्तिं निशिचरनिकरारण्यदावाग्निरूपां
पाशं खड्गं चतुर्भिर्वरकमलकरैः खेटकञ्चाङ्कुशञ्च ॥
मातङ्गीमावहन्तीमभिमतफलदां मोदिनीं चिन्तयामि ।

—इत्यादि ध्यानसे मातङ्गीका स्वरूप स्पष्ट है ।

सदाशिव पुरुष और उनकी महाशक्ति 'कमला' १०

धूमावती और कमलामें प्रतिस्पर्धा है । वह ज्येष्ठा थी, यह कनिष्ठा है । वह अवरोहिणी थी, यह रोहिणी है । वह आसुरी थी, यह दिव्या है । वह दरिद्रा थी, यह लक्ष्मी है । रोहिणी नक्षत्रके ठीक षड्भान्तरपर (१८० अंशपर) ज्येष्ठा है । जिसका रोहिणी-नक्षत्रमें जन्म होता है, वह समृद्ध होता है । इसीका निरूपण करते हुए ऋषि कहते हैं—

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बवलितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

(शाक्तप्रमोद—कमलातन्त्र)

यह है दश महाविद्याओंका संक्षिप्त निदर्शन । यद्यपि इनके विषयमें अभी बहुत कुछ वक्तव्य है, परन्तु विस्तारभय-से प्रकृतमें केवल इनका आभासमात्र कराया गया है । प्रकारान्तरसे इसी सृष्टिविद्याको ऋषियोंने तीन भागोंमें विभक्त किया है । वही तीन शक्तियाँ—महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती नामसे प्रसिद्ध हैं । तमोगुण-प्रधाना महाकाली कृष्णवर्णा है । यही प्रलयकाल है । रजोगुणप्रधाना महालक्ष्मी रक्तवर्णा है । यही सृष्टिकाल है । सत्त्वगुणप्रधाना महासरस्वती श्वेतवर्णा है । यही मुक्तिकाल है । उस एक ही अज पुरुषकी 'अजा' नामसे प्रसिद्धा महाशक्ति तीन रूपोंमें परिणत होकर सृष्टि, प्रलय, मुक्तिकी अधिष्ठात्री बन रही है । आगमोक्त इस त्रिरूपा शक्तिका मूल निम्नलिखित निगममन्त्र ही है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

(श्वेता० ४ । ५) इति ।

अवान्तर क्षुद्र विद्याओंकी अपेक्षा पूर्वोक्त विद्याएँ यद्यपि अवश्य ही महाविद्याएँ हैं, परन्तु इनमें भी परस्परके तारतम्यसे भेद हो जाता है । कोई महाविद्या है । कोई सिद्धविद्या है । कोई श्रीविद्या है । कोई विद्या ही है । अहः पुरुष है । रात्रि स्त्री है, शक्ति है । अतएव ये विद्याएँ महारात्रि, कालरात्रि, मोहरात्रि, दारुणरात्रि आदि रात्रि-नामोंसे प्रसिद्ध हैं, जैसा कि निम्नलिखित तालिकासे स्पष्ट हो जाता है—

संख्या		शक्ति	नामान्तर	रात्रि	विद्या	शिव
१	०	महाकाली	+	महारात्रि	महाविद्या	महाकाल
२	१	तारा	+	क्रोधरात्रि	श्रीविद्या	अक्षोभ्य
३	२	षोडशी	त्रिपुरसुन्दरी	दिव्यरात्रि	सिद्धविद्या	पञ्चवक्त्र शिव
४	३	भुवनेश्वरी	राजराजेश्वरी	सिद्धरात्रि	सिद्धविद्या	त्र्यम्बक
५	४	छिन्नमस्ता	+	वीररात्रि	विद्या	कबन्ध
६	५	भैरवी	त्रिपुरभैरवी	कालरात्रि	सिद्धविद्या	दक्षिणामूर्ति (कालभैरव)
७	६	धूमावती	अलक्ष्मी	दारुणरात्रि	विद्या	+
८	७	बल्गामुखी	बगलामुखी	वीररात्रि	सिद्धविद्या	एकवक्त्र महारुद्र
९	८	मातङ्गी	+	मोहरात्रि	विद्या	मतङ्ग
१०	९	कमला	लक्ष्मी	महारात्रि	विद्या	सदाशिव विष्णु

अन्तमें उस जगदम्बाको उसकी 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस प्रतिज्ञाका स्मरण करवाते हुए उसकी कृपाभिक्षा माँगते हुए लेख समाप्त किया जाता है । ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

श्रीविद्या

(लेखक—पं० श्रीनारायणशास्त्रीजी खिस्ते)

विश्वको कल्याण-मार्ग दिखानेवाले 'कल्याण' मासिकपत्रके 'शक्त्यङ्क' में 'श्रीविद्या' के बारेमें कुछ लिखनेके लिये मुझसे सम्पादक महोदयने अनुरोध किया है । पूज्यपाद श्रीगोपीनाथजी कविराज महोदयने भी इसके लिये विशेष आज्ञा की है । अतः 'श्रीविद्या'-जैसे गम्भीर विषयपर लेखनी उठानेकी योग्यता न रहनेपर भी यथामति कुछ लिखनेका प्रयत्न करता हूँ । यद्यपि 'श्रीविद्या' के अन्तर्गत अनेक विषय हैं और उन सबके निरूपणके बिना मुख्य विषयका यथावत् निरूपण करना अशक्यप्राय है, तथा साङ्गोपाङ्ग 'श्रीविद्या' का निरूपण तो इस अल्पकाय लेखमें हो ही नहीं सकता, तो भी सम्पादक महोदयद्वारा निर्धारित लेख-विस्तार-मर्यादाका ध्यान रखते हुए यथासम्भव 'श्रीविद्या' के स्वरूप-निरूपणका प्रयत्न करता हूँ ।

'श्रीविद्या' ही ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बाला, पञ्चदशी और षोडशी इत्यादि नामोंसे विख्यात है। मूल-तत्त्वमें ऐक्य होते हुए भी उपरिलिखित भिन्न-भिन्न नाम अवस्था-भेदके परिचायक हैं । यह अवस्था-भेद आगे यथावसर स्पष्ट किया जायगा ।

प्रसिद्ध दश महाविद्याओंमें 'षोडशी' विद्या 'श्रीविद्या' का ही परिणत स्वरूप है । सामान्यतः उपासकमात्र अपने उपास्य देवताको सर्वश्रेष्ठ तथा परब्रह्मात्मक मानता ही है । इस भावनासे यदि देखा जाय तो काली, तारा, षोडशी आदि सभी विद्याएँ समान ही हैं; तब विशेष निरूपणकी आवश्यकता ही न रहेगी । अपने उपास्य देवताको सर्व-श्रेष्ठ मानना तत्तद्देवता-भक्तोंके लिये उचित ही है, तदनुसार काली-तारा-भक्तोंकी दृष्टिमें काली, तारा आदि महाविद्याओं-की सर्वश्रेष्ठता भी अनुचित नहीं कही जा सकती । परन्तु 'श्रीविद्या' के बारेमें यह बात नहीं है; उसकी महत्ता वास्तविक है, न कि केवल भक्तिकल्पित ।

दश महाविद्याओंमें पहली तीन अर्थात् १–काली २–तारा और ३–षोडशी—ये ही सर्वप्रधान विद्याएँ हैं । इन तीनोंसे ही नौ विद्याएँ और एक पूरक विद्या मिलाकर दश महाविद्याएँ होती हैं । मूल एकसे ही तीन होती हैं । सर्वमूलभूत एक विद्या ही 'श्रीविद्या' है।

इसीको ब्रह्मविद्या तथा ब्रह्ममयी भी कहते हैं। काली और ताराका मूल-विद्या षोडशीसे क्या सम्बन्ध है ? और मूल एकसे तीन कैसे हुई ? इत्यादि प्रश्नोंका यथावत् समाधान करनेके लिये एक स्वतन्त्र लेखकी आवश्यकता है । प्रकृत लेखमें इतना सिद्धान्त मानकर ही चलना होगा ।

श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है

'श्रीविद्या' शब्दसे श्रीत्रिपुरसुन्दरीका मन्त्र तथा उसकी अधिष्ठात्री देवता दोनोंका बोध होता है । सामान्यतः श्री-शब्दका लक्ष्मी अर्थ ही प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायनसंहिता, ब्रह्माण्डपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें वर्णित कथाओंके अनुसार 'श्री' शब्दका मुख्यार्थ महात्रिपुरसुन्दरी ही है । श्रीमहालक्ष्मीने महात्रिपुरसुन्दरीकी चिरकाल आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें ही 'श्री' शब्दसे ख्याति प्राप्त करनेका भी एक वरदान उनको मिला है; तबसे 'श्री' शब्दका अर्थ महालक्ष्मी होने लगा । अर्थात् 'श्री'शब्दका महालक्ष्मी अर्थ गौण है । 'श्री' अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रतिपादिका विद्या—मन्त्र ही 'श्रीविद्या' है । वाच्य-वाचकका अभेद मानकर इस मन्त्र-की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' कही जाती है। सामान्यतः 'श्री' शब्द श्रेष्ठताका बोधक है । श्रेष्ठ पुरुषोंके नामोंके पहले 'श्री' शब्दका प्रयोग किया जाता है । श्रेष्ठत्वके तारतम्यानुसार ३, ४, ५, ६ बारतक 'श्री' शब्द-प्रयोगके लिये शास्त्रोंमें प्रमाण पाये जाते हैं । आजकल तो सम्प्रदाया-चार्योंके नामोंके पीछे १००८ बारतक श्रीका प्रयोग किया जाता है । एतावता यह सिद्ध हुआ कि 'श्री' शब्द श्रेष्ठता तथा पूज्यताका सूचक है, सर्वश्रेष्ठ तो परब्रह्म ही है । ब्रह्मकलांशके रहनेकी सूचना ही 'श्री' शब्दद्वारा होती है । जिनमें अंशतः ब्रह्मकला प्रकट होती है वे ही 'श्री' शब्दपूर्वक तत्तन्नामोंसे व्यवहृत होते हैं, जैसे श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्री-काली, श्रीदुर्गा, श्रीकृष्ण इत्यादि । सर्वकारणभूता आत्म-

शक्ति त्रिपुरेश्वरी साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी होनेके कारण केवल 'श्री' शब्दसे ही व्यवहृत होती है। 'सा हि श्रीरमृता सताम्' इत्यादि श्रुति भी इसी परब्रह्मस्वरूपिणी विद्याकी स्तुति करती है ।

विभिन्न देवताओंकी आराधना करनेसे पशु, पुत्र, धन, धान्य, स्वर्ग आदि फल प्राप्त होते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें कहा है। 'श्रीविद्या' के उपासकोंको लौकिक फल तो मिलते ही हैं किन्तु साथ-ही-साथ आत्मज्ञानका जो फल श्रुतिमें 'तरति शोकमात्मवित्'—शोकोत्तीर्णतारूप कहा है, श्रीविद्योपासकको भी वही फल 'पाशाङ्कुशधनुर्बाणा, य एनां वेद स शोकं तरति, स शोकं तरति' इस आथर्वण देव्युपनिषच्छ्रुतिमें दो बार कहा है। अर्थात् आत्मज्ञानीको प्राप्त होनेवाली शोकोत्तीर्णता श्रीविद्योपासकको निश्चयेन प्राप्त होती है। अतः फलैक्यसे 'श्रीविद्या' ही ब्रह्मविद्या है, यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है।

यहाँपर कदाचित् यह शङ्का हो सकती है कि यदि शोकोत्तीर्णतारूप फल ही अभीष्ट है तो 'आत्मा वा अरे श्रोतव्यः' इत्यादि श्रुत्यनुसार श्रवण-मननादि करनेका मार्ग उक्त ही है, उसीसे आत्मज्ञान होकर 'तरति शोकमात्मवित्' के अनुसार शोकोत्तीर्णतारूप फलकी प्राप्ति भी हो ही जायगी। फिर यह श्रीविद्योपासनात्मक कर्मकाण्डके झमेलेकी आवश्यकता ही क्या है ? इसका समाधान यह है कि आत्मज्ञानके लिये श्रवण-मननाद्यात्मक मार्ग यद्यपि उक्त है तथापि वह अत्यन्त कष्टसाध्य तथा प्रखर वैराग्यका मार्ग है। उसके अधिकारी करोड़ोंमें भी दुर्लभ ही हैं। 'श्रीविद्या' की क्रमिक उपासना यदि सौभाग्यसे सद्गुरु-सम्प्रदायसे प्राप्त हो जाय तो सामान्य मनुष्य भी क्रमशः उपासनाके परिपाकसे तथा श्रीमातासे अभिन्न गुरुकृपासे इसी जन्ममें आत्मज्ञानी हो सकता है ! श्रवण-मननात्मक मार्गमें पतनकी आशङ्का है; श्रीविद्योपासनामार्गमें श्रीगुरुरूपिणी शक्तिके अनुग्रहका अवलम्ब होनेके कारण पतनकी आशङ्का नहीं है। शोकोत्तीर्णतारूपी फल अवश्यम्भावी है। यही बात आथर्वण देव्युपनिषच्छ्रुतिने 'स शोकं तरति स शोकं तरति' ऐसा दो बार कहकर सूचित किया है ।

श्रीविद्योपासनामें और भी एक यह विशेषता है कि श्रीविद्योपासकको भोग तथा अपवर्ग दोनों प्राप्त होते हैं । जैसा कि कहा है—

> यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
> यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
> श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
> भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

श्रीविद्या ही आत्मशक्ति है

'श्रीविद्या' ही आत्मशक्ति है, आत्मशक्त्युपासना ही श्रीविद्योपासना है। हारितायनसंहिता–त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डके चतुर्थ अध्यायमें महामुनि संवर्तने श्रीपरशुरामजीके 'संसार-भय-पीड़ितोंके लिये शुभ-मार्ग कौन-सा है ?' इस प्रश्नका समाधान करते हुए कहा है—'गुरूपदिष्ट मार्गमें स्वात्मशक्ति महेश्वरी त्रिपुराकी आराधना कर उसकी कृपाके लेशको प्राप्त करते हुए सर्वसाम्याश्रयात्मक स्वात्मभावको प्राप्त करो। दृश्यमान सब-कुछ आभासमात्र सारशक्तिविलास ही है, ऐसा समझकर जगद्गुरुसमापत्तिको प्राप्त होते हुए निर्भय तथा निःसंशय होकर, हे परशुराम ! तुम भी मेरे ही समान यथेच्छ सञ्चार करो । सर्व भावोंमें स्वात्माको और स्वात्मामें सर्वभावोंको देखते हुए पिण्डाहम्भाव छोड़कर वेतृभावके आसनपर स्थिर रहो । स्वदेहको वेद्य समझते हुए वेत्तापर सर्वदा दृष्टि रखनेवालेको इस संसार-मार्गमें कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता ।'

स्वतन्त्रतन्त्रमें कहा है—'स्वात्मा ही विश्वात्मिका ललिता देवी है, उसका विमर्श ही उसका रक्तवर्ण है और इस प्रकारकी भावना ही उसकी उपासना है ।'

कामेश्वर, कामेश्वरी और उनके उपासकका स्वरूप

स्वात्मशक्ति श्रीविद्या ही ललिता-कामेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी है। वह महाकामेश्वरके अङ्कमें विराजमान है। उपाधिरहित शुद्ध स्वात्मा ही महाकामेश्वर है। सदानन्दरूप उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही पर-देवता महात्रिपुरसुन्दरी ललिता है। निष्कर्ष यह है कि स्व अर्थात् उपासकका आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी वह सदानन्द-उपाधिपूर्ण ही ललिता है; सत्त्व, चित्त्व, आनन्दत्वरूप धर्मत्रयनिर्मुक्त धर्मिमात्र वही स्वात्मा श्रीविद्या ललिताका आधारभूत महाकामेश्वर है। पर-देवता स्वात्मासे अभिन्न होनेपर भी अन्तःकरणोपाधिक आत्मा उपासक है और सदानन्दोपाधिपूर्ण आत्मा उपास्य है; सर्वथा निरुपाधिक आत्मा महाकामेश्वर है ।

कामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासना

श्रीकामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णका ध्यान किया जाता है, उसका रहस्य यह है—'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः' (भावनोपनिषत्-सूत्र २८)। महाकामेश्वर, ललिता और स्वयम् इन तीनोंका विमर्श अर्थात् स्वात्मामें अनुसन्धान करना ही ललिताके रक्तवर्णकी भावना है।

कामेश्वर-कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासनाका रहस्य गुरुमुखैकवेद्य ही है, शब्दोंके द्वारा उसका ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता; तो भी जहाँतक सम्भव है वहाँतक विशद करता हूँ। निरुपाधिक कहनेसे केवलत्व और सदानन्दपूर्ण कहनेसे धर्मविशिष्टत्वकी प्रतीति होती है। विशिष्ट और केवल अवयवावयविके समान अयुतसिद्ध हैं; इनका परस्पर तादात्म्य-सम्बन्ध ही हो सकता है, न कि भेदघटित संयोगादि सम्बन्ध। प्रकृतमें कामेश्वर-कामेश्वरीके विग्रहात्मक स्थूल दो रूपोंका सम्बन्ध कामेश्वरके अङ्कमें कामेश्वरीके विराजमान होनेमें पर्यवसित है। स्थूल दृष्टिमें तो यह भेद-सम्बन्ध ही प्रतीत होता है, परन्तु रहस्यदृष्टिमें यह शिव-शक्ति-सामरस्यात्मक है, जैसे लाक्षाद्रव और पटका सम्बन्ध है। इस प्रकारकी वासना ही रक्तवर्णकी भावना है।

शक्तिके विना शिव शव ही है

कामेश्वर शिवकी शिवता महाशक्तिके उल्लासरूप सान्निध्यसे ही स्फुरित होती है। स्कन्दपुराणमें कहा है—

जगत्कारणमापन्नः शिवो यो मुनिसत्तमाः।
तस्यापि साऽभवच्छक्तिस्तया हीनो निरर्थकः॥

सौन्दर्यलहरीस्तोत्रमें भी कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

पञ्चप्रेतासन

श्रीविद्या राजराजेश्वरी पञ्चप्रेतासनपर विराजमान है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्चमहाप्रेत हैं। इसका रहस्य इस प्रकार है। निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर वामादि तत्तच्छक्तिके सान्निध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योंको सम्पादित करता है। जब ब्रह्मादि अपनी-अपनी वामादि शक्तियोंसे रहित होकर कार्याक्षम हो जाते हैं तब वे प्रेत कहे जाते हैं। उनमें भी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर—ये चार पाद हैं और सदाशिव फलक है; उसपर महाकामेश्वराङ्कमें महाकामेश्वरी विराजमान है।

कामेश्वरीके आयुध

कामेश्वरीके चार भुजाओंमें पाश, अङ्कुश, इक्षुधनु और पञ्च पुष्पबाणोंका ध्यान किया जाता है। उनका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है। पाश—३६ तत्त्वोंमें राग अर्थात् प्रीति नामक तत्त्व ही पाश है। बन्धकत्वधर्मके साथ साम्य होनेसे वही राग श्रीमाताने पाशरूपसे धारण किया है। 'रागः पाशः' (भाव० सूत्र ३३)। अङ्कुश—द्वेष अर्थात् क्रोध ही अङ्कुश है। 'द्वेषोऽङ्कुशः' (भाव० २४)। इक्षुधनु—सङ्कल्प-विकल्पात्मक क्रियारूप मन ही इक्षुधनु है। 'मन इक्षुधनुः' (भाव० २२)। पञ्चबाण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धकी पञ्चतन्मात्राएँ ही पञ्च पुष्पबाण हैं। 'शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः' (भाव० २१)। उत्तर-चतुःशतीशास्त्रमें इन आयुधोंका यथार्थ स्वरूप इस प्रकार कहा है—

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वलम्॥

अर्थात् पाश—इच्छाशक्ति, अङ्कुश—ज्ञानशक्ति, तथा बाण और धनु—क्रियाशक्तिस्वरूप हैं।

रहस्य-पूजा

पूर्वोक्त प्रकारसे श्रीमहाकामेश्वरके अङ्कमें विराजमान पाशाङ्कुशइक्षुधनुपञ्चबाणधारिणी, पञ्चप्रेतासनासीना महात्रिपुरसुन्दरीकी बाह्य पूजा—बहिर्याग तो अनेक पद्धतियोंमें अनेक प्रकारसे विहित ही है। उसके बारेमें विशेष निरूपण अनावश्यक है। रहस्यपूजाका दिग्दर्शन इस प्रकार है—पूर्ण सर्वव्यापक चिच्छक्तिकी अपने महिमामें प्रतिष्ठाकी भावना ही आसनप्रदान है। वियदादि स्थूल प्रपञ्चरूप चिच्छक्तिके चरणोंके नाम-रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक-रूपत्व-भावनारूप जलसे क्षालन करना ही पाद्यार्पण है। सूक्ष्म प्रपञ्चरूप करोंके नाम-रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक-रूपत्व-भावनारूप जलसे क्षालन करना ही अर्घ्य-प्रदान

करना है । भावनारूपोंका भी जो कवलीकरण है वही आचमन-प्रदान है । अखिलावयवावच्छेदेन सत्त्वचित्त्वानन्दत्वादिभावनाजलसम्पर्क ही स्नान है । उक्त अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्तिविषयताका वृत्त्यविषयत्वभावनारूप वस्त्रसे प्रोञ्छन ही देह-प्रोञ्छन है । निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्वादि अनेक धर्मरूप आभरणोंमें धर्म्यभेदभावना करना ही आभरणार्पण है । स्वशरीरघटक पार्थिव भागोंकी जडता हटाते हुए उनमें चिन्मात्रभावना करना ही गन्धविलेपन है । इसी तरह स्वशरीरघटक आकाश-भागोंकी पूर्वोक्त भावना करना ही पुष्पार्पण है । वायवीय भागोंकी उक्त भावना ही धूपार्पण है । तैजस भागोंकी वैसी भावना करना ही दीपदर्शन है । अमृत-भागोंकी वैसी भावना करना नैवेद्यनिवेदन है । षोडशान्तेन्दुमण्डलकी चिन्मात्रताभावना करना ही ताम्बूलार्पण है । परा, पश्यन्त्यादि निखिल शब्दोंका नादद्वारा ब्रह्ममें उपसंहार करनेकी भावना ही स्तुति करना है । विषयोंके तरफ दौड़नेवाली चित्तवृत्तियोंका विषयजडतानिरासपूर्वक ब्रह्ममें विलय करना ही प्रदक्षिणीकरण है । चित्तवृत्तियोंको विषयोंसे परावर्तितकर ब्रह्मैकप्रवण करना ही प्रणाम करना है ।

यह दिग्दर्शनमात्र है । गुरुमुखसे अन्तर्यागका रहस्य समझकर एकान्तमें प्रतिदिन उक्त प्रकारसे चिच्छक्तिकी पूजा करनेवाला साधक साक्षात् शिव ही हो जाता है ।

आत्मशक्तिके चतुर्विध रूप

भक्तोंके उपासना-सौकर्यके लिये आत्मशक्ति 'श्रीविद्या' के स्थूल, सूक्ष्म और पर—ये तीन स्वरूप प्रकट हैं । उनमें पहला अर्थात् स्थूल रूप कर-चरणादि अवयवोंसे भूषित निरतिशयसौन्दर्यशाली रूप मन्त्र-सिद्धि-प्राप्त साधकोंके नेत्र तथा करके प्रत्यक्षका विषय है । वे नेत्रोंसे उस लोकोत्तराह्लादक तेजोराशिका दर्शन करते हैं, तथा हाथसे चरणस्पर्श करते हैं । दूसरा मन्त्रात्मक रूप पुण्यवान् साधकोंके कर्णेन्द्रिय तथा वागिन्द्रियके प्रत्यक्षका विषय है । जैसे 'ललितासहस्रनाम' में कहा है—

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ।

'वाग्भवकूट-पञ्चदशी-मन्त्रके प्रथम पाँच वर्ण ही जिसका मुखकमल है ।' अर्थात् 'मन्त्रमयी देवता' के सिद्धान्तानुसार मन्त्रवर्णोंमें ही देवताके शरीरावयवोंकी कल्पना करनेसे वह मन्त्रात्मकस्वरूप मन्त्रध्वनिश्रवणरूपमें कर्णेन्द्रियसे तथा मन्त्रोच्चारणरूपमें वागिन्द्रियसे प्रत्यक्ष किया जाता है । और सर्वमन्त्रोंका मूलभूत मातृकासरस्वत्यात्मक रूप भी मन्त्रात्मक रूप कहा जाता है । क्योंकि कहा है—

एतस्यां साधितायां तु सिद्धा स्यान्मातृका यतः ।

तीसरा वासनात्मक रूप महापुण्यवान् साधकोंके केवल मन-इन्द्रियसे ही गृहीत होता है । जैसा कि कहा है—'चैतन्यमात्मनो रूपम् ।' आत्मशक्ति जगदम्बिकाका चैतन्य ही स्वरूप है, आत्मचैतन्यका अनुभव मनसे ही हो सकता है । उत्तम-मध्यमादि अधिकारिभेदानुसार ये तीन रूप ही उत्तममध्यमाधम साधकोंकी उपासनाके योग्य हैं । इनसे अतिरिक्त तुरीयरूप, जो कि वाक्, मन आदि सब इन्द्रियोंसे अतीत है, उसका केवल मुक्त लोग ही अखण्ड अहन्तारूपमें अनुभव करते हैं तथा वह रूप भी अखण्ड है ।

गुरु, मन्त्र तथा देवतामें अभेदभावना; गुरुके साथ अभेदभावनाका रहस्य

आत्मशक्तिरूपिणी देवता श्रीविद्या, उसका मन्त्र और उस मन्त्रके उपदेष्टा सिद्धगुरु इन तीनोंमें अभेददाढर्यभावना करना ही मुख्य उपासनापद्धति है । अभेददाढर्यभावनाकी पूर्णता होना ही परमसिद्धि-लाभ है । गुरुके साथ अभेदभावनाके महत्त्वका कारण यह है कि आदिनाथादि गुरुक्रमसम्प्रदायप्रभावसे जिसने श्रीविद्याके साथ पूर्णाभेददाढर्यभावनाके द्वारा पूर्ण अभेद प्राप्त किया है, ऐसे गुरुके साथ शिष्य यदि अपनी (आत्मशक्तिकी) अभेदभावना करे तो उस शिष्यको भी श्रीविद्याके साथ पूर्ण अभेद तत्क्षण प्राप्त हो जाता है । अतः श्रीविद्याके साथ पूर्ण अभेद प्राप्त करनेके लिये गुरुकृपाके सिवा दूसरा उपाय न होनेसे गुरुके साथ अभेद-भावनाकी नितान्त आवश्यकता है । सुन्दरीतापनीयमें कहा है—जैसे घट, कलश और कुम्भ, ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही मन्त्र, देवता और गुरु, ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके वाचक हैं ।

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः ।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः ॥

'श्रीविद्या' के १२ सम्प्रदाय तथा कामराज-विद्याका महत्त्व

'श्रीविद्या' के १२ उपासक प्रसिद्ध हैं । १–मनु, २–चन्द्र, ३–कुबेर, ४–लोपामुद्रा, ५–मन्मथ (कामदेव), ६–अगस्ति, ७–अग्नि, ८–सूर्य ९–इन्द्र, १०–स्कन्द (कुमार कार्तिकेय) ११–शिव और १२–क्रोधभट्टारक (दुर्वासा मुनि) ।

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः ॥

इनमें प्रत्येकका पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था । चतुर्थ और पञ्चम अर्थात् लोपामुद्रा और मन्मथ–इन दोनोंके सम्प्रदाय वर्तमानमें प्रचलित हैं । उनमें भी अधिकतर मन्मथ-सम्प्रदाय अर्थात् कामराजविद्याका ही सर्वतोमुख प्रचार है । त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्डमें वर्णित कथाओंके अनुसार कामदेवने अपनी निर्व्याज आराधनासे श्रीमाताको प्रसन्नकर उससे अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये, और स्वोपासित कामराजविद्याके उपासकोंके लिये भी बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त करा दीं । तबसे ही कामराजविद्याका विशेष प्रचार होने लगा ।

कामराजविद्याका स्वरूप

कामराजविद्या ककारादि-पञ्चदशवर्णात्मक है । इसीको कादिविद्या भी कहते हैं । तन्त्रराजमें शिवजी देवीसे कहते हैं—'हे देवी पार्वती ! कादिविद्या तुम्हारा स्वरूप ही है और उससे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।' कादिविद्याका उद्धार आथर्वण त्रिपुरोपनिषद्में इस प्रकार है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
गुहा ह सा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्येषा विश्वमातादिविद्या ॥

लोपामुद्रा ही हादिविद्या है । यह भी पञ्चदशवर्णात्मिका ही है । कामेश्वराङ्कस्थित कामेश्वरीके पूजामन्त्रोंमें कादि, हादि दोनों विद्याओंसे युक्त नाममन्त्रकी योजना सत्-सम्प्रदायोंमें प्रचलित है । अवशिष्ट मनुचन्द्रादि दश विद्याएँ केवल आम्नायपाठमें ही उल्लिखित हैं । प्रचलित उपासना-पद्धतियोंमें उनका विशेष उपयोग नहीं है ।

श्रीविद्या ही त्रिपुरा है

श्रीकामराज-विद्याकी अधिष्ठात्री 'श्रीविद्या' का ही नामान्तर त्रिपुरा है । त्रि—त्रिमूर्तियोंसे पुरा—पुरातन होनेसे त्रिपुरा, अर्थात् गुणत्रयातीता त्रिगुणनियन्त्री शक्ति। गौड़पादीय सूत्रमें भी कहा है—'तत्त्वत्रयेण भिदा' । त्रिपुरार्णवमें 'त्रिपुरा' शब्दकी प्रकारान्तरसे निरुक्ति की है–तीन नाडियाँ–इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा ही त्रिपुरा है । वह मन, बुद्धि और चित्तरूपी तीन पुरोंमें निवास करनेवाली शक्ति है, अतः त्रिपुरा कही जाती है ।

ग्रन्थान्तरमें और भी प्रकारान्तरोंसे 'त्रिपुरा' शब्दकी निरुक्ति कही है—त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की जननी होनेसे, त्रयी (ऋक्, यजुः, साम)-मयी होनेसे महाप्रलयमें त्रिलोकीको अपनेमें लीन करनेसे जगदम्बा 'श्रीविद्या' का 'त्रिपुरा' यह नाम प्रसिद्ध हुआ ।

सङ्केतपद्धतिमें तथा वामकेश्वर-तन्त्रमें त्रिपुराका स्वरूप इस प्रकार कहा है—ब्रह्मा, विष्णु, ईशरूपिणी 'श्रीविद्या' के ही ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति—ये तीन स्वरूप हैं । इच्छाशक्ति उसका शिरोभाग है, ज्ञान-शक्ति मध्यभाग तथा क्रियाशक्ति अधोभाग है । एवं-प्रकारक शक्तित्रयात्मक उसका रूप होनेसे ही वह 'त्रिपुरा' कही जाती है ।

त्रिपुराम्बा आत्मशक्ति है

आत्मशक्ति ही श्रीत्रिपुराम्बा है, यह बात पहले कही गयी है । हारितायनसंहितामें श्रीदत्तात्रेय गुरुने परशुरामजी-से त्रिपुराम्बास्वरूपका निरूपण करते हुए कहा है—हे राम ! उस परा-शक्तिके माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है ? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, लोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अभीतक उस शक्तिका न स्वरूप जानते हैं, न स्थान ही जानते हैं । वस्तुतः 'वह शक्ति ऐसी है' ऐसे कोई भी यथार्थतः वर्णन नहीं कर सकता । वेद-शास्त्र-तन्त्र भी उसके वर्णनमें असमर्थ हैं । प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेयमात्रका ही ग्रहण करते हैं, उस शक्तिके स्वरूपतक तो उनकी पहुँच ही नहीं है । जैसे अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित अङ्गारसमष्टियोंमें

आविर्भूत होकर जब शान्त होती है तब वह कहाँ गयी, अथवा किसमें अन्तर्भूत है—यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्तमातृमण्डलशक्तिसङ्घट्टरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्रीका क्या स्वरूप है, यह कैसे आविर्भूत होती है और किसमें अन्तर्भूत होती है, यह ज्ञात नहीं होता। न तो वह तर्कसे, न युक्तिसे ही ज्ञात होती है। 'अहमस्मि' (मैं हूँ) इस प्रतीतिके सिवा उसकी उपलब्धिका दूसरा प्रमाण नहीं है। 'मैं हूँ' यह प्रतीति होना ही आत्मशक्तिका भान है। अन्तर्, बहिः, सर्वदा, सर्वत्र—इस प्रकारसे आत्मशक्तिके प्रत्यक्षका अनुभव करनेवाला साधक गङ्गागर्भमें निमग्न गजके समान सर्वशीतलभावको प्राप्त हो जाता है।

'श्रीविद्या' ही चिच्छक्ति है

वही आत्मशक्तिरूपिणी 'श्रीविद्या' जब लीलासे शरीर धारण करती है, तब वेद-शास्त्र उसका निरूपण करने लगते हैं। अखिल प्रमाणोंकी प्रमात्री वही शक्ति चिच्छक्ति नामसे व्यवहृत होती है। उसके लीलाविग्रहोंका माहात्म्य भी अनन्त है।

श्रीविद्याके ध्यानकी इतर देवताओंके ध्यानसे विशेषता

प्रायः सभी देवताओंके ध्यानोंमें वराभयमुद्राएँ रहती हैं, जिनसे वे अपने भक्तोंको वर तथा अभय-दान देनेकी घोषणाएँ करती हैं। भक्त भी प्रायः ऐसे ही देवता खोजते हैं जिनसे उनको अभीष्ट वर प्राप्त हो तथा उनका भय निवृत्त हो। श्रीविद्या तो ब्रह्ममयी है; सारे जगत्‌के कल्याणके लिये आविर्भूत है। उसको वराभय-प्रदानका नाटक करनेकी क्या आवश्यकता है ?

श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यजीने अपने सौन्दर्यलहरी-स्तोत्रमें यही बात कही है—

> त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
> स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
> भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
> शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥

हे शरणागतरक्षिके ! माँ !! तुमसे अन्य प्रायः सभी देवतागण अपने करोंसे वर तथा अभयदान देनेवाले हैं। एक तुम ही ऐसी हो जिसने वर तथा अभयदानका अभिनय नहीं किया है। तब क्या तुम्हारे भक्तोंको वर तथा अभय नहीं मिलता ? नहीं, सो बात नहीं है। हे शरण्ये ! माँ !! भक्त लोगोंका भयसे रक्षण करनेके लिये तथा उनको अभीष्ट वरदान देनेके लिये तुम्हारे चरण ही समर्थ हैं। जब चरणके द्वारा ही वराभयदान हो सकता है तब हाथमें वराभयमुद्रा धारण करना निरर्थक है। अर्थात्—इतर देवताएँ जो वस्तु हाथसे देती हैं, तुम वही वस्तु पैरसे देती हो; क्योंकि तुम राजराजेश्वरी ब्रह्ममयी हो।

श्रीविद्याके लीलाविग्रह

श्रीविद्याके लीलाविग्रह तो अनन्त हैं। त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्डपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें मुख्य विग्रहोंका परिगणन इस प्रकार है—

(१) कुमारी—इन्द्रादि देवोंके गर्व-परिहारके लिये श्रीमाता कुमारीरूपसे प्रकट हुई थीं।

(२) त्रिरूपा—कारणपुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिवको उनके अधिकृत सृष्टिस्थितिसंहारात्मक कार्योंमें सहायता करनेके लिये श्रीमाताने वाणी, रमा तथा रुद्राणी शक्तियोंको अपने शरीरसे उत्पन्नकर उन तीनोंसे उनका विवाह करा दिया।

(३) गौरी, (४) रमा—मर्त्यलोकमें मानवोंद्वारा यज्ञ-यागादि कर्मोंके न होनेसे इन्द्रादि देव चिन्तित हुए। ब्रह्मदेवके आदेशानुसार उन लोगोंने श्रीमहालक्ष्मीकी आराधना की। श्रीमहालक्ष्मीने अपने पुत्र कामदेवको देवकार्यमें सहायता करनेके लिये भेजा। कामदेवसे और भूलोकाधिपति राजा वीरव्रतके सैनिकोंसे घोर युद्ध हुआ। कामदेवने सबको भगाया। राजा वीरव्रतने इस आपत्तिके शमनार्थ शङ्करजीकी आराधना की। शङ्करजीसे विजयप्राप्तिका वरदान पाकर राजाने कामदेवसे युद्ध करते हुए शङ्कर-प्रेषित त्रिशूलात्मक बाण कामदेवपर चलाकर उसको मार डाला। लक्ष्मीके दूतोंने कामदेवका निश्चेष्ट शरीर लक्ष्मीके पास पहुँचाया। लक्ष्मीने श्रीत्रिपुराम्बा-प्रसादसे अमृतद्वारा उसको पुनरुजीवित किया। शङ्करके प्रभावसे अपना पराजय तथा मृत्यु होनेका वृत्तान्त सुनकर उसी क्षणसे कामदेवके मनमें शङ्करजीके प्रति घोर द्वेषग्रन्थि पड़ गयी। त्रिपुराम्बाकी आराधनासे बल सञ्चयकर शङ्करको हरानेकी कामदेवने अपने मनमें प्रतिज्ञा की। इतनेहीमें श्रीमहालक्ष्मीने

त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना की। तदनुसार त्रिपुराम्बाद्वारा प्रेषिता गौरी वहाँपर प्रकट हुई। श्रीमहालक्ष्मीने कामदेवके पराजय तथा प्रतिज्ञा आदिका वृत्तान्त गौरीको सुनाकर उपाय पूछा। गौरीने लक्ष्मी तथा कामदेव दोनोंको समझाया कि शङ्कर-जी सर्वश्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्धा करना योग्य नहीं है; उनकी ही आराधना कर अपना अभीष्ट प्राप्त करना उचित है। गौरीकी उक्ति सुनकर कामदेव रुष्ट हुआ और शङ्करजीको जीतनेका अपना अभिप्राय उसने प्रकट किया। यह सुनकर गौरीने क्रुद्ध होकर 'तुम शिवजीके द्वारा दग्ध होगे' ऐसा कामदेवको शाप दिया। अपने प्रिय पुत्रको गौरीने शाप दिया यह सुनकर महालक्ष्मीने गौरीको शाप दिया कि 'तुम भी पतिनिन्दा सुनकर दग्ध होगी।' यह सुनकर गौरीने भी लक्ष्मीको शाप दिया कि 'तुम पतिविरहका दुःख तथा सपत्नियोंसे क्लेश प्राप्त करोगी।' अनन्तर लक्ष्मी और गौरीमें युद्ध आरम्भ हुआ। परस्परके प्रहारसे दोनों मूर्च्छित होने लगीं। ब्रह्मा और सरस्वतीकी मध्यस्थतासे किसी तरह युद्ध शान्त हुआ। शिवजीको जीतनेकी अभिलाषासे कामदेवने अपनी माता महालक्ष्मीसे त्रिपुराम्बाके सौभाग्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रका उपदेश प्राप्त किया। मन्दराचलकी गुहामें बैठकर उसने आराधना आरम्भ की। कुछ दिन बाद त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर स्वप्नमें कामदेवको अत्यन्त गुप्त पञ्चदशी-विद्याका उपदेश दिया। दिव्य-वर्षत्रयतक कामदेवने एकाग्रभावसे श्रीमाताकी आराधना की। भगवतीने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। 'हे काम! आजसे तुम अजेय हुए' ऐसा कहकर श्रीमाताने अपने धनुःशरोंसे धनुःशर उत्पन्न कर कामदेवको दिये।

दक्षयज्ञमें पतिनिन्दा श्रवणकर भस्मीभूत गौरी नभो-रूपमें स्थित रही। हिमाचलकी आराधनासे प्रसन्न होकर गौरीरूपमें उसकी कन्या हुई।

तारकासुरवधमें शिवपुत्रको सेनापति बनाना आवश्यक समझकर इन्द्रने शिवतपोभङ्ग करनेके लिये कामको आज्ञा दी। गौरीके समक्ष ही शिवजीने अपने तृतीय नेत्रसे कामका दाह किया।

(५) भारती—ब्रह्मदेवजीकी सभामें देवर्षिद्वारा सावित्रीकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेवजीने उसका उपहास किया। सावित्रीने इससे अपना अपमान समझकर ब्रह्मदेवको खूब फटकार सुनायी। तब ब्रह्माजी बिगड़कर बोले—'पतिका अपमान करनेवाली तुम पत्नीत्वके अयोग्य हो, आजसे यज्ञोंमें मेरे साथ न बैठ सकोगी।' सावित्रीने भी बिगड़कर कहा कि 'यदि मैं तुम्हारी पत्नी होनेयोग्य नहीं हूँ तो शूद्रकन्या तुम्हारी पत्नी होगी।' इस प्रकार दोनोंके क्रोधसे जगत्में व्याकुलता देखकर हरि और हरने दोनोंको आश्वस्त किया और 'देहान्तरमें सावित्री ही शूद्रकन्या होगी' ऐसा कहा। फिर भी ब्रह्मा और सावित्री पूर्णतः शान्त नहीं हुए थे, ब्रह्माने सावित्रीको शूद्रकन्या-जन्ममें पूर्व-वृत्तान्तके स्मरण न रहनेका शाप दिया; सावित्रीने निन्द्य स्त्रीमें ब्रह्माको कामुक होनेका शाप दिया।

एकदा ब्रह्माजीने यज्ञ करनेका विचार किया। सावित्रीको बुलाया, किन्तु वह न आयी। मुहूर्त-अतिक्रमण होनेके भयसे विष्णुने भूतलसे एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्माका विवाह कराया और यथाविधि यज्ञ भी समाप्त हुआ। सावित्री अत्यन्त क्रुद्ध हुई, उसके क्रोधसे त्रैलोक्य दग्ध होने लगा। तब पार्वतीकी प्रार्थनाके अनुसार त्रिपुराम्बा-ने आविर्भूत होकर सावित्रीको शान्त किया।

(६) काली—आदिदैत्य मधु और कैटभके कुलोंमें उत्पन्न शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या कर ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त किया। तीनों लोकों-पर उन्होंने आक्रमण किया। सारे देवता निर्वासित किये गये। ब्रह्मा, विष्णु, शिवसहित इन्द्रादि देवोंने जाह्नवी-तीरपर 'नमो देव्यै' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बाकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीरूप धारण किया और शुम्भ-निशुम्भ-द्वारा प्रेषित चण्ड-मुण्ड नामक दैत्योंका वध किया।

(७) चण्डिका, (८) कात्यायनी—छः, सात, आठ—इन तीनों अवतारोंकी कथाएँ सप्तशतीस्तोत्रमें प्रसिद्ध तथा सर्वविदित हैं, अतः यहाँपर विशेष उल्लेख नहीं किया है।

(९) दुर्गा—महिषासुरको मारनेके लिये महालक्ष्मी—दुर्गा-रूपमें श्रीमाताने अवतार ग्रहण किया। यह कथा सप्तशतीके मध्यम चरित्रमें प्रसिद्ध है।

(१०) ललिता—पूर्वकालमें भण्ड नामके असुरने श्री-शिवजीकी आराधना की और उनसे अभयरूप वर प्राप्तकर त्रिलोकाधिपत्य करते हुए देवताओंके हविर्भागका भी स्वयमेव भोग करना आरम्भ किया। इन्द्राणी उसके

डरसे गौरीके निकट आश्रयार्थ गयी। इधर भण्डने विशुक्रको पृथिवीका और विषङ्गको पातालका आधिपत्य दिया। स्वयं इन्द्रासनपर आरूढ़ होकर इन्द्रादि देवताओंको अपनी पालकी ढोनेपर नियुक्त किया। शुक्राचार्यजीने दयावश होकर इन्द्रादिकोंको इस दुर्गतिसे मुक्त किया। असुरोंकी मूल राजधानी शोणितपुरको ही मयासुरके द्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवाकर उसका नया नाम शून्यकपुर रखकर वहींपर भण्ड दैत्य राज्य करने लगा। स्वर्गको उसने नष्ट कर डाला। दिक्पालोंके स्थानमें अपने बनाये हुए दैत्योंको ही उसने बैठाया। इस प्रकार एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंपर उसने आक्रमण किया और उनको अपने अधिकारमें कर लिया। अनन्तर भण्ड दैत्यने फिर घोर तपस्या कर शिवजीसे अमरत्वका वरदान पाया। इन्द्राणीने गौरीका आश्रय पाया है, यह सुनकर वह कैलास गया और गणेशजीकी भर्त्सनाकर उनसे इन्द्राणीको अपने लिये माँगने लगा। गणेशजी बिगड़कर प्रमथादि गणोंको साथ लेते हुए उससे युद्ध करने लगे। पुत्रको युद्धप्रवृत्त देखकर उसकी सहायता करनेके लिये गौरी अपनी कोटि-कोटि शक्तियोंके साथ युद्धस्थलमें आकर दैत्योंसे युद्ध करने लगीं। इधर गणेशजीकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होते ही भण्डासुरने उनको अङ्कुशाघातसे गिराया। गौरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हुई और हुङ्कारसे भण्डको बाँधकर ज्यों ही मारनेके लिये उद्यत हुई त्यों ही ब्रह्माजीने गौरीको शङ्करजीके दिये हुए अमरत्व-वर-प्रदानका स्मरण दिलाया। लाचार होकर गौरीने उसको छोड़ दिया।

इस प्रकार भण्ड दैत्यसे त्रस्त होकर इन्द्रादि देवोंने गुरुकी आज्ञानुसार हिमाचलमें त्रिपुरादेवीके उद्देश्यसे तान्त्रिक महायाग करना आरम्भ किया। अन्तिम दिन याग समाप्तकर जब देव लोग श्रीमाताकी स्तुति कर रहे थे, इतनेहीमें ज्वालाके बीचसे महाशब्दपूर्वक अत्यन्त तेजस्विनी त्रिपुराम्बा प्रादुर्भूत हुई। उस महाशब्दको सुनकर तथा उस लोकोत्तर प्रकाश-पुञ्जको देखकर गुरु बृहस्पतिके सिवा सब देव लोग बधिर तथा अन्ध होते हुए मूर्च्छित हो गये। गुरु तथा ब्रह्माने हर्षगद्गद स्वरसे श्रीमाताकी स्तुति की। श्रीमाताने प्रसन्न होकर उनका अभीष्ट पूछा। उन्होंने भी भण्डासुरकी कथा सुनाकर उसके नाशकी प्रार्थना की। माताने भी उसको मारना स्वीकार किया और मूर्च्छित इन्द्रादि देवोंको अपनी अमृतमय कृपा-दृष्टिसे चैतन्य करते हुए अपने दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उनको विशेषरूपसे तपस्या करनेकी आवश्यकता बतलायी। देव लोग भी माताकी आज्ञानुसार तपस्या करने लगे। इधर भण्डासुरने देवोंपर धावा बोल दिया। कोटि-कोटि सैनिकोंके साथ आते हुए भण्ड दैत्यको देखकर देवोंने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना करते हुए अपने शरीर अग्नि-कुण्डमें डाल दिये। त्रिपुराम्बाकी आज्ञानुसार ज्वालामालिनी शक्तिने देवगणोंके आसमन्तात् ज्वालामण्डल प्रकट किया। देवोंको ज्वालामें भस्मीभूत समझकर भण्ड दैत्य सैन्यके साथ वापस चला गया। दैत्यके जानेके बाद देव लोग अपने अवशिष्टाङ्गोंकी पूर्णाहुति करनेके लिये ज्यों ही उद्यत हुए त्यों ही ज्वालाके मध्यसे तडित्पुञ्जनिभा त्रिपुराम्बा आविर्भूत हुईं। देव लोगोंने जयघोषपूर्वक पूजनादिद्वारा उनको सन्तुष्ट किया। देवोंको अपना दर्शन सुलभ हो इसलिये श्रीमाताने विश्वकर्माके द्वारा सुमेरुशृङ्गपर निर्मित श्रीनगरमें सर्वदा निवास करना स्वीकार किया। उसके बाद श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीचक्रात्मक रथपर आरूढ़ होकर भण्ड दैत्यको मारनेके लिये प्रस्थान किया। महाभयानक युद्ध हुआ। श्रीमाताके कुमार श्रीमहागणपति तथा कुमारी बालाम्बाने भी युद्धमें बहुत पराक्रम दिखाया। श्रीमाताकी मुख्य दो शक्तियाँ १-मन्त्रिणी—राजमातङ्गीश्वरी, २-दण्डिनी—वाराही और इतर अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमके द्वारा दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी। अन्तमें बड़ी मुश्किलसे जब श्रीमाताने महाकामेश्वरास्त्र चलाया, तब सपरिवार भण्ड दैत्य मारा गया। देवोंका भय दूर हुआ।

यह कथाका संक्षेप है। विशेष जिज्ञासुओंको त्रिपुरा-रहस्य-माहात्म्यखण्ड देखना चाहिये।

'श्रीविद्या' के विषयमें अभी बहुत वक्तव्य अवशिष्ट है, परन्तु लेख-विस्तारके भयसे यहीं विराम करता हूँ।

श्रीमाता ललिताम्बा प्रीयताम्

शक्ति-तत्त्व

(लेखक—डा० श्रीभगवानदासजी, एम०ए०, डी०लिट्०)

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

(सप्तशती)

दर्शन-शब्दका अर्थ आँख भी है, देखना भी है, वेदान्त-प्रधान षड्दर्शन भी है। इन छः दर्शनोंका नाम दर्शन प्रायः इसी हेतुसे पड़ा होगा कि ये संसारके स्वरूपको, तत्त्वको, छः स्थानसे, छः दृष्टिसे, छः प्रकारसे देखते हैं, 'प्रस्थानभेदाद्दर्शनभेदः'; और इनके बलसे, विशेषकर वेदान्तके, अध्यात्मशास्त्रके बलसे, अन्य सब शास्त्रोंके हृदयको, मर्मको, जान लेना—पहचान लेना सम्भव हो जाता है, मानो मनुष्यको नयी आँख हो जाती है, जिससे वह सब शास्त्रों, सम्प्रदायों, मार्गों, पन्थों, धर्मोंके सारको, सत्य अंशको, तात्त्विक अंशको देखने लग जाता है।

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा ।

(सप्तशती)

इस दृष्टिसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि द्वन्द्वमय संसारके, जीवनके जैसे दो ही कारण कहिये, रूप कहिये, वैसे दो ही उपासनाके प्रकार हैं—एकरस, एकरूप, सदा केवली परमात्माकी उपासना; और अनन्तरसवती, अनन्तरूपिणी, सततपरिणामिनी मायाकी उपासना।

शक्तिशक्तिमदुत्थं हि शाक्तं शैवमिदं जगत् ।
स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च ॥
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा मायेति कथ्यते ।
पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी ॥

(शिवपुराण)

'शेते सर्वशरीरेषु इति शिवः। या मा, या नास्ति किन्तु प्रतिभासते सा माया। 'या' अविद्या, भोगदा। 'मा' न—इति न—इति सर्वमूर्त्तरूपनिषेधिनी विद्या, मोक्षदा।'

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥

(सप्तशती)

नींदमें सोकर सुस्ताया हुआ मनुष्य जागना चाहता है। जागते-जागते, विविध प्रकारके कर्म करते-करते और भोग भोगते-भोगते थका मनुष्य सोना चाहता है। भोग-मोक्ष, अभ्युदय-निःश्रेयस, काम-निर्वाण, शक्ति-शिव, यही पुरुषार्थका जोड़ा, और उपासनाका जोड़ा, द्वन्द्व है। आत्मज्ञानरूपवाली परा विद्याकी उपासना शिवकी उपासना है। भोगसाधकज्ञानरूपवाली विद्या कहिये, अविद्या कहिये, 'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च' की अपरा विद्याकी उपासना शक्त्युपासना है। बुभुक्षु प्रवृत्त्युन्मुख संसारप्राग्भार व्युत्थानचित्तकी इसमें रुचि होती है। मुमुक्षु निवृत्त्युन्मुख कैवल्यप्राग्भार निरोधचित्तकी दूसरीमें। 'इहैव च निजं राज्यं, अविभ्रंश्यन्यजन्मनि' सुरथराजाने देवीसे माँगा। 'ममेत्यहमिति ज्ञानं संगविच्युतिकारकम्' समाधि वैश्यने! यह कथा दुर्गासप्तशतीमें प्रसिद्ध है।

यह द्वन्द्वता—हाँ भी, नहीं भी; हँसना भी, रोना भी; जागना भी, सोना भी; सटना भी, हटना भी; चाहना भी, डाहना भी; शरीर ओढ़ना भी, छोड़ना भी पुरुषकी प्रकृति है। पुरुषसे भिन्न प्रकृति नहीं। पुरुषकी प्रकृति। परमात्माका स्वभाव। ब्रह्मकी माया। शिवकी शक्ति। ईश्वरभूत जीव और जीवभूत ईश्वरकी इच्छा!

तस्य चेच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् ।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ॥

(दे०भा० ३ । १६)

सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥

(१ । ८ । ४०)

केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे ।
ज्ञानं मायां प्रधानञ्च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥
विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ।
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः ॥

(७ । ३२ । ९-१०)

'इच्छा शक्तिरुमा कुमारी' (शिवसूत्रविमर्शिनी)। इच्छा ही शक्ति है, जब अन्य बलवत्तर इच्छासे व्याहत न हो। जब व्याहत हो जाय तब वही अशक्ति है। पर व्याघातसे क्रोधका रूप धारण करके यह अशक्ति ही, काल पाकर, नयी शक्ति बन जाती है।

पीड्यन्ते दुर्बला यत्र तत्र रुद्रः प्रजायते।
प्रह्लादः सहतां क्लेशान् नृसिंहः केन वार्यते॥

'सुखानुशयी रागः', 'दुःखानुशयी द्वेषः।' ग्रहणेच्छा, आकर्षणेच्छा, उपासनेच्छाका नाम राग या काम। त्यागेच्छा, अपकर्षणेच्छा, अपासनेच्छाका नाम द्वेष या क्रोध। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वियोंके सुन्दोपसुन्दवत् परस्पर संहारसे, परस्पर निषेध-प्रतिषेधसे, न—इति न—इति करके जीवन-तुलाके दोनों सुख-दुःखरूपी पल्लोंके बराबर होते रहनेसे, और सार्विक पारमार्थिक दृष्टिसे सर्वकाल वा कालाभावमें सदा बराबर बने रहनेसे ही ब्रह्म परमात्माकी निष्क्रियता, अपरिणामिता, एकरसता, अखण्डता, निरञ्जनता, निर्विशेषता, शिवकी शिवता, शान्तता, शायिता, सुषुप्तता, तुरीयता सिद्ध होती हैं। इसी रागद्वेषरूपिणी महाशक्ति—इच्छाशक्ति नामक अमूर्त्त आध्यात्मिक तत्त्वके पौराणिक तान्त्रिक साम्प्रदायिक मूर्त्तरूप गौरी-काली, भवानी-भैरवी, अन्नपूर्णा-दुर्गा, उमा-चण्डी आदि हैं। इन्हींके पुरुषाकार शिव-रुद्र, भव-हर, शङ्कर-उग्र, ईशान-भीम आदि हैं। 'जिनकी रही भावना जैसी। प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी॥' अपने अभीष्टके अनुसार, 'मननात्त्रायते इति मन्त्रः, मन्त्रमूर्तिर्देवता' देवताकी मूर्ति भक्त लोग संकल्प कर लेते हैं, और उनसे उनके अभीष्ट सुख और तदनुषक्त दुःख भी मिलते हैं। तैंतीस किंवा अनन्तकोटि मनुष्योंकी तैंतीस क्या अनन्तकोटि इच्छाके अनुसार तैंतीस अपितु अनन्तकोटि देवता। मुहम्मद पैग़म्बरने भी ठीक पहचाना और कहा है कि जितने आदमी हैं उतने ही रास्ते खुदातक पहुँचनेके हैं। सब जीव, सब देह, सब उपासक, सब उपास्य, सब भक्त, सब इष्ट, एक ही परम देवता, सर्वव्यापक, प्रेरक परमात्माकी सङ्कल्पशक्ति, भावनाशक्ति, इच्छाशक्तिसे कल्पित, भावित, प्राणित हो रहे हैं, सभी उसीके रूप हैं।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

यह परमात्माकी 'मा-या' रूपिणी इच्छाशक्ति ही उस मूलपुरुषकी मूलप्रकृति है, पर इसके तीन अङ्ग हैं। हृदयस्थानी तो स्वयं इच्छाशक्ति है, शिरःस्थानी ज्ञानशक्ति है, हस्तपादस्थानी क्रियाशक्ति है।

मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे।
प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम्॥
(दुर्गा तु बुद्ध्यधिष्ठात्री राधा प्राणेश्वरी मता।)
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद्राधेति कीर्त्तिता॥
सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी।
दुर्गसङ्कटहन्त्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि॥
(दे० भा० ९। ५०)

इच्छाको पूरा करनेका उपाय बुद्धि, ज्ञानशक्ति, ज्ञानेन्द्रियव्यापिनी बताती है, और क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति, कर्मेन्द्रियव्यापिनी उस उपायको निष्पन्न करती है। एक ही संवित्शक्ति, चेतनाशक्ति, चित्शक्तिकी तीन कला, तीन मुख, तीन रूप व्यवहारमें, व्यावहारिक दृष्टिसे देख पड़ते हैं। पारमार्थिक दृष्टिसे निष्क्रिय, निश्चल, निःस्पन्द होकर तीनों एकाकार संवित्के आकारमें अव्यक्त ब्रह्म, परमात्मा परमपुरुषमें सदा प्रलीन, निर्वाण हैं।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
(सप्तशती)

उसी परमप्रकृतिकी तीन आदिम विकृतियाँ यह तीन हैं, जिनके न्याय-शास्त्रोक्त आध्यात्मिक नाम ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति हैं। इन्हींके मूर्त्ताकारों, प्रतिमाओंके पौराणिक नाम महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी। तान्त्रिक ऐं, क्लीं, ह्रीं, (श्रीं)। इन्हींके पुरुषाकारोंके पौराणिक नाम विष्णु, महेश, ब्रह्मा। आधिदैविक सांख्ययोगोक्त नाम सत्त्व, तमस्, रजस्। पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम चित्, आनन्द, सत्। जैसे इच्छाके दो प्रतिद्वन्द्वी रूप काम-क्रोध, वैसे ज्ञानके तथ्य-मिथ्या, और क्रियाके 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।'

ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिसृणां व्यष्टीनां महासरस्वतीमहाकालीमहालक्ष्मीरिति प्रवृत्तिनिमित्तवैलक्षण्येन नामरूपान्तराणि।......'सच्चिदानन्दात्मकपरब्रह्मधर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम्।...

महासरस्वति चिते महालक्ष्मि सदात्मिके।
महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्त्वज्ञानसिद्धये।
अनुसंदध्महे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे॥

महालक्ष्मीर्ब्रह्मत्वं महाकाली रुद्रत्वं महासरस्वती विष्णुत्वं प्रपेदे । (सप्तशतीकी गुप्तवती टीका)

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत् ।
तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥
स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरिः स्मृतः ।
रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि ॥
(दे० भा० १२ । ८ । ७२-७३)

यास्य प्रथमा रेखा सा···क्रियाशक्तिः । यास्य द्वितीया रेखा सा···इच्छाशक्तिः···। यास्य तृतीया सा···ज्ञानशक्तिः।
(कालाग्निरुद्रोपनिषत्)

शक्तिः स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा ।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥
अनन्ताः शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादयः ।
(इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्यनियामिका ॥)
ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं कारणं करणं तथा ।
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ॥
यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत् ।
कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात् संकल्परूपिणी ॥
(शिवपुराण, वायुसंहिता, उत्तरखण्ड, अ० ७ अ० ८)

'अनन्ताः शक्तयस्तस्य ।' देवीभागवतमें, सप्तशतीमें, अन्य पुराणों और तन्त्रोंमें, ललितासहस्रनाम प्रभृति स्तोत्रोंमें इनकी सूचना की है, मूर्त्तरूपोंकी भी और अमूर्त्त आध्यात्मिक भावोंके रूपोंमें भी—

सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका ।
द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥
(दे० भा० ३ । ७ । २६)

परमात्माकी इच्छा-शक्तियोंका ही रूपान्तर अनन्त द्रव्यशक्तियाँ हैं, इनको अर्थ-शक्ति भी कहा है ।

ऋषिरेव हि जानाति द्रव्यसंयोगजान् गुणान् ।

यह इच्छा-शक्ति अनन्त पदार्थों, द्रव्यों, देहों, योनियों, भूतग्रामोंके रूपका धारण और मारण करती रहती है ।

मन्वानि शृणवानि पश्यानि जिघ्राणि अभिव्याहराणि···इति आत्मा···मनः श्रोत्रं चक्षुः, घ्राणं वाक्··· अभवन् । (छान्दोग्य०)

'एकोऽहं बहु स्याम्' इस इच्छासे, असंख्य ब्रह्माण्डोंमें-से एक इस पृथ्वी नामक ब्रह्माण्ड, ब्रह्मके गोल अण्ड, भूगोलपर चौरासी लाख स्थावर-जङ्गम चतुर्विध भूतग्राममें राशीकृत द्रव्यात्मक रूप धारण कर लिये । प्रत्येकमें विशेष शक्ति दूसरोंके पोषण या शोषणकी, रञ्जन या द्वेषणकी है । बहिर्मुखवृत्ति पाश्चात्य विज्ञानाचार्य अधिकतर इन्हींका पता लगानेमें और उनसे काम लेनेमें, इन्द्रिय-सुख-वर्धनमें, ज्ञान-शक्ति और क्रियाशक्तिका उपयोग करते हैं । ओषधिजा सिद्धियोंके साधनमें व्यस्त हैं । वहाँ शक्ति-देवीकी पूजा, 'वर्शिप आफ पावर, आफ मैट' (Worship of Power, might) बहुत जोरपर है । पूर्व देशमें, भारतवर्षमें, अपनेको ऋषि-सन्तान मानने-कहनेवाले, पञ्चविध सिद्धियोंकी, 'जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः' चर्चा तो करते हैं; पर उनके साधनमें, पुण्यक्षय और पापोदयसे पापसारभूत, पापकी एकमात्र जननी भेदबुद्धि, स्वार्थबुद्धि, दुर्बुद्धिके कारण, नितराम् अशक्त हो रहे हैं । इसीसे सब ओरसे तिरस्कार पाते हैं । कहते हैं कि हम शिवदेवकी पूजा 'वर्शिप आफ पीस' (Worship of peace), शान्तिकी, प्रशमकी, पूजा करते हैं, पर न सच्ची शिवकी, न, सच्ची शक्तिकी उपासना करते हैं । सच्ची उपासना यदि शक्तिमान् शिवकी की जाय तो उत्तमा शक्ति अलग नहीं रह सकती ।

ख़ुदाको पाया तो क्या न पाया, ख़ुदा मिला तो सभी मिला है ।
ज़रा तू सोचै, मिला जो ख़ालिक़ तो उससे ख़िल्क़त कभी जुदा है ।

रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल ।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम् ॥
(दे० भा० ३ । ६ । १९)

रुद्रहीन, विष्णुहीन कहकर किसीका तिरस्कार नहीं किया जाता, शक्तिहीन—अशक्त, क्लीब—नपुंसक, निकम्मा—किसी कामका नहीं, 'किं तेन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः', ऐसा कहकर अनादर—अवमान किया जाता है ।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।

यह आत्मा, आत्मराज्य, बलहीन—निर्बल—दुर्बलको नहीं मिलता । बल तपस्यासे होता है । तपस्याके बलसे ब्रह्माने सृष्टि रची । तपस्याका अर्थ केवल शारीर सुखका त्याग ही नहीं, अपितु किसी ऊँचे अच्छे परार्थी उद्देश्यसे, दृढ़ सङ्कल्पसे सदा भीतर तपते भी रहना, उसके साधनमें

भी दत्तचित्त रहना। केवल पोथी पढ़ते रहना, अच्छे भी ज्ञानहीका केवल संग्रह करते रहना, यह पर्याप्त नहीं। उसके साथ-साथ तदनुसारिणी सदिच्छा और सत्क्रियाका भी होना आवश्यक है।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

'सर्वभूतहिते रताः' ये शब्द दो बार भगवद्गीतामें आये हैं। 'तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः' यह भी। तथा भागवतमें, वेनको ऋषियोंने जब दण्ड दिया है, उसकी कथामें—

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात् पयो यथा॥

दीन-दुर्बलोंका अनुचित पीड़न, ताड़न देखता हुआ जो ब्राह्मण समदृष्टि और शान्त अपनेको मान और कहकर, असलमें अपना आराम बचानेके लिये, उपेक्षा कर जाता है, उसका पाया हुआ भी ब्रह्मज्ञान, फूटे बर्तनमेंसे पानीके-ऐसा, चू जाता है। विद्यारूपिणी शक्तिके और ऐसी शक्तिवाले शक्तिमान् शिवके सच्चे उपासक वे ही हैं जो मनसा, वचसा, कर्मणा सर्वभूतहिते रत हैं।

त एव मां प्राप्नुवन्ति (ये) सर्वभूतहिते रताः।

क्योंकि 'मैं' तो सर्वभूतसे अलग नहीं हूँ, सबमें बसा हूँ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

ऐसी शङ्का मत हो कि सर्वभूतहिते रत ऋषियोंने वेनका नाश करके उसका हित तो नहीं किया। ऐसा नहीं, उसका सच्चा हित किया। नहीं तो अधिकाधिक पाप करता जाता और घोर-से-घोरतर नरकका भागी होता।

लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्॥

देव-देवियोंके तो अवतार ही इसीलिये होते हैं—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
(सप्तशती)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४। ८)

भगवान् मनुकी भी आज्ञा है—

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति॥
यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य मोक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः॥

अन्यत्र कहा है—

यस्य सम्यग्धृतो दण्डः सम्यग्दण्डधरश्च यः।
तावुभौ कर्मणा तेन पूतौ स्वर्गं गमिष्यतः॥

दण्डरूपिणी शक्तिके सत्प्रयोगका ऐसा फल है।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

तपसे क्रियाशक्तिका सम्पादन, विद्यासे ज्ञानशक्तिका। सर्वलोक-हितकी सदिच्छा-शक्तिसे जब दोनोंका प्रेरण हो तब अपने भी और लोकके भी किल्बिष—पापका नाश हो और स्वयं भी और अनुसारी लोक भी शान्ति-सुख, अभय-सुखरूपी अमृतका पान करें।

तन्त्रशास्त्रके सङ्केतमें 'इ' से शक्तिका बोधन होता है। 'शिव' मेंसे 'इ' हट जाय तो 'शव' रह जाय। इसलिये शङ्कराचार्यने आनन्दलहरीमें कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥

शिव और शक्तिसे बना सारा संसार है। शिव परमात्मा तो एक है। पर 'एकाकी नारमत, स आत्मानं द्वेधाऽपातयत्, पतिश्च पत्नी चाभवत्'—द्वेधा भी, बहुधा भी, असंख्यधा भी, 'एकोऽहं बहु स्याम्।' एक पुरुषकी नाना प्रकृति होते हुए भी एक ही पुरुष सर्वव्यापी होना चाहिये; पर अन्योन्या-

ध्याससे एकके अनेक पुरुष, अनेककी एक प्रकृति भी, देख पड़ते हैं।

आदिम द्वन्द्व, पहला जोड़ा, पुरुष और पुरुषकी प्रकृतिका है। संसारके असंख्य, अगण्य, अनन्त, अन्य सब जोड़े इसीके अनुकरण हैं, फल हैं, कार्य हैं। मुहम्मदने इसको पहचानकर क़ुरानमें कहा है, 'खलक्ना मिन् कुल्ले शयीन् ज़ौजैन्'—अल्ला परमेश्वर कहता है कि मैंने सब चीज़ जोड़ा-जोड़ा पैदा की है।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमे
महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥
(आनन्दलहरी)

शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी॥
मन्ता स एव विश्वात्मा मन्तव्यं तु महेश्वरी।
आकाशः शङ्करो देवः पृथिवी शङ्करप्रिया॥
समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेन्द्रकन्यका।
वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया॥
शब्दजालमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थस्य रूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स देवो महेश्वरः॥
पुँल्लिङ्गमखिलं धत्ते भगवान् पुरशासनः।
स्त्रीलिङ्गं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा॥
येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती साऽपरा मता।
अप्राकृतीं परामन्यां गुह्यां गुह्यविदो विदुः॥
यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
अप्राकृती परा सैषा विभूतिः परमेष्ठिनः॥
(शिवपुराण वा० सं० उ० खं० अ० ५)

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम्।
इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया॥
तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वमेव पुरुषः परः।
त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग् भवान्॥
गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग् भवान्।
त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया।
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः॥
(श्रीमद्भा० ६।१९।११-१३)

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः।
सन्तोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती॥
इच्छा श्रीर्भगवान् कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम्।
आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः॥
× × × ×
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कला त्वियम्।
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः॥
× × × ×
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः।
× × × ×
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया॥
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः।
रती रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च॥
किञ्चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥
(विष्णुपुराण अंश १ अ० ८)

वायुपुराणमें इसी अर्थको दूसरे रूपकमें कहा है। पुरुष-तत्त्वका नाम शिव, स्त्री-तत्त्वका नाम विष्णु, सन्तान-तत्त्वका नाम ब्रह्मा रक्खा है। यथा ईसाधर्ममें 'दि फ़ादर,' 'दि-सन,' 'दि होली गोस्ट'।

विष्णुरभाषत (ब्रह्माणं प्रति)

हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरुषोऽव्ययः।
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः॥
अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।
यः कः स इति दुःखार्त्तैर्मृग्यते योगिभिः शिवः॥
एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः।
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते॥
(पूर्वार्द्ध अ० २४)

शिव उवाच (विष्णुं प्रति)

प्रकाशं चाप्रकाशञ्च जङ्गमं स्थावरञ्च यत्।
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम्॥
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम्।
भवान् ऋतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम्॥

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयमहं जप्यं भवान् जपः ।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ॥
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् ।
भवानर्द्धशरीरं मे त्वहं तव तथैव च ॥
(अ० २५)

विष्णुके मोहिनी अवतारकी कथामें इस भावको चरितार्थ किया है ।

शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः ।

ऐसे ही ब्रह्माका उनसे अभेद है । त्रिमूर्ति—विष्णु-ब्रह्मा-महेशकी, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीकी, सत्त्व-रजस्-तमस्की, ज्ञान-इच्छा-क्रियाकी सदा अभेद्य है । इन सबका समाहार शक्ति-शक्तिमान्में होता है । एवम्—

शक्तिशक्तिमदुत्थं हि शाक्तं शैवमिदं जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमस्ताभ्यां नमो नमः ॥

शक्ति-तत्त्व

(लेखक—'भारत-धर्म-महामण्डल' के एक महात्मा)

देवि प्रपन्नार्तिहरे शिवे त्वं
वाणीमनोबुद्धिभिरप्रमेया ।
बतोऽस्यतो नैव हि कश्चिदीशः
स्तोतुं स्वशब्दैर्भवतीं कदाचित् ॥
त्वं निर्गुणाकारविवर्जितापि
त्वं भावराज्याच्च बहिर्गतापि ।
सर्वेन्द्रियागोचरतां गतापि
त्वेका ह्यखण्डा विभुरद्वयापि ॥
स्वभक्तकल्याणविवर्द्धनाय
धृत्वा स्वरूपं सगुणं हि तेभ्यः ।
निःश्रेयसं यच्छसि भावगम्या
त्रिभावरूपे भवतीं नमामः ॥
त्वं सच्चिदानन्दमये स्वकीये
ब्रह्मस्वरूपे निजविज्ञभक्तान् ।
तथेशरूपे च विधाप्य मात-
रुपासकान् दर्शनमात्मभक्तान् ॥
निष्कामयज्ञावलिनिष्ठसाधकान्
विराट्स्वरूपे च विधाप्य दर्शनम् ।
श्रुतेर्महावाक्यमिदं मनोहरं
करोष्यहो 'तत्त्वमसीति' सार्थकम् ॥

हे देवि ! हे प्रपन्नार्तिहरे !! हे शिवे !!! तुम वाणी, मन और बुद्धिसे अगोचर हो, इस कारण इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो शब्दद्वारा तुम्हारी स्तुति कर सकता हो । तुम आकाररहित, भावातीत, गुणातीत, अखण्ड, अद्वितीय, विभु और सब इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य होनेपर भी अपने भक्तोंके कल्याणके अर्थ ही सगुण रूप धारण करके भावगम्य होकर उनको निःश्रेयस प्रदान करती हो । हे त्रिभाव-रूपिणि ! तुमको प्रणाम है । तुम अपने ज्ञानी भक्तोंको सच्चिदानन्दमय ब्रह्मरूपमें दर्शन देकर, उपासक भक्तोंको ईश्वरीरूपमें दर्शन देकर और निष्काम यज्ञनिष्ठ भक्तोंको विराट्रूपमें दर्शन देकर 'तत्त्वमसि' महावाक्यकी चरितार्थता करती हो ।

शक्तिमान् और शक्तिमें वस्तुतः अभेद है । शक्तिमान् और शक्तिकी पृथक्-पृथक् सत्ता जबतक परोक्षानुभूति अथवा अपरोक्षानुभूतिद्वारा प्रत्यक्ष की जाती है तबतक यह मानना ही पड़ेगा कि शक्तिमान्से शक्तिका प्राधान्य है । एक गायक जिसमें अलौकिक गानशक्तिका विकास है, उसकी अपेक्षा उसकी गायनशक्तिका आदर, उपयोग और महत्त्व अधिक पाया जायगा । वह गायक यदि अपनी गानशक्ति-का प्रयोग करे तो उसका दर्शन न करके भी उसकी मधुर शब्दमयी सृष्टिके विलासमें जगत् मुग्ध होता है; परन्तु जब वह अपनी शक्तिको अपनेमें अव्यक्त रखता हो उस समय उसके स्वरूपको देखकर कोई भी मुग्ध नहीं हो सकता । इसी कारण शक्ति-उपासनाका विस्तार, शक्ति-उपासनाका उपयोग और शक्ति-उपासनाका महत्त्व पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है । वस्तुतः उपासना सगुण ब्रह्मकी होती है । जबतक द्वैत-भान है तभीतक उपासनाका सम्बन्ध रह सकता है, और द्वैत-भान तभीतक रह सकता है जबतक सगुणत्व है । इसी कारण वेदसम्मत यावत् शास्त्रोंमें सगुण-उपासनाका ही अधिक विस्तार है । सगुण-उपासनाके पञ्चभेदोंमेंसे चिद्भाव-

आश्रयकारी विष्णु-उपासना, सद्भाव-आश्रयकारी शिव-उपासना, भगवत्तेज-आश्रयकारी सूर्य-उपासना, भगवद्-भावमयी बुद्धि-आश्रयकारी धीश-उपासना और भगवत्-शक्ति-आश्रयकारी शक्ति-उपासना है। ब्रह्मानन्द-विलास-रूपी सृष्टिदशामें ब्रह्मपदसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले चित्, सत्, तेज, बुद्धि और शक्ति ये ही पाँच हैं। चित्-सत्ता जगत्को दिखाती है, सत्-सत्ता जगत्के अस्तित्वका अनुभव कराती है, तेज जगत्को ब्रह्मकी ओर आकर्षण करता है, बुद्धि सत्-ब्रह्म और असत्-जगत्का भेद बताती है और शक्ति सृष्टि-स्थिति-लय करती हुई जीवको बद्ध भी कराती है तथा मुक्त भी कराती है। इसी कारण इन पाँचोंके अवलम्बनसे सगुण पञ्चोपासनाका विज्ञान निर्णीत हुआ है। उपासक इन्हीं पाँचोंके अवलम्बनसे ब्रह्मसान्निध्य प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर लेता है। पञ्चउपासनाओंकी पाँच गीताएँ इसी कारण अपने-अपने इष्टको जगज्जन्मादि-कारण मानकर ब्रह्मरूपसे निर्देश करती हैं।

अनन्तकोटिब्रह्माण्डमय दृश्यप्रपञ्च ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। ब्रह्मशक्ति ही सृष्टि-स्थिति-लय करती है, वही अविद्या बनकर जीवको बन्धन-जालमें फँसाती है और विद्या बनकर उसको ब्रह्मसाक्षात्कार कराकर मुक्त कर देती है; दूसरी ओर ब्रह्मशक्ति और ब्रह्ममें 'अहं ममेतिवत्' भेद नहीं है। शक्तिमान्से शक्तिकी विशेषता कैसी है सो गायक और गानशक्तिके उदाहरणसे ऊपर कही ही गयी है। उसी ब्रह्मशक्तिके भेद वेद और शास्त्रोंने चार प्रकारके कहे हैं। ब्रह्ममें सर्वदा लीन रहनेवाली तुरीयाशक्ति कहाती है, यही ब्रह्मशक्ति स्वस्वरूपप्रकाशिनी है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी जननी, निर्गुण ब्रह्मको सगुण दिखानेवाली, ब्रह्मआलिङ्गित महाशक्ति कारणशक्ति कहाती है। यही शक्ति कभी विद्या बन जाती है, कभी अविद्या बन जाती है। ब्रह्मशक्तिके सत्त्व-प्रधान और तमःप्रधान पृथक्-पृथक् दो भाव ही इसके कारण हैं। ब्रह्मशक्तिका तीसरा भाव सृष्टि करानेवाली ब्राह्मी शक्ति, स्थिति करानेवाली वैष्णवी शक्ति और लय करानेवाली शैवी शक्ति समझी जाती है; ये ही तीनों सूक्ष्म शक्तियाँ कहाती हैं। चाहे स्थावर-सृष्टि हो, चाहे जङ्गम-सृष्टि हो; चाहे ब्रह्माण्ड-सृष्टि हो, चाहे पिण्ड-सृष्टि हो; सर्वत्र सृष्टि, स्थिति और लयके क्रम एवं अस्तित्वको रखनेवाली ये ही सूक्ष्म ब्रह्मशक्तियाँ हैं। भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव, जो प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक हैं, वे इन्हींकी सहायतासे अपना-अपना कार्य सुसम्पन्न करते हैं और उस महाशक्तिकी चतुर्थ अवस्था स्थूल-शक्ति कहाती है। स्थूल-शक्तिका अनुभव पदार्थविद्याके द्वारा भी होता है। स्थूल जगत्की अवस्थाओंका परिवर्तन, उसका धारण आदि सब कार्य इस शक्तिके द्वारा सुसिद्ध होते रहते हैं। ताडित-शक्ति आदि अनेक इसके भेद हैं। इस कारण भी शक्ति-उपासनाका विस्तार और महत्त्व अधिक है।

समष्टि-व्यष्टिरूपी ब्रह्माण्ड-पिण्डात्मक सृष्टि ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। वह चतुर्दशलोकमय है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भूः, भुवः, स्वः आदि सात ऊर्ध्वलोक और अतल, वितल आदि सात अधोलोक हैं। सात ऊर्ध्वलोकोंमें देवताओंका वास है और सात अधोलोकोंमें असुरोंका वास है। यह मृत्युलोकरूपी भारतवर्ष एक ब्रह्माण्डका $\frac{१}{११७६}$ वाँ अंश है। चौदह लोकोंमेंसे भूलोक एक लोक है। भूलोकके सात द्वीप हैं। उन सात द्वीपोंमेंसे जम्बूद्वीपके बारह विभाग हैं। वे ही नौ वर्ष, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक कहाते हैं। उन बारह भागोंमेंसे एक भारतवर्ष है और वह जम्बू-द्वीपका $\frac{१}{१२}$ वाँ भाग है। इस प्रकारसे १२×७=८४×१४=११७६ भाग होते हैं। इससे प्रतीत होगा कि हमारा यह मृत्युलोक अर्थात् सारी पृथिवी चतुर्दश भुवनोंका एक छोटा-सा अंश है। ऐसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड जगज्जननी ब्रह्मशक्तिके गर्भमें निहित हैं। हमारे इस ब्रह्माण्डमेंसे हमारे इस मृत्युलोककी महिमा कर्मभूमि होनेसे अधिक बतायी गयी है। यहीं जीवोंका मातृगर्भसे जन्म होता है, अन्य लोकोंमें जीव-गणका मातृगर्भसे जन्म नहीं होता। यहींके जीव अपने-अपने कर्मोंके वश होकर मृत्युके अनन्तर आतिवाहिक देहके द्वारा उन-उन लोकोंमें दैवी सहायतासे पहुँचते हैं। पिण्ड तीन श्रेणीका होता है। एक सहजपिण्ड उद्भिज्जादि योनियोंका, मानवपिण्ड मनुष्योंका और दैवपिण्ड देवता, असुर आदिका कहाता है। मृत्युलोकके अतिरिक्त जितने लोक हैं वे सब देवलोक कहाते हैं, उनमें दैवपिण्डधारी देवताओंका ही वास है। सहजपिण्डधारी अथवा मानवपिण्डधारी जीव अपनी इच्छासे दैवपिण्डधारी जीवोंको देख नहीं सकते। यदि देवतागण इच्छा करें तभी वे देख सकते हैं। देवलोक हमारे पार्थिवलोकसे अतीत और सूक्ष्म हैं। सुर जिस प्रकार दैवपिण्डधारी हैं उसी प्रकार असुर भी दैवपिण्डधारी हैं। भेद इतना ही है कि देवताओंमें आत्मोन्मुख-वृत्तिकी प्रधानता है और असुरोंमें इन्द्रियोन्मुख-वृत्तिकी प्रधानता

है। यही कारण है कि सूक्ष्म देवलोकमें देवासुरसंग्राम प्रायः हुआ करता है। परन्तु देवतागण उन्नत अधिकारी होनेसे कदापि असुर-राज्यको छीननेकी इच्छा नहीं करते, अपने ही अधिकारके लोकमें तृप्त रहते हैं। विषयलोलुप होनेके कारण असुरोंकी प्रवृत्ति सदा दैवराज्य छीननेकी ओर बनी रहती है। यही देवासुरसंग्रामका मूल कारण है। मृत्युलोकमें भी मानवपिण्ड देवासुरसंग्रामके लिये दुर्गरूप हैं। उनको असुरगण और देवतागण अपने-अपने ढंगपर अपने-अपने अधिकारमें लानेका प्रयत्न करते रहते हैं। यही मनुष्यपिण्डमें पाप-पुण्यसे सम्बन्धयुक्त कुमति और सुमतिका युद्ध है। देवासुरसंग्राममें जब-जब असुरोंकी जय होने लगती है तब-तब ब्रह्मशक्ति महामायाकी कृपासे ही पुनः असुरोंका पराभव होकर सूक्ष्म दैवराज्यमें शान्ति स्थापित होती है। उसका उदाहरण पिण्डमें भी देखनेयोग्य है। पापमति मनुष्य जब पापपङ्कमें फँस जाता है, तब पुनः उसका उस दलदलसे निकलना कठिन होता है। ऐसे समयमें गुरुबल अथवा दैवबल—ये ही उसके सहायक होते हैं; यह सब उस अखिललोकजननी महाशक्तिकी कृपाका ही रूपान्तर है।

जगत्कारण परमात्मा ब्रह्म जिस प्रकार सत्, चित् और आनन्दरूपसे त्रिभावद्वारा जाने जाते हैं, पुनः पराभक्तिके अधिकारी भावुक भक्तगण जिस प्रकार उनके इन तीनों भावोंके अनुसार ब्रह्म, ईश्वर और विराट्रूपसे अपने हृदय-मन्दिरमें पृथक्-पृथक्-भावसे उनके दर्शन करके आनन्द-सागरमें अवगाहन करते हैं, वैसे ही संसारकी सब वस्तुएँ भी त्रिभावात्मक हैं। कारण, ब्रह्ममें जिस प्रकार तीन भाव हैं, उसी प्रकार कार्यब्रह्म भी त्रिभावात्मक है। इसी कारण वेद और वेदसम्मत शास्त्र भी त्रिविध अर्थमय हुआ करते हैं। इसी सर्वतन्त्रसिद्धान्तस्वरूप प्राकृतिक नियमके अनुसार देवासुरसंग्रामके भी तीन स्वरूप हैं। देवासुरसंग्रामका अध्यात्मस्वरूप प्रत्येक पिण्डमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट-वृत्तिके नित्य युद्धद्वारा प्रकट होता है। उस युद्धका अधिदैव स्वरूप सूक्ष्म दैवराज्यमें देवराज और असुरराजकी सेनाओंके द्वारा प्रकट होता है और उसका अधिभूत-रूप इस मृत्युलोकमें नाना सामाजिक और राजनैतिक युद्धके द्वारा प्रकट होता रहता है।

शक्ति और शक्तिमान्‌का 'अहं ममेतिवत्' अभेदत्व है। उदाहरणसे यह भी दिखाया गया कि सृष्टिमें शक्तिमान्‌से शक्तिका ही आदर और विशेषता होती है। उपासनामें इन्हीं दोनोंके विचारसे भगवत्सान्निध्य प्राप्त करनेकी शैली बाँधी गयी है। किसी-किसी उपासनाप्रणालीमें शक्तिमान्‌को प्रधान रखकर उसकी शक्तिके अवलम्बनसे उपासनाकी साधनप्रणाली निर्णीत हुई है। कहीं-कहीं शक्तिको प्रधान मानकर शक्तिमान्‌का अनुमान करते हुए उपासनाप्रणाली बनायी गयी है। पहली दशाके उदाहरणमें वेद और शास्त्रोक्त निर्गुण तथा सगुण उपासनाके प्रायः सब भेद पाये जाते हैं। दूसरी दशा, जो अपेक्षाकृत आत्मज्ञानरहित है, उसमें केवल अनुमानबुद्धिद्वारा एक ईश्वर है—ऐसा जानकर उनके नाना गुणोंका स्मरण करके विभिन्न धर्ममतों और पन्थोंके उपासक उस सर्वजीवहितकारी भगवान्‌की ओर अग्रसर होकर कृत-कृत्य होते हैं। पहली अवस्थामें आत्मज्ञान रहनेसे भगवत्-स्वरूपका विकास यथावत् भागवतके मनोमन्दिरमें बना रहता है और दूसरी दशामें आत्मज्ञानका विकास न रहनेसे भक्त केवल भगवान्‌की मनोमुग्धकारिणी शक्तियोंके अवलम्बनसे मनबुद्धिसे अगोचर परमात्माको मनोमन्दिरमें बैठानेका प्रयत्न करता है। श्रीभगवान्‌की मातृभावसे उपासना करनेकी अनन्त वैचित्र्यपूर्ण जो शक्ति-उपासनाकी प्रणाली है वह पूर्वोक्त उन दोनोंसे विलक्षण ही है। इस उपासना-विज्ञानमें शक्ति और शक्तिमान्‌के अभेदका लक्ष्य सदा रक्खा गया है। वे ही शक्तिरूपमें उपास्य-उपासकका सम्बन्ध स्थापन करते हैं और वे ही शक्तिमान्‌रूपसे शक्तिभावापन्न भक्तको अपनेमें मिलाकर मुक्त कर देते हैं। यही इस तृतीय तथा अनुपम शैलीका मधुर और गम्भीर रहस्य है।

तन्त्रशास्त्रोंके अनुशीलन करनेसे यह सिद्ध होता है कि पञ्चउपासनामेंसे विष्णूपासना, शिवोपासना, गणपति-उपासना और सूर्योपासना—इन चारोंके उपास्योंके ध्यान पाँच-सातसे अधिक नहीं हैं। इसी तरह अवतारोपासनाके जो भेद हैं वे सब एक ही प्रकारके हैं; परन्तु शक्ति-उपासनाके भेद अनेक हैं। दश महाविद्याओंके भेद, चतुष्षष्टियोगिनीभेद, चतुर्विंशतिप्रकरणके भेद, नवावरण-देवियोंके भेद और जितने पदधारी देवता हैं उन सबकी शक्तियोंके भेद, इस प्रकारसे शक्ति-उपासनाके उपास्योंके अनेक भेद हैं। शक्ति-उपासनाकी दूसरी विलक्षणता यह है कि अन्य चार सगुणोपासना अथवा अवतारोपासनामें केवल एक ही आचारसे पूजा होती है; परन्तु शक्ति-उपासनामें वीराचार, पशुआचार और दिव्याचार—ये तीन आचार

पृथक्-पृथक् तो माने ही गये हैं और इन तीनोंमें भी अन्तर्भावरूपसे कई-कई भेद माने गये हैं। इससे सात्त्विक, राजसिक, तामसिक अधिकारोंके कितने ही अलग-अलग अधिकारी साधक हों, सबकी तृप्ति और उन्नतिका अलग-अलग मार्ग शक्ति-उपासनामें बताया गया है। यह विलक्षणता अन्य उपासनाओंमें नहीं पायी जाती। तीसरी विलक्षणता शक्ति-उपासनाकी यह है कि अन्य उपासक-सम्प्रदायोंमें राग-द्वेषका प्रचार प्रायः देखनेमें आता है। शैव-सम्प्रदाय और वैष्णव-सम्प्रदायमें कहीं-कहीं विरोध देख पड़ता है, इसी प्रकार अवतारोपासनामें भी पक्षपातकी झलक देख पड़ती है; परन्तु शक्ति-उपासनाका दायरा इतना विशाल है और उसके अधिकारभेद इतने यथेष्ट होनेपर भी सबमें इस प्रकारका सामञ्जस्य है कि जिससे उनके आपसमें तो राग-द्वेष हो ही नहीं सकता किन्तु अन्य सम्प्रदायवालोंसे भी उनका राग-द्वेष नहीं होता। इसका कारण यह है कि उपासना-सम्बन्धसे विभिन्न शक्तिमानोंमें शक्तिकी अद्वैत सत्ताका विचार करनेकी प्रणाली इस उपासनाके शास्त्रोंमें बतायी गयी है। शक्ति-उपासनाकी चतुर्थ विलक्षणता यह है कि अन्य उपासनाओंमें ब्रह्मसायुज्य-प्राप्तिके लिये पूर्वापरसम्बन्धका आश्रय लेना पड़ता है, यथा—अवतारोपासनामें अवतारविग्रह, भगवान् विष्णु और तदनन्तर महाविष्णुकी भावना और तदनन्तर निर्गुण स्वस्वरूपकी उपलब्धि। इसी प्रकार विष्णूपासना और शिवोपासनामें भगवान् विष्णु या भगवान् रुद्र, तदनन्तर महाविष्णु या महारुद्र और तदनन्तर स्वस्वरूपका अवलम्बन लेना पड़ता है। परन्तु शक्ति-उपासनामें यदि साधक उपयुक्त हो तो शक्ति-शक्तिमान्के अभेदरूपी स्वस्वरूपका स्वानुभव तुरन्त ही प्राप्त करता है।

सगुण पञ्च उपासनाओंमेंसे शक्ति-उपासनाके विज्ञान-शास्त्रका मौलिक सिद्धान्त यह है कि सच्चिदानन्दमय निर्गुण ब्रह्म और उनकी गुणमयी महाशक्तिमें काल्पनिक भेद है, तत्त्वतः कोई भेद नहीं। जब उनकी शक्ति उनमें अव्यक्ता रहती है तो यही उनका निर्गुणत्व है और जब उनकी शक्ति उनमें व्यक्ता होती है तो वही उनका सगुणत्व है। द्वैत-प्रपञ्चकी अवस्था और सृष्टिकी अवस्थामें उनका स्वस्वरूपका स्वानुभव प्राप्त करानेमें सहायता देनेवाली शक्ति विद्या कहाती है और स्वस्वरूपको भुला देनेवाली शक्ति अविद्या है। वे दोनों ही ब्रह्मशक्तिके पृथक्-पृथक् रूप हैं। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्ममें जो भेद प्रतीत कराती है वह भी ब्रह्मशक्ति महामाया ही है। सुतरां केवल ब्रह्मशक्तिकी महिमाके ही लिये ब्रह्मका सगुण और निर्गुण-रूपका अनुभव होता है। वही ब्रह्मशक्ति चित्सत्ताप्रधाना होकर वैष्णव-सम्प्रदाय, सत्सत्ताप्रधाना होकर शैव-सम्प्रदाय, तेजोमयी होकर सौर-सम्प्रदाय और बुद्धिरूपा होकर गाणपत्य-सम्प्रदायकी पृथक्ता सृजन करती है और अपनी शक्तिके नाना भेदोंसे नाना अवतारोंकी महिमाका जगत्में प्रचार करती है, जैसा कि आद्याशक्तिका विकास कृष्णविग्रहमें, ताराशक्तिका विकास रामविग्रहमें इत्यादि। इसी प्रकार नाना देवता, ऋषि और पितरोंमें अपनी विभिन्न शक्तियोंका विकास करके उनके पृथक्-पृथक् अस्तित्वकी रक्षा करती है। वही त्रिगुणमयी महाशक्ति ब्रह्ममें व्यक्त होकर प्रथम काल और तदनन्तर देशको प्रसव करती है; तदनन्तर त्रिमूर्ति-जननी बनकर भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवको प्रसव करती है। पुनः अपनी त्रिविध शक्तियोंको उन्हें देकर सृष्टि-स्थिति-लय-कार्य कराती रहती है। यही शक्तितत्त्व है।

अम्ब-अनुकम्पा

(लेखक—स्व० पं० श्रीकृष्णशंकरजी तिवारी एम० ए०)

दारै दुख दारिद घनेरे सरनागतके, अंब अनुकंपा उर तेरे उपजत ही।
मंदिरमैं महिमा बिराजै इंदिराकी नित, गाजै झनकार धुनि कंचन-रजत ही॥
गाज-सी परत अनसहन बिपच्छिनपै, मत्त गजराजनकी घंटा गरजत ही।
हारे हिय सारे हथियार डरि डारे देत, हारे देत हिम्मत नगारेके बजत ही॥

शक्ति-तत्त्व-रहस्य

(लेखक—आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)
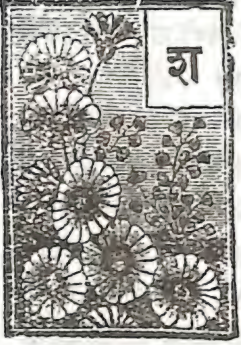
क्तिविषयक आलोचना बड़ी ही रहस्यमयी है। इसके विषयमें मनुष्यों-के कई प्रकारके विचार हैं। कुछ लोगोंका कहना तो यह है कि शक्ति-के अतिरिक्त शक्तिमान् नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। शक्ति-समुदाय ही वस्तुरूपसे प्रतीत होता है। जैसे अग्नि एकवस्तुरूपसे ज्ञात होती है। इसमें प्रकाश, उत्ताप, दाह आदि शक्तिरूपसे अवस्थित हैं; यदि इसमेंसे ये निकाल दिये जायँ तो अग्निका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसके विपरीत दूसरे लोगोंका कहना है कि वस्तुगत धर्म ही शक्तिरूपसे प्रकाशित है, वस्तुसे पृथक् शक्तिकी कोई सत्ता ही नहीं है। जैसे प्रकाश, ताप, दाह आदि अग्निसे पृथक् प्रतीत नहीं होते। अतः शक्ति कोई वस्तु नहीं है, शक्तिमान् ही वस्तु है। यदि विचारकर देखा जाय तो यह दोनों ही मत समीचीन प्रतीत नहीं होते—दोनोंहीमें तत्त्व-ज्ञानकी न्यूनता उपलब्ध होती है। वस्तु तो शक्ति और शक्तिमान् दोनों ही हैं। क्योंकि दोनोंका अस्तित्व पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है, वस्तु और वस्तुकी शक्ति—ये दो शब्द दोनोंके लिये पृथक्-पृथक् व्यवहृत होते हैं।

वस्तु दो प्रकारकी होती है—एक वास्तविक वस्तु, दूसरी अवास्तविक वस्तु। आश्रय-वस्तु ही वास्तविक वस्तु है, आश्रित वस्तु अवास्तविक होती है। आश्रय-वस्तु स्वाधीन होती है, आश्रित वस्तु पराधीन होती है। शास्त्र-सिद्धान्तसे तो भगवत्-शब्द-वाच्य श्रीकृष्ण ही एकमात्र वास्तविक वस्तु हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितसे कहा है—

> सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः।
> तस्यापि भगवान् कृष्णः किमन्यद्वस्तु रूप्यताम्॥

अर्थात् प्राकृत, अप्राकृत समस्त वस्तुओंकी स्थिति श्रीकृष्ण-शक्तिमें है और उसका आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण हैं; अतः इनसे भिन्न अन्य वस्तुका अस्तित्व किस प्रकार निरूपण हो सकता है?

श्रीकृष्णके परत्वनिरूपणकी यहाँ विशेष आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसको तो हम 'कल्याण' के गत विशेषाङ्कों-में स्पष्ट कर आये हैं। यहाँ तो केवल श्रीकृष्ण-शक्तिके सम्बन्ध-में ही कुछ आलोचना करनी है।

श्रीकृष्ण अनन्त शक्तिओंके आकर हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों-में किन-किन शक्तियोंका कहाँ-कहाँ विकास हुआ है, यह निश्चय करना मानवी विद्या-बुद्धिके अतीत है। इस विषयमें शास्त्रोंके आधारपर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनकी एक स्वरूप-भूता पराशक्ति है, उसीसे अनन्त शक्तियों-का विकास है। यथा—

> परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

अर्थात् एक ही पराशक्ति विविध प्रकारसे सुनी जाती है। इस पराशक्तिको चित्-शक्ति, अन्तरङ्गा-शक्ति, आत्म-माया या योगमाया नामसे भी अभिहित किया गया है। 'मीयते अनया इति माया'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार, जिससे हम उसे जान सकें उस 'ज्ञान' का नाम माया है। निघण्टु-कोषमें भी ज्ञानको माया कहा गया है—'माया वयुनं ज्ञानम्।' परमार्थ-विषयमें जिस मायाकी निन्दा की गयी है, वह जडीय माया है—यह आत्ममाया नहीं है। कुछ लोग भ्रमवश 'सम्भवाम्यात्ममायया' इत्यादि वाक्योंमें आये हुए 'आत्म-माया' शब्दका अर्थ भी गुणमयी 'जडमाया' जानकर भगवान्के अवतारोंको सगुण अर्थात् मायिकगुणवान् मान लेते हैं। उन्हें यह नहीं ज्ञात है कि भगवान् कभी मायिक गुणोंसे युक्त नहीं होते—वे तो नित्य कल्याणगुणगणोंसे अलंकृत रहते हैं। जडमाया उनकी बहिरङ्गा शक्ति होकर भी लज्जाके कारण उनके सम्मुख नहीं ठहरती।

> माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना।

अर्थात् माया लज्जावती होकर भगवान्के सामनेसे हट जाती है।

जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार दोनों ही सूर्यकी शक्तियाँ हैं, किन्तु सूर्य अपने प्रकाशसे अन्धकारको विदूरित कर निज स्वरूपमें स्थित रहता है, इसी प्रकार भगवान् भी

चित्-शक्तिद्वारा जडमायाका निराकरण कर स्वात्मामें स्थित रहते हैं। जैसा कहा है—

मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि।

इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के समस्त कार्य चित्-शक्ति अर्थात् आत्ममाया द्वारा ही सम्पन्न होते हैं, जडमायाके द्वारा नहीं होते। जडमायाकी क्रिया केवल जड-जगत्‌के भीतर ही होती रहती है—सो भी चिन्मायाकी अधीनतामें। जडमायाके सम्बन्धमें अधिक कुछ न कहकर यहाँ हम केवल आत्ममायाका ही विवेचन करेंगे। सर्वाश्रय, सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीकृष्ण ही एकमात्र वास्तविक वस्तु हैं। अन्य कोई वस्तु न इनके समान है, न इनसे अधिक है। इनकी एक स्वाभाविकी पराशक्ति है। इस पराशक्तिके तीन विभाव, तीन प्रभाव एवं तीन अनुभाव हैं। चित्-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्ति, ये तीन विभाव हैं। इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति, ये तीन प्रभाव हैं। सन्धिनी-शक्ति, संवित्-शक्ति और आह्लादिनी शक्ति—ये तीन अनुभाव हैं।

विभावसे तात्पर्य यह है कि एक ही पराशक्तिके तीन विशेष भाव अर्थात् परिणाम हैं। किसी वस्तुके अन्य-रूप हो जानेका नाम परिणाम है, जैसे दूध दही हो जाता है। किन्तु यह उदाहरण विकृत परिणामका है। दूधमें जब विकार होता है तब दही बनता है। श्रीकृष्ण-शक्तिमें विकार नहीं होता, वह अन्यरूपमें परिणत होनेपर भी विकृत नहीं होती। यह अविकृत परिणाम दो प्रकारका होता है-एक स्वरूप-परिणाम, दूसरा विरुद्ध परिणाम। जो धर्म वस्तुमें हैं, वही परिणाममें रहें और वस्तुमें किसी प्रकारका विकार न हो, उसे अविकृत स्वरूप-परिणाम कहते हैं। और वस्तु-धर्मके विपरीत परिणाम हो एवं वस्तु अविकृत रहे तो उसे अविकृत विरुद्ध परिणामके नामसे कहा जाता है।

यह विषय इतना जटिल है कि बिना उदाहरणके इसका समझमें आना कुछ कठिन है। अतएव यहाँ एक प्राकृतिक-वैज्ञानिक दृष्टान्त देते हैं। यह बात बड़े लोग ही नहीं किन्तु छोटे बच्चेतक जानते हैं कि एक अंग्रेजीके U अक्षरके आकारका लोहेका टुकड़ा होता है, इसके सामने सुई रखनेसे यह उसे अपनी ओर खींचने लगता है। यह आकर्षण-शक्ति चुम्बकसे इसमें दी जाती है। लोहेमें लोहेको आकर्षण करनेकी शक्ति नहीं होती। एक ही चुम्बकसे अनेक लोहेके टुकड़े आकर्षण-शक्तियुक्त बनाये जानेपर भी चुम्बककी शक्तिमें कोई विकार या ह्रास नहीं होता, वह अपने स्वरूपमें ज्यों-का-त्यों बना रहता है। यही अविकृत स्वरूप-परिणाम है। इसके भी दो रूप हैं—एक पूर्णक्रियावान् परिणाम, दूसरा क्षुद्रक्रियावान् परिणाम। वस्तुके स्वरूपमें यह पूर्णक्रियाके रूपसे रहता है, वस्तुसे अतिरिक्त क्षुद्रक्रियाके रूपमें होता है। विरुद्ध परिणामका दृष्टान्त भी चुम्बकमें ही मिलता है। इसे सम्भवतः अनेक लोग नहीं जानते होंगे। बिजली उत्पन्न करनेका एक यन्त्र होता है, जिसे 'डाइनामो' कहते हैं। इस यन्त्रमें भी चुम्बक होता है, उसीसे बिजली उत्पन्न होती है। चुम्बकमें आकर्षण-शक्ति होती है एवं बिजलीमें विकर्षण-शक्ति होती है। चुम्बक अपनी आकर्षण-शक्तिके विरुद्ध विकर्षण-शक्तियुक्त बिजलीको उत्पन्न करके भी विकृत नहीं होता। इससे कितनी भी बिजली उत्पन्न होती रहे, तो भी यह वैसा ही रहता है जैसा यह होता है। यह अविकृत विरुद्ध परिणाम है।

इन दोनों दृष्टान्तोंसे परिणामका विषय भली प्रकारसे अवगत हो गया होगा। इसी प्रकार श्रीकृष्णकी पराशक्ति के तीन अविकृत परिणाम हैं—एक पूर्णस्वरूप-परिणाम, दूसरा क्षुद्रस्वरूप-परिणाम, तीसरा विरुद्ध परिणाम। श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। इनकी पराशक्ति भी सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी है। इसका पूर्णस्वरूप-परिणाम चित्-शक्ति है, इसीमें सच्चिदानन्दत्व पूर्णरूपसे है। क्षुद्रस्वरूप-परिणाम जीव-शक्ति है, इसमें सच्चिदानन्दत्व स्वल्प परिमाणमें है। विरुद्ध परिणाम मायाशक्ति है। इसमें सच्चिदानन्दत्व विरुद्ध रूपमें है।

चिज्जगत्‌में चित्-शक्ति ही परा है और जीव-शक्ति अपरा है एवं माया-शक्ति अधमा है। श्रीविष्णुपुराणमें इनका निरूपण इस प्रकार है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

अर्थात् भगवान्‌की स्वरूप-शक्ति ही पराशक्ति है, और क्षेत्रज्ञ (जीव) नामकी अपराशक्ति है। इनके अतिरिक्त कर्मनामकी अविद्या—माया तीसरी शक्ति है।

इस जड-जगत्‌में चित्-शक्तिकी क्रिया अव्यक्त है, अतः गीतामें जीवको ही पराशक्ति एवं मायाको

अपराशक्ति कहा गया है, क्योंकि जड-जगत् जीव-शक्ति-द्वारा ही धारण किया गया है।

प्रकर्ष-भावका नाम प्रभाव है। इच्छा, ज्ञान, क्रियाके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इनमेंसे एक-का भी अभाव हो तो सभी कार्य रुक जाते हैं। इसे भी एक उदाहरणसे ही समझिये। जैसे कि एक घड़ी है। इसकी बनावटसे यह बात स्पष्ट है कि इसके बनानेवालेमें इच्छा, ज्ञान, क्रिया—ये तीनों ही विद्यमान हैं। यदि उसकी इच्छा न होती तो घड़ी नहीं बन सकती थी; यदि उसमें घड़ी बनानेका ज्ञान न होता तो भी घड़ी नहीं बनती और यदि वह घड़ी बनानेकी क्रिया न करता तो भी घड़ीका बनना असम्भव था। अतएव किसी कर्तामें इन तीनोंका होना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीभगवान् ही एक-मात्र स्वतन्त्र कर्ता हैं। उनकी पराशक्तिमें यदि ये प्रभाव न हों तो, क्या चिज्जगत्, क्या जैव-जगत्, क्या जड-जगत्का कोई कार्य हो सकता है? पराशक्तिके इन तीन प्रभावोंका वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद्में स्पष्टरूपसे पाया जाता है:—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

अर्थात् इन (भगवान्) की स्वाभाविकी पराशक्ति बल (इच्छा), ज्ञान और क्रियारूपसे विविध प्रभावकी सुनी जाती है।

श्रीभगवान्की चित्-शक्तिमें ये तीनों प्रभाव पूर्णरूपसे, जीव-शक्तिमें अल्परूपसे एवं मायाशक्तिमें विकृतरूपसे प्राप्त होते हैं।

प्रत्येक भावमें रहनेवाले भाव अनुभाव कहाते हैं। श्रीभगवान्के स्वरूपगत तीन भाव हैं—सत्, चित् और आनन्द। सत्में सन्धिनी-शक्तिरूपसे, चित्में संवित्-शक्ति-रूपसे एवं आनन्दमें आह्लादिनी-शक्तिरूपसे—ये तीनों अनुभाव रहते हैं। ये भी तीनों चित्-शक्तिमें पूर्णरूपसे, जीव-शक्तिमें अल्परूपसे एवं माया-शक्तिमें विकृतरूपसे रहते हैं। इन तीनों शक्ति-स्वरूप अनुभावोंका वर्णन विष्णुपुराणमें इस प्रकार है—

ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥

अर्थात् सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी—ये तीनों तुममें हैं, क्योंकि तुम्हीं सबके आश्रय हो। ह्लाद (सुख) और ताप (दुःख) इन दोनोंसे मिली हुई जो माया है, वह तुममें नहीं है, क्योंकि तुम गुणोंसे वर्जित हो।

इसका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णके समस्त कार्य पराशक्तिके इन विभाव, प्रभाव एवं अनुभावके द्वारा ही सम्पन्न होते हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है—

विभावरूपा चित्-शक्तिके प्रभाव अर्थात् इच्छा-ज्ञान-क्रियाके द्वारा चिज्जगत्का उदय हुआ है। जीव-शक्तिके इन प्रभावत्रयके द्वारा जैव-जगत्, एवं माया-शक्तिके प्रभावत्रयसे मायिक जगत् प्रकट हुआ है। इनमें भी प्रत्येकमें तीन-तीन अनुभाव अर्थात् सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी—ये शक्ति-त्रयरूपसे कार्य करते हैं।

चित्-शक्तिके सन्धिनी-रूप अनुभावसे भगवद्धाम, भगवत्तनु आदि समस्त चिन्मय उपकरणोंका उदय हुआ है। भगवन्नाम, रूप, गुण एवं लीला आदि भी इसीके कार्य हैं। चित्-शक्तिके संवित्रूप अनुभावसे समस्त भगवत्-ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य आदिका अनुभव एवं ह्लादिनी-रूप अनुभावसे प्रेमानन्दका आस्वादन होता है।

जीव-शक्तिके सन्धिनीरूप अनुभावसे जीवकी चैतन्यसत्ता, नाम एवं स्थान प्रभृति होते हैं। इसके संवित्रूप अनुभावसे ब्रह्मज्ञान एवं ह्लादिनीरूप अनुभावसे ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। अष्टाङ्गयोगगत समाधि-सुख या कैवल्य-सुख भी इसीसे अनुभूत होता है।

मायाशक्तिके सन्धिनीरूप अनुभावसे समस्त मायिक विश्व-ब्रह्माण्ड एवं बद्ध जीवके देह, इन्द्रिय आदि संघटित हुए हैं। इसीसे बद्ध जीवोंके प्राकृतिक नाम, रूप, गुण, जाति आदि भी हुए हैं। इसके संवित्रूप अनुभावसे बद्ध जीवकी चिन्ता, आशा, कल्पना आदि समस्त विचार उत्पन्न हुए हैं। और इसके ह्लादिनीरूप अनुभावसे भौमिक, स्थूल सुख एवं स्वर्गीय सूक्ष्म सुख प्राप्त होते हैं।

इस सबका सारांश यह है कि एकमात्र श्रीकृष्ण ही पूर्ण शक्तिमान् हैं एवं उनकी पराशक्ति ही महती शक्ति है। इन शक्ति और शक्तिमान्में परस्पर भेद भी है, अभेद भी है और ये दोनों ही एक साथ नित्य एवं सत्य हैं। इनका सामञ्जस्य मानवी चिन्ताके अतीत है, अतः इसे अचिन्त्य-भेदाभेदतत्त्वके नामसे निर्देश किया गया है।

ये अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, ये आत्माराम हैं—अर्थात् अपनी आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं। ये स्वयं ही भोक्ता हैं एवं स्वयं ही भोग्य हैं। जीव जिस प्रकार अपनेसे पृथक् पदार्थोंसे सुख प्राप्त करते हैं, ये उस प्रकार नहीं करते। इनमें चिदंश भोक्ता है एवं आनन्दांश भोग्य है—अर्थात् ज्ञान ही आनन्दका अनुभव करता है। परन्तु कोई भी भोक्ता भोग्य वस्तुसे पृथक् हुए बिना उसे भोग नहीं सकता। इससे जब उन्हें भोग्यके भोगनेकी इच्छा होती है तब वे अद्वितीय होकर भी दो रूप धारण करते हैं। यह विषय उपनिषदोंमें इस प्रकारसे वर्णित है—

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्। सहैतावानास। यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

अर्थात् वह रमण नहीं कर सका, क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता। उसने दूसरेकी इच्छा की। वह ऐसा था, जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए होते हैं। उसने अपने इस रूपके दो भाग किये, जिनसे पति और पत्नी हो गये।

ये एकके दो रूप ही श्रीकृष्ण और श्रीराधिका हैं। इन दोनोंका सम्मिलित रूप श्रीगौराङ्ग हैं। ये युगलरूप और संयुक्तरूप दोनों ही समान हैं। इनमें रूपगत भेद है, तत्त्वगत भेद नहीं है। भक्तकी भावना जिस रूपके दर्शनकी होती है, भगवान् उसी रूपसे दर्शन देते हैं।

भगवान् जब शक्तिसे पृथक् प्रतीत होते हैं, तब उनका वर्ण श्याम होता है और जब शक्तिसे सम्मिलित रहते हैं तब उनका वर्ण गौर होता है, क्योंकि उनका स्वयं वर्ण श्याम है एवं शक्तिका वर्ण गौर है। सम्मिलित रूपमें श्याम वर्ण गौर वर्णसे आवृत हो जाता है। जिन युगोंमें भगवान् अपने युगलरूपोंको प्रकाशित करते हैं, उन युगोंमें उनका रूप श्याम एवं उनकी शक्तिका स्वरूप गौर होता है। जैसे कि श्रीरामका स्वरूप श्याम एवं श्रीसीताजीका स्वरूप गौर, श्रीकृष्णका स्वरूप श्याम एवं श्रीराधिकाजीका स्वरूप गौर होता है। और जिस युगमें भगवान् अपने मिलित रूपको प्रकाशित करते हैं, उस युगमें उनका गौर रूप होता है। इस कलियुगमें श्रीराधा-कृष्ण-मिलिततनु श्रीचैतन्य महाप्रभु गौर रूपसे अवतीर्ण हुए थे। संक्षेपमें यही शक्ति-तत्त्वका रहस्य है।

शक्ति-तत्त्व अनन्त है, उसका सम्पूर्ण वर्णन करनेकी मुझमें शक्ति भी नहीं है। हाँ, इतनी अभिलाषा अवश्य थी कि चित्-शक्ति, जीव-शक्ति एवं माया-शक्तिका कुछ विशद स्वरूप वर्णन किया जाता तो विषय और भी स्पष्ट हो जाता; किन्तु 'कल्याण' में स्थानका सङ्कोच है, लेखक अनेक हैं। अतः मैं यहींपर लेखनीको विश्राम देता हूँ। जिन्हें इन विषयोंके जाननेकी इच्छा हो उन्हें श्रीधामवृन्दावन-भजनाश्रमसे प्रकाशित एवं मेरेद्वारा सम्पादित 'श्रेय' नामक पारमार्थिक पत्रको पढ़ते रहना चाहिये।

समता

संकर सुमन है तो सुमति समान संग, सिव जो सुमन है सुगंध सुखदा-सी तू।
कामतरु कंत है तो कामलतिका 'कुमार', कामरिपु कंज है तो मधुपी पियासी[1] तू॥
तरनी[2] त्रिलोचन मरीचि-रुचिका[3]-सी चंड, चंद्रचूड़ चंद्र है तो चारु चंद्रिका-सी तू।
सुखके समंद-संभु सांति-सरिता-सी सुद्ध, ज्ञान है गिरीश सक्ति! भक्ति-मुक्तिदा-सी तू॥

विषमता

आधे अंग अमित अमोल आछे आभरन, अंबर[4] औ अंगराग अंबर[5] अमापको।
आधे अंग नंग पै मसान-भस्म मुंडमाल छाल दुरगंध देत, आप बैरी बापको[6]॥
सीसपै सिबिर[7] सौति गंगको सदा ही रहै, कहत 'कुमार' कौन कारन मिलापको।
आवत अचंभो अंब! अंतर अनंत तोपै, अद्भुत है अटल अनंत प्रेम आपको॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

---

(१) प्यासी, तृषित। (२) सूर्य। (३) किरणोंकी प्रभा। (४) वस्त्र। (५) एक बहुमूल्य सुगन्धित पदार्थ। (६) स्वयं शंकर दक्षके शत्रु हैं। (७) डेरा।

शक्ति-तत्त्व अथवा श्रीदुर्गा-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा काव्यसांख्यव्याकरणतीर्थ)

श्री दुर्गाजीके सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध है कि वे हिमालयकी पत्नी मेनकाके गर्भसे प्रकटित हुई हैं। वैदिक कोष निघण्टुके अनुसार 'मेना' 'मेनका' शब्दोंका अर्थ 'वाणी' और 'गिरि' 'पर्वत' आदि शब्दोंका अर्थ मेघ होता है।

वे जगन्माता हैं। माताका काम बच्चोंको दूध पिलाना है। वे जगत्को जलरूप दूध पिलाती हैं, इस काममें मेघ पिताके समान उनका सहायक हुआ। अतएव उनका नाम पार्वती और गिरिजा संस्कृत-साहित्यमें प्रसिद्ध है। हिमालयका मानी भी मेघ है, क्योंकि महर्षि यास्कने निरुक्तके छठे अध्यायके अन्तमें हिमका अर्थ जल किया है—

हिमेन उदकेन। (नि० अ० ६)

वे जगत्के प्राणियोंको दूध-जल पिलाती हैं यह बात ऋग्वेदमें दीख पड़ती है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती।

(ऋ० २।३।२२)

मातासे सन्ततिका आविर्भाव होता है। मेनका—वेद-वाणीने उनका ज्ञान लोगोंको कराया। वेदने हमें सिखाया है कि परमात्मा अपनेको स्त्री और पुरुष—दो रूपोंमें रखते हैं जिससे कि प्राणियोंको ईश्वरके मातृत्व-पितृत्व दोनोंका सुख प्राप्त हो।

त्र्यम्बकं यजामहे। (यजुर्वेद)

इसका अर्थ है कि हम दुर्गासहित महादेवकी पूजा करते हैं। सामवेदके षड्विंश-ब्राह्मणने 'त्र्यम्बक' शब्दका उक्त अर्थ बतलाया है। 'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य स त्र्यम्बकः।'

(षड्विंश-ब्राह्मण)

सायणाचार्यने इसके भाष्यमें लिखा है कि 'पृषो-दरादित्वात् स-लोपः', इसीसे 'स्त्री' शब्दका सकार त्र्यम्बक शब्दमें नहीं दीख पड़ता। श्लेषालङ्कारसे इस शब्दका अर्थ त्रिनेत्र भी होता है जिसका तात्पर्य यह होता है कि वे त्रिकालज्ञ हैं—सर्वज्ञ हैं—न कि उनके तीन आँखें हैं।

षड्विंश-ब्राह्मणके अर्थसे यह ज्ञात होता है कि परमात्माके अपने दोनों रूपोंमें भाई-बहनका-सा सम्बन्ध है, क्योंकि वे दोनों पूर्णकाम हैं।

श्रीदुर्गाजी दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गतिको विनष्ट करनेके लिये वीरताकी आवश्यकता है। वीर सिंह-समान शत्रुओंको भी अपने वशमें रखता है। इस बातकी शिक्षाके लिये उनका वाहन सिंह है।

तन्त्र और पुराणोंमें उनके हाथोंमें रहनेवाले अस्त्र-शस्त्रोंका वर्णन है जो वास्तवमें पापियोंको दिये जानेवाले रोग-शोकके द्योतक हैं। उनके हाथका त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक पीड़ाओंको जनाता है।

प्रलयकालमें ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, जीवोंके रुण्ड-मुण्ड इधर-उधर बिखरे रहते हैं। इसलिये परमेश्वर अथवा परमेश्वरीको लोग चिता-निवासी और रुण्ड-मुण्ड-धारी कहते हैं। क्योंकि उस समय उनके अतिरिक्त दूसरेकी सत्ता नहीं रहती।

माताके भयसे पापी राक्षसोंके रक्त-मांस सूख जाते हैं अतएव कवियोंने कल्पना की है कि वे रक्त-मांसका उपयोग करती हैं। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि वे युद्धके समय मद्य पीती थीं। मद्य और मधुसे अभिप्राय अभिमान अथवा उन्मत्तता करनेवाले आचरणका है। ईश्वर दीनबन्धु और अभिमान-द्वेषी हैं—

ईश्वरस्याभिमानद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च।

(नारद-भक्तिसूत्र)

उनमें अभिमानकी मात्रा भी नहीं है, सर्वव्यापक होनेके कारण वे सब दिशाओंमें व्याप्त हैं, जो उनके वस्त्रके समान हैं। इसीसे उनका नाम दिगम्बरा है।

जगज्जननीका शरीर दिव्य है। उसमें पञ्चतत्त्वोंका अथवा विकारोंका संयोग नहीं है। शुद्ध तथा नित्य-शरीर होता है। यह बात महर्षि कपिलजी सांख्य-शास्त्रमें स्वीकार करते हैं—

उष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसाङ्कल्पिकसांसिद्धिकञ्चेति नियमः।' (सांख्यसूत्र)

घिसनेपर जैसे दियासलाईसे आग प्रकटित होती है वैसे ही भक्तोंके कल्याणके लिये दिव्यरूप आविर्भूत होते हैं। केनोपनिषद्‌में चर्चा है कि एक बार देवताओंमें विवाद हुआ कि कौन देव बड़े हैं। जब निर्णय नहीं हो सका तब यक्ष—पूजनीय परमेश्वर उनके मध्यमें चले आये। सबकी शक्ति क्षीण हो गयी, वे उन्हें नहीं पहचान सके। उस समय उमा–दुर्गाने प्रकटित होकर कहा कि यक्ष ब्रह्म हैं। माता ही अपने बच्चोंको पिताका नाम सिखाती है। उमाजीके प्रकट होनेमें बच्चोंकी स्नेहमयी करुणा कारण है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं ता ँ होवाच किमेतद्यक्षमिति।

सा ब्रह्मेति होवाच…। (केनोपनिषद्)

देवताओंको स्वरूप धारणकरनेके लिये बाहरी साधनकी आवश्यकता नहीं होती। महामहिम होनेके कारण केवल आत्माहीसे उनके सब काम हो जाते हैं:—

आत्मैषवः। आत्मायुधम्। आत्मा सर्वं देवस्य।

(दैवतकाण्डनिरुक्त)

परमात्मा निराकार रहकर भी सब काम कर सकते हैं पर वे दिव्य मूर्ति धारण करते हैं कि जिसमें लोग मूर्ति-पूजा कर शीघ्र हमें प्राप्त करें—

अर्चन्त प्रार्चत प्रियमेधासो। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत। (ऋग्वेद)

इस मन्त्रमें 'पुरम्' शब्दका अर्थ शरीर-मूर्ति है। लोग बाल-बच्चोंके साथ मूर्ति-पूजा करें। मन्त्रमें 'अर्चन' क्रिया तीन बार व्यवहृत हुई है। जिससे कि शरीर, मन और वचनसे मूर्ति-पूजा करना उचित है। अन्तमें माता-पिता साम्बशिवसे प्रार्थना है कि संकट-दुःख-रूप पापोंसे सबको बचायें। हम अनन्त प्रणाम करते हैं—

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम। (यजुर्वेद)

साधन-मार्गमें शक्ति-तत्त्व

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण)

शक्ति और शक्तिमान् परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न, अथवा भिन्नाभिन्न—इस विषयमें आस्तिक दर्शनोंका एकमत नहीं है। दूसरी ओर नैयायिक लोग विशेष आग्रहके साथ कहते हैं कि शक्तिका पृथक् पदार्थत्व ही नहीं है, क्योंकि उसके माने बिना भी काम चल जाता है। अतः यदि शक्ति-तत्त्वके विषयमें सम्यक् आलोचना की जाय तो एतद्विषयक विभिन्न दार्शनिकोंके प्रयुक्त प्रमाणों और युक्तियोंकी अवतारणा अत्यन्त आवश्यक हो जायगी। परन्तु मैं वैसा नहीं करना चाहता, क्योंकि वह पाठकोंको उतना रुचिकर न होगा। शक्ति-शक्तिमान्‌के भेदाभेद-विषयपर दार्शनिक पण्डित इतना अधिक विचार कर गये हैं कि उसके सङ्कलनके लिये न तो शक्त्यङ्कमें स्थान ही है और न उससे पाठकोंका ही धैर्य बना रह सकता है। अतः उस ओर न जाकर सनातन-हिन्दू-धर्मावलम्बियोंके द्वारा किसी-न-किसी आकारमें परमात्म-बुद्धिसे उपास्य शक्तिके किसी एक अवान्तर प्रकार या आकारको लेकर कुछ आवश्यक बातोंकी अवतारणा इस निबन्धमें की जाती है।

शक्तिका चाहे जो स्वरूप हो, वह लौकिक प्रत्यक्षका विषय नहीं है। केवल कुछ विशिष्ट कार्योंके द्वारा उसका अनुमान होता है। इस बातको सभी शक्तिवादी दार्शनिक मानते हैं, एक उदाहरणद्वारा यह बात स्पष्टरूपसे समझ-में आ जायगी। दाहरूप कार्यके द्वारा हम अग्निकी दाहिकाशक्तिका अनुमान कर लेते हैं। जब दाह्य-वस्तुका अभाव हो जाता है तो दाहिका शक्तिका पृथक् व्यपदेश नहीं रहता। जब दाहरूप कार्यकी उत्पत्ति होती है तब उसे देखकर ही लोग अग्निको दाहक वा दाहिका-शक्ति-सम्पन्न कहते हैं, नहीं तो उसे केवल अग्नि ही कहते हैं।

श्रुति परब्रह्मको अद्वय, सच्चिदानन्दस्वरूप कहती है। और फिर वही श्रुति कहती है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म।

अर्थात् जिससे प्राणिवर्ग जन्म ग्रहण करते हैं, जिसके द्वारा जन्म ग्रहणके उपरान्त जीते हैं और अन्तमें प्रयाणकालमें जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, वही ब्रह्म है।

शास्त्रवर्णित जन्म, जीवन और संप्रवेश (प्रलय), इन तीन कार्योंके द्वारा सच्चिदानन्द अद्वय परब्रह्ममें जो विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहारकारिणी शक्ति है, उसकी सिद्धि इस शास्त्रवाक्य तथा तन्मूलक अनुमान-प्रमाणके द्वारा होती है। किन्तु जगत्की जन्मस्थितिप्रलयकारिणी त्रिविधशक्ति ब्रह्मकी स्वरूप-शक्ति नहीं है, यह उनकी अपरा अर्थात् बहिरङ्गा-शक्ति है। विष्णुपुराणमें ऐसा ही लिखा है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

विष्णुशक्ति ही पराशक्तिके नामसे निर्दिष्ट होती है। दूसरी शक्तिका नाम क्षेत्रज्ञ या जीव-शक्ति है। इन दोनों शक्तियों-के अतिरिक्त ब्रह्मकी एक और शक्ति है, उस तृतीय शक्तिको शास्त्रकार 'अविद्याकर्म' नामसे पुकारते हैं। अविद्या अर्थात् भ्रान्ति जिसका कर्म है—यही 'अविद्याकर्म' शब्दका अर्थ है।

किस प्रकारके कार्यद्वारा हम इस तृतीया शक्तिके स्वरूपको जान सकते हैं यह बात भी विष्णुपुराणके उपर्युक्त श्लोकके अगले श्लोकमें स्पष्टभावसे कही गयी है।

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यनुसन्ततान्॥

हे नृप! इस तृतीयाशक्तिके द्वारा ही वेष्टित होकर क्षेत्रज्ञ-शक्ति अर्थात् समस्त जीव धारावाहिकरूपसे सदा-सर्वदा सांसारिक तापोंका अनुभव करते हैं।

संसारके सभी जीव अशेष प्रकारसे दुःख-भोग करते हैं, यह बात सर्वसम्मत है। यह परब्रह्मकी जिस शक्तिके प्रभाव-से होता है उसीको अविद्या, बहिरङ्गा-शक्ति कहते हैं। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि जहाँ दुःखभोग-रूपी कार्य है, वहाँ उसके मूलमें कारणरूपा कोई शक्ति अवश्य है। इस संसारमें जो कुछ कार्य है, वह सब जिस कारणसे समुद्भूत हुआ है उसे ही ब्रह्म, परमात्मा अथवा श्रीभगवान् इन तीन शब्दोंके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

अर्थात् 'तत्त्वज्ञ लोग जिसे ज्ञानरूप, अद्वयतत्त्व कहते हैं वही ब्रह्म, परमात्मा और श्रीभगवान् शब्दसे अभिहित होता है।' इससे यही सिद्ध होता है कि जीवोंके दुःखभोग-रूप कार्यके अनुकूल जो शक्ति श्रीभगवान्में विद्यमान है, वही उनकी अपरा-शक्ति या बहिरङ्गा-शक्ति है। इसी प्रकार शक्तिका एक दूसरा नाम भी अध्यात्मशास्त्रोंमें मिलता है, वह है प्रकृति। यही बात श्रीमद्भगवद्गीतामें भी देखने-में आती है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७। ४-५)

हे महाबाहो (अर्जुन)! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन आठ भागोंमें मेरी अपरा-प्रकृति विभक्त है; इस अपरा-प्रकृतिसे सर्वथा विलक्षण मेरी दूसरी प्रकृति भी है। वह जीव या क्षेत्रज्ञ-शक्ति है। इसी जीव या क्षेत्रज्ञ-शक्तिके द्वारा परिदृश्यमान निखिल प्रपञ्चका धारणरूप कार्य सम्पादित होता है। यही क्षेत्रज्ञ या जीव-शक्ति भोक्तृ-प्रपञ्चका मूल तथा पूर्वनिर्दिष्ट-प्रकृति या अपरा-शक्ति—भोग्य-प्रपञ्चका निदान है। परमात्मा स्वयं अद्वय और अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूप होते हुए भी अपने ही अचिन्त्य स्वभावसे अपनी दोनों बहिरङ्गा और तटस्था शक्तियोंकी सहायतासे स्वयं भोक्ता और भोग्य बनकर इस प्रपञ्च-नाट्यकी लीला वा अभिनय करते हैं, यह लीला अतीत अनादि कालसे करते आ रहे हैं और अनन्त भविष्यत् कालमें भी करते रहेंगे। यही सनातन-हिन्दू-धर्मके साधन-मार्गका अवश्य ज्ञेय सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तमें जिसका विश्वास नहीं है, इस जाज्वल्यमान प्रमाणद्वारा सम्यक् व्यवस्थापित यह सिद्धान्त जिसे सम्यक्रूपसे परिज्ञात नहीं है, वह सनातन-हिन्दू-धर्मके साधन-मार्गमें प्रवेश करनेका अधिकारी नहीं है।

इन तटस्था और बहिरङ्गा-शक्तियोंके अतिरिक्त परब्रह्मकी एक और शक्ति है। उसका नाम स्वरूप-शक्ति है, जिसका परिचय हमें विष्णुपुराणमें मिलता है—

ह्लादिनी सन्धिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंश्रये ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥

हे भगवन् ! तुम संसारकी सब वस्तुओंके आश्रय हो, अतः आनन्ददायिनी, सत्तादायिनी और प्रकाश या बोधकारिणी यह तीनों शक्तियाँ तुममें विद्यमान हैं । इन्हीं त्रिविध शक्तियोंका वृत्तिभेदसे भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा प्रतिपादन किया जाता है । किन्तु वस्तुतः यह तुम्हारी स्वरूपशक्ति है । प्राकृत सुख और ताप देनेवाली सत्त्व, रज और तमोगुणमयी जो शक्ति तुम्हारी अपरा या बहिरङ्गा-शक्ति कही जाती है, उसका किसी प्रकारका प्रभाव तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ता । क्योंकि तुम सब प्रकारके प्राकृत गुणोंसे विरहित हो । विष्णुपुराणके इस श्लोकका तात्पर्य अति गम्भीर है, अतः इसका कुछ विस्तृत विवेचन यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा ।

पहले बहिरङ्गा-शक्तिके विषयमें यह कहा गया है कि वह जीवोंके सब प्रकारके क्लेशोंका निदान है, अर्थात् वह बहिरङ्गा-शक्ति परमेश्वरमें विद्यमान रहते हुए भी उनमें दुःख और मोहादिकी उत्पादिका नहीं होती, केवल जीवोंमें ही दुःख और मोहादिके उत्पादनका कारण बनती है । क्योंकि जीव अनादि अज्ञानके कारण आत्मस्वरूपको भूलकर प्राकृत प्रपञ्चके अन्दर किसी-न-किसी वस्तुमें अहंता, ममता-बुद्धिसे सम्पन्न हो जाते हैं, यही सांसारिक जीवोंका स्वभाव है । देह, इन्द्रिय और भोग्य-विषयोंमें जबतक अहंता और ममता-बुद्धि रहती है, तबतक कोई जीव इस ताप अर्थात् दुःख-भोगसे छुटकारा नहीं पा सकता । आत्माराम, अद्वय एवं सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरमें इस प्रकारकी अहंता और ममता-बुद्धिरूपी मोहके न रहनेके कारण, उनमें अपरा या बहिरङ्गा शक्तिके विद्यमान रहते हुए भी उस शक्तिके प्रसूत-कार्योंमें दुःख भोगना या अपनेको दुखी माननेका अनुभव करना उनमें नहीं होता । इसीका नाम मायाका प्रभाव है । परन्तु यह सांसारिक जीवको व्याकुल या विक्षुब्ध कर डालती है, इसी कारण इस शक्तिको बहिरङ्गा-शक्ति कहते हैं । तात्पर्य यह है कि यह शक्ति जिसके आश्रित है, उसके ऊपर इसका कोई कार्य नहीं होता । किन्तु उससे बाहरकी ओर अर्थात् पृथक् स्वरूपमें प्रतीत होनेवाले जीव और जड-जगत्में ही शक्तिका कार्य प्रकाशित होता है, इसी कारण इसका नाम बहिरङ्गा-शक्ति है । इस बहिरङ्गा-शक्ति और उसके लीला-स्थान अज्ञानान्ध जीवोंसे सम्पूर्णतया पृथक् परमात्मामें एक प्रकारकी और शक्ति है, नाना प्रकारके कार्योंद्वारा नाना रूपमें प्रतीत होनेपर भी एक चित्-शक्तिके नामसे ही शास्त्रोंमें उसका वर्णन किया गया है । उसकी कार्यावलिपर ध्यान देनेसे ही इसकी त्रिविधता तथा साथ ही मूलतः एकरूपता समझमें आ सकती है ।

स्वयं सत् अर्थात् एकमात्र परमार्थ-सत्तायुक्त होकर परब्रह्म अपनी जिस स्वरूप-शक्तिद्वारा उत्पत्ति और विनाश-ग्रस्त, सद् वा असद्रूपमें अनिर्वाच्य प्रापञ्चिक वस्तुमात्रको कुछ कालके लिये सत्तायुक्त कर देते हैं उस शक्तिका नाम सन्धिनी-शक्ति है ।

स्वयं स्व-प्रकाश चित्स्वरूप ब्रह्म अपनी जिस शक्तिद्वारा अज्ञान-मोहित जीवोंको ज्ञान या प्रकाशसे सम्पन्न करके स्पर्श, रूप और रसादि भोग्य-पदार्थोंका भोक्ता या ज्ञाता बना देते हैं, उस शक्तिका नाम संवित्-शक्ति है । तात्पर्य यह है कि जो जीवकी विषय-भोग-निर्वाहिका तथा अपने अनन्त अपरिमेय स्वरूपका प्रतिक्षण स्वयं ही साक्षात्कार करानेवाली अनुकूल शक्ति है, उसको परब्रह्मकी संवित्-शक्ति या स्वरूपभूता शक्ति कहते हैं ।

स्वयं अनाद्यनन्त आनन्दस्वरूप परब्रह्म जिस शक्तिके द्वारा अपने आनन्दस्वरूपको जीवोंकी अनुभूतिका विषय बनाकर स्वयं भी आत्मभूत परमानन्दका साक्षात्कार करते हैं, उस स्वरूप-शक्तिका नाम ह्लादिनी-शक्ति है ।

यह अत्याश्चर्यमयी ह्लादिनी-शक्ति ही स्नेह, प्रणय, रति, प्रेम, भाव और महाभावरूपमें भगवदनुगृहीत जीवोंकी शुद्ध सत्त्वमयी निर्मल मनोवृत्तियोंमें प्रतिफलित होकर भक्ति-शब्दवाच्य हो जाती है । यही कलियुगपावनावतार श्रीश्रीचैतन्यदेवके पदाङ्कानुसरणपरायण गौड़ीय वैष्णवाचार्योंका सिद्धान्त है । इस सिद्धान्तका विस्तारपूर्वक विश्लेषण करना इस प्रबन्धका उद्देश्य नहीं है । परन्तु जहाँतक सम्भव होगा संक्षेपमें इसका अनुशीलन करके इस क्षुद्र प्रबन्धका उपसंहार किया जायगा ।

इस संसारमें सभी जीव सुख चाहते हैं । सुख ही सब जीवोंके जीवनका चरम या परम लक्ष्य है । इस सुखका आस्वादन या भोग करनेके लिये जीव-हृदयमें जो आकांक्षा है, वही जीवकी सब प्रकारकी प्रवृत्तिका असाधारण और

प्रधान कारण है। सुख ही आत्माका स्वरूप है, अथवा यों कहना चाहिये कि सब कुछ छोड़कर केवल अपने यथार्थ स्वरूपका ही निरन्तर और निरुपद्रवरूपसे आस्वादन करनेकी ऐकान्तिक इच्छा ही जीवका स्वभाव है। यही इच्छा उसे संसारमें लाती है तथा यही इच्छा उसे संसारसे मुक्तकर उसकी आत्माके आत्मभूत चिदानन्दघन परब्रह्मके स्वरूपमें पुनः विलीन कर देती है और यही उसके नर-जन्म प्राप्त करनेका चरम और परम प्रयोजन है।

देह और इन्द्रियाँ प्राकृत वस्तुओंमें 'मैं और मेरे' के अनादि और दुरपनेय भ्रान्तिके जालमें पड़कर जीव समझता है कि बाहरी उपायोंसे मुझे सुख मिल सकता है और वह सदा बना रह सकता है। परन्तु सुख बाहरकी वस्तु नहीं है, वह तो अपना ही प्रकाशमय स्वरूप है—इस बातको जीव भूल गया है। इसीसे वह संसारमें बद्ध हो रहा है और भ्रान्तिवश मरु-मरीचिकाके जलसे प्यास मिटानेके लिये उन्मत्तके समान इधर-उधर दौड़-धूप करता अविराम जन्म, मृत्यु और जरा आदिके द्वारा पीड़ित हो रहा है; उसे जब आत्मभूत अविनाशी और प्रकाशस्वरूप सुखका पता चलेगा, तभी उसकी सांसारिक गति पलट जायगी और तब वह साधनाके असली मार्गपर चलनेमें समर्थ होगा और फिर पूर्ववत् वह आत्माराम और आत्मकाम हो जायगा।

जीवको संसारमें प्रविष्ट कराकर दुःखभोगके द्वारा संसारकी अनित्यता और असारताको अच्छी तरह समझाकर, उसे सुखमय चिद्घन रसरूप आत्मस्वरूपमें सुप्रतिष्ठित करनेमें प्रधान हेतुरूप उसकी सुखानुभूतिकी जो यह ऐकान्तिक इच्छा है—यह इच्छा श्रीभगवान्‌की पूर्वनिर्दिष्ट ह्लादिनी-शक्तिकी जीवमनोवृत्तिमें अभिव्यक्त एक वृत्तिविशेष है। यही सांसारिक जीवोंमें रति, प्रेम, प्रणय, स्नेह और अनुराग प्रभृति आसक्तिवाचक शब्दोंद्वारा सूचित होती है। पुनः श्रीभगवान्‌की कृपासे यह जब संसार-विमुख होकर आत्मानन्द-मुखी होती है तभी यह भाव, प्रेम और भक्ति प्रभृति शब्दोंका वाच्य होती है। यही श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदायके आचार्योंद्वारा व्याख्यात ह्लादिनी है। इसीके एक वृत्तिविशेष—भक्तिरूप प्रेमकी प्रथमावस्थाके जो भाव हैं, उसीका परिचय देते हुए श्रीरूपगोस्वामी अपने भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक ग्रन्थमें कहते हैं—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक् ।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते ॥

इसका तात्पर्य यही है कि 'शुद्ध सत्त्वविशेष' अर्थात् श्रीभगवान्‌की स्वरूप-शक्ति ह्लादिनीकी प्रधान वृत्ति या परिणतिविशेष—भक्तिकी प्रथमावस्थारूप जो भाव है, वह शुद्धसत्त्वविशेषका ही अन्यतम स्वरूप है। यह भाव प्रेम-भक्तिरूप उदयोन्मुख सूर्यका प्रथम प्रकाशमान आलोक-स्वरूप है। यह भाव उदित होनेपर आनन्दमय श्रीभगवान्‌को साक्षात्कारका विषय बनानेके लिये नाना प्रकारकी सात्त्विक अभिलाषाओंको आविर्भूत कर संसार-तापसे कठिनभावापन्न मानवके अन्तःकरणकी आर्द्रता सम्पादन करता है। यही भावका स्वरूप है। इसीसे तन्त्रशास्त्रमें कहा है—

प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्यभिधीयते ।
सात्त्विकाः स्वल्पमात्राः स्युरत्राश्रुपुलकादयः ॥

प्रेमकी प्रथमावस्थाको ही 'भाव' कहते हैं। यह भाव जब मानव-हृदयमें समुदित या अभिव्यक्त होता है, तब सहज ही अश्रु और रोमाञ्च प्रभृति सात्त्विक भावोंका विकास हो जाता है।

यह प्रेमकी प्रथमावस्थारूप जो भाव है वह आलंकारिकोंद्वारा वर्णित अनुरागरूप मनोवृत्ति नहीं है। यह तो नित्यसिद्ध ह्लादिनीकी वृत्तिविशेष है, अतः वह भी नित्य है। तथापि इसकी अभिव्यञ्जक होनेके कारण मनुष्यकी चित्तवृत्तिविशेष भी लोगोंमें भाव और रति प्रभृति भक्तिकी अवस्थाविशेषके वाचक शब्दोंद्वारा निर्दिष्ट होती है। इसीसे श्रीरूपगोस्वामी भक्तिरसामृतसिन्धुमें कहते हैं—

आविर्भूय मनोवृत्तौ व्रजन्ती तत्स्वरूपताम् ।
स्वयं प्रकाशमानापि भासमाना प्रकाश्यवत् ॥
वस्तुतः स्वयमास्वादस्वरूपैव रतिस्त्वसौ ।
कृष्णादिकर्मकास्वादहेतुत्वं प्रतिपद्यते ॥

साधककी सात्त्विक मनोवृत्तिमें आविर्भूत वा अभिव्यक्त होकर यह रति या भाव उस मनोवृत्तिके समान हो जाता है; यह रति स्वयंप्रकाश-स्वभावा है, यह मनोवृत्तिमें प्रतिफलित होकर प्रकाश्य-वस्तुके सदृश बन जाती है; किन्तु वस्तुतः यह प्रकाश्यवस्तु नहीं है बल्कि प्रकाश वा चिद्रूपता ही इसका स्वरूप है। यह रति स्वयं आस्वाद-स्वरूप हो जाती है, तथा इस प्रकार साधककी मनोवृत्तिमें अभिव्यक्त होकर भक्तद्वारा श्रीभगवान्‌के साक्षात्कारका सम्पादन करती है।

सम्पादक महाशयका यह अनुरोध है कि 'कल्याण' के शक्त्यङ्कके लिये लेख बहुत बड़ा नहीं होना चाहिये, इसलिये बाध्य होकर इस बार केवल ह्लादिनी-शक्तिका ही संक्षिप्त परिचय देकर इस प्रबन्धका उपसंहार किया जाता है।

शक्ति-तत्त्व

(लेखक—स्वामी श्रीमाधवानन्दजी महाराज)

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥

न विद्यते बलं यस्याः समानमन्यत्रेत्यबला ।

शक्ति नामकी वस्तुका प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर सकता है। कोई भी कार्य शक्तिके बिना नहीं हो सकता। एक मनुष्य बीमार होकर बिछौनेपर पड़ा था। प्रतिदिन बीमारी बढ़नेके कारण वह बिछौनेसे उठकर बाहर नहीं आ सकता था। एक दिन उसका एक मित्र उसे देखनेके लिये आया और घरके दरवाजेपर खड़ा होकर पुकारने लगा—'भाई! ज़रा बाहर आओ!' रोगीने शय्यापरसे ही उत्तर दिया—'हे मित्र! मुझमें शय्यासे उठकर बाहर आनेकी शक्ति नहीं है, तुम्हीं अन्दर आ जाओ।' इस प्रकार रोगी मनुष्यके कथनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि शक्ति एक वस्तु है, जिसके बिना वह शय्यासे उठकर बाहर नहीं आ सकता। रोगी मनुष्यकी शक्ति क्षीण हो गयी है, परन्तु उसमें जीवन तो है। शक्त (रोगी मनुष्य) जीवन होते हुए भी शक्ति बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। शक्तिके बिना बैठना-उठना, चलना-फिरना आदि साधारण क्रियाएँ भी नहीं हो सकतीं। शक्तिके द्वारा ही सब कार्य हो सकते हैं। शक्तिसे सब काम हो जाता तो शक्तकी आवश्यकता न होती, यह कथन भी सम्भव नहीं है।

चार मास बीतनेपर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो गया और उसके शरीरमें बल तथा शक्ति आ गयी। उसी समय उसका मित्र फिर मिलनेके लिये आया और दरवाज़ेपर आकर पहलेके समान उसे बाहर आनेके लिये कहने लगा। उस मनुष्यने उत्तर दिया कि—'शक्ति होते हुए भी मुझे बाहर आनेकी इच्छा नहीं है, तुम्हीं अन्दर आ जाओ।' इस कथनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि उसमें शक्ति है, परन्तु इच्छा न होनेसे वह बाहर नहीं आता। प्रत्येक कार्यके करनेमें शक्तकी इच्छाके अनुसार बर्तना पड़ता है। शक्ति स्वतन्त्र नहीं है, तथा शक्ति बिना शक्त अकेले कोई काम नहीं कर सकता। उपर्युक्त प्रमाणसे स्पष्ट जान पड़ता है कि शक्ति और शक्तके सम्बन्धसे प्रत्येक कार्य सिद्ध होते हैं।

ब्रह्म, परमात्मा, चिति आदि शक्तके नाम हैं। माया-शक्ति, प्रकृति आदि शक्तिके नाम हैं। अग्निमें दाह-शक्ति है। उस दाह-शक्तिका अग्निके साथ जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध ब्रह्मका ब्रह्मकी शक्तिके साथ है। अग्निकी दाह-शक्ति अग्निसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्ति भी ब्रह्मसे पृथक् नहीं है। शक्ति चिदानन्दस्वरूपिणी है और परमात्माकी सत्तासे सृष्टि आदि सब कार्योंको करनेवाली है।

माया-शक्तिको अचेतन माना गया है और ब्रह्मको अक्रिय कहा जाता है। मनुष्यके समान इनमें प्रेर्य-प्रेरक-भाव-सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु जिस प्रकार अक्रिय चुम्बककी समीपतासे जड़ लोहेमें चेष्टा आ जाती है, उसी प्रकार अक्रिय ब्रह्मकी समीपतासे अचेतन ब्रह्ममें प्रत्येक कार्यके करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। यह प्रकृति ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जङ्गम प्रभृति सृष्टिकी रचना करती है। ऐसा ही शास्त्रका सिद्धान्त है।

चिदानन्दमयब्रह्मप्रतिबिम्बसमन्विता ।
तमोरजःसत्त्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा ॥
(पञ्चदशी १ । १५)

ब्रह्म चिदानन्दस्वरूप है। उसकी प्रतिच्छायासे युक्त प्रकृति दो प्रकारकी है। सत्त्व, रज और तमोगुणकी समानावस्थाका नाम प्रकृति है। ब्रह्मकी समीपतासे जो शक्ति प्रकृतिको प्राप्त होती है उस शक्तिका नाम ही प्रतिबिम्ब या प्रतिच्छाया है।

सत्त्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाऽविद्ये च ते मते ।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः ॥
(पञ्चदशी १ । १६)

सत्त्वकी शुद्धि तथा अविशुद्धिके भेदसे एकका नाम माया है और दूसरीका अविद्या। जब सत्त्वगुण रजस् और तमोगुणको पराभूत करता है तो वह सत्त्वगुणकी शुद्धि कहलाती है और जब रजस् और तमोगुण सत्त्वगुणको पराभूत करते हैं तो वह सत्त्वगुणकी अविशुद्धि कहलाती है। इसीलिये शुद्ध-सत्त्वप्रधान माया कहलाती है और मलिन-सत्त्वप्रधान अविद्या कहलाती है। मायामें प्रतिफलित चिदात्मा मायाको वशमें रखता है, इससे चिदात्मामें

सर्वज्ञता आदि गुण रहते हैं। इस (चिदात्मा) का नाम ईश्वर है।

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा ।
सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान् ॥
(पञ्चदशी १ । १७)

अविद्यामें प्रतिफलित हुआ चिदात्मा अविद्याके अधीन रहता है, इससे अविद्यामें सर्वज्ञता आदि गुण नहीं रहते। इस (चिदात्मा) का नाम जीव है। उपाधिरूप अविद्याके नाना रूप होनेके कारण जीव भी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृति भेदसे नाना प्रकारका होता है। यह अविद्या स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरका कारण होनेसे कारण-शरीर कहलाती है। इसलिये कारण-शरीरमें 'मैं हूँ'—इस प्रकारके अभिमान-वाले जीवको प्राज्ञ कहा जाता है। उपर्युक्त प्रमाणसे ईश्वर तथा देवता प्रभृति नाना प्रकारके जीवोंका कारण मायाशक्ति ही कहलाती है।

तमःप्रधानप्रकृतेस्तद्भोगायेश्वराज्ञया ।
वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे ॥
(पञ्चदशी १ । १८)

उन प्राज्ञरूप जीवोंके भोगके लिये तमोगुणप्रधान प्रकृतिसे ईश्वरकी आज्ञानुसार आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। पञ्च-महाभूतोंके प्रत्येक सत्त्वगुण-अंशसे श्रोत्रादिक पञ्चज्ञानेन्द्रियों-की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण पञ्चमहाभूतोंके सत्त्वगुण-अंशसे अन्तःकरणकी उत्पत्ति होती है। पञ्चमहाभूतोंके प्रत्येक रजोगुण-अंशसे वाणी आदि कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण पञ्चमहाभूतोंके रजोगुण-अंशसे प्राणोंकी उत्पत्ति होती है। वृत्तिके भेदसे प्राणको भी प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान आदि नामोंसे पुकारते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंके मेलसे सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म शरीरमें 'मैं हूँ'—ऐसा अभिमानवाला जीव तैजस कहलाता है। इस जीवके भोगके लिये भोग्य पदार्थ तथा भोगके योग्य शरीरके लिये परमेश्वरने पञ्चमहाभूतोंका पञ्चीकरण किया अर्थात् एक-एकके पाँच-पाँच भेदसे पचीस विभाग किये, इन पचीस विभागोंमें विभक्त हुए पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्डकी रचना हुई है। ब्रह्माण्डमें चतुर्दश भुवन तथा विभिन्न भुवनोंमें रहनेयोग्य स्थूल शरीरकी सृष्टि हुई। सूक्ष्म शरीरके अभिमानी तैजसको स्थूल शरीरमें अभिमान होनेसे 'विश्व' नामसे पुकारा जाता है। कारण, सूक्ष्म और स्थूल—इन तीनों शरीरोंमें ईश्वर तथा जीव दोनोंको अभिमान होता है। ईश्वरको समष्टिमें अभिमान है और जीवको व्यष्टिमें। समष्टिका अर्थ है सब, और व्यष्टिका अर्थ है एक। समष्टि-कारण-शरीरके अभिमानवाले ईश्वरको समष्टि-सूक्ष्म-शरीरका अभिमान होनेपर हिरण्यगर्भ नामसे पुकारा जाता है और समष्टि-स्थूल-शरीरका अभिमान होनेसे वह विराट् कहलाता है। इस प्रकार ईश्वरसे लेकर सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमका कारण मायाशक्ति ही शास्त्रमें कही गयी है।

देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब मायासे उत्पन्न हुए हैं। वेदमें शिव, विष्णु आदि परमात्माके नाम हैं। पुराणोंमें सृष्टिके कर्त्ता ब्रह्मा, स्थितिके कर्त्ता विष्णु और लयके कर्त्ता रुद्र कहे गये हैं। विष्णु आदि माया-उपाधि-वाले ईश्वरकी विभूतिरूप होनेके कारण ईश्वरसे भिन्न नहीं हैं। ईश्वरका कारण माया है और माया-उपाधिके बिना ईश्वर रह नहीं सकता। इससे ईश्वरके भेदरूप विष्णु आदि भी मायाके कार्य हैं। मायासे त्रिमूर्तिकी उत्पत्ति होती है। वेदके अनुसार मायाको ही सृष्टिका कारण कहा गया है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
(श्वे० उ० ४ । ५)

'न जायत इत्यजा।' मूल-प्रकृति माया अनादिरूप है और जन्मरहित है। इसीसे उसे अजा कहते हैं। सम्पूर्ण जगत् इसी मायासे उत्पन्न होते हैं, इसलिये यह एक ही है। वह माया त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणरूप है। वह देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अपने ही समान त्रिगुणात्मक प्रजाकी सृष्टि करती है। ब्रह्मकी शक्तिका नाम ही माया है, शक्ति अपने आश्रयरूप शक्तके साथ ही रहती है। इसलिये शक्तिरूप मायामें जगत्के प्रति जो प्रकृतित्व है वह प्रकृतित्व शक्तिमान् ब्रह्ममें भी है।

ईक्षतेर्नाशब्दम्। (ब्रह्मसूत्र १ । १ । ५)

इस सूत्रमें जो प्रकृतिका जगत्के कारणरूपमें निषेध किया है, वह केवल प्रकृतिके लिये ही निषेध हुआ है। ईश्वराधिष्ठित प्रकृतिका यहाँ निषेध नहीं किया गया है। ईश्वराधिष्ठित मायारूप प्रकृतिको तो प्रत्येक स्थानमें सृष्टिका कारण कहा गया है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

(गी० ९। १०)

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।

(गी० ९। ८)

गीताके प्रमाणके अनुसार ईश्वराधिष्ठित प्रकृति सृष्टिका कारण कही जाती है।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत।

(छान्दो० ६। २। ३)

इस श्रुतिमें ईश्वरकी ईक्षणपूर्वक सृष्टिका वर्णन है। मायावृत्तिरूप ईश्वरके सङ्कल्पका नाम ही ईक्षण है। प्रकृति नामकी मायाशक्ति ही सब प्रकारकी सृष्टि रचती है।

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण २। १। ५)

'प्र' शब्दका अर्थ प्रकृष्ट है, 'कृति' सृष्टिवाचक है। सृष्टिमें जिसकी प्रकृष्टता अर्थात् उत्कृष्टता है उस देवीका नाम प्रकृति है। 'प्रकृति' शब्दका ऐसा ही अर्थ अन्य पुराणोंमें कहा गया है। ईश्वरकी मायाशक्ति प्रत्येक वस्तुको नियममें रखती है और यदि वह मायाशक्ति नियममें न रक्खे तो जगत्में विप्लव मच जाय। परमेश्वर जिस-जिस देव तथा मनुष्य आदि-की उपाधिको धारण करते हैं वह सब परब्रह्मस्वरूपी माया-शक्तिकी उपाधि है। परमात्मा जब सगुणरूप धारण करते हैं तब चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति भी सगुणरूप धारणकर परमात्माके साथ ही रहती है। उपर्युक्त नाना प्रकारके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि समस्त सृष्टिकी रचना करनेवाला केवल शक्ति-तत्त्व है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

शक्ति-उपासनाकी सर्वव्यापकता

(लेखक—चौधरी रघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

रतवर्षकी आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणाद्वारा यह सिद्ध हो गया है कि शक्ति-उपासनाका अस्तित्व अति प्राचीन कालमें भी था। सिन्धनदी-के प्रान्तमें मोहन-जो-दारोमें जो खुदाई हुई है उसमें मकानोंके सात तह निकले हैं, जिससे पता चलता है कि वहाँ एक-एक करके सात नगर बसे और ध्वंस हो गये। इस प्रकार उसके सबसे नीचेके खुदे हुए नगरके बसनेका समय अनुमानतः ईसासे पूर्व ४००० वर्ष माना गया है। उस खुदाईमें जो मूर्तियाँ निकली हैं उनमें स्वस्तिक, नन्दीपद, लिंग, योनि और शक्तिकी मूर्तियाँ हैं, जिससे सिद्ध होता है कि उस समय भी उस प्रान्तमें शक्ति-उपासना प्रचलित थी।

'एकोऽहं बहु स्याम्' (मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ)—यह जो सृष्टिका कारणरूप ब्रह्मका आदिसङ्कल्प है इसी सङ्कल्प अर्थात् इच्छाको आद्याशक्ति अथवा महाविद्या कहते हैं। इसी कारण वह यथार्थमें जगज्जननी जगदम्बा है। ब्रह्माण्डके त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस आद्या-पराशक्तिसे उद्भूत हुए हैं। ऋग्वेदमें शक्तिका वर्णन स्पष्ट-रूपसे मिलता है। वेदमें जो उल्लेख है कि एक 'अजा' से अनेक प्रजाकी उत्पत्ति हुई, वह 'अजा' यही आद्याशक्ति हैं। विश्वकी अखिल सत्ता (अस्तित्व), चेतनता, ज्ञान, प्रकाश, आनन्द, क्रिया, सामर्थ्य आदि इसी शक्तिके कार्य हैं। केनो-पनिषद्में स्वर्ण-वर्णा उमाके प्रकट होनेपर देवताओंको ज्ञात हो गया कि उसी शक्तिके प्रभावसे उन्होंने असुरोंपर विजय पायी है, तथा उनकी समस्त शक्तियाँ उसी एक परमाशक्तिसे प्राप्त हुई हैं। वेदोंकी माता तथा मुख्य अधिष्ठात्री परमोपास्या शक्ति गायत्री भी यही आद्याशक्ति हैं, जो भव-बन्धनसे त्राण कर मुक्ति प्रदान करती हैं। वेदान्त और ज्ञानमार्गकी प्रतिपाद्य 'विद्या,' जिसके द्वारा अविद्याका नाश और ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, वह भी यही आद्याशक्ति हैं। योगकी मुख्य शक्ति कुण्ड-लिनी भी यही आद्याशक्ति हैं। उपासना और भक्ति-मार्ग की ह्लादिनी-शक्ति तथा इष्टदेवोंकी अर्द्धाङ्गिनी—जैसे दुर्गा, सीता, राधा, लक्ष्मी, गायत्री, सरस्वती आदि—जिनकी कृपादृष्टिसे इष्टकी प्राप्ति होती है वह सब यही आद्याशक्ति हैं। श्रीअध्यात्मरामायणमें श्रीसीताजी श्री-हनुमान्‌जीसे कहती हैं कि—'श्रीरामचन्द्रजी तो कुछ नहीं करते, अवतारकी सारी लीलाएँ मैंने ही की हैं।' बौद्धोंकी 'प्रज्ञापारमिता' जो ज्ञान और बोधकी देनेवाली उपास्या-

देवी है, वह भी आद्याशक्ति ही हैं। उत्तर देशके बौद्ध जिस तारादेवीकी उपासना करते हैं वह भी आद्याशक्ति ही हैं। कुरान और बाइबिलमें जो ईश्वरके श्वास (Breath) और शब्द (Word) को सृष्टिका कारण कहा गया है, वह भी यही आद्याशक्ति हैं।

परन्तु जहाँ प्रकाश होता है वहाँ साथ ही तम भी होता है। Light (प्रकाश) और Shade (तम) के अस्तित्वको पार्थिव विज्ञानने भी माना है। सृष्टिके विकासके निमित्त इन दोनों विरुद्ध पदार्थोंकी आवश्यकता है। इसी नियमके अनुसार आद्याशक्ति अर्थात् पराशक्ति, जो चैतन्य है, उसकी दृष्टिसे अपरा प्रकृति अर्थात् नामरूपात्मक जड मूल-प्रकृति उसका दृश्य (कार्यक्षेत्रकी भाँति) हुई और इन दोनों शक्तियोंके संयोगसे सृष्टि-रचना हुई। मूल-प्रकृति योनिरूपा, त्रिगुणात्मिका, अविद्या अर्थात् अज्ञानमूलक है, और परा-प्रकृति चेतन पुरुषरूपा, सच्चिदानन्दस्वरूपिणी, विद्या और ज्ञानमूलक है। जीवात्मा तो ईश्वरका अंश है, उसकी प्रथम उपाधि कारण-शरीर है जो आनन्दमय है। उसका परा-प्रकृतिसे सम्बन्ध है। परन्तु इसके सिवा अन्य दो उपाधियाँ भी हैं जो त्रिगुणमयी अपरा-प्रकृतिके कार्य हैं—उनकी संज्ञा सूक्ष्म और स्थूल शरीर है। इन दो उपाधियोंमें तमोगुण और रजोगुणकी प्रधानता है। मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है विद्याशक्तिके गुणोंके आश्रयसे अविद्यान्धकारका नाश करना तथा रजोगुण और तमोगुणका निग्रह करके उनको शुद्ध सत्त्वमें परिणतकर पुनः त्रिगुणातीत अवस्थाको प्राप्त करना। इस प्रकार त्रिगुणमयी प्रकृतिके कार्यके साथ विद्याशक्तिके आश्रयसे सङ्घर्षणद्वारा जीवात्मामें जो ईश्वरके दिव्य गुण, सामर्थ्य आदि सन्निहित हैं वे प्रकट होकर उस जीवात्माके द्वारा संसारमें लोकहितार्थ फैलते हैं और इस प्रकार संसारका कल्याण करते हैं। इस सङ्घर्षणके बिना संसारका कल्याण नहीं हो सकता। अतएव ज्ञान, अज्ञान, परा, अपरा दोनों प्रकृतियोंकी आवश्यकता है। इसीलिये पूजामें ज्ञान और अज्ञान दोनोंकी पूजा की जाती है। अतएव त्रिगुणमयी प्रकृति अर्थात् अविद्या-शक्ति और दिव्य परा विद्या-शक्ति दोनों आवश्यक हैं। इसलिये यथार्थ शक्ति-उपासना यही है कि इस त्रिगुणमयी प्रकृतिके कार्य अथवा स्वभाव—निद्रा, आलस्य, तृष्णा (काम-वासना), भ्रान्ति (अज्ञान), मोह, क्रोध (महिषासुर), काम (रक्तबीज) आदिको महाविद्याके गुण सद्बुद्धि, बोध, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, क्षान्ति *, लज्जा, श्रद्धा, कान्ति, सद्वृत्ति, धृति, उत्तम स्मृति, दया (परोपकार) आदिके द्वारा निग्रह और पराभव कर उनपर विजय-लाभ करे। इससे जीवात्मा अपने उस खोये हुए आत्मराज्यको प्राप्त करेगा, जिस राज्यसे आसुरी वृत्तियोंने उसे च्युत कर दिया था। यही देवासुर-संग्राम है जिसका क्षेत्र यह मानव-शरीर है। दुर्गासप्तशतीके पहले और पाँचवें अध्यायमें यह स्पष्टरूपसे कहा गया है कि उपर्युक्त सभी दैवी गुण श्रीभगवतीके ही गुण हैं।

मातृभाव और ब्रह्मचर्य

शक्तिकी उपासनामें मातृभाव और ब्रह्मचर्यका महत्त्व प्रधान माना जाता है। दुर्गासप्तशतीके ११ वें अध्यायमें नारायणी-स्तुतिमें लिखा है—

> विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
> स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
> त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
> का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः॥
> (११।६)

हे देवि! समस्त संसारकी सब विद्याएँ तुम्हींसे निकली हैं और सब स्त्रियाँ तुम्हारी ही स्वरूप हैं; समस्त विश्व एक तुमसे ही पूरित है, अतः तुम्हारी स्तुति किस प्रकार की जाय?

शक्तिके उपासकको अपनी धर्मपत्नीके सिवा सब स्त्रियोंको जगदम्बाका रूप समझ उनमें परम पूज्य भाव रखना चाहिये। कामात्मक दृष्टिसे उन्हें कभी नहीं देखना चाहिये। सब स्त्रियोंको जगदम्बा मानना ही शक्ति-उपासनाका यथार्थ मातृभाव है, और ऐसी भावना रखनेवालेके ऊपर शक्तिकी कृपा शीघ्र ही होती है। अतएव शक्ति-उपासनामें मन, कर्म और वचनसे ब्रह्मचर्यका पालन करना परमावश्यक है। अपनी स्त्रीके संग सन्तानार्थ ऋतुकालमें कर्त्तव्यबुद्धिसे, पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये संगम करना ब्रह्मचर्यके विरुद्ध नहीं है ऐसी मनुकी आज्ञा है। सप्तशतीमें लिखा है—

---

* त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥
(दु० स० १।७९-८०)

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।

हे देवि ! तुम बुद्धिके रूपमें सबोंके हृदयमें स्थित हो। वस्तुतः शक्ति सबके हृदयमें विराजमान हैं; अतएव सबको हृदयस्थ शक्तिकी उपासना करनी चाहिये।

बड़े शोककी बात है कि आजकल उपासनाके मुख्य अंग कामादि विकारोंके निग्रहकी अवज्ञा की जाती है और इसके विपरीत लोग जिह्वा, शिश्न और उदर-परायण होकर भोगात्मक विषयोंमें ही अनुरक्त हो उन्हींमें लिप्त रहते हैं तथा इसीको शक्ति-उपासनाकी साधना मानते हैं। दया (परोपकार), क्षान्ति (क्षमा), धृति (धैर्य), शान्ति (मनकी समता), तुष्टि (सर्वदा प्रसन्न रहना), पुष्टि (शरीर और मनसे स्वस्थ रहना), श्रद्धा, विद्या, सद्बुद्धि आदि महाविद्याके गुण हैं; इनके प्राप्त होनेसे ही साधक विद्याशक्तिसे सम्बन्ध स्थापित कर सकता है अन्यथा कदापि नहीं। इसके विपरीत जिनमें इन सद्गुणोंके विरुद्ध दुर्गुण—हिंसा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भोग-लिप्सा, मत्सर, तृष्णा, आलस्य आदि वर्तमान हैं, उनको अनेकों प्रकारके पूजा-पाठ, जप-तप आदि करनेपर भी शक्तिकी कृपादृष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। पाश्चात्य देश-निवासियोंकी आजकल जो विद्या, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य आदिमें विशेष रुचि देखी जाती है उसका कारण उनमें शक्तिकी तुष्टि तथा कृपाकी प्राप्तिके मुख्य-साधनस्वरूप इन सद्गुणोंका कुछ-कुछ विकसित होना ही है।

पूजा-पाठ, जप-होम, ध्यान आदि भी शक्ति-उपासनाके मुख्य अङ्गोंमें हैं; परन्तु महाविद्याके सद्गुणोंके अभावमें ये व्यर्थ हैं। अतएव यथार्थ शक्ति-उपासना यही है कि पहले दिव्य गुणोंको प्राप्त करे और उनसे विभूषित होकर पूजा-पाठ, स्तव, जप-ध्यान, होम आदि कर्म करे। जिनका हृदय कलुषित, मन अपवित्र, चित्त दम्भपूर्ण, भाव कुत्सित, इन्द्रियाँ भोगपरायण तथा जिह्वा असत्यसे दग्ध है उनके पूजा-पाठ, जाप आदि कर्म प्रायः व्यर्थ ही होते हैं। कहीं-कहीं तो उलटे हानि हो जाती है, क्योंकि भयानक दुर्गुणोंको देखकर इष्टदेवता रुष्ट हो जाते हैं। लिखा है कि देवी रुष्ट होनेपर समस्त अभीष्ट कामनाओंका नाश कर देती हैं। परन्तु जो सद्गुणोंसे विभूषित हो अहङ्कार और ममता त्यागकर परम दीन और आर्तभावसे श्रीआद्याशक्तिके चरणोंमें अपनेको समर्पण कर देते हैं उनके सब कष्टों और अभावोंको मिटाकर माता उनका त्राण करती हैं। श्रीदुर्गासप्तशतीकी नारायणी-स्तुतिमें भी लिखा है—

शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(११ । १२)

श्रीदुर्गा सर्वत्र सबमें व्याप्त हैं और जो उन्हें इस प्रकार सबमें व्यापकरूपसे वर्तमान जानते हैं, वही भय-से त्राण पाते हैं। मोक्षदात्री श्रीविद्याकी प्राप्तिके लिये इन्द्रिय-निग्रह परमावश्यक है। इनमें निम्नलिखित वाक्य प्रमाण हैं—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥
(दु० स० ११ । २३)

सर्वतःपाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखि।
सर्वतःश्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥
(दु० स० ४ । ९)

शक्ति-स्वरूप-निरूपण

(लेखक—पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र)

व्यालावलीवलयिता कलितानलकीलया कापि ।
शूलिप्रविदितशीला नीरदनीला लता जयति ॥

जगत्के निमित्त और विवर्तोपादानकारण[1] सच्चिदानन्द परब्रह्मकी[2] स्वाभाविक जो पराशक्ति है, वही शक्ति-तत्त्व भगवती है ।

इसके ये प्रमाण हैं—

(१) परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते । (श्रुति)

(२) निर्गुणः परमात्मा तु त्वदाश्रयतया स्थितः ।
तस्य भट्टारिकासि त्वं भुवनेश्वरि भोगदा ॥
(शक्तिदर्शन)

(१) इस ब्रह्मकी पराशक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है ।

(२) हे भुवनेश्वरि ! तुम्हारा आश्रय निर्गुण परमात्मा है, और तुम उसकी भोग देनेवाली भार्या हो ।

जैसे ब्रह्मके औपाधिक स्वरूप शिव, विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति हैं, वैसे ही आदिशक्तिके औपाधिक स्वरूप पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती प्रभृति हैं । यह शक्ति कहीं माया-शब्दसे, कहीं प्रकृति-शब्दसे, श्रुति तथा स्मृतिमें अनेक बार प्रतिपादित है । जैसे—

(१) इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । (श्रुति)

(२) मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।

(३) परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या । (मार्कण्डेयपुराण)

(१) मायासे बहुरूप परमेश्वर स्तुतिविषय किया जाता है ।

(२) मायाको प्रकृति और परमेश्वरको मायाश्रय समझे ।

(३) तुम प्रकृष्ट आदिप्रकृति हो ।

व्यापक, नित्य, सर्वात्मक होनेके कारण देश, काल, वस्तु इन तीनोंसे यह शक्ति परिच्छेद्य नहीं है, अर्थात् किसी देशमें इसका अत्यन्ताभाव नहीं है, किसी कालमें ध्वंस नहीं है, किसी वस्तुमें भेद नहीं है । अघटित (असम्भावित)-घटना (निर्माण) में अतिनिपुण है; यथा चिदाभास, नाना प्रकार संसार, दर्पणमें नगर, अनेक तरहके कार्यकारण-भाव, क्षणमें युगबुद्धि, स्वप्न, बीजमें वृक्ष तथा ऐन्द्रजालिक चमत्कार, इन सबोंकी रचना मायासे होती है ।

मैं स्थूल हूँ, मैं अन्धा हूँ, मैं इच्छा करता हूँ, शुक्तिकामें यह रजत है, शङ्ख पीला है, शीशेमें यह मेरा मुख है, इत्यादि नाना भाँति भ्रान्तियोंको यह मायाशक्ति उत्पन्न करती है ।

यह मायाशक्ति सर्वथा अबाध्य नहीं है, सत्त्वेन अप्रतीयमान नहीं है, और सदसदात्मक भी नहीं है, क्योंकि गोत्व-अश्वत्वकी तरह अबाध्यत्व एवं सत्त्वरूपसे अज्ञायमानत्व, ये दोनों ही परस्परविरुद्ध हैं । अतएव सत्, असत् और सदसत्, इन तीनोंसे विलक्षण अनिर्वचनीय है ।

अनिर्वचनीयका लक्षण देखिये—

प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः ॥
(चित्सुखी)

सत्त्वसे, असत्त्वसे और सत्त्व-असत्त्व दोनोंसे विचार-मार्गको जो नहीं प्राप्त करता है, वेदान्तवेत्ता लोग उसे अनिर्वाच्य कहते हैं ।

अनिर्वचनीयत्व मायाके लिये अलङ्कार है । यह सत्त्व, रजस्, तमस् गुणत्रयात्मक है । यथा—

(१) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम् । (श्रुति)

(२) हेतुस्समस्तजगतां त्रिगुणापि ।
(मार्कण्डेयपुराण)

(१) लोहितसे रजस्, शुक्लसे सत्त्व और कृष्णसे तमस् लिया जाता है ।

(२) तुम समस्त भुवनका कारण और त्रिगुणा हो ।

१—उपादानविषयसत्ताका कार्य विवर्त्त है । २—इसके प्रमाण—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि (श्रुति), 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (ब्रह्मसूत्र), 'नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (श्रुति) हैं ।

इसीके एकदेशके परिणाम शब्दादि पञ्चतन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी हैं। उपादान-समानसत्ताश्रय कार्यको परिणाम कहते हैं। मायामें चैतन्यका प्रतिबिम्ब जीव है। अविद्यामें चैतन्यका प्रतिबिम्ब ईश्वर है। इस पक्षमें ये बिम्बसे भिन्न चिदाभासरूप असत्य हैं। अन्तःकरणसे या अविद्यासे अवच्छिन्न चैतन्य जीव है। मायावच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है। इस पक्षमें यद्यपि जीव और ईश्वरमें चिदाभासता नहीं आती, परन्तु अवच्छेदके मायासे कल्पित होनेके कारण इन दोनोंमें मायिकत्व वियदादि प्रपञ्चवत् अनिवार्य है।

जीव एवं ईश्वरके चिदाभासत्व तथा मायिकत्वके प्रमाण ये हैं—

(१) एवमेवैषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा जीवेशावाभासेन करोति। (श्रुति)

(२) चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः। (शक्तिसूत्र)

(३) कथं जगत् किमर्थं तत् करोषि केन हेतुना।
नाहं जानामि तद्देवि यतोऽहं हि त्वदुद्भवः॥
(शक्तिदर्शन)

(४) मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
(शक्तितत्त्वविमर्शिनी)

(१) इसी प्रकार यह माया स्वात्मकक्षेत्र दिखाकर प्रतिबिम्बद्वारा जीव और ईश्वरकी रचना करती है।

(२) ईश्वरसे लेकर पृथ्वीपर्यन्तको उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारमें पराशक्तिस्वरूपा, स्वतन्त्रा, शिवात्मक पतिसे अभिन्ना चितिभगवती ही कारण है।

(३) हे देवि! तुम किस प्रकार, किसके लिये, किस हेतुसे जगत्‌की सृष्टि करती हो—मैं इस बातको नहीं जानता, क्योंकि मैं तुमसे उत्पन्न हूँ।

(४) मायारूप कामधेनुके जीव और ईश्वर दो बछड़े हैं।

जैसे कृशानुकी दाहकता और भानुकी प्रभा, कृशानु-भानुसे भिन्न नहीं हैं, उसी तरह मायात्मक पराशक्ति परब्रह्म-से भिन्न नहीं है। यथा—

(१) शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥
(शक्तिदर्शन)

(२) अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा॥
(महाकालसंहितातन्त्र)

(३) सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥
(देवीभागवत)

(४) सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः—कासि त्वं महादेवी।
साब्रवीदहं ब्रह्मरूपिणी, मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगदुत्पन्नम्॥
(श्रुति)

(१) 'शक्ति शक्त्याश्रयसे अलग नहीं है, शक्ति और शक्तिमान्‌में वह्नि तथा दाहकता-शक्तिके अभेदके सदृश सर्वदा अभेद बना रहता है।'

(२) 'देवि! तुम अचिन्त्य तथा अमित आकारवाली शक्तिका स्वरूप हो, अथवा अचिन्त्य तथा अमित आकारवाला जो ब्रह्म है, उसकी शक्तिका स्वरूप हो, अथवा बड़े शिल्पियों-से अचिन्त्य तथा अमिताकार संसारकी एक ही शक्ति हो, प्रतिव्यक्तिकी अधिष्ठान-सत्ताकी एकमात्र मूर्ति हो, अथवा ब्रह्मरूप अधिष्ठान-सत्ताकी एक ही मूर्ति हो, और गुणातीत तथा अबाधित बोधमात्रसे जानी जाती हो, अथवा निर्गुण निर्द्वन्द्व बोधस्वरूप ब्रह्ममात्रसे गम्य हो—'परमशिवदृङ्मात्र-विषयः' (आनन्दलहरी)। इस प्रकार तुम परब्रह्मरूपसे सिद्ध हो।'

(३) 'मैं और ब्रह्म—इन दोनोंमें सर्वदा एकत्व है, भेद कभी नहीं है; जो वह है सो मैं हूँ, और जो मैं हूँ सो वह है; भेद भ्रान्तिसे कल्पित है, वस्तुतः नहीं है।'

(४) सब देवगण भगवतीके पास गये और उन्होंने पूछा कि 'महादेवि! तुम कौन हो?' भगवतीने उत्तर दिया, 'मैं ब्रह्मरूपिणी हूँ, मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक संसार उत्पन्न हुआ है।'

अब यहाँपर यह संशय होता है कि मुक्तिमें मायाकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है, किन्तु अधिष्ठानभूत ब्रह्मकी नहीं; तब मायाकी ब्रह्मके साथ एकता कैसे हुई? इस संशयको दूर करनेके पाँच उपाय हैं, जिनमें पहला यह है कि महर्षि जैमिनिके मतानुसार जीवको ईश्वरत्व प्राप्त होना ही मोक्ष है।

इसका प्रमाण यह है—

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः । (ब्रह्मसूत्र)

'मोक्षमें अपहतपाप्मत्व, सत्यसङ्कल्पत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व प्रभृति ब्रह्मसम्बन्धी रूपोंसे जीव निष्पन्न होता है, क्योंकि श्रुतियोंमें ऐसा उपन्यास किया गया है ।'

ईश्वर चिदाभास या अवच्छिन्न होनेसे मायिक है; तब ईश्वररूपसे मोक्षमें भी माया रहती ही है, उसका उच्छेद नहीं होता ।

सकल ब्रह्माण्डमण्डल ब्रह्मका एक पाद है, इसके अतिरिक्त अनन्त ब्रह्मके और भी तीन पाद हैं । इसका प्रमाण यह है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।
(श्रुति)

चतुष्पाद ब्रह्ममें व्याप्त होकर माया-शक्ति ब्रह्ममें ही रहती है,जैसे समस्त अग्निमें व्याप्त दाहकता-शक्ति समस्त अग्निमें ही रहती है, न कि एकदेशमात्रमें । मोक्षमें विद्योदयसे एक पादका नाश होनेपर भी त्रिपाद ब्रह्ममें पूर्ववत् पराशक्ति बनी रहती है; उसका नाशक कोई नहीं है, आधार तो नित्य ही है ।

'तत्त्वमसि,' 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि अखण्डार्थक वाक्यसे जहदजहल्लक्षणाद्वारा या अभिधाद्वारा उत्पाद्य अविद्या और उसके कार्यको नहीं विषय करनेवाली, निर्विकल्पक, अपरोक्ष ब्रह्माकारा अन्तःकरणकी सात्त्विक वृत्ति 'ब्रह्मविद्या' है, जो नाम-रूपात्मक वियदादि प्रपञ्चको नष्ट कर देती है । यह मायाका परिणाम होनेसे मायात्मक है, इसका नाश मोक्षमें नहीं होता; अन्यथा श्रुतिविरोध और युक्तिविरोध हो जायगा ।

देखिये श्रुति—

नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते, अविनाशित्वात् ।

'द्रष्टा अर्थात् ब्रह्मकी दृष्टि अर्थात् देखनेकी वृत्ति विलुप्त नहीं होती, क्योंकि वह अविनाशी है ।'

युक्ति भी देख लीजिये—

कुछ देरके लिये मान भी लिया जाय कि मुक्ति-समयमें उक्त विद्या नहीं रहती, तो फिर उसका नाश भी किससे होता है ? विद्यान्तरसे या सुन्द, उपसुन्द एवं अन्त्य, उपान्त्य शब्दके तौरपर अविद्यासे या अविद्याके नाशसे ? या कनकरजोवत् अपनेसे ही (उक्त विद्याहीसे) ?

यदि विद्यान्तरसे कहा जाय तो उसका विद्यान्तरसे और उसका भी विद्यान्तरसे इस प्रकार कहनेपर अनवस्था लग जायगी और कहीं जाकर अनवस्थाकी भीतिसे विद्याको अविनाशी मानेंगे । तब प्रथम विद्याको ही विनाशी मान लेना उचित है ।

विद्योत्पत्ति-क्षणमें विद्या और अविद्या दोनोंके रहनेसे, अग्रिम क्षणमें अविद्यारूप नाशकसे विद्याका, और विद्यारूप नाशकसे अविद्याका नाश स्वीकार करना भी ठीक नहीं है; क्योंकि प्रकाशसे तो तमका नाश होता है, लेकिन तमसे प्रकाशका नहीं । इसी तरह अविद्याद्वारा विद्याका नाश होना असम्भव है, परस्पर नाश्यनाशकभाव इन दोनोंमें नहीं है ।

तृतीय पक्षमें अभावके निस्स्वरूप होनेके कारण नाशकता कहनेलायक ही नहीं है, कारणता भावमात्रके ऊपर रहती है । बच गया चतुर्थ पक्ष, वह भी ठीक नहीं है । क्योंकि एक पदार्थमें नाश्यनाशकभाव कहीं भी सिद्ध नहीं है । जो दृष्टान्त पहले बतलाया गया था उसमें साध्य और साधन दोनोंका अभाव रहनेसे अन्वय-दृष्टान्तता हो नहीं सकती । वहाँ कनकरज नष्ट नहीं होता किन्तु मिट्टीके साथ पानीके नीचे छिप जाता है । अहेतुक नाश तो हो ही नहीं सकता, उसका प्रलाप करना भी वेदविरुद्ध ही है ।

अविद्याका नाश निवृत्तिरूप मानते हैं या ध्वंसरूप या लयरूप ? यदि निवृत्तिरूप हो तो कहीं-न-कहीं अविद्याकी स्थिति माननी पड़ेगी । यह निवृत्ति अन्य निवृत्ति-मर्यादाका अतिक्रमण कैसे करेगी ? ध्वंसरूप हो तो प्रतियोगीके अवयवमें ध्वंसकी उत्पत्ति नियत होनेसे अविद्याके अवयवको अङ्गीकार करना पड़ेगा ! लयरूप हो तो भी कारणमें कार्यका लय देखा जाता है, अन्यत्र नहीं । तदनुसार लयके लिये उसका कारण मानना ही पड़ेगा, अर्थात् स्वरूपसे या अवयवरूपसे या कारणरूपसे मोक्षमें अविद्या रहती है, उसे टाल नहीं सकते ।

अविद्याकी निवृत्ति यदि सत् हो तो द्वैतापत्ति हो जायगी, असत् हो तो शशशृङ्गकी तरह उसमें उत्पाद्यत्व नहीं आयेगा । व्याघात होनेके कारण सदसदात्मक मान सकते ही नहीं । अनिर्वचनीय हो तो अनिर्वचनीय सादि-पदार्थका अज्ञानोपादानकत्व एवं ज्ञाननिवर्त्यत्व नियत होनेसे उसे

आविद्यक और ज्ञाननिवर्त्य मानना होगा। अतः सत्, असत्, सदसत् और अनिर्वचनीय, इन चार कोटियोंसे अलग पञ्चम प्रकार अविद्या-निवृत्ति है—यह अवश्य स्वीकार करना होगा। तब अविद्या-निवृत्तिरूपसे ही मोक्षमें माया रहती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्षमें मायाका उच्छेद नहीं होता; किसी-न-किसी रूपमें माया बनी रहती है, वह नित्य है। अद्वैत-वेदान्त-मतसे इस मतमें यह वैलक्षण्य है। मोक्षमें मायाके रहनेपर भी वियदादिरूपेण उसका परिणाम नहीं हो सकता, क्योंकि तत्त्वज्ञानके प्रभावसे सञ्चित कर्मोंका नाश हो चुका है। सृष्टि कर्म-भोगके लिये होती है, अतएव कारणाभाव होनेसे संसार नहीं उत्पन्न हो सकेगा। बन्धावस्थामें माया बहिर्मुखी रहती है और मोक्षावस्थामें अन्तर्मुखी, अतः बद्ध और मुक्तमें वैलक्षण्य भी साबित हो गया।

इसका प्रमाण यह है—

मुक्तावन्तर्मुखैव त्वं भुवनेश्वरि ! तिष्ठसि ।

(शक्तिदर्शन)

'हे भुवनेश्वरि ! तुम मुक्तिमें अन्तर्मुखी रहती हो।'

मोक्षमें माया माननेपर अद्वैतभङ्ग भी नहीं हो सकता, क्योंकि अनिर्वचनीय पदार्थ पारमार्थिक अद्वैतका व्याघातक नहीं है। पारमार्थिक सत्‌में रहनेवाला जो भेद है, उसका अप्रतियोगित्वरूप ही अद्वैतब्रह्ममें अभीष्ट है, न कि द्वितीयराहित्यमात्र। उसी तरह अद्वैतके घटनेमें माया बाधक नहीं है। बहिर्मुख माया-शून्यत्व ही कैवल्य, नामरूप-विमुक्ति और अविद्यास्तमय प्रभृति शब्दोंका अर्थ है; अतएव सकल श्रुतिसामञ्जस्य भी इस मतमें हो गया।

मायानित्यत्वके प्रमाण ये हैं—

(१) माया नित्या कारणञ्च सर्वेषां सर्वदा किल।

(देवीभागवत)

(२) नित्यैव सा जगन्मूर्तिः।

(मार्कण्डेयपुराण)

(३) प्रकृतिः पुरुषश्चेति नित्यौ।

(प्रपञ्चसारतन्त्र)

अर्थ—

(१) माया नित्य है, सब पदार्थोंका कारण है।

(२) वह जगदात्मिका भगवती नित्या है।

(३) प्रकृति (माया), पुरुष (आत्मा) ये दोनों ही नित्य हैं।

यहाँतक शक्तिका निरूपण किया गया। अब यहाँ यह विचार करना है कि शक्तिकी उपासनामें जो पञ्च मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन तन्त्र-शास्त्रोंमें प्रतिपादित हैं, उनका क्या तात्पर्य है। विषयके बाह्य स्वरूपको देखकर निर्णय करनेवालोंके लिये तो उनके वे ही अर्थ हैं जो स्पष्टतया प्रतीत होते हैं। लेकिन यदि इस समस्याका समुचित विचार किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि इनके अर्थ ये न होकर कुछ और ही हैं। यदि थोड़े समयके लिये यह मान भी लिया जाय कि इनके वे ही अर्थ हैं जो सामान्यरूपसे मालूम होते हैं, तो भी यही कहना होगा कि ये पञ्च मकार द्विजातिके लिये नहीं हैं, जिस प्रकार शास्त्रकारोंने सामान्य-शास्त्रका विशेष शास्त्रसे बाध माना है वही बात यहाँ भी लागू है। 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस सामान्य शास्त्रका 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इस विशेष शास्त्रसे खण्डन होता है, उसी प्रकार उपासना-प्रकरणमें सामान्यरूपसे पञ्च मकार-प्रतिपादक सामान्य शास्त्रोंका उनके अनन्तर प्रत्येक वर्णके लिये विहित भिन्न-भिन्न वस्तुओंके प्रतिपादक शास्त्रसे खण्डन हो जाता है। इसलिये वर्णाश्रमोचित धर्मका विचार न कर जो लोग रक्त और मदिराका शक्ति-पूजनमें उपयोग करते हैं, उनकी अधोगति होती है—यह तन्त्र-शास्त्रका सिद्धान्त है। अगस्त्यसंहिता-तन्त्रमें यह वचन मिलता है—

आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां वापि महेश्वरि।
वर्णाश्रमोचितं धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये॥
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥

ब्राह्मणादि वर्णभेदसे पूजामें द्रव्यका भेद किया गया है—

वर्णानुक्रमभेदेन द्रव्यभेदा भवन्ति वै।

(ज्ञानावितन्त्र)

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि कौन वर्ण किस चीजसे पूजन करे।

क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः ।
माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः ॥
(भैरवीतन्त्र)

अर्थात् ब्राह्मण क्षीरसे, क्षत्रिय घृतसे, वैश्य मधुसे तथा शूद्र मद्यसे पूजा करे । इन्हीं बातोंकी पुष्टि और तन्त्रोंसे भी होती है; यथा—

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः ।
(लघुस्तवतन्त्र)

किसी-किसी तन्त्रमें इस प्रकारका निर्णय मिलता है कि जहाँ अवश्य ही मदिराका विधान हो वहाँ ब्राह्मण ताम्रके पात्रमें मधु दे ।

यत्रावश्यं विनिर्दिष्टं मदिरादानपूजनम् ।
ब्राह्मणस्ताम्रपात्रे तु मधुमद्यं प्रकल्पयेत् ॥
(कुलचूडामणि-तन्त्र)

इसी प्रकार दूसरे तन्त्रोंमें भी ब्राह्मणोंके लिये मदिराका निषेध बड़े जोरदार शब्दोंमें किया गया है; यथा—

ब्राह्मणो मदिरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते ।
स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥
(हंसपारमेश्वर तथा भैरवतन्त्र)

'ब्राह्मण यदि पूजामें मदिराका प्रयोग करता है तो वह अपने ब्राह्मणत्व-धर्मसे च्युत होता है । बृहच्छ्रीक्रम-संहितातन्त्रमें यह वचन उपलब्ध होता है ।'

……विप्रस्तु मद्यं मांसञ्च न भक्षयेत् ।
स्वकीयां परकीयां वा नाकृष्य ब्राह्मणो यजेत् ॥

अर्थात् ब्राह्मण मद्य-मांसका सेवन न करे और अपनी तथा परायेकी स्त्रीको पूजाका साधन न बनावे ।

न कर्तव्यं न कर्तव्यं न कर्तव्यं कदाचन ।
इदं तु साहसं देवि न कर्तव्यं कदाचन ॥
(मेरुतन्त्र)

ब्राह्मणके लिये सात्त्विक द्रव्यहीसे पूजाका आदेश है ।

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ।

समयाचार-तन्त्रमें सौत्रामणि-यागके लिये जो मद्य-बोधक वाक्य मिलता है वह भी, जिस प्रकार कलिमें गवालम्भन प्रभृति वर्जित हैं, उसी प्रकार वर्जित है । कहीं-कहींपर इस तरहकी भी बात मिलती है कि मद्यके अभावमें विजया अर्थात् भाँग देना चाहिये; लेकिन वह विजयादान भी ब्राह्मणके लिये निषिद्ध है । इसका कारण यह है कि मुख्यमें जिसका अधिकार रहता है अनुकल्पमें भी उसीका अधिकार रहता है । जिस प्रकार लक्ष्मी-पूजामें कमलपुष्पका निषेध है उसी प्रकार ब्राह्मणके लिये विजया निषिद्ध है । भैरवतन्त्रमें ब्राह्मणोंके लिये मद्यका निषेध करते हुए लिखते हैं—

मादकं सकलं वस्तु वर्जयेत् कनकादिकम् ।

अर्थात् भाँग, धतूरा आदि सकल मादक द्रव्योंका ब्राह्मण परित्याग कर दे ।

अब यहाँ क्रमप्राप्त मद्य-मैथुन आदिका उचित अर्थ लिखा जा रहा है । सिद्धासनमें सुप्त शेषनागसदृश विद्युत्-वर्ण अधोमुख कुण्डलिनी-शक्तिको उठाकर पञ्चचक्रकमलमार्गसे चित्रिणी-नाड़ीद्वारा सहस्रदल कमलमें परमशिवके साथ संयोग करानेपर जो शक्ति और शिवमें सामरस्य होता है, उसीको मैथुन कहते हैं । और उस सामरस्यसे जो शक्ति-रसरूप अमृत उत्पन्न होता है, जिसे योगीलोग खेचरीमुद्रा-द्वारा पान करते हैं, वही मद्य है । इसका प्रमाण यह है—

न मद्यं माधवीमद्यं मद्यं शक्तिरसोद्भवम् ।
सामरस्यामृतोल्लासं मैथुनं तत्सदाशिवम् ॥ आदि ।

यद्यपि यह विषय विशेषरूपसे उल्लेखनीय नहीं है, अत्यन्त गोपनीय है, तथापि अनर्थसे लोगोंको बचानेके लिये संक्षेपमें लिख दिया गया है ।

महामाया

महामायारूपे परमविशदे शक्ति ! अमले !
रमा रम्ये शान्ते सरलहृदये देवि ! कमले !
जगन्मूले आद्ये कविविबुधवन्द्ये श्रुतिनुते !
*बिना तेरी दाया कब अमरता लोग लहते !!

—लोचनप्रसाद पाण्डेय

* कृपा तेरी चम्बे ! भव-जनित-बाधा-दलनि है ।

वाममार्गका यथार्थ स्वरूप

(लेखक—श्रीस्वामी श्रीतारानन्दतीर्थजी, तारापुर)

तान्त्रिक धर्म आदिसे ही वैदिक धर्मका साथी है, क्योंकि दोनों हरि-हरद्वारा प्रकट हुए हैं। और जिस तरह हरि-हरमें अभेद है, उसी तरह वेद-तन्त्र (निगम-आगम) में भी अभेद है। श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्का कथन है कि 'वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः।' अर्थात् वैदिक, तान्त्रिक तथा वेद और तन्त्रसे मिश्रित तीन प्रकारका मेरा यज्ञ है। किन्तु वैदिक और तान्त्रिकके पृथक्-पृथक् होनेसे द्वैतको ही प्रधानता रहेगी और वेद-तन्त्रके मिश्रित हो जानेपर अद्वैतकी प्रधानता हो जायगी। इस कारण हमारे महर्षि अपनी प्रिय सन्तान 'सनातन आर्य' हिन्दू-जनताके कल्याणार्थ वेद-तन्त्रसे मिश्रित कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड, दोनों पद्धतियोंका निर्माण वेद-तन्त्रमें अभेदरूपसे कर गये हैं और दोनोंका लक्ष्य एक ज्ञानकाण्ड ही निश्चित कर गये हैं, जिससे वेद-तन्त्रमें तथा कर्मकाण्ड-उपासनाकाण्डमें परस्पर भेद-भूतका आवेश न होने पावे। अतः 'द्वितीयाद् वै भयं भवति'—इस श्रुति-घोषित द्वैत-भूतसे सदाके लिये अलग रहना चाहिये।

किन्तु 'कालस्य कुटिला गतिः।' आजकल तन्त्र-तत्त्वसे अनभिज्ञ जनतामें सर्वत्र एक महान् शङ्का उत्पन्न हो गयी है कि तन्त्रमें वाममार्ग है और वाममार्गमें भैरवी-चक्र तथा पञ्चमकारोंकी ही प्रधानता है। किन्तु हमलोगोंको 'वाम' शब्द मात्रसे ही भयभीत नहीं हो जाना चाहिये, उसके वास्तविक अर्थका अन्वेषण करना चाहिये। 'वाम' शब्द स्पष्टरूपमें वेदमें आया है। ऋग्विधानमें कहा है—

> अस्य वामस्य सूक्तं तु जपेद्वान्यत्र वा जले।
> ब्रह्महत्यादिकं दग्ध्वा विष्णुलोकं स गच्छति॥

अर्थात् इस वाम-सूक्तके पाठमात्रसे ही विष्णुलोककी प्राप्ति अर्थात् 'तद् विष्णोः परमं पदम्' के अनुसार विष्णुपद-प्राप्तिरूपी मोक्ष मिलता है। निरुक्तमें 'वाम' शब्दका अर्थ 'प्रशस्य' लिखा है। यथा—

> अश्रेमाः, अनेमाः, अनेद्यः, अनवद्यः, अनभिशस्ताः, उक्थ्यः, सुनीथः, पाकः, वामः, वयुनमिति दश प्रशस्यनामानि।

यहाँ 'वाम' नाम प्रशस्यका है। प्रशस्य प्रज्ञावान् ही होते हैं। यथा—

> य एव हि प्रज्ञावन्तस्त एव हि प्रशस्या भवन्ति।
> (दुर्गाचार्य)

इससे सिद्ध होता है कि प्रज्ञावान् प्रशस्य योगीका नाम ही वाम है और उस योगीके मार्गका ही नाम वाममार्ग है। तन्त्रके प्रवर्तक भगवान् शिव कहते हैं—

> वामो मार्गः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

अर्थात् वाममार्ग अति कठिन है और योगियोंके लिये भी अगम्य है। तो फिर वह इन्द्रियलोलुप जनताके लिये कैसे गम्य हो सकता है? शिवजीका कथन है कि 'लोलुपो नरकं व्रजेत्'—(विषय-) लोलुप वाममार्गी नरकगामी होता है। क्योंकि वाममार्ग जितेन्द्रियके लिये है और जितेन्द्रिय ही योगी होते हैं। इस प्रकार वाममार्गके अधिकारीके लक्षण सुननेसे ही यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि वाममार्ग जितेन्द्रिय योगी पुरुषोंका है, न कि लोलुप लोगोंका। यथा—

> परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसकः।
> परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः॥
> तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारिता।
> (मेरुतन्त्र)

अर्थात् परद्रव्य, परदारा तथा परापवादसे विमुख संयमी ब्राह्मण ही वाममार्गका अधिकारी होता है। और भी—

> अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सर्वसिद्धिदः।
> जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्मभिः॥
> (पुरश्चर्यार्णव)

अर्थात् शिवोक्त सर्वसिद्धियोंका देनेवाला वाममार्ग इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाले योगीके लिये ही सुलभ है। अनन्त जन्म लेनेपर भी वह लोलुपके लिये सुलभ नहीं हो सकता। और भी—

तन्त्राणामतिगूढत्वात्तद्भावोऽप्यतिगोपितः ।
ब्राह्मणो वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बुद्धिमान् वशी ॥
गूढतन्त्रार्थभावस्य निर्मथ्योद्धरणे क्षमः ।
वाममार्गेऽधिकारी स्यादितरो दुःखभाग् भवेत् ॥
(भावचूडामणि)

अर्थात् तन्त्रोंके अति गूढ़ होनेके कारण उनका भाव भी अत्यन्त गुप्त है। इसलिये वेद-शास्त्रोंके अर्थ-तत्त्वको जाननेवाला जो बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय पुरुष गूढ़ तन्त्रार्थके भावका मथन करके उद्धार करनेमें समर्थ हो वही वाममार्गका अधिकारी हो सकता है। उसके सिवा दूसरा दुःखका ही भागी होता है।

इस तरह तन्त्र-ग्रन्थोंमें वाममार्गके अधिकारीका वर्णन बहुत जगह पाया जाता है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि इन्द्रिय-लोलुप लोगोंका वाममार्गमें कोई अधिकार नहीं, बल्कि उसका अधिकारी जितेन्द्रिय ही है।

अब जरा भैरवी-चक्रपर विचार करें। तन्त्रमें एक भैरवी-चक्रका ही नहीं किन्तु श्रीचक्र, आद्याचक्र, शिवचक्र, विष्णुचक्र इत्यादि नाना प्रकारके चक्रोंका वर्णन आता है और इनका वर्णन उपनिषदोंमें भी आता है। भावोपनिषद्, त्रिपुरातापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उपनिषदोंमें चक्रोंकी बहुत अधिक महिमा गायी है। जैसे—

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन् महाचक्रनामकं नो ब्रूहीति सार्वकामिकं सर्वाराध्यं सर्वरूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारम्।
(नृसिंहतापिनी)

तदेतन्महाचक्रं बालो वा युवा वा वेद स महान् भवति स गुरुर्भवति। (नृसिंहतापिनी)

जब देवताओंने भगवान्‌से कहा कि महाचक्रोंके नायकका वर्णन हमें सुनाइये तो भगवान्‌ने कहा कि वह महाचक्रनायक सब देवताओं और ऋषियोंद्वारा आराधित, सर्वरूप, सर्वादि तथा मोक्षका द्वार है। उस चक्रको जो बालक या युवा जानता है वह महान् हो जाता है, वह गुरु होता है। ऋग्वेदमें भी लिखा है कि 'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।' अर्थात् ऐसे चक्रमें, जिसमें पाँच कोण हैं, सम्पूर्ण भुवन ठहरे हुए हैं। इस तरह चक्रके विषयमें बहुत-से प्रमाण वेदोपनिषदोंमें मिलते हैं। और पञ्चमकारोंका वर्णन भी आध्यात्मिक भावसे आता है। जैसे—

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्॥

अर्थात् मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—ये पाँच आध्यात्मिक मकार ही योगियोंको मोक्ष देनेवाले हैं।

व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः॥

ब्रह्मरन्ध्रसहस्रदलसे जो स्रवित होता है उसे सुधा कहते हैं। कुलकुण्डलिनीद्वारा ही योगिजन उसका पान करते हैं। इसीका नाम मद्यपान है। इसके अतिरिक्त पीनेवाला मद्यप है।

और भी—

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकलासुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा॥

ब्रह्मरन्ध्रके सहस्रार-कमलरूपी पात्रसे जो ब्रह्माण्डको तृप्त करनेवाली विशुद्ध सुधाधारा बहती है वही पीनेयोग्य मदिरा है।

पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेत् चित्तं मांसाशी स निगद्यते॥

अर्थात् पुण्य-पापरूपी पशुको ज्ञानरूपी खड्गसे मारकर जो योगी मनको ब्रह्ममें लीन करता है, वही मांसाशी (मांसाहारी) है।

और भी—

कामक्रोधौ पशू तुल्यौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्।

× × ×

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्त्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति तेषां बुधाः॥
(भैरवयामल)

अर्थात् विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी पशुओंको विवेकरूपी तलवारसे काटकर दूसरे प्राणियोंको सुख देनेवाले निर्विषयरूप मांसका भक्षण करते हैं—

मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद्देवि इतरे प्राणिहिंसकाः॥

'मन आदि सारी इन्द्रियोंको वशमें करके आत्मामें लगानेवालेको ही मीनाशी कहते हैं। दूसरे तो जीवहिंसक हैं।'

और भी—

आशातृष्णाजुगुप्साभयविषयघृणामानलज्जाप्रकोपाः
ब्रह्माग्नावष्ट मुद्राः परसुकृतिजनः पच्यमानः समन्तात्।
नित्यं सम्भावयेत्तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा॥
(भैरवयामल)

अर्थात् आशा-तृष्णादि आठ मुद्राओंको ब्रह्मरूपी अग्निमें अच्छी तरह पकाता हुआ दिव्य भावका अनुरागी योगी सावधान मनसे भक्षण करे; पशुहिंसासे विमुख ऐसा महात्मा पुरुष संसारमें रुद्र-तुल्य होता है।

और भी—

या नाडी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्तालिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्॥

अर्थात् परमानन्दको प्राप्त हुई सूक्ष्म रूपवाली सुषुम्णा-नाड़ी है; वही आलिङ्गन करनेके योग्य सेवनीया कान्ता है, न कि मानवी सुन्दरी वेश्या। सुषुम्नाका सहस्रचक्रान्तर्गत परब्रह्मके साथ संयोगका ही नाम मैथुन है, स्त्री-सम्भोगका नहीं। इस तरह भैरवयामलादि तन्त्रोंमें विस्तारके साथ वर्णन आया है।

सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे यह वाम-मार्ग भी तीन प्रकारका है। जैसे—

यदुक्तं ते मया तन्त्रं त्रिविधं त्रिगुणात्मकम्।
सात्त्विकं तत्र सम्प्रोक्तं राजसञ्चापि कुत्रचित्।
तामसञ्चापि सम्प्रोक्तं धीमांस्तस्मात्समुद्धरेत्॥
(गान्धर्व)

अर्थात् शिवजी कहते हैं, मैंने तीनों गुणोंसे युक्त तीन प्रकारके तन्त्रकी रचना की है। उनमें सात्त्विक, राजस, तामस तीनोंका समावेश है। बुद्धिमान् यथाधिकार उद्धार कर लें।

फिर इनमेंसे एक-एक करके पाँच-पाँच भेद हैं। जैसे—

कौलिकोऽङ्गुष्ठतां प्राप्तो वामः स्यात्तर्जनीसमः।
चीनः क्रमो मध्यमः स्यात् सिद्धान्ती योऽवरो भवेत्॥
कनिष्ठः शाबरो मार्ग इति वामस्तु पञ्चधा॥
(तन्त्रान्तर)

अर्थात् कौलिक, वाम, चीन, सिद्धान्ती और शाबर—ये वामके वैसे ही पाँच भेद हैं जैसे एक ही हाथमें छोटी-बड़ी पाँच अँगुलियाँ होती हैं। इनमें अङ्गुष्ठस्थानीय कौल है। (कुले भवः कौलः) कुलमें होनेवालेको कौल कहते हैं। जैसे—

कुलं गोत्रमिति ख्यातं तच्च शक्तिशिवोद्भवम्।
यो न मोक्षमिति ज्ञानं कौलिकः परिकीर्त्तितः॥

अर्थात् कुल नाम गोत्रका है, गोत्र शिव-शक्तिसे उत्पन्न है। शिव-शक्तिमें अभेद-ज्ञान रखनेवाला कौल है।

ब्रह्मणि ब्रह्मशक्तौ च भेदोऽभेद इतीरितः।

और भी—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥
शक्तिशक्तिमतोर्यद्वदभेदः सर्वदा स्थितः।
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् पराशक्तिः परात्मनः॥
न वह्नेर्दाहिका शक्तिर्व्यतिरिक्ता विभाव्यते।
केवलं ज्ञानसत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने॥
शक्त्यवस्थाप्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना।
तदासौ शिवरूपः स्याच्छैवीमुखमिहोच्यते॥
(अभिनवगुप्ताचार्य)

उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ—ये कौलिकके भी तीन भेद हैं। यथा—

अगम्यागमनञ्चैव धूर्तमुन्मत्तवञ्चकम्।
अनृतं पापगोष्ठीं च वर्जयेत् कौलिकोत्तमः॥

अर्थात् अगम्यागमन, धूर्त, उन्मत्त, चुगल, झूठ, पाप-वार्त्ताको उत्तम कौल त्याग दे।

दक्षवामक्रियायुक्तः कौलश्चोभयरूपतः। इत्यादि

चीनके भी दो भेद हैं—

निष्कलः सकलश्चेति चीनाचारो द्विधा मतः।
निष्कलो ब्राह्मणानाञ्च सकलो बुद्धगोचरः॥
(नील-तन्त्र)

सकल-निष्कल-भेदसे चीनाचार दो प्रकारका है। ब्राह्मणोंके लिये निष्कल चीनाचार है और बुद्धानुयायियोंके लिये सकल। इसके अतिरिक्त और भी तन्त्रोंमें दिव्य, वीर, पशु आदि भावोंका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

रुद्रयामलमें कहा गया है—

आदौ भावं पशुं कृत्वा पश्चात् कुर्यादवश्यकम् ।
वीरभावो महाभावः सर्वभावोत्तमोत्तमः ॥
तत्पश्चाच्छ्रेयसां स्थानं दिव्यभावो महाफलः ॥

आदिमें पशुभावको करके, उसके बाद अवश्य वीर-भावको ग्रहण करे अर्थात् वीर-वैष्णव, वीर-शैव आदि उत्तम वीर-भावोंको ग्रहण करे और उसके बाद दिव्य-भाव धारण करे। उत्तम वीर-भावका श्रेयस्कर स्थान दिव्य-भाव ही महाफल है। निर्वाणमें कहा गया है—

दिव्यभावयुतानां तु तत्त्वज्ञानं सदा भवेत् ।

अर्थात् दिव्य भाववालोंको तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। तन्त्रोंका लक्ष्य आदिसे अन्ततक अद्वैत ही है। विस्तार-भयसे हम इस लेखको यहींपर समाप्त करते हैं।

शिवमिति ।

श्रीदुर्गासप्तशती

(१)

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाई हरिशङ्करजी शास्त्री)

श्रीदुर्गासप्तशती मार्कण्डेयपुराणके अन्तर्गत तेरह अध्यायका शक्तिमाहात्म्यप्रदर्शक एक भाग है। जिसमें सब पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाली शक्तिके स्वरूप, चरित्र, उपासना तथा साधनाके उपाय आदिका सम्यक् निरूपण किया गया है।

कुछ लोग अपने-आप दुर्गासप्तशतीकी पुस्तक पढ़कर ही अनुष्ठान करने लगते हैं और इष्टसिद्धि न होनेपर भौंह चढ़ाकर कह बैठते हैं कि 'क्या रक्खा है, कलियुगमें मन्त्रादिकी सामर्थ्य ही नष्ट हो गयी है' तथा यों कहकर वे 'कलौ चण्डिविनायकौ' इस वाक्यको धोखेकी बात बतलाते हैं, अतः इसके विषयमें यहाँ कुछ कहना आवश्यक है।

किसी अविच्छिन्न गुरुपरम्परासे सम्पन्न उपासकसे श्रीदुर्गासप्तशतीकी विधिपूर्वक दीक्षा लेनी चाहिये। यदि दीक्षाविधान न बन सके तो उपदेश ग्रहण करके स्वयं उसके एक सहस्र पाठ करने चाहिये, और उसका दशांश होम, उसका दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन तथा उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चाङ्ग-पुरश्चरणसे मन्त्र सिद्ध करना चाहिये, साथ ही नवार्ण-मन्त्रकी दीक्षा या उपदेश ग्रहणकर वर्णलक्ष (नवलक्ष) जप करके होम, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन कराकर पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण-द्वारा मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। इस प्रकार यदि अनुष्ठान किया जाय तो निस्सन्देह शीघ्र ही अभीष्ट-सिद्धि होगी।

पाठ करनेवाला पुरुष अपने ब्राह्मकर्ममें श्रद्धावान् और कुशल हो, फिर ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करता रहे, तन्त्रोक्त विधानके अनुसार स्तोत्रके पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग-को यथावत् जानकर उसका प्रयोग करे और एकाग्र होकर मन्त्रार्थका निरन्तर चिन्तन करते हुए नासाग्र-दृष्टि होकर सम्पुट लगाकर पाठ करे। मन्त्रशास्त्रमें सहस्रसे कम संख्याके श्लोकवाले स्तोत्रका पत्र निरपेक्ष कण्ठस्थ (बिना पन्ने हाथमें लिये) पाठ करनेकी आज्ञा है। और सप्तशतीस्तोत्र तो नामसे ही सात सौ श्लोकोंका है। यदि श्लोक कण्ठ न हों तो पन्ने हाथमें रखनेकी आज्ञा है। तथापि पाठसमाप्तिपर्यन्त बीचमें चित्त कहीं अन्यत्र न जाय इसके लिये बड़ी सावधानीसे धीरे-धीरे स्पष्ट वर्णोच्चारण करते हुए पाठ करना चाहिये। यदि सब विधानोंको यथावत् समझकर और जितेन्द्रिय रहकर यथाविधि अनुष्ठान करे तो वह पराशक्तिका अनुग्रह अवश्य प्राप्त करेगा।

यहाँ 'पराशक्ति'-पद महालक्ष्मीका बोधक है, क्योंकि प्राधानिकरहस्यमें, जहाँ त्रिमूर्तिके उद्भवका प्रसङ्ग आता है, वहाँ 'सर्वस्याद्या महालक्ष्मीः' ऐसा स्पष्ट निर्देश है। यद्यपि महिषासुरका शमन करनेके लिये देवोंके तेजोंशसे सम्भूता अष्टादश भुजावाली महालक्ष्मीका वर्णन आता है तथापि यह पराशक्ति महालक्ष्मी प्रकृतिरूपा है, और त्रिमूर्तिमें परिगणित महालक्ष्मी प्राधानिकरहस्यमें कहे हुए 'श्री पद्मे०' इत्यादि पदमें उपस्थापित हैं। इन्हींका तामसरूप महाकाली हैं तथा सात्त्विकरूप महासरस्वती हैं; और वह स्वयं तो त्रिगुणात्मिका, सबमें व्यापक होकर स्थित हैं।

महालक्ष्मीने मानस-सङ्कल्पसे एक युग्म सृजा, जिसमें ब्रह्मा नर और लक्ष्मी नारीरूपमें बने, फिर महाकालीने जो युग्म-सृष्टि की उसमें नीलकण्ठ पुरुष और त्रयी विद्या स्त्री-रूपमें प्रकट हुई। तथा सरस्वतीने विष्णु पुरुष और गौरी स्त्रीका युग्म सरजा। इन तीन युग्मोंमेंसे तीन मिथुन अर्थात् पति-पत्नी भावापन्न हुए ब्रह्मा और स्वरा, रुद्र और गौरी, तथा विष्णु और लक्ष्मी। यहाँ युवति-शक्तियाँ स्वयं पुरुषत्व-को प्राप्त होकर तीन मिथुनके रूपमें आयीं।

यहाँ शङ्का हो सकती है कि युवतियाँ पुरुष-भावको प्राप्त कैसे हुईं? इसका उत्तर यह है कि सामान्य बुद्धिमें यह बात शीघ्र नहीं आयगी। इस अर्थको विशिष्ट-बुद्धि ही ग्रहण कर सकती है, इसीलिये कहा है 'चक्षुष्मन्तोऽनु-पश्यन्ति' अर्थात् जो चक्षुष्मान् हैं, जिन्हें तत्त्वदृष्टि प्राप्त है, जिन्हें पराशक्तिका प्रभाव ज्ञात है, वही इस बातको समझ सकते हैं, दूसरे अज्ञानी पुरुष इसे नहीं समझ सकते। एकादशाध्यायमें नारायणी-स्तुति-प्रसङ्गमें कहा है कि—

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः॥

अर्थात् हे देवि, समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं—चार वेद, शिक्षादि छः वेदाङ्ग, अष्टादश पुराण, महाभारतादि इतिहास, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र इत्यादि चतुर्दश विद्या, तथा भिन्न-भिन्न भाषाएँ, आयुर्वेद, धनुर्वेदादि उपवेद, विद्युत्, विमानादि सब विद्याएँ तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप हैं। इसी कारण तुम महाविद्या कहलाती हो। इस सारे जगत्में अर्थात् देव, मनुष्य, नाग प्रभृति चतुर्दश भुवनमें स्थित समस्त स्त्रियाँ भी स-कला—अपनी कलाओंके सहित तुम्हारे ही विभिन्न प्रकार हैं। यहाँ कला-पदसे पुरुषोंको ही समझना चाहिये। क्योंकि चौंसठ कला और स्त्रियोंमें स्थित पातिव्रत्यादि गुण तो 'विद्या' और 'स्त्री' में ही समाविष्ट हो जाते हैं। इसलिये यहाँ कला-शब्दसे पुरुषोंका ही ग्रहण करना उचित है। इसी पद्यके तीसरे चरणमें, 'त्वया एकया अम्बया एतत् पूरितम्' अर्थात् माँ! तुमने ही अकेले यह सारा ब्रह्माण्ड भर दिया है—ऐसा कहा गया है। यहाँ विचारनेकी बात यह है कि 'स्त्रियः' का 'समस्ताः' विशेषण लगानेसे समस्त स्त्रीलिङ्गसे बोधित होनेवाले प्राणियोंका बोध हो जाता है, पुनः 'सकलाः' विशेषण भी यदि 'समस्त' अर्थमें लिया जाय तो इसमें पुनरुक्तिदोष आ जायगा। और एक ही शक्तिमें समस्त जगत् पूरित है, इसके भीतर पुरुषवर्गको न माननेसे जो अनुपपत्ति-दोष आता है, उसके परिहारके लिये 'कला' शब्दको पुरुषवर्ग-बोधक न मानें तो 'त्वयैकया' का अभिप्राय पूरा नहीं होता।

शक्ति सर्वत्र दो प्रकारकी अनुभव-गोचर होती है। जिस प्रकार प्रयोक्ताको प्रयोगके द्वारा विद्युत्में आकर्षण और विकर्षणका प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार पराशक्ति भी अपने अनुग्रहसे प्रकट होती है। इसीलिये कहा है कि इतर प्राकृतजनोंको तुम्हारा सर्वात्मकत्व दिखलायी नहीं देता। विद्युत्के समान ही शक्तिकी द्विविधता (Positive and Negative)–मिथुनरूपता सर्वत्र व्यापक है।

जैसे पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि प्राणीवर्ग नर-नारी-रूपमें प्रत्यक्ष हैं, उसी प्रकार वृक्ष-पाषाणादिमें भी नर और मादारूपमें शक्तिके दो प्रकार सर्वत्र प्रतीत होते हैं। यही पराशक्तिके सर्वात्मभावका सबसे अधिक प्रत्यक्ष परिचय है! परन्तु प्रयत्न करके इस पराशक्तिके अनुग्रहका पात्र बननेमें जितनी कठिनाई है, उससे कहीं अधिक कठिनाई उसके इस स्वरूपको हृदयङ्गम करनेमें है।

संसारमें कई ऐसे प्रश्न उठते हैं, जिनका उत्तर शीघ्र नहीं दिया जा सकता। जैसे, पहले बीज है या वृक्ष? ऐसे प्रश्न प्रायः निरुत्तर-से प्रतीत होते हैं, इनके लिये अन्तमें यही कहना पड़ता है कि दोनोंको अनादि मानो। इसी प्रकारका यह भी प्रश्न है कि पहले पुरुषकी सृष्टि होती है या स्त्रीकी?—इसके उत्तरमें भी अन्तमें दोनोंको अनादि ही कहना होगा। परन्तु अनादि कह देनेसे तो प्रश्नका उत्तर नहीं होता—प्रश्न तो ज्यों-का-त्यों बना ही रह जाता है। इस गम्भीर प्रश्नको हल करनेके लिये पूर्वोक्त महा-लक्ष्मीपदबोध्य पराशक्तिसे महाकाली आदि त्रितयीद्वारा मिथुनत्रयोत्पत्तिका प्रसंग संगति-दर्शक होकर समस्त जगत्की शक्तिरूपताको स्पष्ट कर देता है, और केवल परा-शक्तिको अनाद्यनन्त माननेसे सारी समस्या हल हो जाती है। इस शास्त्रीय रहस्यविद्याके अनभ्यासी आधुनिक वैज्ञानिक इस विषयमें क्या कहते हैं, यह बात भी ध्यान देने-योग्य है—

The female is the primary and original sex; originally and normally all life centres about the female. The male, not necessary to the scheme of life; was developed under the operation of the principle of advantage to secure organic progress through the crossing of strains.

—इस पाश्चात्य विद्वान्‌के लेखसे भी पराशक्तिका अनादित्व सिद्ध होता है। पहले तो यह मानना होगा कि व्यवहारमें जातिभेदकी आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि उस समय सिवा स्त्री आदिशक्तिके और कुछ था ही नहीं, फिर जातिकल्पनाके लिये अवसर ही कहाँसे आता। हाँ, यदि कल्पना ही करनी है तो 'प्रारम्भिक और मूलभूत जाति स्त्रीजाति है। यदि सृष्टितत्त्वकी सूक्ष्मतया आलोचना की जाय तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि प्राथमिकभावसे तथा प्रकृतिके नियमानुसार मिथुन-सृष्टिके आरम्भमें सबसे पहले नारीकी उत्पत्ति हुई। साधारणतया प्राणिमात्रकी उत्पत्ति नारी-जातिपर ही अवलम्बित है। प्राणिजगत्‌की सृष्टिके लिये पुरुषजातिकी आवश्यकता ही नहीं थी या गौण थी। रज और वीर्यके संयोगसे उनके विभिन्न गुणोंद्वारा जीवनशक्तिको परिपुष्ट एवं प्रस्फुटित करनेके हेतु लाभकी दृष्टिसे पुरुषजातिकी पीछेसे सृष्टि हुई।'

यहाँ इस आधुनिक Occidental Evolution Theory–पाश्चात्य सृष्टि-क्रम-कल्पनाका अवतरण प्रमाणके रूपमें नहीं दिया गया है बल्कि इससे यही दिखलाना है कि 'अप्-टु-डेट्' विचारक लोगोंने भी स्त्री-जातिका प्राधान्य स्वीकार कर इसीके द्वारा पुरुषादि सष्टिकी युक्तियुक्तता प्रमाणित समझी है। अतएव नारायणीस्तुतिमें कथित 'त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्' मुनिवचनोंमें किञ्चित्मात्र भी शङ्काके लिये अवसर नहीं है।

देवताका अनुग्रह प्राप्त करना कोई बाजारू सौदा नहीं है। 'मैंने इतना अनुष्ठान किया पर कुछ भी फल न हुआ,' ऐसा कहना ठीक नहीं है। बल्कि निरुद्विग्न होकर कर्त्तव्यपरायण होना चाहिये। यदि इष्टसिद्धिके प्रतिबन्धकोंके हटानेके लिये चेष्टा न की गयी तो अनुष्ठानमें दोष लगाना अनुचित है। क्योंकि यह न्यायका सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि कारणके साथ जब प्रतिबन्धकका अभाव होता है तभी वह कारण कार्यको उत्पन्न कर सकता है।

महर्षि मार्कण्डेयने सप्तशतीस्तोत्रके पञ्चमाध्यायके आरम्भमें लोगोंकी चित्तवृत्तिको उद्दीप्त करनेके लिये एक बड़ी रहस्यपूर्ण बात कही है—

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥

इस श्लोकमें मुनि कहते हैं कि 'पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ दो असुरोंने मद और बलके आश्रयसे शचीपतिके त्रैलोक्य और यज्ञ-भागोंको हर लिया।' इस श्लोक-गत विशेषणोंसे क्या रहस्य सूचित होता है? शुम्भ और निशुम्भ दोनों असुर थे—'असून् प्राणान् रान्ति ददति इति असुरः'—भला बतलाइये जो पुरुष अपने प्राणोंको भी बलि करनेमें नहीं हिचकता उससे अभीष्ट-सिद्धि कैसे दूर रह सकती है? यह तो ठीक है, परन्तु इन्द्रके सर्वस्व हरे जानेका कारण क्या है?—यहाँ भी मुनिने अभिधान-औचित्यका अद्भुत परिचय दिया है। अमरकोशादि अभिधान-ग्रन्थोंमें 'इन्द्रो मरुत्वान् मघवा' आदि अनेकों नाम दिये गये हैं, परन्तु यहाँ इन सबको छोड़कर शचीपति नाम देनेका विशेष तात्पर्य है। 'रात्रिं दिवं शचीं पाति इति शचीपतिः'—रात-दिन निरन्तर अपनी प्रिया इन्द्राणीका ही पालन करनेमें, उसीके संकेतसे सदा चलनेमें रत रहनेवालेका त्रैलोक्याधिपत्य यदि कोई हर ले जाय, और उसके यज्ञ-भागोंको मदमत्त तथा बलवान् विरोधी उठा ले जायँ तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात होगी?

तात्पर्य यह है कि स्वयं अकर्मण्य बनकर मन्त्रादिके अनुष्ठानमें लगे रहनेवालोंको ध्यान रखना चाहिये कि देवता जब अपने उपासकपर अनुग्रह करते हैं तब 'ददामि बुद्धियोगं तम्'–इस भगवद्वचनानुसार उसे बुद्धियोग देते हैं। तत्पश्चात् प्रयत्नमें लगे रहनेपर देवताके अनुग्रहका फल प्राप्त होता है। आधुनिक युगकी तपःश्रुति-सम्पत्ति-विहीन जनताका 'प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका' इस वाक्यार्थकी आशा करना प्रायः दुराशामात्र है।

अतः पराशक्तिका अनुग्रह सम्पादन करनेकी चाह रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह विधिपूर्वक दीक्षा या उपदेश ग्रहणकर गुरूपदिष्ट विधिसे मन्त्र सिद्ध करे, फिर स्वयं नियमबद्ध होकर यथाविधि अनुष्ठान करके प्रयत्नमें लगे, ऐसा

करनेसे फिर मन्त्र और गुरु-शास्त्रादिमें अविश्वास करनेका अवसर कदापि नहीं आ सकता।

देवताके आराधनमें ये तीन बातें मुख्य हैं—१—श्रद्धा, यह अत्यन्त आवश्यक है, २—विधिका अक्षरशः पालन, इसके बिना तो काम ही नहीं चलता; लोकमें भी देखा जाता है कि यदि लिफाफेमें पाँच पैसे रखकर उसकी पुड़िया बनाकर उसे लेटरबक्समें छोड़ दें तो परिणाम यह होगा कि प्रातःकाल clearance (लेटरबक्स खोलनेवाला) करनेवाला उस लिफाफेसे पाँच पैसे निकालकर अपनी जेबके सुपुर्द करेगा और लिफाफेको फाड़कर फेंक देगा। परन्तु यदि चिट्ठीको लिफाफेमें बन्दकर ऊपर पाँच पैसेका टिकट चिपकाकर पोस्टबक्समें डाला जाय तो वह पत्र यथासमय यथाभिमत स्थानपर पहुँच जायगा। इस उदाहरणमें विधि-पूर्वक और विधि-विहीन कर्मोंका फल स्पष्ट दिखलाया गया है। अतः देवताकी आराधनामें विधि-विहीनता नहीं होनी चाहिये। ३—इसी प्रकार अनुष्ठान-विहीनता भी सिद्धिका प्रतिबन्धक है। प्रत्येक अनुष्ठानमें अङ्ग और उपाङ्गका क्रम रहता है। यदि इस क्रममें पूर्वापरका विपर्यय हो जाय तो उससे केवल इष्टसिद्धिमें बाधा ही नहीं होती बल्कि अनिष्टापत्तिका भी प्रसंग सम्भव हो जाता है। इसलिये गुरुकी शरणमें जाकर पहले प्रयोग-साक्षात्कार करनेकी परमावश्यकता है, अन्यथा अनुष्ठान-विपर्यय होनेका भय है।

जो गुरु अध्यापन कराकर शिष्यको उसका प्रयोग करके स्वयं दिखला सकते हैं वही यथार्थ गुरु हैं, और जो शिष्य गुरुसे विद्या सीखकर उसके समक्ष यथाविधि प्रयोगकर विद्याको पूर्णतया सिद्ध कर लेता है वही यथार्थ शिष्य है। दूसरे लोग तो गुरु और शिष्यका स्वाँग भरते हैं।

(२)

(लेखक—बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजी)

श्रीदुर्गासप्तशती हम हिन्दुओंकी एक पूज्य पुस्तक है। दुर्भाग्यवश वह हममेंसे बहुतोंके लिये नित्य-पाठकी पोथी है। जो लोग उसे स्वयं नित्य नहीं पढ़ते उनके घर भी दोनों नवरात्रियोंमें पुरोहितजी उसका पाठ कर जाया करते हैं। लोग उसके श्लोकोंको मन्त्रकल्प मानते हैं और उनसे हवनादि करते हैं। मैं 'दुर्भाग्यवश' इसलिये कहता हूँ कि मेरी ऐसी धारणा है कि आजकल जो पुस्तक हमारे नित्य-पाठकी पोथी हो जाती है उसकी हम प्रायः दुर्गति कर डालते हैं। उसके शब्दोंको रट लेनेमें ही हमारी इतिकर्तव्यता रह जाती है। उसके अर्थ और भावसे हमें प्रायः कोई सरोकार नहीं रह जाता। मेरी निजकी धारणा है—और यह धारणा कई बारकी आवृत्तिपर अवलम्बित है—कि सप्तशतीके श्लोक मन्त्रशक्ति रखते हों या न रखते हों पर उसमें मनोविज्ञानका बड़ा अच्छा समावेश है, और वह योग और वेदान्तकी सुन्दर शिक्षाओंसे परिप्लुत है। मैं इस लेखमें सब बातोंके दिखलानेका दावा तो नहीं कर सकता पर विद्वानोंका ध्यान इस ग्रन्थ-रत्नकी ओर अवश्य आकृष्ट करना चाहता हूँ। दुःखकी बात यह है कि इतने आदमी इस पुस्तकको पढ़ते और सुनते हैं पर जिन लोगोंने इसकी व्याख्या करनेका ठीका लिया है वह इसके तत्त्वोंको या तो समझते नहीं या लोगोंके सामने रखते नहीं।

सङ्घे शक्तिः—इस सिद्धान्तको सभी मानते हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो काम एक व्यक्ति नहीं कर सकता उसे ही समुदाय कर डालता है। पर दुर्गासप्तशतीमें इसका जो सुन्दर उदाहरण और सुन्दर उपदेश दिया हुआ है उसकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं आकर्षित किया जाता। द्वितीय अध्यायमें लिखते हैं—देवासुरयुद्धमें देवसैन्यको पराजित करके महिषासुर इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुआ। देवगणमेंसे किसीमें यह सामर्थ्य न थी कि उसका सामना कर सकता। उस समय आपत्तिसे सताये हुए और निःशक्त क्रोधसे जर्जरीभूत देवोंकी अन्तरात्मा हिल उठी। ब्रह्मा आदि सभी देवोंके शरीरसे तेज निकला। उसी तेजने एकत्र होकर महालक्ष्मीका स्वरूप धारण किया और महिषका मर्दन किया। जो काम पृथक्-पृथक् देवगण नहीं कर सके थे, जो काम सेनारूपसे मिलनेपर भी अपने-अपने व्यक्तित्व बने रहनेके कारण वह लोग नहीं कर सके, वही काम विपत्ति-की पराकाष्ठाकी अवस्थामें अपने व्यक्तित्वको एकमात्र दबाकर अपनी शक्तियोंको एकीभूत करके वही लोग करा सके। विजयदायिनी शक्ति उनके भीतर ही थी, कहीं बाहरसे नहीं आयी। यह हमलोगोंके लिये बड़ी ही शिक्षा-

दायिनी कथा है। संसारमें देखा जाता है कि जो लोग व्यवहारकुशल होते हैं उनमें वाक्पटुता कम होती है, वाणिज्य-व्यवसायमें लगे हुए लोग प्रायः मितभाषी होते हैं और विद्याव्यसनी लोग तो स्वभावतः प्रगल्भ होते हैं, सप्तशतीने इस मनोवैज्ञानिक अनुभवका सुन्दर चित्र खींचा है। प्रथम चरित्रमें ब्रह्माजीके स्तोत्रके उत्तरमें महाकालीने एक शब्द भी न कहा। उनका काम करके अन्तर्द्धान हो गयीं। मध्यम चरित्रमें देवगणकी स्तुतिके उत्तरमें महालक्ष्मी 'तथा' मात्र कहकर अन्तर्हित हो गयीं। परन्तु उत्तम चरित्रमें देवगणके उत्तरमें महासरस्वती प्रायः डेढ़ अध्यायका व्याख्यान दे गयीं। संसारमें प्रायः सदैव और भारतमें आज-कल विशेषरूपसे हिंसा और अहिंसाका प्रश्न समझदार मनुष्योंके हृदयको दोलायित करता रहा है। किसीके लिये हिंसाका अर्थ है शत्रुका मूलोच्छेद, किसीके लिये अहिंसाका अर्थ है शत्रुके हाथसे सब कुछ सह लेना। एक ओर स्मृतियोंका उपदेश है 'हन्यादेव आततायिनः', दूसरी ओर महात्माजीका अहिंसाका आदेश है। ऐसी अवस्थामें साधारण मनुष्य क्या करे? व्यक्तिविशेषके लिये तो पूर्ण अहिंसा, योग-दर्शनके शब्दोंमें 'देशकालसमयाद्यनवच्छिन्नसार्वभौम-महाव्रत' है; ऐसा विशेष व्यक्ति सर्वत्र, हर दशामें, हर अवस्थामें, हर समय, हर व्यक्तिके साथ पूर्ण अहिंसाका पालन करेगा। पर मध्यम मार्गपर चलनेवाले साधारण मनुष्यके लिये यह उपदेश नहीं है। उनको तो यही उपदेश श्रेयस्कर है—"Hate the sin, but love the sinner." (पापसे घृणा, पर पापीसे प्रेम करो।) सप्तशतीने इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। महिषासुरके बधके बाद चौथे अध्यायमें देवगण कहते हैं—'हे भगवती! आप तो इन शत्रुओंको यों ही भस्म कर सकती थीं, इनपर शस्त्र चलानेकी क्या आवश्यकता थी?

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम्।

इसका उत्तर वे स्वयं यों देते हैं—'यह दुष्ट' पापकर्मा यदि यों मरते तो नरक जाते, आप चाहती थीं कि इनके उठ जानेसे संसारका कल्याण हो पर इनका भी कल्याण हो। इसीलिये शस्त्र चलाया कि लड़कर वीर-गति प्राप्त करके ये सब स्वर्ग जायँ।'

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥

सप्तशतीके शब्दोंमें जिसे 'चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता' कहा है, मुझे तो साधारण मनुष्यके लिये सबसे सुन्दर व्यावहारिक नीति प्रतीत होती है चाहे उसे हिंसा कहिये चाहे अहिंसा।

वेदान्त—अद्वैतवाद—के इसमें अनेक निदर्शन हैं। दसवें अध्यायमें शुम्भ कहता है कि तुम तो इन्द्राणी आदिके बलके सहारे लड़ रही हो। इसपर भगवतीके शरीरमें ये सब ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा जाती हैं। अकेले एक महासरस्वतीमूर्ति रह जाती है। उस अवसरपर देवी कहती हैं—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

इस जगत्में मैं अकेली हूँ, मेरे सिवा दूसरा कौन है। जिस देवीका इसमें वर्णन है वह शाङ्करवेदान्तकी मायासे अभिन्न है, इस बातको प्रथम अध्यायमें सुमेधाने स्पष्ट कर दिया है।

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

अर्थात् भगवान्की यह माया जगत्को मोहित करती है, यह देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती है। जिस बातको वेदान्तदर्शनके द्वितीय सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' के द्वारा प्रतिपादित किया गया है वही बात ब्रह्माजी प्रथम अध्यायमें कहते हैं—

..................त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥

'हे देवि, तू ही इस जगत्की सृष्टि करती है, तू ही इसका पालन करती है और अन्तमें तू ही इसको अपनेमें लीन कर लेती है।' ऋग्वेदका नासदीय सूक्त दर्शनकी पराकाष्ठा और प्रथम विवेचन है। उसकी बहुत ही सुन्दर व्याख्या सप्तशतीके प्रथम अध्यायके इन शब्दोंसे होती है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम्········· ॥

जिनके द्वारा यह बतलाया गया है कि सद् और असद्, दोनों प्रकारकी वस्तुओंके भीतर जो शक्ति अर्थात् सत्ता 'तत्तद्वस्तुता' है, वह भगवती ही है। व्यावहारिक वेदान्तका चौथे अध्यायमें एक बहुत ही अपूर्व उपदेश है। संसारमें प्रायः देख पड़ता है:-'Truth for ever on the scaffold, wrong for ever on the throne'—अच्छे आदमी कष्ट पाते हैं और बुरे आदमी सब प्रकारका सुख भोगते हैं। इस बातको देखकर कितने ही मनुष्योंको धर्मकी ओरसे अश्रद्धा हो जाती है और कितने ही सम्प्रदायोंने अश्रद्धासे रक्षा करनेके लिये, एक ईश्वरके साथ एक शैतानकी कल्पना की है। वैदिक धर्म शैतानको नहीं मानता पर उसे भी संसारके इस अन्धेरका उत्तर तो देना ही पड़ता है। वेदान्तके अनुसार सप्तशती कितना सुन्दर उत्तर देती है। चतुर्थ अध्यायमें देवगण कहते हैं—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

अर्थात् "जो श्री अर्थात् महालक्ष्मी (यह स्मरण रखना चाहिये कि यह स्तोत्र महालक्ष्मीका है) स्वयं पुण्यात्माओंके घरमें अलक्ष्मी अर्थात् दारिद्र्य बनकर निवास करती है, पापी राजसिक (कृतधियः=कर्मणि धीर्बुद्धिर्येषामिति राजसाः) लोगोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे निवास करती है, सत्पुरुषोंके हृदयमें श्रद्धा और कुलीनोंके हृदयमें लज्जा अर्थात् पुण्यापुण्य-विवेक, अङ्गरेजी शब्दोंमें Conscience रूपसे निवास करती है, उस तुझको मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवि, विश्वका पालन कर।" कितना सुन्दर भाव है! सत्पुरुषके घरकी लक्ष्मी और पुण्यात्माके मस्तिष्ककी बुद्धिको भगवतीका रूप मानना तो सरल है, पर सुकृतिके घरका दारिद्र्य और दुरात्माके हृदयकी बुद्धिको भी इस रूपमें देखना वेदान्तका सच्चा आदर्श और उपदेश है *। कई वर्ष हुए, इस श्लोकके अर्थके सम्बन्धमें मुझसे कुछ सज्जनोंसे समाचारपत्रोंमें शास्त्रार्थ हो चुका है। प्राचीन टीकाकारोंने भी अन्य प्रकारसे अर्थ किया है पर मुझे यही भाव रुचता है। मैंने आरम्भमें कहा है कि इस ग्रन्थमें योगसम्बन्धी बातें भी भरी पड़ी हैं। प्रथम अध्यायमें इनकी चर्चा अधिक है। यह स्वाभाविक भी है। खण्डप्रलयके उपरान्त सन्धिकाल है। जलमयी सृष्टि है, अभी क्षिति-तत्त्व प्रकट नहीं हुआ है। जगत्पाता विष्णु योगनिद्राके वशीभूत होकर निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। ब्रह्मा अभी-अभी समाधिसे नीचे उतरे हैं। व्युत्थान अवश्य हुआ है, उन्हें सृष्टि करनी है, पर अभी क्या करना है, इस ओर ठीक-ठीक उनका ध्यान नहीं गया है। ऐसे ही अवसरपर मधु और कैटभसे सामना पड़ जाता है। अभी समाधिसे उतरे ब्रह्मामें अहिंसाकी प्रवृत्ति प्रबल है। अपनी रक्षाके लिये हाथ-पाँव भी नहीं चलाते। उधर जगत्के हितके लिये यह आवश्यक है कि विष्णु योगनिद्राके जालसे छूटें। क्योंकि सृष्टि होते ही रक्षककी आवश्यकता पड़ जायगी। उस समय आद्याशक्ति अपने तामसी अर्थात् महाकालीरूपमें है। वह आवश्यकता देखकर और ब्रह्माकी चिन्ताका अनुभव करके विष्णुके शरीरको छोड़ देती है और फिर रजोगुणका प्राधान्य होता है। यह तो हुआ। उस समय ब्रह्माजीने भगवतीकी जो स्तुति की है वह सप्तशतीके सभी स्तोत्रोंसे सुन्दर, गम्भीर और अध्यात्मसे परिपूर्ण है। ऐसा होना भी चाहिये था, क्योंकि ब्रह्माजी अभी समाधिसे उतरे थे। उदाहरणके लिये केवल तीन-चार शब्दोंकी ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता··············।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्याविशेषतः ॥

मैं योगी होनेका दावा नहीं करता, जो कुछ सद्गुरुओंके सत्सङ्गमें सुना है या सद्ग्रन्थोंमें पढ़ा है, उसीके आधारपर इन शब्दोंकी थोड़ी-सी व्याख्या करता हूँ। इस जगत्में पञ्चीकृत महाभूत काम कर रहे हैं। उनके एक-एक अणुमें कम्पन है। उस कम्पनसे यह जगत् शब्दायमान हो रहा है। जहाँ कम्पन है वहाँ शब्द है। सूक्ष्मभूत अपञ्चीकृत हैं पर उनके परमाणुओंमें भी कम्पन है और उस कम्पनसे एक सूक्ष्म शब्द-राशि उत्पन्न होती है। जैसा कि कबीरने कहा है—'तत्त्व झंकार ब्रह्मंडमाहीं।' उस शब्द-राशिका नाम अनाहत नाद है, पीछेके महात्माओंके शब्दोंमें अनहद नाद है। जिस समय-

* इसी भावको एक मुसलमान सूफीने यों व्यक्त किया था—

तू अज सौबते दौराँ मनाल शादाँ बाश ।
के तीरे दोस्त बपहलुए दोस्त मी आयद ॥

तू संसारकी विपत्तियोंसे रो मत, प्रसन्न रह, क्योंकि जो तीर तेरी छातीमें लगता है वह मित्रका ही चलाया हुआ है।

तक अभ्यासी इस अनाहत नादको नहीं सुन पाता तबतक उसका अभ्यास कच्चा है । पुनः कबीरके शब्दोंमें—'जोग जगा अनहद धुनि सुनिके ।' जब अनाहत सुन पड़ने लगा तब इसका अर्थ यह है कि योगीका धीरे-धीरे अन्तर्जगत्में प्रवेश होने लगा । वह अपने भूले हुए स्वरूपको कुछ-कुछ पहचानने लगा । शक्ति, वैभव और ज्ञानके भाण्डारकी झलक पाने लगा अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती-के दर्शन पाने लगा, जो अभ्यासी वहीं उलझकर रह गया वह तो वहीं रह गया—और दुःखका विषय है कि सचमुच बहुत-से अभ्यासी इसके आगे नहीं बढ़ते; पर जो तल्लीनता-के साथ बढ़ता जाता है, वह क्रमशः ऊपरके लोकोंमें प्रवेश करता जाता है । अन्तमें वह अवस्था आती है जहाँ वह आकाशकी सीमाका उल्लङ्घन करनेका अधिकारी हो जाता है । वहीं शब्दका अन्त है । पर अब लीन होते समय शब्द अनाहतके रूपमें नहीं रहता । अब वह जिस रूपमें रहता है उसका सम्पुटिक प्रतीक—अर्थात् हमारी बोलचालकी वैखरी वाणीमें सबसे अधिक-से-अधिक मिलता-जुलता रूप 'ओ३म्' है । पहला रूप वह जो अकारसे व्यक्त होता है, उससे भी सूक्ष्म उकार और उससे भी सूक्ष्म मकार है । इन्हीं तीनोंको ब्रह्माजीने कहा है 'त्रिधा मात्रात्मिका नित्या ।' इसके परे योगीको एक ऐसे सूक्ष्म ध्वन्याभासका अनुभव होता है जो किसी प्रकार भी मनुष्योंकी भाषामें व्यक्त नहीं हो सकता । इसीको ँ से कभी-कभी अङ्कित करते हैं और यही वह पदार्थ है जिसे अर्धमात्रा कहते हैं । एतत्पश्चात् नाद अपने जनक आकाशमें लीन हो जाता है । नादके पीछे बिन्दु है, वहीं अशब्द, अनामि पद है ।* यह गति योगीको षट्चक्र पार करके सहस्रदल कमलमें प्राप्त होती है । इसीको दूसरे शब्दोंमें तन्त्र, और योगशास्त्र-ग्रन्थोंमें यों कहा गया है कि 'सार्द्धत्रयवलयाकृति' अर्थात् साढ़े तीन लपेटा मारे हुए कुण्डलिनी शक्ति सोयी रहती है । जब योगी उसे जगाता है तो वह चक्र-चक्रमें चढ़ती हुई सहस्रार-में जाकर पुरुषके साथ मिलकर उसमें लीन हो जाती है । इसीका नाम शिव-शक्तियोग है । यहाँतक पहुँचा योगी फिर नीचे नहीं गिर सकता । इसीलिये ब्रह्माजीने कहा है—'परापराणां परमा' । यही श्वेताश्वतर उपनिषद्का 'पतिं पतीनां परमं परस्ताद्' है । यह केवल एक उदाहरण है । इस ग्रन्थमें, विशेषकर इस अध्यायमें योगशास्त्रके रहस्यसे पूर्ण अनेक स्थल हैं ।

मैंने अभीतक केवल मूल ग्रन्थके अंशोंका उल्लेख किया है । यदि कोई मनुष्य वैदिक देवी-सूक्त और रात्रि-सूक्त और रहस्यत्रय विशेषतः प्राधानिकरहस्यकी सूक्ष्मताकी ओर ध्यान देगा तो उसको इस ग्रन्थरत्नकी महत्ताका कुछ पता चलेगा । इनके निदर्शनके लिये कई पृथक् और बृहत् निबन्ध चाहिये । जैसा कि स्वयं देवीने कहा है—इन बातोंको 'चक्षुष्मन्तः पश्यन्ति नेतरे जनाः ।' मेरा उद्देश्य केवल इतना ही रहा है कि इस पुस्तककी उत्तमता और इसके विषयकी गम्भीरताकी ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करूँ । यह केवल अर्धशिक्षित पुरोहितोंद्वारा पाठ करने-करानेकी सामग्री न रह जाय । यदि इस उद्देश्यमें मुझे किञ्चिन्मात्र सफलता हुई तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा ।

(३)

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०)

शक्तिकी उपासनाके सम्बन्धमें जितने ग्रन्थ प्रचलित हैं, उनमें सप्तशतीका बहुत विशेष महत्त्व है । आस्तिक हिन्दू बड़ी श्रद्धासे इसका पाठ किया करते हैं और उनमेंसे अधिकांशका यह विश्वास है कि सप्तशतीका पाठ प्रत्यक्ष फलदायक हुआ करता है । कुछ लोगोंका कहना है—'कलौ चण्डिविनायकौ' अथवा 'कलौ चण्डिमहेश्वरौ ।' इस कथनसे भी विदित होता है कि कलियुगमें चण्डीजीका विशेष महत्त्व है । और चण्डीजीके कृत्योंका उल्लेख सप्तशती-हीमें विशेष सुन्दरताके साथ मिलता है । इस दृष्टिसे भी इस ग्रन्थकी महत्ता सिद्ध होती है ।

सप्तशती सात सौ श्लोकोंका संग्रह है और यह तीन भागों अथवा चरितोंमें विभक्त है । प्रथम चरितमें ब्रह्माने योगनिद्राकी स्तुति करके विष्णुको जाग्रत कराया है और इस प्रकार जाग्रत होनेपर उनके द्वारा मधु-कैटभका नाश हुआ है । द्वितीय चरितमें महिषासुर-वधके लिये सब देवताओं-की शक्ति एकत्र हुई है और उस पुञ्जीभूत शक्तिके द्वारा महिषासुरका वध हुआ है । तृतीय चरितमें शुम्भ-निशुम्भ-वधके लिये देवताओंने प्रार्थना की, तब पार्वतीजीके शरीरसे शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ और क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीजका वध होकर शुम्भ-निशुम्भका संहार हुआ है ।

* यही सप्तशतीके शब्दोंमें "अनुच्चार्याविशेषतः" है ।

इस कथानकको यदि ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो कई महत्त्वकी बातें आप-ही-आप विदित होंगी। प्रथम चरितसे हमें यह मालूम पड़ता है कि जगत्‌का कोई भी कार्य अपनी प्रसुप्त शक्तिको जाग्रत किये बिना कभी नहीं हो सकता। स्वयं विष्णु भी क्यों न हों, परन्तु यदि उनकी शक्ति सोई हुई है तो वे कुछ कार्य नहीं कर सकते। फिर पाशव-शक्तिसे बुद्धि-शक्तिकी श्रेष्ठता भी इस चरित्रमें विदित होती है, क्योंकि मधु-कैटभ पशुबलमें विष्णुका मुकाबला करते रहे परन्तु जब अहङ्कारमें फूलकर वरदान देनेके लिये तैयार हो गये तब विष्णुने बुद्धि-शक्तिका प्रयोग करके उन्हींके वधका वर माँग लिया। इस चरित्रसे एक बात और भी विदित होती है, वह है वैष्णवों और शाक्तोंका अभेद। शक्ति ही यद्यपि सब कुछ मानी गयी है परन्तु वह आखिर विष्णुहीकी शक्ति है। रहस्यत्रयमें जहाँ महालक्ष्मीसे अन्य शक्तियोंकी उत्पत्ति बतलायी गयी है वहाँ भी प्रकारान्तरसे महाविष्णुहीकी महत्ता प्रतिपादित होती है।

द्वितीय चरित्रमें सङ्घशक्तिका महत्त्व प्रत्यक्ष है। एक देवकी शक्ति, सम्भव है, महिषासुरके लिये पर्याप्त न होती। इसलिये सभी देवोंकी शक्तियाँ समवेत हुईं और इस प्रकार समवेत हुईं कि उनका एक ही स्वरूप बन गया। इस चरित्रमें मधुपानकी बात आयी है। यहाँपर मधुका अर्थ है उत्साहका साधक बाह्य उपकरण। अपनी शक्ति कितनी भी प्रबल हो परन्तु यदि उसके उत्साह-वर्धन और उसकी सहायताके लिये बाहरी साधन उपयोगमें न लाये जायँ तो कार्य-सिद्धिमें शिथिलता आ जाना सम्भव है।

तृतीय चरित्र हमें यह बताता है कि यदि किसी सत्कार्यके लिये कोई अकेली ही शक्ति अग्रसर हो जाय तो अन्य देवताओंकी शक्तियाँ आप-ही-आप उसकी सहायताके लिये दौड़ पड़ती हैं, जिस प्रकार अम्बिकाजीकी सहायताके लिये अन्य देवताओंकी शक्तियाँ आयी थीं। इस चरित्रसे यह भी विदित होता है कि शक्तिका उद्देश्य संहार न होना चाहिये। जगदम्बिकाने साक्षात् सदाशिवको, जो शान्तिके प्रत्यक्ष अवतार हैं, दूतकार्यके लिये भेजा था। उन्होंने अपनी ओरसे संहार-कार्य नहीं प्रारम्भ किया। राक्षसोंने ही उन्हें अपने वशमें लानेकी दुश्चेष्टा प्रारम्भ की। इतनेपर भी उन्होंने सदाशिवके द्वारा यह सन्देश भिजवाया—

यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ।

अर्थात् यदि जीनेकी इच्छा हो तो पातालमें जाकर रहो।

दार्शनिक दृष्टिसे भी इन कथाओंका बड़ा महत्त्व है। मुनिके पास सुरथ नामक राजा और समाधि नामक वैश्य गये थे। सुरथने देवीके चरित्र सुनकर अक्षय राज्यके लिये तपस्या की और समाधिने मोक्षके लिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—द्विजातिके तीन प्रधान अङ्ग—का ऐसा सम्मेलन तथा सु-रथ (अविहत गतिवाले) की भुक्ति-कामना और समाधिकी मुक्तिकामना मतलबसे खाली नहीं है। शक्तिके द्वारा भुक्ति भी प्राप्त हो सकती है और मुक्ति भी। आगे देखिये। मधु और कैटभ कानके मल माने गये हैं। कहनेका अर्थ यह कि वे शरीर-सम्बन्धी विकार हैं। आहार और विहार भी इसी प्रकारके शरीर-सम्बन्धी विकार हैं जिनपर पहले ही अङ्कुश लगाना पड़ता है। फिर महिषासुररूपी मोहका दमन किये बिना मानव-जीवनरूपी जगत्‌की स्थिति ही डावाँडोल रहा करती है। तदनन्तर अहङ्कार और विषय-सुखरूपी शुम्भ-निशुम्भके सेनाध्यक्ष, आलस्यरूपी धूम्रलोचन, राग-द्वेषरूपी चण्ड-मुण्ड और वासनारूपी रक्तबीजके संहारके साथ-ही-साथ स्वयं उन शुम्भ-निशुम्भका भी वध करना पड़ता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे इन्हीं वधोंमें शक्तिकी महत्ता है। जबतक अपनी शक्ति इतना सामर्थ्य नहीं रखती तबतक वह भुक्ति अथवा मुक्तिके सच्चे फल नहीं दे सकती।

इस सप्तशतीमें चार जगह मनोरम स्तुतियाँ आयी हैं। पहली तो प्रथम चरित्रमें ब्रह्माकृत स्तुति है जो रात्रिसूक्तके नामसे प्रख्यात है। दूसरी द्वितीय चरित्रमें महिषासुर-वधके बाद देवताओंके द्वारा की गयी है। तीसरी और चौथी स्तुतियाँ तृतीय चरित्रमें शुम्भ-निशुम्भ आदिके वधके पहले और पीछे की गयी हैं। तीसरी स्तुतिको देवीसूक्त भी कहते हैं। यों तो चारों स्तुतियाँ ही बड़ी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु रात्रिसूक्त और देवीसूक्तकी महिमा विशेष मानी गयी है, क्योंकि इन सूक्तोंमें शक्तिका महत्त्व विशेषरूपसे व्यक्त हुआ है। लोग सप्तशती-पाठके पहले रात्रिसूक्त और पाठके पीछे देवीसूक्तका स्वतन्त्र पाठ किया करते हैं। सम्यक पाठके लिये श्रद्धालु भक्त लोग पाठके आदिमें कवच, अर्गला, कीलक, अङ्गन्यास, करन्यास और नवार्णमन्त्रका जप भी किया करते हैं तथा पाठके अन्तमें रहस्यत्रय भी पढ़ा करते हैं। ये सब उपकरण भाव-पुष्टि और आराध्य विषयकी पुष्टिके

लिये ही रक्खे गये हैं। नियम है कि सप्तशतीका पाठ मध्यम स्वरसे शुद्ध उच्चारणपूर्वक करना चाहिये और साथ ही 'क्षमापयेजगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः' के अनुसार पद-पदपर विनम्र और जागरूक रहना चाहिये। ऐसा सर्वाङ्गसम्पूर्ण पाठ निश्चय ही परम आकर्षक होकर प्रत्यक्ष फल देनेवाला होता है।

अन्य देवताओंके अनुसार शक्तिके रूपकी कल्पना भी बहुत कलापूर्ण है। सामर्थ्यका द्योतक सिंह उनका वाहन माना गया है। प्रभुत्व स्थापित करनेवाले विविध शस्त्र उनके आयुध हैं। और ज्ञानका चिह्नस्वरूप तृतीय नयन उनके मस्तककी शोभा बढ़ाया करता है। लोग कहते हैं कि आर्यों-ने शक्ति-पूजा द्रविड़ोंसे अथवा अनार्योंसे ग्रहण की। इस सिद्धान्तकी सत्यतापर सन्देह करनेके लिये बहुत गुञ्जायश है, क्योंकि वेदोंमें भी शक्तिकी आराधनाके सम्बन्धमें अनेक ऋचाएँ मिलती हैं। वस्तुस्थिति जो कुछ हो; परन्तु इतना तो निश्चित है कि आर्योंने शक्तिका स्वरूप, शक्तिकी चरितावली और शक्तिपूजाके उपचारोंका जैसा उल्लेख किया है वह अवश्य ही अनूठा, अद्वितीय और परम महत्त्वपूर्ण है।

शक्तिपूजामें वामाचार भी बहुत घुस पड़ा है। मद्य, मांस, रक्त आदिके द्वारा कई लोगोंने देवीकी पूजा की है और कर रहे हैं। इस सम्बन्धके कतिपय ग्रन्थ भी हैं। इसलिये अब यह कहना बहुत कठिन हो रहा है कि इन विधानोंके आदि जन्मदाता आर्य ही थे अथवा अनार्य। परन्तु इतना तो निश्चित है कि कई ग्रन्थोंमें शक्ति-पूजाके लिये ये विधान आवश्यक नहीं बताये गये। जगन्माताके लिये क्या जपाका एक पुष्प पर्याप्त नहीं हो सकता? वह तो भावकी भूखी है; अपने ही सन्तानके—मनुष्य, बकरे, भेड़े आदिके रक्तकी भूखी कदापि नहीं है।

कई लोग तीनों चरित्रोंको क्रमशः 'ऐं ह्रीं क्लीं' से सम्पुटित करके पढ़ा करते हैं। नवार्णमन्त्रमें ये तीनों अक्षर प्रधान बीजरूप हैं। जिस प्रकार नाद और बिन्दुसे (विद्युत्-अणुओं-के—electrons के—vibration और rotation से) संसारकी सृष्टि हुई है, उसी प्रकार षट्चक्रके स्नायु-तन्तुओंमें गूँजनेवाली वर्णमालाके अविनश्वर शक्तिधाम अक्षरोंके द्वारा न जाने क्या-क्या पैदा किया जा सकता है। 'ऐं ह्रीं क्लीं' उसी वर्णमालाके बड़े महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। यदि इन शब्दोंका जप हमारे अन्तरतम प्रदेशसे हो तो ये अवश्य ही हमारे लिये कामधेनु बन सकते हैं। बोल-चालकी वाणीसे—वैखरी वाणीसे—इनका विशेष जप करते-करते ये हमारे हृदयमें बस जाते हैं और इस प्रकार अतीव लाभदायक बन सकते हैं। कई लोग इन बीजमन्त्रोंसे सम्पुटित न कर—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

—सरीखे सप्तशतीके ही प्रधान श्लोकोंद्वारा सम्पुटित करके उसका पाठ करते हैं। ऐसा करनेसे भी फल विशेष होता है, क्योंकि इस प्रकार सम्पुटवाले प्रधान श्लोककी १४०० आवृत्तियाँ आप-ही-आप हो जाती हैं और एक पाठमें कम-से-कम १४०० बार उस प्रधान विषयपर अपना ध्यान पहुँचता रहता है। कई लोग सप्तशतीका शृंखलित पाठ करते हैं जिसमें प्रतिश्लोकके आगे-पीछे प्रधान श्लोक न कहकर केवल शृंखलारूपसे दो श्लोकोंके बीचमें कह दिया करते हैं। इसी तरहके और भी कई विधान हैं। परन्तु सबसे प्रधान पाठ तो वही है जिसमें मन, वाणी और क्रिया तीनोंका सामञ्जस्य रहे। यदि पाठकर्ताकी क्रियाएँ असंयमपूर्ण हैं, मन इधर-उधर भटक रहा है और वाणीसे शुद्धाशुद्ध सब कुछ निकलता जा रहा है तो लाभके बदले हानि भी हो सकती है।

श्रीसीता-स्तुति

जय हो श्रीआदिशक्ति! गति है अपार तेरी, तू ही मूलकारन श्रीसीता महारानी है।
तेरो ही बनाव व्याप्त सकल चराचरमैं, तू ही मम मातु साँची तू ही ऋत बानी है॥
जग-प्रगटावनी औ पालन-प्रलयकारी, तू ही भुक्ति, मुक्ति पराभक्तिहूकी खानी है।
तू ही जगजानी रानी रामकी परमप्यारी, 'मोहन' के सर्व-शक्ति! तू ही मन-मानी है॥

—साह मोहनराज

बलिदान-रहस्य

(१)

(लेखक—स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)

इष्ट-पूजाके षोडश उपचारोंमेंसे बलिदान एक प्रधान उपचार है, इसके बिना पूजा पूरी ही नहीं होती। इसका कारण यह है कि उपासकने यदि उपासनाके अन्तमें, पूजकने पूजाके अन्तमें, उपास्य—पूज्य इष्टदेवमें अपना सब-कुछ बलिदान देकर उपास्यदेवसे अपना भेद-भाव मिटा न दिया, वह उपास्यमें विलीन, तन्मय होकर तद्रूप ही न हो गया, 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति', 'शिवो भूत्वा शिवं भजेत्' यह भाव न प्राप्त हुआ, 'दासोऽहम्' का 'दा' नष्ट होकर 'सोऽहम्' ही न रह गया तो पूजाकी पूर्णता ही क्या हुई? इसी कारण बलिदान पूजाका प्रधान अङ्ग है। बलिदानके बिना न जगन्माता ही प्रसन्न होती है और न भारत-माता ही प्रसन्न हो सकती है। जिस देशमें जितने बलिदान करनेवाले देश-सेवक, देश-नेता उत्पन्न होते हैं, उस देशकी उतनी ही सच्ची उन्नति होती है। यह बलिदान चार प्रकारका होता है। सबसे उत्तम कोटिका बलिदान आत्म-बलिदान कहलाता है। इसमें साधक जीवात्मापनको काटकर परमात्मापर आहुति चढ़ा देता है। इस बलिदानके द्वारा परमात्मासे अज्ञानवश जीवात्माकी जो पृथक्ता दीखती थी वह एकबारगी ही नष्ट हो जाती है और साधक स्वरूप-स्थित होकर अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार करता है। जबतक यह न हो सके तबतक द्वितीय कोटिका बलिदान करना चाहिये। इसमें कामरूपी बकरे, क्रोधरूपी भेड़, मोहरूपी महिष आदिका बलिदान किया जाता है। अर्थात् षड्रिपुका बलिदान ही द्वितीय कोटिका बलिदान है। तृतीय कोटिमें, इतना न हो सकनेपर किसी-न-किसी इन्द्रिय-प्रिय वस्तुका बलिदान होता है। प्रत्येक विशेष पूजाके अन्तमें जिसको जिस वस्तुपर लोभ है उसका बलिदान अर्थात् सङ्कल्पपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। यही तृतीय कोटिका बलिदान है। इस प्रकारसे मिठाई, प्याज, लहसुन, मादक वस्तु आदिके प्रति आसक्ति छूट सकती है। यदि ऐसा भी न हो सके तो क्रमशः छुड़ानेके लिये चतुर्थ कोटिका बलिदान है।

मैथुन, मांस-भक्षण, मद्यपान—इनमें लोगोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है; इसके लिये किसीको बताना नहीं पड़ता, और न प्रेरणा ही करनी पड़ती है। मनुजीने भी 'प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्' कहकर इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है। किन्तु 'निवृत्तिस्तु महाफला'—अर्थात् मनुष्यको प्रवृत्ति छोड़कर क्रमशः मोक्षफलदायक निवृत्तिकी ओर अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण व्यवस्था बाँधकर इन वृत्तियोंको क्रमशः नियमित करते हुए इनसे निवृत्ति कराने के अर्थ विवाह, यज्ञ और सोमपान आदिका विधान राजसिक अधिकारमें किया गया है। यही कारण है कि विवाहके समय स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि संसारसे कामभाव उठाकर अपनेहीमें केन्द्रीभूत करके क्रमशः निवृत्तिपथके पथिक बनेंगे। राजसिक, वैदिक, तान्त्रिक यज्ञमें हिंसादिका भी यही समाधान है। अर्थात् स्वभावतः सात्त्विक-प्रकृति मनुष्योंके लिये यह यज्ञ नहीं है। जो लोग मांस-मद्य आदिका सेवन पहलेसे करते हैं वे पूजादिके नियममें बँधकर क्रमशः मांसाहार छोड़ दें; जो अबाधरूपसे मांस-मद्यादिका सेवन करते हैं वे वैसा न करें और संयत होकर केवल पूजादिमें ही उनका प्रयोग करें, जिससे उनकी मांस-मद्यकी प्रवृत्ति कम होते-होते अन्तमें बिल्कुल छूट जाय। यही इसका आशय है। यह सबके लिये नहीं है। परन्तु जब वेद पूर्ण ग्रन्थ है तो इसमें केवल सात्त्विक ही नहीं, किन्तु सभी प्रकारके अधिकारियोंके कल्याणके लिये विविध विधान होने चाहिये, इसी कारण राजसिक अधिकारीको क्रमशः सात्त्विक बनानेकी ये विधियाँ यज्ञरूपसे शास्त्रमें बतायी गयी हैं। ये संयमके लिये हैं, न कि यथेच्छाचारके लिये! किसीके संहार, मारण, मोहन आदिके लिये विधिहीन, अमन्त्रक पूजादि तामसिक है। पूजामें भी दक्षिणाचारके अनुकूल सात्त्विक पूजामें पशु-बलि नहीं है; उसमें कूष्माण्ड, ईख, नीबू आदिकी बलि है। केवल वामाचारके अनुकूल राजसिक पूजामें पशु-बलिका विधान है, यथा महाकाल-संहितामें—

> सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
> इक्षुदण्डञ्च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्॥
> क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद्बलिम्॥

'सात्त्विक अधिकारके उपासक कदापि पशु-बलि देकर

जीव-हत्या नहीं करते; वे ईख, कोंहड़ा या वन्य फलोंकी बलि देते हैं। अथवा खोवा, आटा या चावलके पिण्डका पशु बनाकर बलि देते हैं।' यह सब भी रिपुओंके बलि-दानका निमित्तमात्र ही है, यथा महानिर्वाणतन्त्रमें—

'कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव मनसा बलिमर्पयेत्।'
'कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्॥'

काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओंका बलिदान करके उपासना करनी चाहिये। यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है।

(२)

(लेखक—एक सेवक)

स्वयं देवीजीद्वारा पशु-बलि-निषेध

[सच्ची घटना]

मद्रास-प्रान्तके ब्राह्मण-कुमार श्रीयुत शोमयाजलू बी० ए० एक प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। वह अनेक अंग्रेजी पत्रोंके सम्पादक और गवर्नमेण्ट तथा स्टेटके पब्लिसिटी अफसर रह चुके हैं। इस समय वह पटनेके अंगरेजी दैनिक पत्र 'इण्डियन नेशन' के प्रधान सम्पादक हैं। हम यहाँपर उन्हींका अनुभव, जो हमने उनसे सुना है, ज्यों-का-त्यों दे रहे हैं। इस लेखको लिखते समय हमने इसे उन्हें सुना भी दिया है, जिसमें किसी तरहकी भूल न रह जाय।

जिस समय श्रीशोमयाजलू महोदय मद्रासमें बी० एल० (वकालत) की परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे, उस समय एक दिन उन्हें अपने एक मित्रके यहाँ श्रीलक्ष्मी-पूजामें सम्मिलित होनेका सुअवसर मिला। वहाँपर उन्हें एक अपरिचित ब्राह्मणका साक्षात्कार हुआ, जो वहाँ पूजा करानेके लिये आये थे। उन ब्राह्मणने इन्हें अपने घरपर बुलाया। जब वह उनके घरपर गये तो उन ब्राह्मणने इनसे कहा कि मैं आपको श्रीशक्तिकी दीक्षा दूँगा। श्रीशोमयाजलू महोदय राजी हो गये और इस कामके लिये तिथि नियत हो गयी तथा आवश्यक सामग्रियोंकी सूची तैयार हुई। जन्मनक्षत्रके अनुसार उन ब्राह्मणने इष्टका भी निश्चय कर दिया।

यथासमय दीक्षा लेकर श्रीशोमयाजलू महाशय नियम-पूर्वक जपद्वारा श्रीशक्तिकी उपासना करने लगे। इनके परिवारमें कई पुश्त पहलेसे भी श्रीशक्तिकी उपासना दक्षिण-मार्गके अनुसार होती चली आ रही थी। ये भी उसी परम्पराके अनुसार प्रतिवर्ष शारदीय नवरात्रमें विशेष पूजा करने लगे।

कुछ समय बाद एक साल जब आप शारदीय पूजा समाप्त होनेके बाद ब्राह्मण-भोजनका आयोजन करनेमें लगे थे तब इन्हें श्रीदेवीजीने साक्षात् दर्शन देकर कहा कि 'इस बार तुमको मुझे महिष-बलि देनी चाहिये।' श्रीशोमयाजलू महोदय महिष-बलिका नाम सुनते ही काँप उठे। उन्होंने बड़ी दृढ़ताके साथ श्रीदेवीजीके प्रस्तावका विरोध किया और साफ-साफ शब्दोंमें पशु-बलि देना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने श्रीदेवीजीसे निवेदन किया, 'यदि आप पशु-बलि लेनेपर उद्यत हैं तो मैं आजसे आपकी उपासना-का ही त्याग करता हूँ।' उस दिनसे वास्तवमें उन्होंने श्रीशक्तिकी उपासना या किसी प्रकारकी पूजा करना एकदम छोड़ दिया। इस तरह दो महीने बिना उपासनाके बीत गये, भक्त अपनी बातपर दृढ़ बना रहा। तब श्रीदेवीजीने पुनः दर्शन देकर कहा—'मैंने केवल तुम्हारी परीक्षाके लिये पशु-बलि माँगी थी। मुझे इस बातसे बड़ी प्रसन्नता है कि तुम इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हुए; मेरी उपासनाको त्याग दिया किन्तु पशु-बलि देना स्वीकार न किया। धर्ममें इसी प्रकार दृढ़ रहना चाहिये और स्वयं देवताके कहनेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि देवता इस प्रकार परीक्षा किया करते हैं, जिससे काम-लोलुप व्यक्ति धर्मसे च्युत हो जाते हैं।' इसके बाद फिर श्रीशोमयाजलू पूर्ववत् उपासना करने लगे।

श्रीशोमयाजलू महोदयके घरमें उनके पिता-पितामहादि-के समयसे एक श्रीयन्त्रकी भी पूजा होती आ रही थी। उनके पिताके स्वर्गवासके बाद कुछ समयतक उनकी माताने पूजा की; किन्तु उसके बाद बन्द हो गयी। पूजा बन्द होनेके बाद श्रीयन्त्र एक ऐसे बक्समें पड़ गया जहाँ लाल मिर्च और गरम मसाले रक्खे थे। इनके परिवारमें एक वृद्धा स्त्री थीं। एक समय अकस्मात् बिना किसी रोगके आक्रमणके असह्य गर्मीकी ज्वालासे वह व्याकुल हो उठीं। नाना प्रकारके शर्बत तथा अन्य ठण्डे उपचार गर्मीकी

शान्तिके लिये किये गये; किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। मानुषी सब उद्योगोंको विफल होते देख श्रीशोमयाजळू महोदयको सन्देह हुआ कि सम्भवतः यह ज्वाला किसी दैवीप्रकोपके कारण हुई है। उन्हें एकाएक उस श्रीयन्त्रका स्मरण हो आया और उन्होंने उसकी खोज की। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि वे प्रायः घरसे बाहर परदेशमें ही रहा करते थे और मकानपर कभी-कभी आया करते थे। उनके पूछनेपर उस यन्त्रको ढूँढ़ा गया और वह गरम मसालोंमें पड़ा हुआ मिला। तुरन्त यन्त्रको निकालकर उसे शीतल जलसे स्नान कराया गया। इधर यन्त्रका स्नान समाप्त हुआ और उधर उस स्त्रीकी ज्वाला एकदम शान्त हो गयी!

श्रीशोमयाजळू महोदय सदा नियमपूर्वक दो घण्टे प्रातःकाल और कुछ समय सन्ध्याकालमें शुद्ध जप-ध्यान करते हैं; वह अपनी पूजामें चन्दन, पुष्पादि किसी भी बाह्य सामग्रीका, यहाँतक कि जलतकका भी व्यवहार नहीं करते। किन्तु वे श्रीदेवीजीके कृपा-पात्र हैं और कभी-कभी उन्हें श्रीदेवीजीके दर्शन भी होते हैं। इस शक्ति-उपासनाके प्रभावसे उन्हें श्रीअगस्ति आदि महापुरुषोंसे सन्देश भी मिल जाते हैं। उनकी उपासनाके प्रभावसे लोगोंका कुछ उपकार भी हो जाया करता है; जैसे रोग-निवृत्ति, प्रेत-बाधा-निवृत्ति आदि।

उपर्युक्त प्रथम घटनासे साक्षात् श्रीदेवीजीके मुखसे निकले हुए वचनसे पशु-बलिके रहस्यका उद्घाटन हो जाता है। इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विधान केवल परीक्षाके निमित्त है, जिसमें सच्चे वीतराग उपासक दृढ़ रहते हैं। किन्तु कच्चे सकाम उपासक विचलित हो जाते हैं। श्रीदेवी तो जगन्माता हैं; वे मनुष्य, पशु, पक्षी, चर, अचर सबकी माता हैं और सबके अन्तरमें विराजमान हैं। वही माताकी भाँति सबका रक्षण, पालन, पोषण करती हैं। ऐसी सर्वव्यापिनी दयामयी माता अपनी निःसहाय पशु-सन्तानकी क्यों बलि चाहेंगी?

उच्च तन्त्रकी परिभाषामें इन्द्रियोंके विकारको पशु कहते हैं; क्योंकि पशुओंमें केवल इन्द्रियोंका ही प्राबल्य है और इन्द्रिय-चर्या ही उनका एकमात्र जीवन है। भैंसेमें क्रोधकी प्रबलता है, अतएव क्रोधका नाम महिष है। बकरेमें जिह्वा-इन्द्रिय प्रबल है, अतएव राजसिक-तामसिक भोजनमें जो आसक्ति होती है उसे बकरा कहते हैं। कबूतर-पक्षीमें मैथुन-कामकी प्रबलता है। अतएव कामात्मक मैथुनको कबूतर कहते हैं। इसी प्रकार अन्य इन्द्रिय-विकारोंकी भी ऐसी ही पशु-संज्ञाएँ हैं। इन इन्द्रिय-विकारोंकी बलि कर, इन्द्रियोंको शुद्ध बनाकर श्रीजगन्माताको समर्पण करना ही यथार्थ बलि है।

इन्द्रियोंके पशु-स्वभावका त्याग बलि है

इन्द्रियोंकी प्रकृति मनुष्योंमें पशु-जगत्से आयी है, जिसके पशु-स्वभावकी बलिद्वारा शुद्धि और परिवर्तन सबसे प्रथम आवश्यक होता है; क्योंकि जीवात्माके लिये इन्द्रियाँ ही बाह्य जगत्के सम्बन्धके द्वार हैं। इस यज्ञमें न इनका नाश करना है और न इनका बहिष्कार (त्याग); क्योंकि अनावश्यक होते तो ये जीवात्माको दिये ही नहीं जाते। पशु-जगत्में इन्द्रियाँ सर्वोपरि हैं और उन्हींका सञ्चालन वहाँ प्रधान साधन है। किन्तु मनुष्यमें जीवात्मा सर्वोपरि है, और जीवात्मा तथा इन्द्रियोंके मध्यमें अन्तःकरण है। इनके पशु-स्वभावको कामात्मक स्वार्थके लिये व्यवहृत न कर ईश्वरके अनेक होनेके सङ्कल्प (एकोऽहं बहु स्याम्) अर्थात् इच्छा-शक्तिकी, जिसकी संज्ञा महाविद्या है, पूर्त्ति-रूपी यज्ञमें व्यवहृत होनेके लिये महाविद्याको समर्पित करना अर्थात् ईश्वरके दिव्य गुण, शक्ति, सामर्थ्य आदिके प्रकाशित करनेयोग्य बनाना ही यथार्थ पशु-बलि है। जीवात्मा-रूपी होताको सद्बुद्धि-रूपी स्रुवामें इस पशु-स्वभावके साथ संयोजितकर ब्रह्माग्निमें अर्पण करना अर्थात् ब्रह्मके निमित्त सृष्टि-हितके कार्यमें प्रवृत्त करना यज्ञमें इनकी बलि करना है। मानव-जीवनका यथार्थ लक्ष्य पराप्रकृति अर्थात् महाविद्याकी प्राप्ति है, जिनकी कृपासे जीवको शिवकी प्राप्ति होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदि इन्द्रिय-विकारोंको अविद्या-जनित कार्यमें प्रयुक्त न कर, ज्ञानद्वारा दमन और शुद्ध करना विद्या-शक्तिके चरणोंमें पशु-बलि करना है, जिसके स्पर्शसे इनके विकार दूर होकर इनके पशु-स्वभाव और कार्यमें परिवर्तन होता है। फिर ये ईश्वर-प्राप्तिमें बाधक न होकर सहायक होते हैं। काम-पशुको राजसिक विषय-भोगमें नियुक्त न कर ईश्वर-प्राप्तिके लिये विद्या-देवीके चरणोंमें प्रयुक्त करना उसकी बलि है, जिससे वह शुद्ध होकर भगवत्प्रेमका रूप धारण करता है। जिह्वा-इन्द्रियके तामसिक-राजसिक भोजनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको दमन

कर केवल सात्त्विक भोजनमें प्रयुक्त करना जिह्वा-पशु-रूपी बकरे (जिसमें जिह्वा-इन्द्रिय बड़ी प्रबल है) की बलि करना है। वेद और तन्त्रमें भी काम-क्रोधादि विकारोंकी पशु-संज्ञा पायी जाती है और इन विकारोंके त्यागको पशु-बलि कहा है। तन्त्रके रहस्यके एक प्रसिद्ध लेखकने, जो अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता हैं, अपने ग्रन्थमें बकरेको काम, भैंसेको क्रोध, बिलावको लोभ, भेड़ेको मोह और ऊँटको मात्सर्य कहा है और इन्हीं विकारोंके त्यागको पशु-बलि कहा है। बलिमें पशुका मस्तक शरीरसे पृथक् कर देवताके चरणोंमें अर्पित किया जाता है, जो इस भावका द्योतक है कि मन, बुद्धि और अहङ्काररूप मस्तक (मुण्ड) को शरीर-रूप इन्द्रियोंके आसक्ति-सम्बन्धसे ज्ञान-रूप खड्गद्वारा पृथक् कर परा-शक्ति (महाविद्या) के हस्तमें अर्पण करना चाहिये अर्थात् उनमें संयुक्त करना चाहिये (जो कामासक्तिसे पृथक् होनेसे ही सम्भव है, अन्यथा नहीं) जिनके द्वारा अहं-भाव मुण्डमाला बनकर शिवके गलेमें शोभित होगा। अहङ्कारके अधिष्ठाता पशुपति श्रीशिव हैं और इसका स्थान शरीरमें मस्तक है। अतएव उनकी वस्तुका इन्द्रियके सम्बन्धसे पृथक् होकर उनकी शक्तिद्वारा उन्हें अर्पित होना आवश्यक है। श्रीकालीके हस्तमें और श्रीशिवके गलेमें मुण्डमालाका यही भाव है। परमार्थसारमें लिखा है कि 'मायापरिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान् पशुर्भवति' अर्थात् मायाके कारण मलिन-बुद्धि होनेसे मनुष्य पशु-भावको प्राप्त होता है। तन्त्रका एक वचन है, 'इन्द्रियाणि पशून् हत्वा' अर्थात् इन्द्रिय-रूप पशुका वध करे। पुरुषसूक्तमें लिखा है, 'अबध्नन् पुरुषं पशून्'--अर्थात् ईश्वरको ही पशु मान यज्ञमें समर्पण किया, ईश्वरके अपनेको यज्ञ अथवा बलि करनेसे ही सृष्टि हुई, और ऋषि-देवता आदिने भी उन्हींकी शक्तिकी बलि अथवा प्रयोग कर सृष्टि-यज्ञ (उत्तर-सृष्टि) किया; यही आदिपशु-बलि हुई। ऐतरेय ब्राह्मणकी दूसरी पञ्चिकाके छठें अध्यायके तीसरे खण्डका वचन है—

सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्य आत्मानमालभते।

अर्थात् यजमान सब देवताओंकी तुष्टि (जगत्के हित) के लिये अपने आत्माको बलि करता है। पाशुपत ब्रह्मोपनिषत्का वचन है—

अश्वमेधो महायज्ञकथा। तद्राज्ञो ब्रह्मचर्यमाचरन्ति।
सर्वेषां पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञक्रमं मुक्तिक्रममिति ॥ ३ ॥

अश्वमेध बड़ा यज्ञ है, किन्तु उसके अभ्यासी ब्रह्मचर्य ही करते हैं। इस ब्रह्मचर्यात्मक ब्रह्मचर्याका सिलसिला मुक्तिका उत्तरोत्तर कारण है। गीतामें लिखा है कि मन और बुद्धिको अर्पण करना चाहिये (१२। ८); किन्तु विषयासक्त मन-बुद्धिकी संज्ञा पशु है और अर्पण ही बलि है। अतएव जीवात्माके कल्याणके लिये मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदिका निग्रह और शुद्धि करना, जो विद्यादेवीको अर्पण करनेसे ही सम्भव है, यथार्थ पशु-बलि है।

(३)

(लेखक—पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री 'विद्यावाचस्पति')

प्रश्न–पशुकी बलि करनी चाहिये या नहीं ?

उत्तर–पशुकी बलि नहीं करनी चाहिये। क्योंकि मांस किसी घास या पाषाणसे पैदा नहीं होता। मांस रक्तसे होता है। वह मांस हिंसाके बिना नहीं प्राप्त होता। और हिंसा करना मना है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
(गीता १७। १४)

इस गीताके श्लोकमें देव-देवीकी और द्विज, गुरु, विद्वान् आदिकी पूजाकी बात कही गयी है। अब कोई यह कहे कि देवीका पूजन तो पशु-बलिसे ही होगा तो यह बात ठीक नहीं। क्योंकि इसी श्लोकमें आगे अहिंसा-पद आया है। हिंसाका स्पष्ट अर्थ है किसीका प्राण-वियोग कर देना। प्राण-वियोग करना पाप है। अहिंसा तो मन, वाणी और कायासे प्राणिमात्रका वध न करना है। वेदोंमें आता है—'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ—' श्रीराधा, लक्ष्मी—हे परमात्मन्! आपकी दो पत्नियाँ हैं। जब पति जगत्पति, जगत्पिता और उसकी स्त्री जगदम्बा कहलाती है तब वहाँ हिंसाका क्या काम है ? बलिके वास्तविक रहस्यको लोग समझे नहीं ! अपना प्रिय जीव ही पशु है, और उसे अपने इष्टदेवको सर्वतोभावेन समर्पण कर देना ही वास्तविक बलि है। यह तो कोई करता नहीं, मांसके लोभसे बेचारे गूँगे पशु मारे जाते हैं; यह कितना घोर अन्याय है !

महाभारतमें ऐसा लिखा है कि राजा शान्तनुके समयमें किसी पक्षीका भी वध नहीं होता था। राजाओंके लिये मृगया, जुआ, स्त्री-सेवा और मद्यपान ये चार दुर्व्यसन बतलाये गये हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है कि जब यज्ञका विचार किया गया और यह प्रश्न आया कि यज्ञमें पशु-हिंसा होनी चाहिये या नहीं, तो उस समय सब ब्राह्मणों और ऋषियोंने राय दी कि पशु-हिंसा नहीं होनी चाहिये। बलिके प्रसङ्गमें जो 'अज' शब्दका प्रयोग हुआ है उससे लोग 'बकरा' अर्थ ग्रहण करते हैं; किन्तु—

अजसंज्ञानि बीजानि वै त्रिवर्षोषितानि च।

तीन वर्षके बीजोंका नाम अज है। वहाँपर बकरा अर्थ तो मांसलोलुपोंने कर डाला। देखिये महाभारतमें क्या लिखा है—

मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत् प्रकीर्त्तितम्।
धूर्तैः प्रकल्पितन्चैतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥

मांसको लोग मान, मोह और लोभसे खाते हैं; यह लौल्य-चपलता है। धूर्तोंने मांसप्रकरण बलि, यज्ञ आदिमें ले घुसेड़ा है। वेदोंमें हिंसाका विधान कहीं भी नहीं है।

राजा कैसा होना चाहिये। इस विषयमें देखिये अथर्ववेद क्या कहता है।

अयं राजा प्रियमिन्द्रस्य भूयात्
प्रियः पशूनामोषधीनाञ्च—इति

यह राजा इन्द्र भगवान्‌का प्रिय हो और पशुओंका प्रिय हो, ओषधियोंका प्रिय हो······।

भला गलेमें छुरी भोंकनेसे कहीं प्रिय कहलाता है?

अतः पुष्प, फल या स्तवनसे ही बलि होनी चाहिये। देखिये वाल्मीकीय रामायणमें, पञ्चवटीमें लक्ष्मणजीने पुष्पोंसे बलि दी थी।

कूष्माण्ड, श्रीफल, उड़द, दधि आदिसे ही बलि देनेके लिये लिखा है। पशुओंका मारना तो पशु-भक्षियोंका विलास है।

महाशक्ति

(१)

(लेखक—'विद्यामार्तण्ड' पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)

महाशक्तिके समझनेके लिये प्रथम तीन पदार्थोंको समझ लेना आवश्यक है—शक्त, शक्ति और शक्य। यहाँ 'शक्त' नाम समर्थका, 'शक्ति' नाम सामर्थ्यका और 'शक्य' नाम उसका है जिसमें समर्थ अपना सामर्थ्य रखता है। जैसे अग्नि 'शक्त', दाहकत्व 'शक्ति' तथा तृण आदिका दाहकर्म उसका 'शक्य' है। फलतः 'शक्त' कारण, 'शक्ति' उसकी योग्यता और 'शक्य' उसका कार्य है। यह उपर्युक्त दृष्टान्त संसारकी प्रत्येक वस्तुमें लागू है। पृथिवी, जल, वायु, आकाश, शरीर, इन्द्रियाँ तथा अन्य स्थावर-जङ्गम कोई भी वस्तु क्यों न हो, किसी-न-किसी कार्यमें उसकी योग्यता अवश्य है; सुतरां 'शक्ति'से कोई वस्तु भी खाली नहीं। अन्नकी 'शक्ति' भूख मिटानेमें है, तो पानीकी प्यास बुझानेमें; ऐसी ही फल-फूल, ओषधि, वनस्पति आदिकी अवस्था है। चींटीसे लेकर हाथीपर्यन्त प्राणी—कीट, पतङ्ग, मनुष्य, देवता, असुर, दैत्य, दानव कोई भी अपने कार्यसे शून्य नहीं है। अग्नि जलानेकी 'शक्ति' रखती है, तो तृण जलनेकी 'शक्ति' रखता है। इसी प्रकार एक कार्यमें अनेक कारण भिन्न-भिन्न प्रकारकी 'शक्ति' रखते हैं और एक-एक कारण अनेक कार्योंमें 'शक्ति' रखता है। जैसे एक ही घटरूप कार्य कुलाल, चक्र, दण्ड, सूत्र, जल, मृत्तिका, अदृष्ट, ईश्वर, ईश्वर-ज्ञान, ईश्वरेच्छा, ईश्वर-प्रयत्न आदि अनेक कारणोंकी भिन्न-भिन्न शक्तियोंका साध्य है और वह घट भी अपने प्रत्येक कारणके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारकी साध्यताकी शक्ति रखता है। जहाँ एक कार्य अनेक कारणोंसे होता है वहाँ प्रत्येक कारणका भिन्न-भिन्न प्रकारका व्यापार तथा भिन्न-भिन्न प्रकारका उपयोग है। जहाँपर घड़ा बनता है, वहाँ कुम्हार कुछ और कर रहा है, डण्डा कुछ और, चाक कुछ और और सूत्र कुछ और ही कर रहा है। एवं कृषकजन जहाँ कूपपर खेतको सेचन करते हैं, कार्य वह एक ही होनेपर भी कोई

लाव (रस्सा)-डोलको कूपमें छोड़ता है, कोई उसे खींचकर बाहर लाता है, कोई जलको यथायोग्य क्यारीमें लगाता है। उस एक ही कार्यमें सब कारण अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न शक्तिसे भिन्न-भिन्न प्रकारका उपयोग करते हैं और वह कार्य भी भिन्न-भिन्न कारणोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारसे उपयुक्त होता है तथा भिन्न-भिन्न कारणसे उपयुक्त होनेमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी 'शक्ति' रखता है। इसी प्रकार किसी भी वस्तुपर ध्यान देते हैं तो कोई वस्तु 'शक्ति' से खाली नहीं दिखायी देती, प्रत्युत एक-एक वस्तु अनेक-अनेक प्रकारकी 'शक्ति' रखती है। एक ही अग्नि है; वह जलाती भी है, शीत निवारण करती है, पाक आदिका कार्य करती है और प्रकाश भी करती है, एवं लता, वृक्ष, वनस्पति, ओषधि आदिमें फल-फूल आदिका पाक भी करती है। इस शक्ति-तत्त्वपर जितना ही ध्यान देते हैं वह अपने विस्तारकी ओर बुद्धिको खींचे ही ले जाता है। बुद्धि उसके साथ चलते-चलते थक जाती है, किन्तु उसके विस्तारका अन्त नहीं होता।

इस कारणतारूप 'शक्ति' को नैयायिकोंने किसी-किसी वस्तुमें नहीं भी माना है। जैसे कि वे कहते हैं, 'पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम्—अणु-परिमाणसे भिन्न सभी पदार्थोंमें कारणता रहती है।' परन्तु वे भी स्व-विषयक ज्ञानके प्रति उसकी भी कारणता मानते ही हैं। प्रत्येक अवस्थामें नित्य-अनित्य सभी पदार्थ कारणता-शक्ति रखते हैं। अब हम प्रत्येक वस्तुकी 'शक्ति' से महाशक्तिकी ओर अपनी दृष्टिको ले जाते हैं, तो देखते हैं, सभी वस्तुओंमें 'शक्ति' क्यों है? कोई भी वस्तु 'शक्ति'से खाली क्यों नहीं है? और ऐसा किस प्रकार हो सकता है? तब इसका उत्तर यही मिलता है कि किसी एक व्यापक शक्तिके बिना सब छोटी-से-छोटी और मोटी-से-मोटी वस्तुओंमें शक्ति नहीं हो सकती। सुतरां कोई महासमुद्रके समान अनन्त तथा आकाशके समान व्यापक शक्ति है। उसीका सब वस्तुओंमें आपूर या फैलाव है; उसीके कारण सब पदार्थोंमें शक्ति है; उसीको सांख्यशास्त्रवाले प्रधान या मूल-प्रकृति, मीमांसक कर्म, वेदान्ती ब्रह्म, पौराणिक आदि परमात्मा, विष्णु-शक्ति, माया, प्रकृति आदि कहते हैं। इसी महाशक्तिको योगीश्वर समाधिमें ध्यान-साधना करके परमपद मोक्षकी प्राप्ति करते हैं। हम तो अपनी तुच्छ बुद्धिसे यही निश्चय करते हैं कि वह हरि ही त्रिलोकीनाथ महाशक्ति है, सब उसीके नाम हैं—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

(२)

(लेखक—स्वामी श्रीरामदासजी)

परम ईश्वर-तत्त्वसे निकली हुई अनन्तशक्तिका ही नाम 'महाशक्ति' है। जगत्के पदार्थोंका मूलकारण यही शक्ति है। असंख्य ब्रह्माण्ड और उसके कोटि-कोटि जीव और वस्तु उसी महाशक्तिके विकास हैं। उसीके अनन्त गर्भसे प्रकृतिकी क्रियात्मक शक्तियोंका प्रादुर्भाव और विकास हुआ। वह सत्य-सनातन सत्ताका आदि दैवी नारी-तत्त्व है और सदैव पुरुष-तत्त्व 'शिव' से संयुक्त है। शिव और शक्ति अलक्ष्य तथा अविज्ञेयरूपमें परम, परात्पर, सर्वोपरि ब्रह्म-सत्तामें सर्वथा 'एक' हैं। अस्तु।

महाशक्ति कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी जननी है। समस्त जीव और प्राणी उसके रूप—आकार हैं। जीवन और प्रकृतिकी सभी बाह्य तथा आभ्यन्तरिक गतिमें हमारी 'दैवी माँ' की ही प्रेरणा है—उसीकी क्रिया है। पञ्चमहाभूत (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), इन्द्रियाँ (कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय), मन, बुद्धि तथा सृष्टिकी स्थितिके मूलमें बुद्धिसे परे जो दिव्य चेतन आत्मा है वही उसका पूर्ण स्वरूप है। विविध शक्तियाँ और उपक्रम उसकी क्रीड़ामयी शक्तिका विलास है। यह उसीकी प्रेरक शक्ति है जो सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रादि प्रकाशसे जगमगा रहे हैं। उसीकी शक्तिकी प्रेरणासे ऋतुएँ बदलती हैं और प्रकृतिकी गति-विधिमें परिवर्तन होता है। सृष्टि, विकास और प्रलय उसकी विश्वजनीन क्रीड़ाके ही चिह्न हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सभी वस्तुओंमें हमारी दैवी जननी ही नाम और रूपके द्वारा प्रकट हो रही है। अज्ञानके कारण हम व्यक्तिविशेषको पुरुष अथवा स्त्री मान लेते हैं—वस्तुतः ये दैवी माताके ही रूप और आकार हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें जो शक्ति काम कर रही है—चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक

हो, बौद्धिक हो अथवा आध्यात्मिक हो—वह 'माँ' की ही शक्ति है।

विश्वकी विविध विभिन्नता और सङ्कुलतामें 'माँ' की परम एकता और एकरसता ही समस्त सत्ताका सर्वोपरि रहस्य है।

सर्वशक्तिमती 'माँ,' जो सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है, अपनी इच्छासे उत्पन्न व्यक्त सत्तामें अपनी क्रीड़ा-कुतूहल-वृत्तिको रिझाती है, जिससे आनन्दकी अजस्र धारा सतत प्रवाहित होती रहती है! उस अनन्त सङ्गीतके ताल, लय और मूर्च्छनाकी सृष्टि 'माँ' के पद-सञ्चारणकी एक छोटी-सी-छोटी गतिमें भी हो रही है। सर्वत्र उसीका गौरव, उसीका प्रकाश, उसीका तेज, उसीकी शक्ति, उसीकी महत्ता—नहीं-नहीं, वही वह-सर्वेसर्वा है।

विश्व-माता निर्विकल्प, अव्यय, सर्वव्यापक शून्य 'शिव' से भिन्न नहीं है और 'माँ' की व्यक्त सत्ताका यही आधार है, यही रहस्य है। दैवी सत्ताके इन दो अमर-तत्त्वोंको भिन्न-भिन्न समझना ठीक वैसा ही है जैसा कि प्रकाशको सूर्यसे भिन्न मानना अथवा धवलताको दूधसे अलग समझना। और चूँकि वही एक परमसत्य चल भी है और अचल भी है, क्रियाशील भी है और निष्क्रिय भी है, साकार भी है और निराकार भी है, दृश्य भी है, अदृश्य भी है, व्यक्त भी है और अव्यक्त भी है, मनुष्यकी सीमित बुद्धि उसे विचारकी सीमामें ला नहीं पाती, उसे सोच नहीं सकती और न शब्दोंके द्वारा उसका निर्देश ही कर सकती है।

उस सर्वगुणमयी, सर्वज्ञानमयी दैवी 'माँ' को आत्म-समर्पणके द्वारा प्राप्त करना आध्यात्मिक अनुभूतिकी पराकाष्ठापर पहुँचना है। इस दिव्य अनुभूतिमें आत्मा अनायास एक ही साथ शिव और महाशक्तिके साथ तादात्म्य और एकाकारताका अनुभव करता है। यही जीवनकी परम पूर्णता, आप्तकामता, सिद्धि और चरम लक्ष्य है। ऐ मेरी सर्वशक्तिमयी विश्वमाता! जय हो, सदा तेरी जय हो !!

शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद

(लेखक—प्रो० श्री एस० एस० सूर्यनारायण शास्त्री, एम० ए०)

ईश्वरवादका प्रभाव तभी पड़ सकता है और जनताके हृदयको स्पर्श कर सकता है जब उसका ईश्वर सर्वव्यापी भी हो और सर्वातिरिक्त भी हो। वह परम विभु अपनी पूर्णताके कारण हमसे अत्यधिक दूर हो, फिर भी उसे हम सबके, जो उसके जीव हैं, अत्यन्त समीप भी होना चाहिये; नहीं तो अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि ईश्वरके लिये हमारे हृदयमें प्रेम, सहानुभूति तथा सेवाके भाव न रहकर भय और श्रद्धाके भाव रहने लगेंगे। वह प्रभु जगत्‌से परे हो, क्योंकि उससे बढ़कर जगत्‌को निर्माण करनेवाला सुविज्ञ शिल्पी कौन होगा ? फिर भी वह संसारका हो, नहीं तो जगत् उससे भिन्न एक विरोधी उपकरण हो जायगा। परिणाम यह होगा कि प्रभु-की पूर्णता सीमित हो जायगी, चाहे वह थोड़े ही अंशमें हो। वह निमित्त-कारण भी हो और उपादान-कारण भी। इन परस्पर-विरोधी सिद्धान्तोंका सामञ्जस्य हमारे शास्त्रोंने भारतीय दर्शनकी भिन्न-भिन्न शाखाओंके रूपमें प्रकट किया है। जो इन्द्रियातीत है उसका साक्षात् ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान आदिके द्वारा नहीं हो सकता। वह तो केवल आप्त-प्रमाणका विषय है और जब शास्त्र ईश्वरको जगत्‌का उपादान तथा निमित्त-कारण दोनों मानते हैं तो हमारा उनके निरूपणमें शङ्का करनेका कोई अधिकार नहीं है। शब्द-प्रमाणपर जो इस प्रकार जोर दिया गया है वह ठीक हो अथवा नहीं, इतना तो निश्चय है कि भारतीय दर्शनमें केवल इसी प्रमाणका आश्रय नहीं लिया गया है। तर्कद्वारा विरोधी बातोंके सामञ्जस्यकी चेष्टा बार-बार की गयी है; किन्तु तर्कका आश्रय शब्द-प्रमाणके सहायकरूपमें ही लिया गया है, उसके विरोधमें नहीं। इसी प्रकारका एक सिद्धान्त शक्ति और शक्तिमान् अथवा, इसीको और व्यापकरूपमें लें तो, धर्म और धर्मीके अभेदका सिद्धान्त है।

जब यह कहा जाता है कि ईश्वर जगत्‌का उपादान-कारण है तो इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता कि सर्वांशमें अथवा किसी एक अंशमें उसकी विकृति होती है, क्योंकि ईश्वरमें कभी परिणाम या विकार नहीं होता और वह निरवयव है। फिर भी वह चिदचिदात्मक विश्वके

रूपमें परिणत होता है, यद्यपि ऐसा होनेसे उसमें किसी प्रकारकी अपूर्णता नहीं आती। *

इस प्रकारके विलक्षण परिणामका कारण है प्रभुकी चित्-शक्ति अथवा प्रज्ञा-शक्ति। आरम्भमें जब सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी और उसके साथ-साथ दिन-रात, नाम-रूप, सत्-असत्का भेद नहीं था,—शिव, केवल शिव, स्वप्रकाश एवं अविनाशीरूपमें विद्यमान थे। शिवसे ही ज्ञान-शक्तिका आविर्भाव हुआ। तब प्रभुने, जिनका शरीर संसारकी सूक्ष्मावस्था है, यह सङ्कल्प किया कि मेरा शरीर नाम और रूपके द्वारा व्यक्त हो। उन्होंने अपनी सत्तासे सूक्ष्म जगत्को पृथक् किया—उसकी आत्मा बनकर उसमें प्रवेश किया और इस विविध विश्वके रूपमें अपने आपको परिणत किया। प्रभुके कारण और कार्य-शरीरमें वही अन्तर है जो अन्तर पुरुषके शैशव और यौवनमें होता है। पहली अवस्थामें जो शक्ति प्रच्छन्नरूपमें रहती है, वही इस दूसरी अवस्थामें प्रकट हो जाती है। जो कुछ परिवर्त्तन होता है वह शक्तिकी व्यक्त और अव्यक्त अवस्थामें ही होता है, न कि शक्तिमान्की सत्तामें। इस हेतु मूल उपादान-कारण तो यह शक्ति या माया ही हुई। प्रभु तो केवल इसके स्वामी हैं, उस मायाके अधीश्वर और सञ्चालक हैं—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

मायामें परिवर्त्तन होनेसे मायापति महेश्वरमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता। परन्तु साथ ही वे विश्वका उपादान-कारण तो बने ही रहते हैं; क्योंकि माया और मायी-शक्ति और शक्तिमान्में किसी प्रकारका भेद नहीं है †

शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः।
शक्तिस्तु शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न गच्छति॥
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥

उपादान-कारणका निमित्त-कारणके साथ अभेद स्थापित करनेमें बुद्धिको सङ्कोच हुआ। उसने एक बीचका रास्ता निकाला। वह था शक्ति-तत्त्वको स्वीकार करना और उसे ईश्वरसे भिन्न मानना। परन्तु उसी साँसमें जब यह भी कहा जाय कि शक्ति और शक्तिमान् एक हैं तो तर्कका प्रयास—उन्हें अलग-अलग दिखानेकी चेष्टा—व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यह तो 'घट्ट-कुटी-प्रभात-वृत्तान्त' की-सी बात हुई। रातभर चुंगीसे बचनेके लिये प्रधान रास्ता छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते खोजनेमें लगे रहे और सबेरा होनेपर क्या देखते हैं कि चुंगी-के-चुंगीपर ही मौजूद हैं। वास्तवमें ऐसा है नहीं। क्योंकि अन्तमें यह स्पष्ट हो जायगा कि पदार्थ और गुण भिन्न नहीं हैं।

लोगोंकी भ्रान्तिमूलक धारणा और तार्किकोंकी प्रचलित परिपाटीके अनुसार अवश्य ही वस्तुको गुणसे भिन्न एवं गुणका आधार माना जाता है। गुण अनेक हैं और अनित्य हैं, क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं; एक गुणको सब लोग उसी रूपमें नहीं देखते। यही नहीं, एक ही पुरुष सदा एक रूपमें नहीं देखता, यद्यपि उस पदार्थको, जिसमें यह गुण है, निर्विवादरूपसे पहचान लिया जाता है। कुछ लोगोंकी रंग पहचाननेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकारका मनुष्य लाल कपड़ेको तो देखता है, परन्तु देखता है उसे हरा। एक सुविज्ञ कलाविद् चित्रपटको देखता जरूर है, परन्तु देखता है उसे अस्पष्ट चित्रके रूपमें, पूरे चित्रके रूपमें नहीं। लाल और हरे रंग तथा कुचित्र और सुचित्रके अनुभवमें जो बात समानरूपसे विद्यमान है, वह स्थायी होनी चाहिये। वह है इन गुणोंका आधार अथवा अधिष्ठान। यह गुणोंसे भिन्न गुणी है। परन्तु क्या यह भेद ऐसा है जिसका कभी बाध नहीं हो सकता? शैव और शाक्तोंका कथन है कि 'नहीं'। क्योंकि इसे बुद्धि स्वीकार नहीं करती। यदि इस प्रकारकी अधिष्ठानरूप वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता मान भी ली जाय तो इसे जाना कैसे जा सकता है? प्रत्यक्ष-ज्ञान इन्द्रियोंको द्वार बनाकर ही होता है और इन्द्रियाँ जिसका प्रत्यक्ष करती हैं—चाहे वह रूप हो, शब्द हो, स्पर्श हो, रस हो या गन्ध हो—उसकी गुणोंमें ही गणना होती है। हमलोग गुणोंके अधिष्ठानको कभी नहीं देखते। यदि उसे कभी देख लिया तो उसकी 'गुण'-संज्ञा ही होगी। अनुमानसे भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि वह भी प्रत्यक्ष किये हुए पदार्थोंकी व्याप्ति अथवा नित्य-साहचर्यपर निर्भर करता है। और ऐसी कौन-सी प्रत्यक्ष की हुई व्याप्ति होगी, जिसके बलपर हम किसी अप्रत्यक्ष वस्तुका यथार्थ अनुमान कर सकें। इस अवस्थामें हमारे लिये इसी निर्णयपर पहुँचना अनिवार्य हो जाता है कि गुणोंसे भिन्न कोई गुणी है ही नहीं। अथवा यदि है भी तो उसका ज्ञान नहीं हो सकता—उसकी सत्ताका भी

---

* देखिये श्रीकण्ठकी ब्रह्ममीमांसा १, ४, २७।

† देखिये श्रीकण्ठकी ब्रह्ममीमांसा १, २, १।

ज्ञान नहीं हो सकता। पिछली बात अनुपपन्न होनेके कारण शक्तिवादी पहली ही स्थितिको स्वीकार करते हैं। फिर पदार्थकी जो प्रतीति होती है, उसका क्या समाधान है ? फिर क्या कारण है कि गुणोंकी विभिन्नता होते हुए भी हम उस वस्तुको एक ही रूपमें पहचान लेते हैं ? हमारा उत्तर यह है कि अनेकतासे भिन्न एकताकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। विभिन्नतापर दृष्टिपात करनेकी यह एक रीति है।

ठीक जिस प्रकार एक ही साथ दृष्टिगोचर हुए सिपाहियोंका समूह ही 'सेना' है और एक साथ दृष्टिगोचर हुए वृक्षोंके समूहका नाम ही वन है, ठीक उसी प्रकार गुणोंका समूह ही वस्तुकी सत्ता है।

न गुणी कश्चिदर्थोऽस्ति जडो गुणसमाश्रयः ।
गुणा एवानुभूयन्ते गुणिसंज्ञाश्च सङ्गताः ॥*

इसीसे शैव और शाक्त दर्शनोंमें सांख्यकी भाँति सृष्टिके क्रममें पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति पञ्चतन्मात्राओंसे मानी गयी है, नहीं तो फिर पञ्चभूतरूप द्रव्योंकी उत्पत्ति तन्मात्रारूप गुणोंसे कैसे हो सकती थी ?

यह बात तो सहजमें ही समझमें आ जायगी कि यह सिद्धान्त शाक्त और प्रत्यभिज्ञादर्शनोंके विज्ञानवादसे कितना मेल खाता है। यदि द्रव्य कोई ठोस और स्थायी वस्तु नहीं है, यदि उसका अस्तित्व केवल हमारे दृष्टिकोणपर ही निर्भर है तो फिर बाह्य प्रतीतिके विषय बने हुए इस वास्तविक कहलानेवाले जगत्‌की कल्पित स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है और वह द्रष्टाके ज्ञानपर ही आश्रित हो जाती है। इस प्रक्रियासे तो हम अन्ततोगत्वा इसी निर्णयपर पहुँचेंगे कि पदार्थ और द्रष्टा एक ही हैं। तथा छोटे-मोटे सारे भेद मायाके अथवा उस परमतत्त्वके साथ अनन्यताका ज्ञान न होनेके कारण ही हैं (जिसे प्रत्यभिज्ञादर्शनमें 'अख्याति' कहते हैं)। यह सिद्धान्त यद्यपि शैव-सम्प्रदायके दार्शनिक सिद्धान्तोंके प्रतिकूल पड़ता है, क्योंकि उक्त सम्प्रदायमें ईश्वर, जीव तथा जगत्‌की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गयी है, फिर भी उन्हें इस सिद्धान्तको ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं हुई। अन्ततक अपनेको तर्ककी कसौटीपर कसनेमें असमर्थ होनेके कारण उसने इस विरोधी सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया, जो उसके लिये एक विचित्र बात थी, अथवा उसने कुछ इनकी बात रह जाय, कुछ अपनी रह जाय, इस उद्देश्यसे मध्यमार्गका-सा अवलम्बन किया, जैसा कि वह करता आया है—इसका निर्णय करना कठिन है।† जो कुछ भी हो, शक्ति और शक्तिमान्‌के अभेदके सिद्धान्तकी तहमें एक महान् दार्शनिक तथा धार्मिक तत्त्व निहित है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं हो सकता।‡

श्रीमन्मध्वसम्प्रदायमें शक्ति-तत्त्व

(लेखक—'पण्डितभूषण' श्रीनारायणाचार्यजी बरखेडकर)

सर्वज्ञाखिलसच्छक्तिः स्वतन्त्रोऽशेषदर्शनः ।
नित्यातादृशचिच्चेत्य अन्त्येष्टो नो रमापतिः ॥
(तत्त्वोद्योत)

स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च द्विविधं तत्त्वमिष्यते ।
स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्भावाभावौ द्विधेतरत् ॥
(तत्त्वसंख्यान)

स्वतन्त्र तथा अस्वतन्त्र-भेदसे दो प्रकारके तत्त्व श्रीमन्मध्वाचार्यजीके सिद्धान्तमें माने गये हैं। उन्हें ही 'पर-तत्त्व' तथा 'अपर-तत्त्व' भी कहते हैं। नित्यानित्य, चराचर तथा समस्त रमा-ब्रह्मादि देवताओंका भी नियमन करनेवाला तत्त्व 'पर-तत्त्व' अथवा 'स्वतन्त्र-तत्त्व' कहलाता है। इसी कारण वह 'अखिलसच्छक्तिः' अर्थात् समस्त शक्ति-

* पौष्कर-आगम पृष्ठ ४५६ (चिदम्बरम्-संस्करण)। इसी आगमके पृष्ठ ४५५—४६० तक भी उसके भाष्यके साथ देखिये।

† इस विषयपर विशेष प्रकाशके लिये देखिये— Substance and Attribute in the Saiva Siddhanta'—Journal of Oriental Research, Madras, April 1934.

‡ यह सिद्धान्त उन थोड़े-से विषयोंमें है जिनके विवेचनमें श्रीकण्ठने अपनी कवित्व-प्रतिभाका परिचय दिया है। देखिये उनका 'ब्रह्ममीमांसा' १, २, १ —'सकलचिदचित्प्रपञ्चमहाविभूतिरूपमहासच्चिदानन्दसत्ता देशकालादिपरिच्छेदशून्या स्वाभाविकी परमशक्तिः परब्रह्मणः शिवस्य स्वरूपञ्च गुणश्च भवति। तद्व्यतिरेकेण परब्रह्मणः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वसर्वकारणत्वसर्वनियन्तृत्वसर्वोपास्यत्वसर्वानुग्राहकत्वसर्वपुरुषार्थहेतुत्वादिकं न सम्भवति। किञ्च महेश्वरमहादेवरुद्रादिपरमाख्यानमभिधेयत्वञ्च न सम्भवति।'

वाला कहा जाता है। इस तत्त्वके लिये 'महाशक्ति' शब्दका भी प्रयोग 'तन्त्रसार' ग्रन्थमें किया गया है। यथा—

तत्र तत्र स्थितो विष्णुस्तत्तच्छक्तीः प्रबोधयन्।
एक एव महाशक्तिः कुरुते सर्वमञ्जसा॥

अर्थात् श्रीमन्मध्वाचार्यजीने सर्वतन्त्रस्वतन्त्र भगवान् श्रीमहाविष्णुको ही 'स्वतन्त्र', 'पर' अथवा 'महाशक्ति' स्वीकार किया है। इसी महाशक्तिसे रमा, ब्रह्मा, सरस्वती, रुद्र, पार्वती, इन्द्र, शची आदि समस्त देवताओंकी शक्ति भी सञ्चालित होती है। यह तत्त्व वेद, उपनिषद्, पुराण, गीतादि प्रमाण-ग्रन्थोंमें प्रधानतया वर्णित है। श्रुति कहती है—

(१) यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।............

(२)......मम योनिरप्स्वन्तःसमुद्रे......

(३)......परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सम्बभूव।

ये मन्त्र ऋग्वेदके देवीसूक्तमें हैं। भगवती महालक्ष्मीजी कहती हैं कि 'मैं चाहे जिसको रुद्र, ब्रह्मा, ऋषि अथवा बुद्धि-सम्पन्न नर बना सकती हूँ', 'मेरा उत्पादक, 'नियन्त्रण' करनेवाला मेरा प्रभु समुद्रके मध्यमें निवास करता है', 'इस द्युलोक और इस पृथ्वीके परे भी वह है—यह सब उसकी महिमासे हुआ है' इत्यादि। इसी अभिप्रायको विष्णु-सूक्त तथा कठोपनिषद्में भी कहा है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
(विष्णुसूक्त)

इसी वेदमन्त्रका अनुवाद श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतमें किया है—

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि॥

......महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।
(कठ० १।३।१५)

अणोरणीयान् महतो महीयान्। (कठ० १।२।२०)

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।
(कठ० १।३।९)

'कदाचित् कोई पुरुष बालूके कणोंकी गिनती करे तो कर सकता है, परन्तु विष्णुके पराक्रम—शक्तिकी गणना कोई भी नहीं कर सकता।'

'संसार-समुद्रमें, उस पार ले जानेमें सर्वथा समर्थ विष्णु-शक्ति ही है।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है कि:—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
(९।१०)

इस वाक्यमें अपने ही द्वारा नियन्त्रित रहनेवाली प्रकृतिको, चराचर जगत्की उत्पादिका माना गया है। यद्यपि प्रकृति दो प्रकारकी है, जैसे गीता-भाष्यमें कहा गया है—

प्रकृती द्वे तु देवस्य जडा चैवाजडा मता।
अव्यक्ताख्या जडा सा च सृष्ट्या भिन्नाष्टधा पुनः॥
अवरा सा जडा श्रीश्च परेयं धार्यते तया।
चिद्रूपा सा त्वनन्ता च अनादिनिधना परा॥
नारायणस्य महिषी माता सा ब्रह्मणोऽपि हि।

—परन्तु शक्ति-तत्त्वमें इस समय प्रसक्त प्रकृतिको अधिकारी जड़ न समझें, इसलिये—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७।५)

—इस वाक्यसे समस्त जगत्को धारण करनेवाली, श्रेष्ठ, चेतनरूप यह प्रकृति पूर्वोक्त आठ प्रकारकी अपरा-प्रकृतिसे भिन्न है, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यदि यह प्रकृति चेतनरूप न मानी जाय, तो चराचर जगत्का निर्माण करना तथा धारण करना अनुपपन्न हो जाता है। इसलिये यह प्रकृति चेतनरूप ही है। इसी अभिप्रायसे श्रीमद्भागवतमें—

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं देवीं सदसदात्मिकाम्॥

—'देवीम्' शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकृतिको—

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं चाहुरविशेषं विशेषवत्॥

—इस भागवतके श्लोकमें त्रिगुण, अव्यक्त, प्रधान, प्रकृति, सदसदात्मिका, नित्या—ऐसा भी कहा गया है।

इसी प्रकृतिके लिये 'माया' शब्दका भी व्यवहार किया जाता है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
(श्वे० उ०)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

इसी मायाका विवरण श्री, भू, दुर्गारूपमें गीतातात्पर्य नामक ग्रन्थमें श्रीमन्मध्वाचार्यजीने लिखा है—

तस्यास्तु त्रीणि रूपाणि सत्त्वं नाम रजस्तमः।
सृष्टिकाले विभज्यन्ते सत्त्वं श्रीसद्गुणप्रभा॥
रजो रञ्जनकर्तृत्वाद् भूः सा सृष्टिकरी यतः।
जीवानां ग्लपनाद् दुर्गा तम इत्येव कीर्तिता॥

भागवततात्पर्यमें भी—

श्रीर्मूलसत्त्वं विज्ञेया भूर्मूलं रज उच्यते।
मूलं तमस्तथा दुर्गा महालक्ष्मीस्त्रिमूर्तिका॥

—त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको श्री, भू, दुर्गारूपसे वर्णन किया गया है।

यद्यपि त्रिगुणात्मिका, गुणमयी इत्यादि शब्द जड प्रकृतिके ही बोधक होते हैं तथापि जडके द्वारा सृष्टि, स्थिति आदि कार्य नहीं हो सकते। इस कारणसे श्रीवेदव्यासजीने वेदान्तसूत्रोंमें 'मृदब्रवीत्,' 'आपोऽब्रुवन्' इत्यादि वेदवाक्योंकी उपपत्तिके लिये 'अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्'—इस सूत्रके अनुसार जड पदार्थोंमें तदभिमानी देवताका ही ग्रहण करनेके लिये कहा है। इससे महत्, प्रकृति, त्रिगुणात्मिका, गुणमयी इत्यादि शब्दोंसे उनके अभिमानी देवताका, श्रीमहालक्ष्मीजीका ही ग्रहण होता है। श्रीमहालक्ष्मीजीको ही भागवतके दशमस्कन्धमें 'योगमाया'-शब्दसे व्यवहृत किया है तथा उनके अन्य नाम भी इस प्रकार लिखे हैं—

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणीशाना शारदेत्यम्बिकेति च॥

अर्थात् शक्ति-नामसे अष्टभुजा, चतुर्भुजा आदि अनेक नाम जो शास्त्र-पुराणोंमें देखे जाते हैं वे सब भगवती श्रीमहालक्ष्मीजीके ही स्वरूप मध्व-सिद्धान्तमें माने जाते हैं। श्रीमहालक्ष्मीजीका स्थान सामान्य तत्त्वोंमें दूसरा तथा 'अपर' 'अस्वतन्त्र' तत्त्वोंमें पहला माना है।

अस्वतन्त्र तत्त्वोंमें ब्रह्मा, सरस्वती, रुद्र, पार्वती, इन्द्र, शची इत्यादि समस्त तत्त्वाभिमानी देवताओंका नियन्त्रण इन्हीं भगवती महालक्ष्मीजीके अधीन है। तथा 'तदधीनत्वादर्थवत्' इस वेदान्त-सूत्रके अनुसार, तत्त्वाभिमानी देवताओंके नामोंकी प्रवृत्तिके निमित्त श्रीमहालक्ष्मीजीके स्वाधीन होनेके कारण उनके नामोंसे भी कहीं-कहीं व्यवहार होता है। इसीसे गौरी, अम्बिका, सरस्वती, ईशाना इत्यादि नामोंसे भी व्यवहार देखनेमें आता है।

श्रीभगवती महालक्ष्मीजी अथवा 'अपर शक्ति-तत्त्व', श्रीमध्वसिद्धान्तमें, नित्यमुक्त भगवत्तत्त्व (पर-तत्त्व) के समान देशकालतः व्याप्त है। परन्तु ब्रह्मा-सरस्वती, रुद्र-पार्वती आदि तत्त्वदेवताओंके गुण अत्यधिक पूर्ण होनेपर भी 'पर-तत्त्व'—भगवत्तत्त्वके गुणोंसे कई अंशमें न्यून हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य
महत्तमैकान्तपरायणस्य।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो
महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः॥
एतावतालं ननु सूचितेन
गुणैरसाम्येऽनतिशायितेऽस्य।
हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूति-
र्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः॥
अथापि यत्पादनखावसृष्टं
जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः॥

इन श्लोकोंमें भगवान्‌के मधुर-सरस नामोच्चारणका महत्त्व कहते हुए सूतजी कहते हैं कि, 'जिन भगवान्‌को मङ्गलप्रद श्रेष्ठ गुण तथा अनन्त शक्ति होनेके कारण अनन्त कहते हैं, उनके विषयमें अधिकारी पुरुषोंको इतना ही जानना पर्याप्त है कि अन्य पदार्थोंमें भगवान्‌के गुणोंके समान भी गुण नहीं हैं, फिर उनसे अधिक गुण होना तो दूर रहा! सकलभाग्यात्मिका महालक्ष्मीजी प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओंकी ओर ध्यान न देकर निःस्पृह भगवान्‌की ही सेवा करती हैं। ब्रह्माजीने जिसके चरण-कमल निज कमण्डलुके जलसे प्रक्षालित किये, वही जल (भगवती भागीरथी) महादेवजी सहित

समस्त जगत्को पवित्र करता है तब भगवान् विष्णुके सिवा अन्य कौन-सा पदार्थ मुक्तिप्रद है जो भगवत्-शब्द-वाच्य हो अर्थात् अनन्त ऐश्वर्य, शक्ति आदि गुणोंसे पूर्ण हो।'

सारांश यह है कि ब्रह्मा-सरस्वती, रुद्र-पार्वती एवं समस्त देवतागण जो यथायोग्य तत्त्वोंके अभिमानी हैं उनकी अधिपति श्रीमहालक्ष्मीजी हैं, तथा श्रीमहालक्ष्मीजीके अधिपति भगवान् श्रीविष्णु हैं। इसलिये सर्वोत्तमत्व-भावसे भगवान् विष्णुकी तथा भगवत्परिवारके विचारसे यथायोग्य श्रीभगवती महालक्ष्मी, ब्रह्मा, रुद्र-पार्वतीजी इत्यादि देवताओंकी उपासना करनी चाहिये। यही श्रीमन्मध्व-सिद्धान्तमें शक्ति-तत्त्वका सार है। यद्यपि इस विषयपर सिद्धान्तानुसार बहुत-कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु समयाभावके कारण इतना ही पर्याप्त है। इति शुभम्।

श्रीमन्नृसिंहगुरुवर्यदयाम्बुलेश-
माश्रित्य गद्यरचना विहिता सुरम्या।
प्रीतो भवत्वथ मतिं विमलां ददातु
शक्त्या युतो मुररिपुर्ज नया सुकृत्या॥

—•—
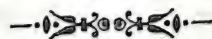
श्रीशक्ति

(लेखक—पं० श्रीहनूमान्जी शर्मा)

(१)

जिसको वेद, पुराण और उपनिषद् जगदम्बा मानते हैं; जो सर्वेश्वरके सोनेपर भी जागती है; जिसकी सहायतासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टिको रचते, पालते और संहार करते हैं; जिसके इशारेसे काल, मृत्यु, गुणत्रय और पञ्चभूत प्रभाव दिखलाते हैं; जिसकी अणुमात्र इच्छासे देव, दानव, मनुष्य या पशु, पक्षी और कीटादि अपने शत्रुओंको जीतते और भरण-पोषणमें संलग्न होते हैं और जिसकी कृपासे ज्ञात-अज्ञात सभी जीव अपना अस्तित्व दिखलाते हैं उस अनन्तशक्तिका असली आभास प्रकट करनेके लिये अब-तक कई प्रयत्न हुए हैं।

सामान्यरूपसे इस लेखमें भी यह लिखा जा सकता है कि तृण-कणसे लेकर कुलिशादितक, चींटीसे लेकर हाथी-तक, शश-मृगसे लेकर सिंहादितक और मनुष्योंसे लेकर देवोंतक जो भी जीव, पदार्थ या देव हैं और वे जो कुछ आहार-विहार या विचरण-व्यवहार करते हैं वे सब शक्तिके स्वरूप हैं। विशेषता यह है कि देवीके चित्रों, चरित्रों या प्रतिमाओंमें जो उसके दो, चार, छः, आठ, अठारह या हजार भुजाएँ; एक, दो, चार, छः या अगणित मुख और अपद, द्विपद, चतुष्पद या बहुत पद हैं, यह तथ्य-संयुक्त और रहस्यपूर्ण है।

वह महाबली सिंहपर आरूढ़ है। श्याम, श्वेत या लाल वर्णकी है। करालवदना, हसन्मुखी या शोकविह्वला भी है। उसके जितने हाथ हैं उतने ही (या उनसे भी ज्यादा) आयुध हैं। साथ ही हल, मूसल और कुदाल भी रखती है; फिर खड्ग, खप्पर, त्रिशूल या शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मका होना तो स्वाभाविक है। ये सब भी प्रयोजनवश हैं। और अवसर आये होते भी हैं। क्यों हैं और कैसे होते हैं, यह बतलानेके लिये यहाँ 'देवी-चरित्र' और 'शक्तिके स्वरूप' संक्षेपसे बतलाये जाते हैं।

(२)

दुर्गापाठ

पहला अध्याय—सृष्टिमें सर्वत्र जल व्याप्त था। प्राणी-पदार्थ कुछ नहीं थे। स्वयं भगवान् भी योग-निद्रामें मग्न थे। केवल जगजननी सजग थी। अवधि बीतनेपर कर्ण-मलसे मधु-कैटभ प्रकट हुए। उन्होंने कमल-नालके ब्रह्माको ग्रसना चाहा। तब विरञ्चिने भगवतीसे कहा कि तू 'स्वाहा', 'स्वधा'–सब कुछ है। मेरी रक्षा कर। तब शक्तिने भगवान्को जगा दिया। वह चैतन्य हो गये। और शक्ति पाकर मधु-कैटभको मार डाला। दूसरा अध्याय—असुरोंसे पीड़ित होकर देवताओंने देवीकी शरण ली। वह महिषासुरको मारनेमें प्रवृत्त हुई। उस समय उसका शरीर जलते हुए पर्वत-जैसा था। प्रत्येक अङ्गमें देवताओंकी शक्तियाँ भी थीं। देवीने खड्गप्रहारसे सेनाका संहार कर दिया।

तीसरा अध्याय—सेनाके निहत होनेपर महिषासुर आया। बड़ी गर्जना की। देवीने 'गर्ज गर्ज क्षणं मूढ' कहकर त्रिशूलसे उसका शरीर छेद दिया और खड्गसे सिर काट डाला। चौथा अध्याय—देवता बड़े प्रसन्न हुए। सबने 'शक्रादयः सुरगणाः' से गम्भीर रहस्यके शब्दोंमें स्तुति की। पाँचवाँ अध्याय—कालान्तरमें शुम्भ-निशुम्भ पैदा हुए। उन्होंने देवताओंको राज्यहीन और भोजन-विहीन बना दिया। सबने हिमालयमें जाकर विष्णुमायाका 'नमो देव्यै'से स्तवन किया। देवी सन्तुष्ट हुई। उसने मनोहर रूप धारण किया। दैत्य मोहित हो गये। उन्होंने चण्ड-मुण्डको भेजा। तब देवीने कहा कि मुझे युद्धमें परास्त करके पा सकते हैं।

छठा अध्याय—तब हजारों दैत्य लेकर धूम्रलोचन गया। देवीने हुङ्कारसे सबको निर्जीव बना दिया। साथ ही सिंहने सेनाएँ कुचल डालीं। सातवाँ अध्याय—चण्ड-मुण्ड मारे गये। आठवाँ अध्याय—अन्तमें स्वयं दैत्यराज उपस्थित हुआ। साथमें सुसज्जित सेना भी थी। देवीने अपने स्वरूपको दिगन्तव्यापी बना लिया और देवताओं-की दी हुई सायुध, सवाहन ब्राह्मी-माहेश्वरी आदि शक्तियोंको साथ लिया। घोर युद्ध हुआ। रक्त-बीज नामक दैत्यके खूनकी प्रत्येक बूँदसे वैसे ही बली दैत्य बनते जा रहे थे, अतः देवीने मुँह फैलाकर उसके रुधिरको पृथिवीपर नहीं पड़ने दिया और उसको निर्बीज कर मार डाला। नवाँ अध्याय—रक्त-बीजरूपी प्लेगके न रहनेपर निशुम्भने युद्ध किया, वह भी मारा गया।

दसवाँ अध्याय—अन्तमें शुम्भ आया। उसने कहा कि तू अन्य शक्तियोंके सहारेसे सेना-संहार कर रही है, नहीं तो अबतक हार जाती। तब देवीने बाहरकी शक्तियोंको शरीरमें विलीन करके अकेले ही शुम्भको मार डाला। ग्यारहवाँ अध्याय—दैत्यके मरनेसे देवताओंके सङ्कट कट गये। उन्होंने बड़ी भक्तिसे शक्तिकी स्तुति की। तब देवीने कहा कि तुम निर्भय रहो, मैं रक्षा करूँगी। बारहवाँ अध्याय—अनन्तर उसने अपने प्रकट होनेके अवसर एवं पूजा-विधान बतलाये। तेरहवाँ अध्याय—और सुरथ तथा समाधिको सुख-सम्पत्ति-सन्तान और राज्य देकर अन्तर्धान हो गयी। (विशेष जाननेके लिये 'दुर्गापाठ' को साद्यन्त देखना आवश्यक है) अब विश्वेश्वरीके विश्वव्यापक बहुविध एवं वैज्ञानिक स्वरूपोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

(३)

बल, ताकत या सामर्थ्य शक्तिके नाम हैं, और तर, स्थाम, शुश्म, प्राण, उर्व, प्रविण और पराक्रम—ये पर्याय हैं। (१) वह ईश्वरकी सम्पूर्ण इच्छाओंको गौरी या लक्ष्मीरूप होकर अकेली पूर्ण करती है। इस कारण वह 'एक' प्रकारकी शक्ति है। अंग्रेज विद्वान् भी केवल 'पावर' मानते हैं। (२) इच्छा और माया-भेदसे 'दो' प्रकारकी है। उद्भव और विनाशादिके युग्मसे या स्त्रीदेव और देवीरूपसे भी दो प्रकारकी है। 'फोर्स' और 'एनर्जी' भेदसे अंग्रेज भी दो प्रकारकी मानते हैं। (३) ब्रह्म-विष्णु-रुद्रसंस्थित—श्वेत, रक्त, कृष्ण वर्णकी—ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री—महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली—सात्त्विकी, राजसी और तामसीके भेदत्रयसे 'तीन' प्रकारकी है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान—अग्नि, आदित्य और वायु—आतप, आदित्य और तड़ित् अथवा लक्ष्मी, सरस्वती और गायत्रीरूपसे भी तीन प्रकारकी है। (४) तेरह वर्षसे पच्चीस वर्षतककी अप्रसूता युवतियोंमें रूप, यौवन, शील और सौभाग्यके भेदसे 'चार' प्रकारकी है। (५) कृष्ण-प्राणेश्वरी 'राधा', मुदमंगलदायिनी 'लक्ष्मी,' बुद्धि, ज्ञान और शक्तिवर्द्धक तथा दुःखहरा 'दुर्गा,' संगीतादि सभी शास्त्रोंकी मर्मज्ञा 'सरस्वती', और अखिल तेजसे संयुक्त करनेवाली 'सावित्री'-रूपसे 'पाँच' प्रकारकी है। (६) ताप, तड़ित्, चुम्बक, मध्याकर्षण, आलोक और रासायनिक-भेदोंसे 'छः' प्रकारकी है। अंग्रेज भी गतिशक्ति (Energy of Motion), क्रियमाण-शक्ति (Kinetic Energy), मध्याकर्षण (Energy of Gravitation), तापशक्ति (Heat Power), स्थिति-स्थापकता (Energy of Elasticity) और तड़ित्शक्ति (Electrical Energy) रूपसे छः प्रकारकी मानते हैं। (७) पृथिवी, आकाश, तड़ित्-प्रकाश, भचक्र-भ्रमण, दिशाएँ, जगदाधार और वायुके रूपसे 'सात' प्रकारकी शक्ति होती है। स्वर्गका प्रकाश, पृथ्वीकी दाह-पाकादि क्रिया, वृक्षादिका रसपान, ओषधियोंके गुण, वनस्पतियोंके प्रभाव, जलका उर्व और वायुकी व्यापकतामें तेज देनेसे भी सात प्रकारकी है। (८) अणिमादि अष्टसिद्धिके रूपसे या इन्द्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, वाराही, माहेश्वरी और भैरवीरूपसे 'आठ' प्रकारकी है। (९) गौर्यादि मातृकारूपसे 'सोलह' प्रकारकी है। (१०) पीठरूपसे

'इक्यावन' प्रकारकी । नटी और कापालिकी-रूपसे या योगिनीरूपसे 'चौंसठ' प्रकारकी । कीर्ति-कान्त्यादि वैष्णवी और गुणोदरी आदि रौद्रीरूपसे 'सौ' प्रकारकी। चामुण्डेश्वरी और राजराजेश्वरीरूपसे 'एक सौ इकसठ' प्रकारकी और सृष्टिगत प्राणी या पदार्थोंके रूपसे 'अगणित' प्रकारकी है। इन सबका विज्ञानसे विचार किया जाय तो बड़ा कौतुक मालूम होता है और अलौकिक आनन्द मिलता है।

(४)

उदाहरणार्थ-(१) स्फुलिंग (चिनगारी) को ग्रहण करके उसका तृण-कणादिसे सम्पर्क कराया जाय तो वह व्यापक बनकर स्वार्थ, परमार्थ या अनर्थके अनेकों काम कर सकता है। (२) 'दीप-ज्योति' के समीपमें अंगारेपर धूप रखनेसे ज्वाला प्रकट होकर घृतादिके सम्पर्कसे अनन्त ज्वाला बन सकती है। (३) 'प्रदीप्त अग्नि' का इन्धनादिसे जितना अधिक संयोग कराया जाय उतना ही अधिक अग्नि-भण्डार या दावानल बन सकता है। (४) 'इन्द्र' रूप शक्तिके स्मरणसे वारिवृष्टि होकर भूमण्डलके सभी जलाशयोंकी पूर्ति हो सकती है। (५) 'वज्रपात' के एक ही प्रहारसे अनेकों प्रकारके प्रकाण्ड काण्ड हो सकते हैं। (६) 'तडित्-प्रभाव' से इन दिनों सब परिचित हैं। बिजलीघरकी एक ही धारासे हजारों प्रकारके उद्योग-धन्धे, सुख-साधन और संहारक-शक्तियाँ प्रकट रहा करती हैं। (७) 'सूर्य-दर्शन' सर्वोपरि प्रभावान् है। एक ही मूर्तिके आकाश, पाताल और भूमण्डलमें सर्वत्र दर्शन होते हैं। विशेषता यह है कि जल, चमक और आदर्श आदिमें एकसे अनेक सूर्य बन जानेपर भी वे सब कृत्रिम नहीं, वास्तविक रहते हैं। और उन सबमें भी चमक, प्रकाश, चकाचौंध और अग्निप्रद प्रभाव प्रस्तुत रहता है। (८) 'वायु-प्रवाह' अन्तरिक्षपर्यन्तमें एक होनेपर भी गुण, रूप और शक्तिमें भिन्न-भिन्न रूप रखता है। और उससे सभी पदार्थोंका पोषण, शोषण, विकसन और विनाशतक हो जाता है। और (९) 'वस्तु-व्यवहार' में अन्न, जल, धातु, वस्त्र और औषध आदि एक-एक रूपके होकर भी अनेक प्रकारसे उपकारी सिद्ध होते हैं। और ये सब शक्तिके ही स्वरूप माने जाते हैं। इन्हींके रूपमें वह एकाधिक भुज, मुख या पादादिकी मान ली जाय तो भी उस अज्ञेय स्वरूपवाली शक्तिका सम्पूर्ण प्रभाव उक्त पदार्थोंसे पृथक् नहीं होता।

(५)

उपर्युक्त स्वरूपोंमें कई स्वरूप ऐसे हैं जो सर्वसाधारणकी सामान्य दृष्टिसे दीख नहीं सकते। अतः शक्ति-उपासकोंकी सुविधा और मंगलकामनाके विचारसे त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ महर्षियोंने प्रतिमा-निर्माणकी योजना और तत्सम्बन्धी पूजा-विधान नियत किये थे और उनसे प्रत्येक आशार्थी या शक्ति-भक्तको अभीष्ट फल मिलते थे।

श्रीतत्त्व-निधिमें अनेकों शक्तियों (या देवियों) के ध्यान हैं। और उनके नामादि भी बतलाये हैं। उनसे प्रत्येक शक्तिके गुण-कर्म-स्वभाव, आयुध-वाहन-स्वरूप, वेश-भूषा, अंगविभाग और उपासनागत महाफल आदि मालूम होते हैं। उपासक चाहें तो ध्यानानुसार सभी शक्तियोंकी प्रतिमा बनवा सकते हैं। संसारमें जितने प्रकारके चित्र, चरित्र और प्रतिमाएँ देखनेमें आती हैं वे सब ऋषि-प्रणीत ध्यानोंके अनुसार ही निर्माण की गयी हैं। अस्तु।

भारतवर्षमें शक्तिपूजाके कई स्थान ऐसे प्रतिष्ठित हैं जहाँ देश-देशान्तरके अगणित यात्री जाते हैं और पूजा-पाठ-प्रयोग या महोत्सवादि मनाते हैं। उनमें कलकत्ताकी 'काली', आसामकी 'कामाक्षा', काँगड़ाकी 'ज्वालाजी', बीकानेरकी 'करणी', बम्बईकी 'मुम्बादेवी', आमेरकी 'सिलामयी माता', सीलक्याँकी 'सीतला', चौमूँकी 'आँतेंरि' और गोरियाँकी 'जीणमाता' विशेष विख्यात हैं।

शक्तिका प्रभाव देखिये-आसाम-जैसे देशोंमें, वीर क्षत्रिय, मीने और भील आदि जातियोंमें, सुप्रसिद्ध पीठस्थानोंमें, विजयादशमी-जैसे त्योहारोंमें और खड्ग, शूल एवं तोप आदि शस्त्रास्त्रोंमें शक्तिका ही प्राधान्य है। और शक्ति-साध्य कार्योंमें उसीका नाम स्मरण किया जाता है। कुछ वर्ष पहले इस देशमें शक्तिके उपासक एक या एकाधिक सर्वत्र थे। और ये मन्त्र-तन्त्र या दुर्गापाठादिके द्वारा संसारहितके सभी काम करते थे।

वर्तमानमें इंजिन या मशीन आदिसे होनेवाले कई एक काम बड़े विलक्षण माने जाते हैं। किन्तु शक्तिके सच्चे उपासक कई अंशोंमें इनसे बहुत अधिक काम करते थे। एकान्तके कोनेमें बैठकर मन्त्र-जप या दुर्गापाठ आदिके द्वारा वे उक्त शक्तियोंको साक्षात्‌रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट करनेकी क्षमता रखते थे और रोग, शत्रु, महामारी, राजभय या ईति-भीतिका निवारण और धन-पुत्र-दारा या सम्मानवृद्धि आदिकी उपलब्धि करवा सकते थे।

विशेषकर 'दुर्गापाठ' का महत्त्व अधिक मान्य था। इसके महाफलदायी शत-सहस्रायुत-चण्डीप्रयोग आदि नानाविध प्रयोग पण्डितोंको पूर्णरूपसे ज्ञात थे। और आतुर या आशार्थियोंका भी इनकी सफलतापर पूरा विश्वास था। कई एक पण्डित इन कामोंमें इतने अधिक सिद्धहस्त या क्रियाकुशल थे कि असम्भव या कष्टसाध्य बड़े भारी कामोंको भी नियत अवधिमें यथार्थरूपसे करवा सकते थे। और अधिकांश आशार्थी भी अपने अमिट सङ्कटोंका निवारण या देव-दुर्लभ विभूतियोंकी उपलब्धि उन्हीं प्रयोगोंसे सम्भव मानते थे।

वर्तमानमें शक्ति-उपासकोंका अभ्यास शिथिलप्राय प्रतीत हो रहा है, और साथ ही अनेक कारणोंसे आशार्थियोंकी श्रद्धा भी बहुत-कुछ घट गयी है। फिर भी नीचे लिखे ग्रन्थोंका अनुभव, अभ्यास या अवलोकन किया जाय तो बहुतोंका हित होना सम्भव है। ग्रन्थ ये हैं—

(१) देवीपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) कालिका-पुराण+, (४) मार्कण्डेयपुराण+, (५) वाराहपुराण, (६) ब्रह्मवैवर्तपुराण, (७) हरिवंशपुराण, (८) रेवतीतन्त्र+, (९) कुब्जिकातन्त्र+, (१०) रहस्यतन्त्र+, (११) मेरु-तन्त्र, (१२) कात्यायनीतन्त्र+, (१३) वाराहीतन्त्र, (१४) हरगौरीतन्त्र, (१५) क्रोडतन्त्र, (१६) रुद्र-यामल+, (१७) शक्तिकागमसर्वस्व+,(१८) शब्दमाला, (१९) गुप्तरहस्य, (२०) देवीरहस्य+,(२१) शारदातिलक+, (२२) तन्त्रसार, (२३) मन्त्रमहोदधि, (२४) अनुष्ठान-प्रकाश,(२५)शाक्तप्रमोद+,(२६)श्रीतत्त्वनिधि,(२७)मारीच-कल्प+,(२८) कुलार्णव, (२९) कल्पवल्ली, (३०) शान्ति-सार, (३१) ऋग्वेद, (३२) अथर्ववेद, (३३) श्वेताश्वतरोपनिषद्, (३४) योगवासिष्ठ, (३५) ब्रह्मसूत्र, (३६) सप्तपदार्थसंग्रह, (३७) विश्वसार, (३८) अथर्व-रहस्य+, (३९) प्रपञ्चरहस्य, (४०) शक्ति-भक्ति और (४१) शक्ति-अङ्क+ द्रष्टव्य हैं।

इन सबकी अपेक्षा (४२) देवीभागवत+, (४३) शारदा-तिलक+, (४४)दुर्गा (सप्तशतीसर्वस्व)+,(४५) दुर्गोपासना-कल्पद्रुम + और(४६)हिन्दी विश्वकोशका देखना नितान्त आवश्यक है। इनके अवलोकनसे शक्ति-भक्तोंको परम सन्तोष होगा और अभीष्ट फल मिलेगा। एवमस्तु।

श्रीकृष्णकी शक्ति श्रीराधिका

(लेखक—देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी भट्ट)

जयति श्रीपतिः सिद्धिराधारमणविभ्रमः।
श्रीवल्लभश्च जयति श्रीपतिस्तत्प्रकाशकः॥

सारा आस्तिक जगत् यह स्वीकार करता है कि अवश्य किसी सार्वभौम अलक्ष्य-सत्ताकी कोई महामहतीशक्ति इस प्रपञ्चमें सब कार्योंको चला रही है।

जिस समय हम घट-पट आदि भेदोंकी उपेक्षा कर इस प्रपञ्चपर दृष्टि डालते हैं तो हमारे हृदयमें इस जगत्का एकभावापन्न अगाध अप्रमेय स्वरूप अङ्कित हो जाता है।

जल-कणोंसे ही जल बनता है, सहस्रशः एकभावापन्न जल-कणोंको ही जल कहा जाता है। और ऐसे-ऐसे कोटिशः जल जब एकत्रित होते हैं तब हम उसे समुद्र कहते हैं। उस समय यह एकभावापन्न जलराशि मनुष्यके लिये अगाध, अप्रमेय, अचिन्त्य-जैसी हो जाती है।

यही तुलना जगत्की है। अनन्त भेदका नाम जगत् या प्रपञ्च है। जिसका फिर टुकड़ा न हो सके, इस प्रकार-के अनन्त टुकड़ोंसे और भेदोंसे यह सारा प्रपञ्च बना है और तब यह अगाध, अनन्त, अप्रमेय और अचिन्त्य-जैसा हो गया है। इतना दुर्बोध रहते भी हम यह तो देख ही रहे हैं कि प्रत्येक पलमें इस अगाध, अचिन्त्य विश्वका भी प्रत्येक लघु-से-लघु अवयव अपने एक रूपको छोड़कर दूसरे विचित्र रूपको धारण करता रहता है। यह गति रोकनेसे रुकती नहीं। कभी-कभी तो यह हाल होता है कि विश्वकी किसी छोटी-से-छोटी गतिको भी रोकनेवाला स्वयं उसी गतिके प्रवाहमें बहने लगता है। इस विश्वकी गतिको कोई समझकर भी नहीं समझ पाता। कोई-कोई सुनकर, देखकर भी नहीं

+ शक्ति-विषयक बातोंका फूलीके ग्रन्थोंमें प्रधानरूपसे और बिना फूलीवालोंमें आंशिकरूपसे वर्णन है।

समझने पाते। यह सारा जगत् किसी चतुष्पात् (चारों तरफ समान) निवास करनेवाले महाशक्तिमान्‌का एक चरण (भाग) है 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि।' जिसके मान लिये हुए एक टुकड़ेका भी जब बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग (शिव-सनकादि) पता नहीं पा सकते, तब फिर उस सर्वांशी, सर्वेशान,'सर्वस्य वशी' सच्चिदानन्द भगवान्‌का पता अल्पाल्पज्ञ जीव कैसे पा सकता है ?

हमारी शक्ति भी उतने ही नाप-तौलकी होती है जितने हम होते हैं। इस उदाहरणसे ही यदि काम लें तो कह सकते हैं कि उस विश्वातीत, सर्वेश्वर भगवान्‌की शक्ति भी वैसी है जैसा वह है। वह विश्वातीत है तो यह भी अप्रमेया है, वह सर्वेश्वर है तो यह भी सर्वेश्वरी है। वह सबको वशमें कर लेनेवाला है तो यह भी विश्वमोहिनी है। यदि उनकी महिमा मन-वचनोंसे अतीत है तो फिर भगवतीकी भी लीला अपरंपार है। ऐसी दशामें हम उस अचिन्त्य शक्तिमान् और उसकी शक्तिको, जो दोनों मिलकर इस अचिन्त्य जगत्‌को चला रहे हैं, कैसे और किस रूपमें दुनियाँके आगे प्रकाशित करें। हमारी सामर्थ्य नहीं है, चलो छुट्टी मिली; सोना चाहते ही थे, बिछौना मिल गया।

किन्तु यह हमारा 'कल्याण' हमें चैनसे बैठने नहीं देता। यह हमारे हृदयमें बैठा-बैठा ही सालमें एक बार तो हमें उठा ही देता है। कहता है कि कबतक ऊँघते रहोगे, एक दिन तो चलना ही है; इस धर्मशालामें कितने दिन सो सकोगे? और कहीं ठिकाना नहीं हो तो फिर कल्याणके घर ही चल-कर सोओ न। वहाँ पहुँचनेपर फिर आपको कोई नहीं उठा सकता।

तो क्या जबरदस्ती कल्याणके घर चलना होगा? अच्छी बात है। हम तो ऐसे पोस्ती हैं कि—

अनाहूता न यास्यामो गृहे मृत्योर्हरेरपि।

किन्तु मेरे मित्र कल्याण! तुम्हारे घरका तो हमें पता ही नहीं, कैसे पहुँचेंगे? क्या कहा? यह लकड़ी थाम लो! इसके सहारेसे पहुँच जाओगे! बहुत-से अंधे आजतक इसीसे अपना काम चला गये और बहुत-से आज भी अपना काम चला रहे हैं। अंधोंकी आँखें लकड़ी है। लकड़ीके द्वारा वे अपने घरका मार्ग तै कर लेते हैं। 'सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्'—अज्ञानियोंको अपना ध्येय प्राप्त करनेके लिये नेत्र शास्त्र ही है। उस परात्पर भगवान्‌की शक्तिका निरूपण करनेके लिये शास्त्र ही नेत्र-ज्योति है, हमें उसके लिये शास्त्र ही शरण है।

शक्तिका स्वरूप

भगवान्‌की शक्ति भगवान्‌से पृथक् नहीं है। यह भी भगवान् ही है। ये सच्चिदानन्द भगवान् जिस समय (सृष्टिके पूर्व) तिरोहितधर्म सुप्त-शक्ति अतएव अन्तःक्रीड, व्यापक रहते हैं उस समय उनकी यह शक्ति-महारानी भी उनके स्वरूपमें मिली हुई जागती हुई भी सोती रहती हैं, एक और व्यापक रहती हैं। और जब वे भगवान् जगत्‌रूपसे अनन्त रूप धारण करते हैं तब यह शक्ति-महारानी भी अपने अनन्त रूप बना लेती हैं।

भगवान्‌ने जगत्‌रूप अपनी क्रीडाके व्यवहारोंको यथावस्थित चलानेके लिये विरुद्धाविरुद्ध अनेक रूप धारण किये हैं तो शक्ति भी इसी प्रकारसे विरुद्ध-अविरुद्ध विविध प्रकारसे प्रकट हुई है। अतएव भगवान्‌के अनन्त रूप हैं, तो उनकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं। उनमें विरुद्ध शक्तियाँ भी सप्रयोजन हैं। जिस कार्यकी अपेक्षा है उसको करनेके लिये तदनुकूल शक्तिका भी निर्माण किया गया है। विरुद्ध शक्तिके प्रादुर्भावसे कार्यको अनुकूल कर लिया जाता है। जड हो किंवा चेतन, जब किसी पदार्थकी किसी दूसरे पदार्थमें अति आसक्ति होकर क्रीडा होने लगती है और उस क्रीडासे दोष होनेकी सम्भावना होने लगती है किंवा दोष उत्पन्न होते हैं तब भगवान् उसी समय उससे विरुद्ध शक्तिको उत्पन्नकर उन आते हुए दोषोंको दूर-कर पदार्थोंका समीकरण करते रहते हैं। इस तरह वे कर्मज, कालज और स्वभावज दोषोंका निवर्तन करते हैं। और मोहिनी मायासे आते हुए दोषोंको अपनी चिच्छक्तिसे दूर करते हैं। देश-दोष तो भगवान्‌में आ ही नहीं सकता। क्योंकि भगवान् अपने आत्मामें ही सर्वदा निवास करते हैं। यह अक्षर-ब्रह्मरूप भगवदात्मा सर्वधर्मोंसे अस्पृष्ट ही रहता है। इस तरह भगवान् सर्वजगद्रूप रहनेपर भी, उच्चावच

१—भगवतस्तु बह्व्यः शक्तयः सन्त्यन्योन्यविरुद्धास्तत्तत्कार्यार्थं निर्मिताः। तत्र यस्यामेवासक्त्या क्रीडायां क्रियमाणायां तद्दोषप्रादुर्भावः सम्भाव्यते। तदैव तद्विरुद्धशक्तिप्रादुर्भावनेन पूर्वान् दूरीकरोति तथा चिच्छक्त्या मायां व्युदस्य तिष्ठतीति न मायिकदोषसम्बन्धः, देशदोषस्तु न सम्भाव्य एव। सर्वधर्मास्पृष्टे केवल आत्मनि विद्यमानत्वात्। (सुबोधिनी १।७।२३)

सर्व प्रकारकी लीलाओंको करते रहनेपर भी अपने स्वरूप-में—लीलामें पाँचों प्रकारके दोषोंका सम्बन्ध न होने देनेके लिये विविध अनन्त शक्तियोंका आविर्भाव करते हैं।

इन अनन्त शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान हैं। सर्वभवनसामर्थ्य, मोहिनी और क्रिया। ये प्रधान किंवा अप्रधान सब प्रकारकी शक्तियाँ शास्त्रोंमें 'माया' शब्दसे कही गयी हैं। अतएव कभी-कभी विद्वानोंको भी मायाका अर्थ समझनेमें भूल हो जाती है।

वास्तवमें देखा जाय तो सर्वभवनसामर्थ्यरूप माया-का ही सब खेल है। सारा जगत्—जड़ या चेतन सब-का-सब इस सर्वभवनसामर्थ्यरूप मायाके द्वारा ही बनाया गया है। इसे एक मशीन (साँचे) की तरह समझिये। सुनारोंके पास जो एक ढालनेका साँचा रहता है, वे लोग सोना, चाँदी प्रभृति तैजस पदार्थोंको उस साँचेका स्पर्श कराकर अनेक पदार्थ तैयार कर लेते हैं। सुवर्ण ही उस साँचेका स्पर्श करके अनेक रूपोंमें प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् भी उस सर्वभवनसामर्थ्य (सब कुछ होनेकी ताकत) रूप अपनी माया-शक्तिका स्पर्श कर जब प्रकट होता है तब उस भगवान्‌को ही अल्पबुद्धि लोग जगत् कहने लगते हैं। और कितने ही उसे भगवान्‌से पृथक् ही समझते हैं। सबसे बड़ी यह शक्ति है। उत्कर्ष-अपकर्ष, समता-विषमता, भला-बुरा, सत्य-असत्य, जो कुछ दीखता है वह सब कुछ इसी माया महाशक्तिका ही सामर्थ्य है। मायाके सहारे सृष्टिका निर्माण होना यह पौराणवर्णन है, श्रौत नहीं। श्रुतिमें तो मायाके स्पर्श बिना ही भगवान् अपने आपको जगत्‌रूपमें प्रकाशित करता है—'स आत्मान ँ स्वयमकुरुत', और श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें तो इस प्रकार वर्णन है—

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः॥

सबसे पहले इस सर्वसमर्थ भगवान्‌ने अपनी उच्च-नीच-स्वरूपा, अतएव गुणमयी मायाशक्तिसे इस जगत्‌को पैदा किया। भगवान् निर्दोष और अप्राकृत अनन्त गुणवाले हैं, अतएव अपने स्पर्शसे उसे गुणमयी और तत्तादृश आकृति-वाली बना देते हैं। भगवान्‌के स्पर्शसे ही वह गुणमयी हुई और अब वह जगत्‌की प्रकृति (अवान्तरमूल) हुई, अतएव उसमें आनेके बाद वे गुण प्राकृत कहलाने लगे। स्पर्श परस्पर होता है, जैसे भगवान्‌का स्पर्श मायाको हुआ, इसी प्रकार मायाका स्पर्श भगवान्‌को भी हुआ ही। किन्तु भगवद्गुण तो मायामें आये, पर भगवान्‌में माया-के गुण नहीं आये। भगवान् तो निर्गुणके निर्गुण ही रहे। इसीलिये मूलमें 'विभुः' पद दिया है। भगवान्‌में वैसी सामर्थ्य है। कमलपत्रमें ही सामर्थ्य है कि वह जलका स्पर्श होनेपर भी उससे निर्लेप रहे। इसी प्रकार भगवान् भी उस अपनी माया-शक्तिमें प्रवेश करते हैं, अपने सच्चिदानन्दादि गुणोंको मायामेंसे होकर निकालते हैं तथापि उसके धर्म भगवान्‌का अभिभव नहीं कर सकते। यह भगवान्‌का विभुत्व है।

यह माया-शक्ति उच्च-नीच आदि सर्वप्रतिकृतिरूपा है, इसलिये इसमेंसे होकर निकलनेके बाद सच्चिदानन्दादि गुण ही तीन प्रकारके होनेसे सत्त्व, रजस्, तमस् हो जाते हैं—उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। इस तरह प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे सारा जगत् भरा हुआ है। यह भी एक तरहकी सृष्टि है। सृष्टिके अनेक प्रकार हैं, यह हम ब्रह्मवादमें बता चुके हैं।

निद्रा भी भगवान्‌की ही शक्ति है। यह जीवको भगवान्‌के समीप ले जाती है। जब जीवको लेकर मायाके पास पहुँचती है उस समय जीवको स्वप्न होता है। और जब भगवान्‌के पास ले जाती है तब सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) होती है। निद्रा भी एक अविद्या-शक्तिकी तरङ्ग है, इसलिये उसमें वासना रहती है; उस वासनाके वश होकर निद्रा

१—भगवान् मायया स्वस्य शक्त्या सर्वभवनसामर्थ्यरूपया इदमात्मभूतं जगत् सृष्टवान्। सा ह्युच्चनीचसर्वप्रतिकृतिरूपा तस्यामात्मानं संयोज्य प्रकटीकुर्वन् जगद्रूपेण जायते। एवं सति सुगमा सृष्टिर्भवति। सुवर्णकाराणां प्रातर्मादिनिर्माणवत्। सा हि भगवन्निकटे तिष्ठति। निद्रापि शक्तिः। सा जीवं भगवत्समीपे नयति। मायापर्यन्तं गमने स्वप्नः। भगवत्पर्यन्तं गमने सुषुप्तिः। पुनश्च सा यथास्थानमानयति। विद्या तु भगवत्समीपमेव नयति, नानयति। एवमनन्ताः शक्तयो भगवतः। वेदे तु माया-साधनराहित्येनैव स्वत एवात्मानं जगद्रूपं करोति इत्युच्यते। घटितपूरणपात्रभेदवद्वैदिकपौराणिकजगतोर्भेदः। स्वस्यानन्तगुणस्य स्पर्शेन तादृशाकृतिरूपा गुणमयी भवति। तेषामुत्तममध्यमनिकृष्ट-भेदेन त्रिराशित्वात्सत्त्वरजस्तमोगुणवाच्यता। अस्याः पुनः स्पर्शेन भगवति गुणाकृतित्वम्। अतः अगुणः प्राकृतगुणरहितः। कथं स्वसम्बन्धेनैव मायाया गुणवत्त्वम्। कथं वा मायायां प्रविष्टोऽपि जगद्रूपेण जातोऽप्यगुणस्तत्राह—'विभुः।'

जीवको फिर अपने स्थानपर ले आती है। अविद्या, निद्रा आदिकी तरह विद्या भी भगवान्की शक्ति है। यह जीवको भगवान्के समीप ले जाती है पर दुर्वासनाओंके न रहनेसे फिर पीछा नहीं लौटाती।

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्॥

सृष्टि दो प्रकारकी होती है—आत्मार्थ-सृष्टि, और जीवार्थ किंवा परार्थ-सृष्टि। भगवान् अपने लिये भी सृष्टि करते हैं, और जीवोंके लिये भी। अपने लिये जो सृष्टिका निर्माण होता है वह एक तरहकी आत्मक्रीडा—आत्मरति ही कही जा सकती है। आत्मार्थ-सृष्टिमें भी जीवादि सब पदार्थोंकी सृष्टि होती है; किन्तु वह केवल अपने आनन्द, या अपनी क्रीडाके ही लिये होती है, इसका कोई अन्य विशेष प्रयोजन नहीं रहता। इस आत्मसृष्टिमें सर्वरूप भगवान् ही हो जाता है। माया प्रभृतिका इसमें सम्बन्ध नहीं रहता। यह सृष्टि निखालिस ब्रह्मरूपा होती है। जीवार्थ-सृष्टिमें कार्यशक्ति लानेके लिये भगवान्का अवतार होता है। भगवदर्थ ब्रह्मसृष्टिमें भगवान्के अवतारकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वहाँ भगवान् ही अकेले सब पदार्थोंके स्व-रूप हैं। जीवार्थ-सृष्टिमें यह आत्मार्थ-सृष्टिके भगवद्रूप आधिदैविक पदार्थ (भगवद्रूप) प्रवेश करते हैं। अर्थात् जीवार्थ-सृष्टिके पदार्थोंमें आत्मशक्ति पहुँचानेके लिये भगवान्का अवतरण (अवतार) होता है। आत्मार्थ-सृष्टिमें केवल भगवद्भोग है और जीवार्थ-सृष्टिमें जीव-भोग और भगवद्भोग दोनों हैं। आत्मार्थ-सृष्टिमें केवल भगवान् अपने स्वरूपका आप ही आनन्द लेते हैं और जीवार्थ-सृष्टिमें भगवान् और जीव दोनों स्वरूपानुसार सृष्टिका भोग करते हैं, सुखोपभोग करते हैं।

आत्मसृष्टिमें मायाका सम्बन्ध नहीं रहता। वेदमें इस सृष्टिका ही प्रायः वर्णन है। और जीवार्थ-सृष्टिमें तीनों प्रकारकी मायाका सम्बन्ध रहता है। सर्वभवन-सामर्थ्यसे जीवानुकूल रूपाकार समर्पण होता है। मोहिनीसे जीवोंका व्यामोहन और क्रियारूपासे सर्वविध क्रियाएँ होती हैं। भगवन्माया-शक्ति तीन प्रकारकी है, यह हम कह चुके हैं। प्रथम[१] शक्ति अपनी अनन्त प्रतिकृति (तसवीर किंवा साँचे) का स्पर्श करनेपर भगवान्को ही जगद्रूपसे प्रकाशित करती है, और दूसरी मोहिनी माया-शक्ति जीवोंका व्यामोह करके उस जीवार्थ-सृष्टिमें आसक्त कर देती है। उस समयकी यह सृष्टि जीवार्थ-सृष्टि कही जाती है। अतएव उस समयकी उस भगवन्माया-का भी जीवमाया नाम हो जाता है। भगवान्ने जीवार्थ-सृष्टि करनेके लिये इस मायाका करणत्वेन परिग्रह किया है, इसलिये इसको जगत्की प्रकृति भी कहा जा सकता है। उस जीवमाया (सर्वभवनसामर्थ्य) नामक प्रकृतिको जब सृष्टि तैयार करनेकी इच्छा हुई तब भगवान् भी उसके अनुकूल हो गये—'अनुससार शास्त्रकृत्।'

इच्छा-धर्म चेतनका है, जडका नहीं। प्रकृति जड है। यहाँ प्रकृतिको सृष्टि बनानेकी इच्छा हुई—यह कहा है, इसलिये इस विरोधको हटानेके लिये भगवान्ने स्वयं पुरुषरूपसे प्रकृतिको सृष्टि-रचना करनेके लिये सहारा दिया। और वास्तवमें देखा जाय तो भगवान्ने सृष्टि-रचना करनेके लिये ही प्रकृति और पुरुष, दो रूप धारण किये हैं। यहाँ केवल प्रकृतिका ही नाम इसलिये लिया कि पुरुष तो भगवान्में ही अन्तर्भूत है, इसलिये भगवान्के अनुसरणमें उसका

१—सा च माया द्विविधा—स्वप्रतिकृत्या सम्बद्धं भगवन्तं जगद्रूपेण करोति, स्वेच्छया प्रादुर्भूताञ्जीवांश्च व्यामोहयति। तदेयं सृष्टिर्जीवार्था भवति। अतो मायाया इदानींतनाया जीवमायेति नाम। तया सृष्टिप्रकारमाह। प्रकृतिं सिसृक्षतीम्। यद्यपि प्रकृतिपुरुषौ सृष्टौ तथापि पुरुषो भगवद्भागे पतित इति प्रकृतिं सिसृक्षतीमित्युक्तम्। तादृशीं मायां भगवाननुससार, तद्व्यापारानन्तरं स्वयं तदनुकूलतया पितेव मिलितवानित्यर्थः। अस्यां सृष्टौ विशेषप्रयोजनमाह—अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानः। पूर्वसृष्टौ न भगवतोऽवतारः। न नामानि रूपाणि च। इदानीं सृष्टेर्भक्तिप्रधानत्वाद्भगवतोऽवताररूपनामान्यपेक्ष्यन्ते। अतः पूर्वमनामरूपात्मनि स्वस्मिन्निदानीं रूपनामनी विधित्समान इति। अतो जीवार्थमेव स्वस्यापि रूपनामानि करोतीत्यर्थः। किञ्च, शास्त्रकृत् वेदकर्ता। केवलनामरूपकरणे युगपदेव सर्वमुक्तिप्रसङ्गात्सृष्टिकालह्रासः प्रसज्येत। उत्पादिते तु वेदे स्वभाव-गुणभेदेन भिन्नेन तेन व्यामोहितेषु कश्चिदेव मुच्यत इति क्रमेण सर्वमुक्तौ सृष्टिकालस्य न ह्रासो भवेत्।

(सुबोधिनी १।१०।२२)

अनुसरण अपने-आप आ जायगा। अतएव मूलमें कहा है—'सिसृक्षती प्रकृतिं स (भगवान्) अनुससार।'

जीवार्थ-सृष्टिमें तीन विशेष बातोंकी अपेक्षा रहती है—नियत रूप, नियत नाम और उसमें भगवान्के अवतार (प्रवेश) की।

जीवार्थ-सृष्टिमें क्रीडाके साथ-साथ यह भी एक प्रयोजन है कि जीव भगवान्की भक्ति करके पुनः अपने स्थान (भगवत्पद) को प्राप्त करे। इसलिये यह जीवार्थ-सृष्टि भक्तिप्रधान है और इसीलिये इसमें नियत नामरूप और भगवत्प्रवेशकी आवश्यकता है। पूर्व (ब्राह्म) सृष्टिमें भगवान्का अवतार भी नहीं था और न नियत नाम और रूप ही थे। अतएव भक्त्यादि यज्ञ करते समय ब्रह्माको यज्ञ-सामग्रीके दर्शन ही न हुए—'नाविदं यज्ञसम्भारान्।' और इस समय तो जीवसे भक्ति करवानी है, इसलिये अनामरूप-स्वरूप अपने आत्मामें (स्वरूपभूत जगत्में) नियत रूप और नामका निर्माण करनेकी इच्छासे भगवान्ने अपनी प्रकृतिको सहारा दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वार्थ-सृष्टिमें नाम-रूप-अवतार नहीं, किन्तु जीवार्थ-सृष्टिमें ही अपने नाम-रूप और अवतार करते हैं।

यहाँ एक यह प्रश्न होता है कि केवल नाम-रूपका निर्माण करनेसे एकदम सारे जीवोंकी मुक्ति हो सकती है और इस तरह किसी समय सृष्टि-कालकी समाप्ति भी आ सकती है। इस विरोधको दूर करनेके लिये मूलमें कहा है—'शास्त्रकृत्', अर्थात् 'शास्त्रकृत् सन् प्रकृतिं अनुससार।' वेदको बनाते हुए प्रकृतिका अनुसरण किया। मायाके मोहसे जीवोंके स्वभाव विभिन्न हैं। उन जीव-स्वभाव-गुणोंके अनुकूल कहीं-कहीं वेदने भी साधन-फलोंका निरूपण कर दिया है, तो ऐसी अवस्थामें माया-मोहित बुद्धि तत्तत्साधन-फलोंका परिग्रह करती रहेगी तो उनमेंसे कोई थोड़े ही क्रमसे मुक्ति पा सकेंगे और सृष्टि-कालका एकदम ह्रास नहीं हो सकेगा। इसी आशयको लेकर भगवान्ने गीतोपनिषद्में कहा है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

'हे अर्जुन! काम्य-यज्ञादि-विषयक वेद त्रिगुणात्मक साधन-फलोंका वर्णन करनेवाला है, पर तू तो निस्त्रैगुण्य—परमात्मसेवक बन।'

पाठकगण! यहाँतक हमने सर्वभवनसामर्थ्यरूप माया-शक्तिके स्वरूप और कार्यका निरूपण किया। इस शक्तिके दो ही कार्य प्रधान हैं—नियत रूप-नामका प्रदर्शन करना, और जगत्की विचित्रता दिखाना। यह आनन्दब्रह्मकी शक्ति है।

अब दूसरी शक्ति मोहिनी है। इसे व्यामोहिका माया किंवा केवल माया भी कहते हैं। यह चिद्ब्रह्मकी शक्ति है। सत्-चित्-आनन्द तीनों ब्रह्मांश—ब्रह्मकी तीन (सर्वभवन-सामर्थ्य, मोहिनी और क्रिया) शक्तियाँ हैं। तीन शक्तियोंके बिना जगत्की क्रीडा नहीं हो सकती। इन शक्तियोंसे ही जगत्-क्रीडा चल रही है। भगवान् इनको सहारा देते हैं और ये तीनों अपना-अपना कार्य कर रही हैं।

चिद्ब्रह्म भी उस सर्वमूल सच्चिदानन्द भगवान्का एक अंश है। अंश होनेपर भी व्यापक है। चिद्ब्रह्म भी यदि स्वरूपावस्थित अर्थात् निर्दोष और व्यापक रहा आता तो जगत्-क्रीडा होती ही नहीं। किन्तु भगवान्को बाह्यक्रीडा करनेकी इच्छा हुई है; इसलिये 'स नैव रेमे', 'एकोऽहं बहु स्याम्, प्रजायेय' इत्यादि श्रुतियोंसे स्पष्ट होता है कि क्रीडाकी इच्छासे उस सर्वमूल सच्चिदानन्द भगवान्ने अपने स्वरूपमें ही विभेद कर यह सारा जगत् तैयार कर लिया। सत्-सत्, चित्-चित्, आनन्द-आनन्द; सत्-चित्, चित्-आनन्द, सत्-आनन्द इत्यादि विभेदका परिगणन करनेसे ९, ८१ और अनन्त भेद हो जाते हैं। यह अनन्त भेद 'एकोऽहं बहु स्याम्' इतने मात्र श्रुति-खण्डका अर्थ है, अभी 'प्रजायेय' इस उत्तरार्धका अर्थ बाकी है। स्वरूप-विभेद होनेपर भी वैचित्र्यकी अपेक्षा रहती है, वैचित्र्य बिना भी क्रीडा होना दुष्कर है। क्रीडाके लिये उन विभेदोंमें भी भगवान्ने उत्कर्षापकर्ष और किया। कोई भेद उत्कृष्ट (उत्तम) और कोई भेद अपकृष्ट (बुरा)। इन उत्तममध्यमाधमरूप उत्कर्षापकर्षके आ जानेसे इस सच्चिदानन्द-जगत्में वैचित्र्य आ गया। क्रीडाकी सामग्री जो कुछ कम थी वह पूरी हो गयी। पौराण-सृष्टिमें यह वैचित्र्य उस सर्वभवनसामर्थ्यरूप मायाके सहारेसे होता है, यह हम पूर्वमें कह चुके हैं। इस सारे वैचित्र्यका आधार, उपादान किंवा आश्रय भगवान् है और उसका करण (सहारा) माया है। अर्थात् सत्-चित्-आनन्द ही मायाके सहारेसे यह व्यापक वैचित्र्यरूप जगत् हो जाता है। सर्वधर्मविशिष्ट आधार, उपादान किंवा आश्रयकी नव (९) लीलाएँ हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध और मुक्ति। आश्रय-लीला भी हो सकती

है, इसलिये दश लीलाएँ भी कहीं-कहीं कही गयी हैं। आश्रयरूप सत्-चित्-आनन्द भगवान्‌में जब विभेद और वैचित्र्य आ जाता है और जब उसमें नव या दश लीलाएँ होने लगती हैं तब वह एक बड़ी भारी अनाद्यन्त क्रीडा किंवा मेला तैयार हो जाता है। उस क्रीडाके खिलाड़ी किंवा देखने या भोग करनेवाले भगवान् और जीव दोनों हैं। यह सब खेल तैयार करना उस भगवान्‌के बराबरकी सामर्थ्यवाली मायाका काम है।

मेला तैयार हुआ, क्रीडा तैयार हो गयी; किन्तु खेलनेवाला सर्वथा उदासीन रहा, देखनेवाला सर्वथा उदासीन हुआ तो मेला या क्रीडा तैयार करके भी क्या होगा। हजारों मेले होते हैं, उन्हें लाखों मनुष्य देखने जाते होंगे; किन्तु हजारों ऐसे भी होते हैं जो उन्हें देखना बिल्कुल पसन्द नहीं करते, मेलेमें जाते ही नहीं। जगत् बना, भगवत्क्रीडा तैयार हो चुकी; किन्तु यदि इसमें किसीकी प्रवृत्ति ही न हो तो क्या हो। और ऐसा हो भी चुका है—

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः॥

ब्रह्माने सनत्कुमारादि पुत्रोंसे कहा कि पुत्रो! तुम भी प्रजा-सृष्टि करो। पिताकी बात सुनकर उन्होंने निषेध कर दिया। क्योंकि वे संसारसे सर्वथा उदासीन थे और ज्ञानी थे।

तब ब्रह्माने अभिध्यान किया। इसीको सूत्रोंमें पराभिध्यान कहा है। पराभिध्यान होते ही चिद्ब्रह्मकी मोहिनी माया-शक्ति उद्बुद्ध हुई। पराभिध्यानसे चिद्ब्रह्मका ब्रह्मानन्द तिरोहित हुआ। आनन्दके पृथक् होते ही चित्[1] और सत् दोनों उसके सेवक हो गये। आनन्द सर्वोत्कृष्ट रहा—'पूर्णात् (पूर्णद्वयात्सच्चिद्रूपात्) पूर्णमुत् (आनन्दः) अच्यते (सेव्यते)।' यह रीति है कि सेवककी शक्ति सेव्यकी हो जाती है। यह न्याय यहाँ भी हुआ, सत् और चित् दोनोंकी क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति दोनों आनन्दमें चली गयी। चिद्ब्रह्मकी ज्ञान-शक्ति (धर्मरूप ज्ञान) आनन्दमें चली जानेसे व्यामोहिका मायाने इस चिदंश चिद्ब्रह्मका मोहन किया। मायाके व्यामोहसे इसे अपने स्वरूपकी विस्मृति हुई। यद्यपि यह चिदंश ज्ञानरूप है पर आनन्दांशके पृथक् होनेसे और ज्ञानशक्तिके भी चले जानेसे इसे भूलमें ही आनन्द (भ्रान्त) आने लगा, इसलिये यह उस विस्मृतिका परित्याग नहीं करना चाहता। प्रत्युत इसे यह निश्चय हो जाता है कि इस मायाके सम्बन्धसे ही मुझे आनन्द होगा। इसलिये यह उस व्यामोहिका मायाको दृढ़ पकड़कर बैठ जाता है।

जहाँतक चिदंशके साथ कुछ थोड़ा आनन्द भी रहता है, वहाँतक उसकी शक्ति माया कही जाती है; किन्तु जब आनन्दांश तिरोहित हो जाता है तब यही चिद्ब्रह्मकी व्यामोहिका मायाशक्ति जीवशक्ति हो जाती है और अविद्या कही जाती है। इस अविद्याशक्तिका पहला पर्व (खण्ड) आत्मविस्मृति—स्वरूपविस्मृति (अपने आपको भूल जाना) है।

अपने आपको भूलते ही अनेक भूलें इसके साथ लग जाती हैं। सब तरहकी भूलें उस अविद्या-शक्तिकी ही छोटी-छोटी शक्तियाँ हैं। यद्यपि हैं ये छोटी-छोटी शक्तियाँ, पर बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, भीम-कायोंको भी हिला देती हैं।

स्वरूपविस्मृतिके होनेसे यह चित्खण्ड, सदानन्दकार्य आसन्य प्राणको ही अपना स्वरूप समझ लेता है। प्राणके रहनेसे मैं हूँ, प्राणके न रहनेसे मैं नहीं हूँ—बस यह दूसरी भूल (पर्व) है। यह भी उस अविद्याकी शक्ति है, इसे शास्त्रमें प्राणाध्यास कहा है। उस समयसे आजतक यह चिद्ब्रह्म किंवा चित्खण्ड जीव कहा जाता है। जीव अर्थात् प्राणोंको पकड़े रहनेका प्रयत्न करनेवाला। 'जीव प्राण-धारणे।' ज्ञान[1]प्रधान अतएव ज्ञानरूप ब्रह्मकी यह मोहिनी शक्ति उसको रमण (क्रीडा) करानेकी इच्छासे आब्रह्म-तृण-स्तम्ब-

१ धर्मरूपेण भवत् इच्छारूपेणापि भवति। तत्र सदंशस्य क्रियारूपा शक्तिः। चिदंशस्य व्यामोहिका माया। आनन्दरूपस्य जगत्कारणभूता। एतत्त्रितयरूपा शक्तिः सच्चिदानन्दस्य भावत्वतलादिवाच्या। 'प्रजायेये'तीच्छया उत्कर्षापकर्षरूपेण जाताः। तत्र आनन्द उत्कृष्टः। तदेतरौ तं सेवमानौ जातौ। तदा चिदंशस्य शक्तिरानन्दे गतत्वाज्ज्ञानधर्मस्य, तं व्यामोहयति तदा तस्य जीवत्वम्। सा पुरुषं व्यामोहयित्वा जीवतामापादयति। स हि मायया व्यामोहितो व्याकुलः सन् सदानन्दकृतसृष्टौ यः सूत्रात्मक आसन्यो दशविधप्राणरूपस्तमवलम्ब्य तिष्ठति तदा जीव इत्युच्यते। 'जीव प्राणधारणे' इति धातोः कर्तरि अच् प्रत्ययः।

(भागवत-सुबोधिनी २। ९। १)

१ यस्य भगवतो ज्ञानरूपस्य वशवर्तिनी काचिच्छक्तिर्मायेति। सा जगत्कर्तुर्मायातो भिन्ना। एतस्या व्यामोह एव फलम्। तस्या जयः प्राणिमात्रस्याशक्यः। इयमेव माया वेदस्तुतौ मारणीयत्वेन वेदैः प्रार्थिता। ते हि ज्ञानं बोधयन्ति। एषा तु मोहयति।

(भागवत-सुबोधिनी २। ५। १२)

पर्यन्त सबका व्यामोह करती है। ब्रह्मादि देवता भी इससे नहीं बच पाते। रमणके लिये ही मोह है। मोह हट जाय तो यह जगद्रूप क्रीडा ही न रहे। मायाके मोहसे ही सारा जगत् चल रहा है। यह भूल (माया) ज्ञानरूप भगवान्‌की शक्ति है और उसे ही भुला देती है। देखिये, कितनी जबरदस्त है। यह जगत्कर्त्ता, सच्चिदानन्द अक्षरब्रह्मकी सर्वभवन-सामर्थ्यरूप माया-शक्तिसे जुदी है। अक्षरब्रह्मकी ही पूर्वोक्त तीन पृथक्-पृथक् शक्तियाँ हैं। एक शक्तिका कार्य वैचित्र्य है और इस मोहिनीका कार्य है व्यामोह। वेद-स्तुतिमें वेदोंने इस मायाको ही हटानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की है।

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणाम् ।

यहाँ एक यह प्रश्न हो सकता है कि जब इसका स्वभाव ही मोह करानेका है तो पृथग्भाव होनेपर ही क्यों मोहित करती है, आश्रय-अवस्थामें ही क्यों नहीं मोह कराती ? अर्थात् चित्खण्डको ही मोह क्यों कराती है, चिदाश्रयको भी मोह क्यों नहीं कराती ? इसका उत्तर श्रीमद्भागवतमें यों दिया है—

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥

यह[1] माया आश्रयरूप परब्रह्म किंवा भगवान्‌की भार्या है, इसको भगवान्‌के साथ रमण करनेका बहुत कम मौका मिलता है; इसलिये जब भगवान् बाह्य रमण करना चाहते हैं, तब इसे रमणका मौका मिलता है। उस समय यह चाहती है कि मैं ही अकेली भगवान्‌के साथ रमण करूँ, मेरे रमणमें दूसरा कोई भागीदार न हो जाय; इसलिये दूसरोंकी बुद्धिको यह मोहित करती रहती है। इसकी इस चालाकीको भगवान् जानते हैं; इसलिये यह लजाके मारे कभी भगवान्‌के सामने आती ही नहीं, तो फिर उन्हें मोहित तो क्या करेगी। अतएव भगवान्‌को पीठ देकर जो इसके साथ रमण करना चाहते हैं, उन्हें ही यह मोहित करती है;भगवत्सम्मुखोंको मोहित नहीं कर सकती। जब भगवत्सम्मुख भगवदीयोंको ही मोहित नहीं कर सकती तो सर्वाश्रय भगवान्‌को मोहित करनेकी तो सम्भावना ही नहीं है। मायाके मोहमें पड़कर जीवको जगत्‌के भोगमें प्रवृत्ति होने लगी। सनकादिके अनन्तरकी सृष्टिमें जिसकी बुद्धिको मायाने मोहित किया वे सब संसारमें प्रवृत्त हुए। अब उन्हें भोगमें प्रवृत्त होनेके लिये विधिकी आवश्यकता न रही। अपने आप रागतः जगत्‌की प्रवृत्ति उनमें प्रविष्ट हुई, और जगत्‌का प्रवाह आप्रलय इसी प्रकार चलता भी रहेगा। यह भागवत (द्वितीय) सृष्टि भगवान्‌ने अपने और जीव दोनोंके रमण-के लिये किंवा भोगके लिये बनायी है, यह हम पूर्वमें कह चुके हैं।

देव[1], मनुष्य, पशु, पक्षि प्रभृति अनेक शहरोंका निर्माण कर उनमें आप शयन करते हैं। यह शयन निद्रारूप नहीं है, किन्तु उपभोगरूप है।

शय्यायां जायते निद्रा यदि कान्ता न लभ्यते ।

—इत्यादिमें यह बात प्रसिद्ध है। भगवान्‌की शय्या यह समष्टि-व्यष्टि जगत् है, भगवान्‌की कान्ता षोडश विषय हैं। यद्यपि विषय पाँच ही हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, तथापि तत्तदिन्द्रियद्वारा उन-उन स्थानोंमें सुखका स्वाद कुछ भिन्न आता है, इसलिये पञ्चतन्मात्रा और ग्यारह इन्द्रिय इन सोलह पदार्थोंको लेकर सोलह विषयोंका ही निर्देश ठीक है। ये इन्द्रियाँ किंवा मन और तन्मात्रा प्रभृति भोग्य सब पदार्थ सन्मात्र हैं, शुष्क हैं, जड़ हैं; इनमें भगवान्‌के भोग करनेलायक रस कहाँ ? इसलिये आनन्द-रूप भगवान् इन सबमें प्रवेश कर इन्हें रसमय बना देते हैं। भगवान् व्यापक हैं, आनन्दमय हैं; अतएव वह अप्रविष्ट भी प्रविष्ट हैं। शुष्कको रसमय बनानेपर भी रसभोग नहीं हो सकता। दोके बिना रसका स्वाद वैसा नहीं आता, इसलिये भगवान् स्वयं दो हो जाते हैं, आत्मा और परमात्मा। अपना ही रस सर्वत्र फैलाकर और आप भी दो होकर

---

१ सा हि भगवतो भार्या, स्वस्य भगवता सह निरन्तररमणार्थ-मन्येषां बुद्धिं मोहयति। तस्यास्तथात्वं भगवान् जानाति। अतो विलज्जमाना ईक्षापथे स्थातुं विलज्जते। अत एव ये तत्सम्मुखा-स्तान्न व्यामोहयति। पृष्ठतः प्रवृत्तानेव व्यामोहयति यतो धियमेव व्यामोहयति। (भागवत-सुबोधिनी २। ५। १३)

१—इमाः देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपाः। अमूषु पूर्षु स्वयमेव शेते। इदं हि शयनं न निद्रारूपं किन्तु सम्भोगार्थमेव। अत एव दक्षिणेऽक्षिण इन्द्रः, इतरत्रेन्द्राणीत्युपाख्यानमेतत्परमेव भवति। अत्र च सुप्ता न केवलं स्पर्शमात्रमुपभुङ्क्ते किन्तु षोडशापि गुणान्। भोगेऽपि षोडशात्मको भूत्वा भुङ्क्ते। जडे शुष्के रसाभावात्। भगवान् हि व्यापक आनन्दमयश्च। तत्र स्वरूपेणैव स्वरूपानुभवे तथा रसो न भवति। स्त्रीपुरुषाद्यवयवेषु तथोपलम्भात्। अतः स्वस्थितरसाविर्भावेन स्पष्टभोगार्थं भेदरूपमात्मानं विधाय तस्मिन् स्वस्मिन् प्रविष्टे बहुधा भिन्नः सन्नन्योन्यस्य रसमनुभवति। (भागवत-सुबोधिनी २।४।२३)

अन्यान्य पदार्थोंके रूपमें आप ही अपने रसको अनेक तरहसे भोगा करते हैं। इस अपने और जीवके आनन्द-भोगार्थ भगवान्ने सृष्टि बनायी, और भोगके लिये ही मायाके द्वारा मोह भी करवाया। जैसे मायाके मोहके बिना जीवका भोग नहीं बन सकता, इसी तरह मायाके मोहके बिना भगवान्का भी भोग नहीं बन सकता—यह न्यायसिद्ध है। किन्तु यह जीवमाया किंवा व्यामोहिका माया भगवान्को मोह नहीं करा सकती, उनके लिये कोई उत्कृष्ट शक्ति चाहिये जो भगवान्को भी मोह करा सके। जगत्के इस सम्मिलित भोगमें यद्यपि भगवान् भी सर्व जगत्का भोग करते हैं; परन्तु वास्तवमें यह प्रधान भोग जीवका ही है, जीवरूपसे ही भगवान् भोग करते हैं। जीवरूपसे भोग करते हैं और अपने स्वरूपसे उसके साक्षी रहते हैं, उस भोगको व्यवस्थित रखते हैं, उसका नियमन करते हैं। इसलिये यह प्रत्यक्ष भोग नहीं किन्तु परोक्ष भोग है।

भगवान्का प्रत्यक्ष भोग भी है। भगवान् प्रत्यक्षमें भी भक्तोंको अपना आनन्द-भोग कराते हैं और आप भक्तोंके आनन्दका उपभोग करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीला, द्वारका-लीला प्रभृति तथा बाल-लीला, कौमार-लीला प्रभृतिमें भगवान्के इसी प्रत्यक्ष भोगका वर्णन है। परोक्ष क्रीडा किंवा परोक्षभोग रूपान्तरसे करते हैं, प्रत्यक्ष क्रीडा किंवा प्रत्यक्ष भोग अपने निज स्वरूपसे करते हैं। श्रीपुरुषोत्तमका आनन्दमय स्वरूप है, वह स्वरूप श्रीकृष्णावतारमें प्रकट हुआ है। उस स्वरूपसे प्रभुने भक्तोंका प्रत्यक्ष भोग किया है। परन्तु प्रभुका भोग लौकिक कदापि नहीं है; वह अलौकिक है। भगवान् प्राकृत पदार्थका भोग नहीं करते, अपने स्वरूपका ही आप भोग करते हैं। अतएव अपने स्वरूपको सर्वत्र स्थापन करके फिर उसका भोग करते हैं। भगवान्का स्वरूप है 'अक्षर आनन्द', इसीको ललित-भाषामें लक्ष्मी कहते हैं। लक्ष्म अर्थात् भगवान्का चिह्न (स्वरूप)। लौकिक ललित-भाषामें उस अक्षरानन्दको ही लक्ष्मी कह देते हैं। अक्षर आनन्द साधारणतया नीरूप है, किन्तु जब उसका भोग करना चाहते हैं तब भगवान् उसे रूपवती स्त्रीके रूपमें प्रकट करते हैं। तब वही 'लक्ष्मी' या श्री कही जाती है। सारे जगत्में जो लक्ष्मी है (आनन्द देनेवाला पदार्थ है) उस सबकी यह अधिदेवता है। लक्ष्मी[1] दो प्रकारकी हैं, लोक-सम्बन्धिनी आध्यात्मिकी और भगवदानन्दरूपा (अक्षरानन्द-रूपा) आधिदैविकी। भगवान्की भोग्य लक्ष्मी अक्षर ब्रह्मानन्दरूपा हैं, आधिदैविकी हैं और भगवद्भक्ता हैं।

भगवान् आत्मार्थ और जीवार्थ दो तरहसे सृष्टि करते हैं, यह मैं पूर्वमें कह चुका हूँ। उसमें जब भगवान्[2] अपने भोगके लिये जगत् बनाते हैं, तब उस सारे-के-सारेको लक्ष्मी-रूप (अक्षरात्मक) ही बनाते हैं। यह जगत् किंवा लक्ष्मी किंवा अक्षरानन्द ही भगवान्का भोग्य है। एक जगत् ही नहीं, किन्तु अखिल सात्वत, जगत्, लक्ष्मी और यज्ञ चारों भगवान्के भोग्य हैं। अतएव भगवान् 'अखिल-सात्वतां पति' हैं, 'श्रियः पति' हैं, 'यज्ञ-पति' हैं और 'जगत्पति' हैं। इसलिये कृष्णावतार, रामावतार प्रभृति अवतारोंमें जिन-जिन श्रीराधिका, श्रीसीता प्रभृति देवियोंका भगवान्ने भोग किया है वे सब लौकिक स्त्रियाँ नहीं हैं किन्तु साक्षात् लक्ष्मी हैं, अक्षर ब्रह्मानन्द हैं। श्रीगोपीजनोंमें कहीं स्वरूपतः लक्ष्मी हैं तो कहीं आवेशतः लक्ष्मी हैं। सात्वत (ऐकान्तिक वैष्णव) लक्ष्मी, यज्ञ तथा जगत्, ये चारों भगवद्भोग्य हैं; किन्तु इनका भोग अलौकिक है, लौकिक नहीं। शरीर और मनका भगवान्में प्रवेश होनेके बाद जो प्रत्युत्तरमें भगवान्का उनके शरीरादिमें प्रवेश अर्थात् परस्पर सम्बन्ध है, बस यही भगवान्का भोग है। सूर्य सब पदार्थोंके रसको अपना रूप देकर जो अपनेमें मिला लेता है और इस तरह जो सूर्य और पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध है, यही सूर्यका भोग है। सूर्य सब पदार्थोंका भोग करता है। जगत्[3]का निर्माण करनेके पूर्व अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें

१—लक्ष्मीर्द्विविधा—आध्यात्मिकी लोकसम्बन्धिनी, आधिदैविकी भगवद्भक्ता भगवदानन्दरूपा। ब्रह्मानन्दस्य नीरूपस्य रूपं सञ्जातमिति, अलौकिकार्थं वा रूपवती सा निरूप्यते। सर्वस्मिन्नेव जगति विद्यमानलक्ष्म्याः सा देवता अतो रूपिणीत्युच्यते।

(भागवत-सुबोधिनी ३। १५। २०-२१)

२—यदा भगवान् स्वभोगार्थं जगत् करोति तदा सर्वं लक्ष्मीरूपमेव करोति। अनेनावतारेषु भोग्या लक्ष्मीरूपा एवेति स्वरूपत आवेशतो वा। अखिलसात्वताः, लक्ष्मीः, यज्ञः, जगच्चेति चत्वार एते भगवद्भोग्याः। एतदनुप्रवेश एव भगवति सम्बन्ध इति सर्वत्र ज्ञेयम्। (भागवत-सुबोधिनी २। ९। १४)

३—यदा भगवान् स्वशक्तिरूपेणाविर्भूतस्तदा शक्तीनां मध्ये श्रीः प्रथमा। सा शरीर एव बलवत् पूर्वं स्थिता। यदा भगवान् प्रभुत्वेनाविर्भूतस्तदा सापि भोग्यत्वेनाविर्भूता भार्येव। सा ह्यक्षरस्यानन्दरूपा। (भागवत-सुबोधिनी २। ९। १३)

भगवान् पहले धर्मरूपसे तदनन्तर शक्तिरूपसे बहुभवन करते हैं, उस समय शक्तिरूपसे भी आप ही प्रकट होते हैं। अर्थात् अपने स्वरूपको शक्ति-रूप बना लेते हैं। यह भगवान्की सिद्धिरूपा शक्तियाँ हैं। इन अनन्त शक्तियोंमें श्री (लक्ष्मी) पहली शक्ति है। यह शक्ति जगन्निर्माणके पूर्व भगवान्के स्वरूपमें ही समायी हुई रहती है। किन्तु जब भगवान् सर्वजगत्के स्वामीरूपसे प्रकाशित होते हैं तब यह लक्ष्मीशक्ति भगवान्की भोग्या होकर स्वरूप धारण करती है। यह लक्ष्मीशक्ति, जो सर्वत्र भोग्यरूपमें हाजिर रहती है, ब्रह्माक्षरकी आनन्दरूपा है। इसलिये श्रीकृष्ण आदि भगवत्स्वरूपोंके भोगको लौकिक भोग समझ लेना बड़ी भारी भूल है। वे तो अपने स्वरूपका ही भोग करते हैं।

सिद्धिरूपा शक्तियाँ भी अनन्त हैं और अनन्त प्रकारकी हैं। जिस प्रकारका भगवान् भोग करना चाहते हैं, उसी प्रकारकी शक्तियोंको स्वीकार करते हैं। भगवान्की कितनी ही सिद्धिरूपा शक्तियोंका प्रत्यक्ष होता है और कितनी ही शक्तियोंका पारोक्ष्य ही रहता है। 'श्री' प्रभृति परोक्ष शक्तियाँ हैं। और 'श्रीराधिका' प्रभृति अपरोक्ष सिद्धियाँ हैं।

'श्री' प्रभृति परोक्ष शक्तियाँ, जो भगवान्की भोग्य हैं, वे भी किसी रूपान्तरसे प्रकाशित होती हैं तब उनका भगवान् तदनुसार रूपान्तरसे भोग करते हैं। और अपरोक्ष शक्तियाँ भी जब रूपान्तरसे प्रकट होती हैं, तब भगवान् उनका भी तदनुसार रूपान्तर धारण कर भोग करते हैं।

पाठकगण! भारतवर्षमें कौन ऐसा धार्मिक पुरुष होगा जो 'श्रीराधाकृष्ण' इस पवित्र नामसे परिचित न हो। हमारा धार्मिक समाज श्रीराधाकृष्णको बड़ी ही पूज्य दृष्टिसे देखता है। प्रत्येक धार्मिक गृहस्थके घरमें श्रीराधाकृष्णका चित्र विद्यमान है। अनेक मन्दिरोंमें श्रीराधाकृष्णकी पुनीत मूर्तियाँ प्राणोंकी तरह प्रिय और पूज्य-भावसे विराजित हैं।

इस युगलमूर्तिमेंसे श्रीराधिका भगवद्भोग्य भगवच्छक्ति हैं। जिस प्रकार श्रीराधा भगवच्छक्ति हैं उसी प्रकारसे यह भगवत्सिद्धि भी हैं। यह सिद्धि निरस्तसाम्यातिशया है। अर्थात् इस सिद्धिके समान कोई नहीं है, और इससे बढ़कर तो कोई हो ही नहीं सकती। रस-रूप परब्रह्म अपने स्वरूपात्मक स्थानमें स्थित रहकर इस अपनी अनन्यसिद्धा सर्वोत्तम सिद्धिका अप्रत्यक्ष भोग करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें इस राधारूप सिद्धिका इस प्रकार निरूपण है।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥

'जो परमपुरुष पुरुषोत्तम ऐकान्तिक भागवतोंका स्वामी है और कुयोगियोंको जिसकी दिशा भी देखनेको नहीं मिलती और जो अपने अक्षरब्रह्मरूप स्थानमें (व्यापिवैकुण्ठमें) विराजकर अपनी सर्वोत्तमा सिद्धिसे रमण करता रहता है उस परब्रह्म पुरुषोत्तमको मैं (श्रीशुकदेवजी) बारम्बार नमस्कार करता हूँ।'

पाठकगण! यह अनन्य साधारण सर्वोत्तमा सिद्धि ही भगवान्का भोग्य पदार्थ है। भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी सिद्धिरूपा श्रीराधिका दोनों ही अलौकिक हैं, इसलिये उनका सम्भोग भी अलौकिक है—यह हम सूर्यका दृष्टान्त देकर पूर्वमें समझा चुके हैं।

जिन्होंने वेदादि तथा श्रीमद्भागवतादि पुराण-शास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक विचार एवं समन्वय नहीं कर पाया है वे लोग श्रीकृष्ण या श्रीराधिकाके तत्त्वको नहीं समझ सकते। जिन लोगोंके हृदयमें लौकिक भावनाएँ और भ्रष्ट-विचार ही भरे हुए हैं उनके उस अपवित्र हृदयमें पवित्रतम श्रीराधाकृष्णके समझनेके लिये स्थान ही कहाँ है। अतएव वे बेसमझीसे उनपर आक्षेप करते हैं। श्रीकृष्णके स्वरूप एवं लीलाओंका विशद वर्णन श्रीमद्भागवतमें है किन्तु परोक्ष और सूक्ष्मतम वर्णन श्रीराधिकाका भी है ही, इसका दिग्दर्शन हम पूर्व श्लोकमें करा चुके हैं। श्रीराधिका और श्रीगोपीजनोंका विशद वर्णन ब्रह्मवैवर्त आदि अन्य पुराणोंमें है। श्रीमद्भागवतके यथार्थ स्वरूपको समझानेवाली टीका या भाष्य मेरी समझमें श्रीसुबोधिनी है।

१—काचिद्भगवतः सिद्धिरस्ति राधस्-शब्दवाच्या। न तादृशी सिद्धिः क्वचिदन्यत्र, न वा ततोऽप्यधिका। तया सिद्धया भगवान् स्वगृह एव रमते। तच्च अक्षरात्मकं ब्रह्म, इत्यादि।

(भागवत-सुबोधिनी द्वि० स्कं० अ० ४ श्लोक १४)

श्रीराधाकृष्णके विषयमें कुछ-कुछ अन्य भाव तो साधारण टीकाकारोंने किया है। उनसे विशेष अन्याय बेसमझ कथक्कड़ोंने एवं अविवेकी भाषान्तरकारोंने तथा सर्वतन्त्रस्वतन्त्र संस्कृतभाषारहस्यानभिज्ञ इन नयी रोशनी-वाले प्रबन्ध-लेखकोंने किया है। और श्रीराधाकृष्णका सबसे बढ़कर अपमान तो आजकलके अधिकांश रासलीलावालोंने, और अर्थकामी नाटक-सीनेमावालोंने और इन प्राकृत चित्रकारोंने किया है!

इसका एक ही दृष्टान्त काफी होगा। चीरहरणलीला श्रीकृष्णलीलाओंमें प्रसिद्ध लीला है, इसका मूल यहाँसे है—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥

(श्रीमद्भागवत)

मूलमें कुमारिका-शब्द है। उसका अर्थफेर कुछ अन्य टीकाकार करते हैं, भाषान्तरकार कुछ और कर देते हैं। और ये चित्रकर्ता एवं नाटक-सीनेमावाले तो कुछ-का-कुछ कर दिखाते हैं। 'कुमारिका'-शब्दका अर्थ है स्त्रीवाचक बालक। इस जगह भागवत-सुबोधिनीमें श्रीवल्लभाचार्यजी लिखते हैं 'कन्यकाः', जिसका अर्थ होता है सात या आठ वर्षकी छोरियाँ। अब आप उस मूल और इस टीकाको देखिये और दूसरी ओर बाज़ारमें बिकते हुए चीरहरणके चित्रोंको देखिये, जमीन-आसमानका भेद दिखायी पड़ेगा।

इसलिये कहना पड़ता है कि वैदेशिक भ्रष्ट सभ्यतामें रँगे हुए नेत्रोंसे श्रीराधाकृष्णको देखोगे तो कुछ-का-कुछ दीखेगा; और यदि भारतीय सभ्यता, श्रद्धा और वेदादि शास्त्रोंकी सत्य-दृष्टिसे उनका दर्शन करना चाहोगे तो फिर उन-जैसी कोई पवित्रतम मूर्ति दीखेगी ही नहीं। 'रसो वै सः', 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्', 'सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', 'आनन्द आत्मा', 'पतिश्च पत्नी चाभवताम्'

इत्यादि श्रुतियोंने यद्यपि 'परोक्षप्रिया ह वै देवाः' इस न्यायसे परोक्षरूपसे श्रीराधाकृष्णका निरूपण कर दिया है, तथापि आज मैं इस विषयको रस-शास्त्रकी मर्यादासे प्रकाशित करना चाहता हूँ। श्रीराधिका श्रीकृष्णकी ही शक्ति और सिद्धि हैं, इसलिये कुछ थोड़ा श्रीकृष्णका भी स्वरूप निर्देश करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

अलौकिक आनन्दका ही नाम रस है, ब्रह्म है और पुरुषोत्तम है। रस, सुख और आनन्द एकार्थक हैं। रस दो प्रकारका है लौकिक और अलौकिक। अलौकिक सुख या रस परब्रह्म है, श्रीकृष्ण है। और लौकिक सुखको ही लोकमें 'काम' कहते हैं। अलौकिक रस या आनन्द स्वार्थरहित, अगाध, निर्दोष, अमेय, अनिर्देश्य, परमपवित्र और जीवनप्रद होता है—'को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।' किन्तु काम स्वार्थवाला, मैला, परिच्छिन्न, निर्देश्य, सदोष और नाशोन्मुख होता है।

रसके अनेक भेद हैं। किन्तु आनन्द तो सब रसोंमें व्याप्त रहता है, अतएव शास्त्रकारोंने रस-शास्त्रमें शृङ्गारको ही मूल और प्रधान माना है। यह परात्पर पूर्णपुरुषोत्तम आनन्द सर्वान्तर है, अनिर्देश्य है, केवल अनुभवैकगम्य है। इसका चाक्षुष, रासन, स्पार्शन आदि प्रत्यक्ष होना असम्भव-सा है। अनुभव ही इस रसका आधार आश्रय है। तथापि जहाँ-तक उस अनुभवके साथ इन्द्रियभोग्यता न हो वहाँतक पूर्ण आनन्द नहीं आता। आखें अच्छी हों, पूर्ण शक्तिवाली हों, पर यदि उनकी सदा अन्धकारमें ही स्थिति रहती हो तो होना ही निष्फल है। इसी तरह पूर्ण रसकी सत्ता सर्वत्र व्याप्त है और कभी-कभी किसी-किसीको उसका अनुभव भी होता है। ठीक है, किन्तु ऐसा यह पूर्ण रस अनुभवसहित रहते भी भोग्य नहीं कहा जाता। कुल्हड़ीका गुड़ किसने जाना। जङ्गलमें मोर नाचा, किसने देखा। उसका भोग किसने किया? इन्द्रियोपभोग्यता जबतक न आवे तबतक रसका पूरा भोग नहीं कहा जा सकता। इसलिये परात्पर अलौकिक रसको यह इच्छा होती है कि मैं सबका भोग्य बनूँ और मैं सबका भोग भी करूँ। सबका सम्बन्ध करना और कराना—यही उसका भोग है, और यही जगत्का उद्धार है। यही इन्द्रियवालोंका मोक्ष है। केवल अनुभव मोक्ष नहीं। और इसी प्रकारसे सारा जगत् रसमय हो सकता है; जगत्का रसमय होना ही उसका उद्धार है, मोक्ष है। इस इच्छाके होते ही वह रस[1] अपनी पूर्ण शक्तियोंको साथ

---

१ स एव परमकाष्ठापन्नः कदाचिज्जगदुद्धारार्थमखण्डः पूर्ण एव प्रादुर्भूतः कृष्ण इत्युच्यते। (त० नि०)

रसेन सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च।
आश्लेषः सेवनञ्चापि स्पर्शश्चापि तथाविधः।
अधरामृतपानं च भोगो रोमोद्गमस्तथा॥
तत्कूजितानां श्रवणमाघ्राणञ्चापि सर्वतः।
तदन्तिकगतिर्नित्यमेवं तद्भावनं सदा॥

माता श्रीराधाजी

तप्तस्वर्णप्रभां राधां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
नीलवस्त्रपरिधानां भजे वृन्दावनेश्वरीम् ॥

लेकर पूर्णरूपसे लोकमें प्रकट होता है। यही श्रीकृष्णावतार कहा जाता है। श्रीकृष्ण ही रसके पूर्ण आश्रय हैं, अधिदेवता हैं— यह बात रस-शास्त्र-वेत्ताओंसे अपरिचित नहीं है।

जब वह रसरूप, रसाधिदेव भगवान् सर्व-प्रत्यक्ष होते हैं तब उसमें अनुभवैकवेद्यता रहते भी सर्वेन्द्रियोपभोग्यता आती है। उसके साथ संलाप, उसके श्रीमुखका दर्शन, उसका आश्लेष, उसका स्पर्श, उसके कूजितोंका श्रवण, उसके श्रीअङ्गकी सुगन्धका आघ्राण, उसके पास जाना और उसका ही निरन्तर चिन्तन करते रहना–बस, यही इन्द्रिय-वालोंका पूर्ण फल है। यही उनका उद्धार है और यही उनका मोक्ष है। इस बातको श्रीमद्भागवतमें इस प्रकारसे कहा है—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥

श्रुतिरूपा श्रीगोपीजनोंका यह वचन है। और वे ही इस रसका पूर्ण भोग करनेकी योग्यता रखती हैं। लोकमें भी हृदयस्थित रसका शब्द ही पूर्ण या अपूर्ण रीतिसे अनुभव करा सकता है।

लोकमें रसका सर्वत्र अनुभव करनेवाली स्त्रियाँ ही हैं। और यह रसरूप भगवान् लोकका पूरी तरह अनुसरण करने-की इच्छासे प्रकट हुआ है।

अस्तु, प्रकृतमनुसरामः—यद्यपि रसको लौकिक शब्द-के द्वारा कहना इसकी आबरू घटाना है, तथापि यदि किसी-को समझाना ही पड़े तो फिर आनन्द या रसको मज़ा या स्वाद-शब्दसे किसी तरह कह भी सकते हैं। 'मज़ा' या 'स्वाद' का आश्रय अनुभव है। रस अनुभवके बिना कभी नहीं रहता। और यह आनन्दानुभव नित्य-सिद्ध है, त्रिकाला-बाधित है; इसीलिये इस परात्पर रसको शास्त्रोंमें 'सच्चिदा-नन्द' कहा है।

श्रुतियाँ (वेद) इस रसका निरूपण करना चाहती हैं, पर कर नहीं सकतीं, यह बात—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

—इस श्रुतिसे स्पष्ट होती है। रसका स्वरूप ही ऐसा है कि वह सम्पूर्ण रीतिसे वाणीमें नहीं आ सकता। किसी रस-शास्त्र-वेत्ताने प्रेमके, जो कि रसकी ही एक किरण है, विषयमें कहा है—

आविर्भावदिने न येन गणितो हेतुस्तनीयानपि
क्षीयेतापि न चापराधविधिना नत्या न यद्वर्धते।
पीयूषप्रतिवादिनस्त्रिजगतीदुःखद्रुहः साम्प्रतं
प्रेम्णस्तस्य गुरोः किमद्य करवै वाङ्निष्ठतालाघवम्॥

कोई अपने प्रेमीसे कह रहा है कि जिस प्रेमने पैदा होनेके दिन किसी थोड़ेसे कारणकी भी परवा न की और जो सैकड़ों अपराधोंसे कम नहीं होता और न नमस्कारादि उपचारोंसे बढ़ता है, वह प्रेम अमृतकी तरह मधुर है और त्रिभुवनके दुःखोंको दूर करनेमें समर्थ है; इतने भारी और अगाध प्रेमको मैं आज अपनी जीभपर कैसे लाऊँ। मुखसे कहनेसे उसकी लघुता हो जायगी। और भारीको लघु बना देना सर्वथा अनुचित है।

प्रेम भी अलौकिकानन्दका एकतम अंश है; जब वही वाणीमें नहीं आ सकता, तब फिर उस अप्रमेय, अगाध, अनिर्वचनीय, परात्पर रसका निरूपण श्रुतियाँ कैसे कर सकती हैं। तब सारी श्रुतियाँ मिलकर प्रभुके शरण जाती हैं और प्रार्थना करती हैं—'हे भगवन्! नित्यसिद्धा (सिद्धि-रूपा) श्रीगोपीजन जिस प्रकार आपका अनुभव करती हैं उसी प्रकारसे हम भी आपका अनुभव करें, ऐसा वरदान दीजिये। आपके वरदान बिना हमारे साधनोंसे आपका अनुभव नहीं हो सकता, यह हम जान चुकी हैं।'

तब भगवान्‌ने आज्ञा की कि तुम लोगोंने जो वर माँगा है वह दुर्घट अवश्य है पर मैं तुम्हें दूँगा। इसी स्वरूपसे

इदमेवेन्द्रियवतां फलं मोक्षोऽपि नान्यथा।
यथान्धकारे नियता स्थितिर्नाक्ष्णोः फलं भवेत्॥

तद्रसप्रवेशो निरोधः सिद्धः। अतः स्वल्पतरो गोपेषु,भोग्यगोपी-व्यतिरिक्तासु, सर्वेषु च। अत एव निरोधो भक्त्यनन्तरं निरूपितः। सृष्ट्युत्पन्नानां भोग एतत्पर्यवसायी, ततो विमोचनं स्वाश्रयप्रापणं च प्रत्यापत्तिः। अन्यथा सृष्टिर्व्यर्था स्यात्। अयं पुनर्ब्रह्मानन्दभावे जाते तत्राप्याधिदैविकरूपे सम्पन्ने लक्ष्म्या इव मुख्यो रसभोगः सम्भवति, तदंशानां च क्रमेण। अतो निरोधो महाफलः। अतोऽत्र स्त्रियः प्रकरणान्ते निरूप्यन्ते भगवद्भोगानन्तरमेव भगवान् भोग्यो भवति। अत एव शुकोऽपि मुख्यतया स्त्रिय एव वर्णयति। अग्नि-कुमाराणामप्यत एव स्त्रीत्वम्। न हि पुरुषोऽन्योपभोग्यो भवति स्वोपभोग्यो वा। (श्रीभागवत-सुबोधिनी वेणुगीते)

यह होना दुःशक्य और अनुचित है, मेरा नियम है कि मैं एक रूपसे अनेक कार्य नहीं करना चाहता । इसलिये इस कार्यके लिये मुझे अवतार धारण करना होगा ।

सारस्वत-कल्पमें मैं श्रीनन्दरायके यहाँ श्रीयशोदासे श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होऊँगा, और वहाँ तुम भी श्रीगोपीजनरूपसे प्रकट होओगी । उस समयमें मैं तुम्हें अपने आनन्दका दान करूँगा । मेरे अनुग्रहसे वहाँ मेरा तुमसे सम्बन्ध नित्य-सिद्धाओंकी तरह होगा । जब सारस्वतकल्प आया तब वह रस श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुआ और श्रुतिगण गोपीरूपोंमें प्रकट हुईं । वहाँ उन्होंने नित्य-सिद्धा गोपियोंकी (सिद्धियोंकी) तरह श्रीकृष्णका भोग सम्प्राप्त किया । यह कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें प्रसिद्ध है ।

पुराणादि शास्त्रोंमें श्रीगोपीजनोंके चार भेद माने हैं— नित्यसिद्धा, श्रुतिरूपा, ऋषिपुत्ररूपा और प्रकीर्णा । कहीं-कहीं इनके नामान्तर भी हैं, पर अनेक भेद होनेमें किसीको विसंवाद नहीं है । उनमें दूसरा यूथ श्रुतिरूपा गोपियोंका है । शब्द भी एक परब्रह्मकी शक्ति है ।

श्रुतियोंमें अन्यपूर्वा और अनन्यपूर्वा दो तरहकी श्रुतियाँ हैं । 'आकाश आनन्दो न स्यात्', 'इन्द्राय स्वाहा', 'इमं मे वरुणः,' 'आपो हिष्ठा मयो' इत्यादि श्रुतियाँ यद्यपि 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' आदि उत्तर-मीमांसा-सूत्रोंके सिद्धान्तानुसार रसरूप पुरुषोत्तमका ही निरूपण करती हैं तथापि ये अन्यपूर्वा हैं । क्योंकि आपाततः वरुण आदिका निरूपण करती हुई वस्तुतः परब्रह्मका वर्णन कर रही हैं । और 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म,' 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' आदि श्रुतियाँ साक्षात् परब्रह्मका सीधा निरूपण करती हैं; इसलिये ये अनन्यपूर्वा हैं । पूर्वमें इन्होंने अन्यका निरूपण न करके रसका ही वर्णन किया है इसलिये अवतार-अवस्थामें इन अन्यपूर्वा और अनन्यपूर्वा दोनों प्रकारकी श्रुतियोंका गोपीरूपसे अवतार हुआ है । इसलिये अन्यपूर्वा और अनन्यपूर्वा दोनों तरहके गोपीजन प्रसिद्ध हैं । अतएव भागवतमें 'पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्यतेऽन्त्यच्युतागताः' इत्यादि वाक्य अन्यपूर्वा गोपिकाओंके हैं ।

'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इत्यादि सूत्रोंमें श्रीवेदव्यासजीने यह सिद्धान्तित किया है कि आकाश-शब्द आपाततः (ऊपरसे) लौकिक आकाशका बोधन कराता है, वास्तवमें नहीं । इसी प्रकार श्रुतिरूपा गोपियोंका जितना जो कुछ सम्बन्ध अन्य गोपोंके साथ हुआ है वह सब आपाततः है, भ्रान्त है, योगमायाका कार्य है । योगमायाका जन्म ही इसलिये है, यह हम पहले कह चुके हैं । भगवान्‌की परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ परस्पर विरुद्ध कार्योंके समाधानके लिये हैं; भगवच्छक्तिके साथ अन्यका सम्बन्ध हो यह विरोध है, इसलिये इस विरोधको योगमाया-शक्तिने दूर कर दिया । भ्रम कराना यह मायाशक्तिका कार्य है । लीलामें रस लानेके लिये जिस मोहकी अपेक्षा रहती है उस मोहको कर देना यह योगमाया-शक्तिका कार्य है । योगमाया-शक्तिके अनेक कार्य हैं, अतएव श्रीमद्भागवतमें कहा है—

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥

निज-लीलामें जो कामं आवे वह योगमाया । इसीने गोप-गोपी और निजका मोहन किया था । जैसे कोई शौकीन आनन्दानुभव करनेके मोहार्थ भाँग पीनेकी आवश्यकता समझता है इसी प्रकार भगवान् भी लीलामें रस लानेके लिये कभी-कभी योगमायाको आश्रय देते हैं । 'योगमायामुपाश्रितः ।'

इस प्रकार गोपी और भगवान्‌के सम्बन्धमें जितने विरोध आते हों, वे सब योगमाया-शक्तिके द्वारा दूर किये जा सकते हैं । यहाँतक शब्द-शक्तिरूपा गोपियोंका निरूपण हुआ । अब नित्यसिद्धा गोपियोंका निरूपण इस प्रकार है ।

नित्यसिद्धा गोपिकाएँ सिद्धिरूपा हैं । अनवतार-अवस्थाकी प्रथमा सिद्धि लक्ष्मी है । लक्ष्मी ही भगवान्‌की भोग्या है । यही भगवान्‌का रमण-स्थान है । अवतार-समयमें भी भगवान् जहाँ रमण करना चाहते हैं वहाँ श्रीलक्ष्मी-शक्तिका आविर्भाव कर लेते हैं ।

अवतार-अवस्थामें पूर्वोक्त राधस् नामक सिद्धि ही श्रीराधा किंवा राधिकारूपसे प्रकट होती हैं ।

रस-शास्त्रने रसको दो प्रकारका माना है—संयोग और विप्रयोग । मूलरसकी कई अवस्थाएँ हैं—शान्त, उद्बुद्ध, अत्युद्बुद्ध । रसकी प्रारम्भिक या प्रथम अवस्थाको भाव कहते हैं । यह भाव सर्वदा विद्यमान रहता है, इसलिये इसे स्थायी भाव भी कहते हैं । भावकी उद्बुद्ध अर्थात् मध्यावस्था संयोग-रस है । और अत्युद्बुद्ध या उद्वेलित-अवस्थाको विप्रयोग कहते हैं । भाव ही जब अगणित-

लहरीसंवलित, उद्वेल और अप्रमेय हो जाता है तब विप्रयोग कहलाता है। तब वह एक ही सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो जाता है।

रस-शास्त्रमें इस रसकी अनन्त लहरियाँ, अनन्त भावनाएँ मानी गयी हैं। उद्वेलित-विप्रयोग-रसमें अनन्त भावनाएँ उठती रहती हैं। शास्त्रहीमें नहीं, लोकानुभवसे भी यह बात ठीक है।

> प्रासादे सा, दिशि दिशि च सा, पृष्ठतः सा, पुरः सा,
> पर्यङ्के सा, पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
> हं हो चेतःप्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
> सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः॥

'श्लिष्यति चुम्बति तिमिरमनल्पम्' इत्यादि वाक्य अनन्त भावना-निमित्तक ही हैं। यही बात अलौकिक रसमें भी समझ लेनी चाहिये। अलौकिक रस भी अनन्त-भावनायुक्त है। जैसे समुद्रकी तरङ्ग, सूर्यका तेज और दीपका प्रकाश है, इसी प्रकारसे उद्वेलित शृङ्गार-रसकी भावनाएँ हैं। दोनों एक हैं। सूर्यसे तेज, दीपसे प्रकाश और समुद्रसे लहरी जुदी नहीं हैं; इसी तरह रससे भावनाएँ पृथक् नहीं हैं। उन सब भावनाओंकी अधिष्ठात्री देवता राधस् है, यह प्रथमा सिद्धि है। सिद्धि-शब्दमें और राधस् किंवा राधा-शब्दमें भेद नहीं है।

किसी भी पदार्थके अनुभव करनेमें तीन पदार्थोंकी अपेक्षा रहती है—ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान (समझ)। किन्तु रसरूप श्रीपुरुषोत्तम एक है, अद्वितीय है, इसलिये वह अपना अनुभव करते समय आप ही तीन बन जाता है। अनुभव करनेका विषय—आनन्द, आनन्दानुभवकर्ता, और आनन्दका अनुभव। अनुभवका विषय रस्यपदार्थ भी जब आप ही हो जाता है तब उस रूपान्तरापन्न रसनीय विषयरूप रसको ही राधस् या सिद्धि कहते हैं। व्याकरण-वेत्ताओंको मालूम है कि राध् धातुका भाव-प्रत्ययसहित 'राधा' शब्द है और उसका अर्थ है 'तद्रूप हो जाना।' सिद्धि-शब्दकी भी व्युत्पत्ति वैसी ही है और अर्थ भी तद्रूपापत्ति है। राधस् कहो, राधा कहो, राधिका कहो और चाहे सिद्धि कहो, सबका एक ही अर्थ और तात्पर्य है। 'भगवतः सिद्धिः'—भगवान्की सिद्धिका अर्थ राधस् या राधा ही होता है। षिध् धातुसे भावमें 'क्ति' कर देनेसे सिद्धि शब्द तैयार होता है, और उसका अर्थ भी रूपान्तरापत्तिः किंवा तद्रूपापत्तिः होता है। अत्र 'भगवतः सिद्धिका' स्फुट अर्थ यह होता है कि भगवान्का रूपान्तर ग्रहण करना। और यही श्रीराधा हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तमरूप वह अनिर्वचनीय अनुपम रस अपनी अनवतार-अवस्थामें अपनी आत्मसदृश इस सिद्धि—राधस्के द्वारा अपने ही रसका स्वाद लेता रहता है, यही बात 'राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः' इस श्लोकमें कही है। किन्तु जब वह रस स्वेच्छया आविर्भूत (अवतरित) होता है तब अपनी उस सिद्धिको भी स्वरमणार्थ भूतलपर प्रकट करता है। जब श्रीयशोदासे (यशोदामें नहीं) अनुपम अनिर्वचनीय रसका प्रादुर्भाव हुआ तो उसके पहले उसी प्रकारसे राधाष्टमीको कीर्तिसे राधा नामक राधस्-सिद्धिका भी आविर्भाव हुआ।

यह राधस् राधा किंवा राधिका श्रीपुरुषोत्तमकी इस प्रकार (श्रीकृष्णकी) नित्यसिद्धा प्रिया हैं।

इसी बातको यदि लौकिक रूपकसे कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि शृङ्गाररसरूप भावनामें जब पुरुष अपनी प्रियाकी भावना करता है तब वह अपने भावको ही स्त्रीरूप देता है। भावको स्त्रीरूप बनाये बिना स्त्रीकी भावना ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार जब स्त्री अपने प्रियकी भावना करती है तब उसे भी अपने भावको पुरुषरूप देना होता है। स्त्रीके हृदयमें भावात्मक पुरुष है और पुरुषके हृदयमें भावात्मक प्रिया है। भावपदार्थ नित्य-सिद्ध है, रसरूप है; इसलिये वे तत्तद्रूपापन्न प्रिया-प्रियतम दोनों ही नित्यसिद्ध और रसरूप हैं। इस प्रकारसे दोनों एकरूप रहते भी श्रीकृष्णकी नित्य-सिद्धा प्रिया श्रीराधिका हैं। श्रीराधिका प्रथमा शक्ति हैं, प्रथमा सिद्धि हैं, अतएव सर्वश्रेष्ठा हैं, सर्वेश्वरी हैं, निष्कामा हैं, प्रेममयी हैं।

श्रीराधिका यूथेश्वरी हैं, अनेकों श्रीगोपीजनोंके यूथकी स्वामिनी हैं; इसलिये इन्हें मुख्य स्वामिनी भी कहते हैं। रसकी भावना एक ही और एक ही प्रकारसे नहीं होती। शृङ्गाररसकी भावनाएँ अनेक और अनेक प्रकारसे होती हैं, इसलिये नित्यसिद्धा प्रियाएँ भी अगणित हैं। इन सबकी स्वामिनी श्रीराधिका हैं। ये सब सिद्धिरूपा नित्य-सिद्धा प्रियाएँ अनन्या किंवा अनन्यपूर्वा हैं। इन गोपियोंके देहेन्द्रियादि आनन्दमय, अप्राकृत हैं और इनमें कामांश बिल्कुल नहीं है।

दूसरा यूथ श्रुतिरूपा गोपिकाओंका है। उनका संक्षेपमें निरूपण पूर्वमें किया जा चुका है। ये भी शब्दरूपा होनेसे भगवान्‌की शक्तियाँ हैं। शब्द भी भगवान्‌की शक्ति है, यह वेदान्तशास्त्रसे सिद्ध है। श्रीगोपीजनोंके अनेक यूथ हैं, यह मैं अपने रासलीला-विरोध-परिहारमें अच्छी तरह प्रकाशित कर चुका हूँ। यहाँ उस विषयको पल्लवित करनेका कारण नहीं है। यहाँ तो मुझे प्रस्तावानुसार श्रीराधिका भगवती भगवान् श्रीकृष्णकी ही एक प्रधान शक्ति हैं—इतनामात्र दिखाना था, सो मैंने दिखा दिया।

तदा तद्रूपतापत्तिर्मूललीलापरायणः।
यथा वा मूलरूपेऽपि स्वयमाविश्य सर्वतः॥
मूलरूपेण कृतवाँल्लीलास्तद्वत् स्वयं हरिः।
तथा श्रुतिषु सर्वासु भावात्मा स्वीयरूपताम्॥
सम्पाद्य मूलरूपेण रमते तादृशीषु वै।
उभयोर्भावरूपत्वं मन्तव्यं ब्रह्मवादिभिः।
मुख्यशक्तिस्वरूपं तु स्त्रीभावो हरिरुच्यते॥
तत्र स्वयंशः पराशक्तिर्भावांशः कृष्णशब्दितः।
यथा हि सर्वभावात्मा कृष्णः सापि च तादृशी॥

श्रीराधा-तत्त्व

[१]

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगङ्गानाथजी झा एम०ए०, डी०लिट्०, एल० एल० डी०)

'श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।' जहाँ कहीं श्रीकृष्णकी पूजा होती है, श्रीराधाके साथ होती है-यह तो प्रसिद्ध है। परन्तु कृष्ण-चरित्र-निरूपक ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवत सबसे प्रसिद्ध है—इसमें श्रीराधाकी चर्चा प्रायः नहीं-सी ही है। इससे कुछ लोगोंके मनमें यह सन्देह होने लगा है कि राधाकी उपासना (Radha-cult) कृष्णोपासनासे भी बहुत नवीन है।

जबसे पाश्चात्य विद्वानोंने पुराणोंको 'रद्दी', 'कपोल-कल्पित' कहकर हटा दिया, तबसे उनके शिष्य हमारे देशी भाई भी इन अमूल्य ग्रन्थ-रत्नोंकी ओर दृक्पात करना भी महापाप समझने लगे। अब Pargiter साहबकी कृपा पुराणोंकी ओर हुई है। उनका कहना है कि पुराणोंकी सहायताके बिना भारतवर्षके इतिहासका सङ्कलन असम्भव-प्राय है। इससे अब आशा होती है कि हमारे देशी भाइयोंकी भी इन ग्रन्थोंकी ओर कृपा-दृष्टि फिरेगी।

देवीभागवत देखनेसे श्रीराधाजीका दर्जा बहुत ऊँचा हो जाता है। इस पुराणके अनुसार 'राधा' केवल बरसानानिवासी वृषभानुकी पुत्रीमात्र नहीं हैं। जैसे श्रीकृष्ण परमात्माके अवतार हैं वैसे ही श्रीराधा भी पराशक्तिकी अवतार हैं। आद्या 'प्रकृति' के पाँच रूप हैं—(१) दुर्गा, (२) राधा, (३) लक्ष्मी, (४) सरस्वती और (५) सावित्री। (देवीभागवत ९।१।१)

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥

राधा कृष्णकी चिच्छक्ति हैं। इन्हींके संयोगसे 'ब्रह्माण्ड' की उत्पत्ति हुई। इस 'ब्रह्माण्ड' को राधाजीने जलमें डाल दिया। इसपर अप्रसन्न होकर श्रीकृष्णने शाप दिया कि 'आजसे तुम अनपत्या होगी' इत्यादि कथा नवम स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें वर्णित है।

इस कथाको कपोलकल्पित कहिये या जो कुछ कहिये, इतना तो मानना पड़ेगा कि राधाकी उपासना बहुत आधुनिक नहीं है और राधाका दर्जा प्रधान शक्तियोंमें है। जो दर्जा लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वतीका है वही राधाका भी।

असल बात तो यह है कि जितने 'देव' हमारे यहाँ माने गये हैं और पूजनीय समझे गये हैं, सबोंके साथ उनकी अपनी-अपनी शक्तियोंकी भी पूजा आवश्यक बतलायी गयी है। यहाँतक कि पूजन-विधिमें शक्तियोंहीका उल्लेख पहले आता है, जैसे—

श्रीगौरीशङ्कराभ्यां नमः, श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः, श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः, श्रीसीतारामाभ्यां नमः।

इसपर भी भारतवासी स्त्रियोंका तिरस्कर्ता कहलाता है! आश्चर्य !!

[२]

(भार्गव शिवरामकिङ्कर स्वामी श्रीयोगत्रयानन्दजीके उपदेश)

जिज्ञासु—आज श्रीराधा-तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ उपदेश सुनानेकी प्रार्थना है ।

वक्ता—श्रीराधा-तत्त्वके सम्बन्धमें तुम किन-किन विषयोंके जाननेकी इच्छा करते हो ?

जिज्ञासु—श्रीराधाका प्रकृत स्वरूप क्या है, मर्त्यलोकमें उनके आविर्भावका क्या कारण है, वेदमें श्रीराधाका कोई उल्लेख पाया जाता है या नहीं, श्रीराधाके सम्बन्धमें हमें इन सब विषयोंकी विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा होती है। अच्छा, श्रीसीतोपनिषद् नामक जैसा एक उपनिषद् है, वैसा ही राधोपनिषद् नामक कोई उपनिषद् क्यों नहीं देखनेमें आता ?

श्रीराधाका स्वरूप तथा वेदमें श्रीराधाका उल्लेख

वक्ता—सीता, राधा, दुर्गा—ये वस्तुतः भिन्न पदार्थ नहीं हैं; ये मूलतः एक ही पदार्थ हैं, उद्देश्य-भेदसे इन्होंने विभिन्न रूप धारण कर रक्खा है। सीतोपनिषद्‌में जो सीताका स्वरूप वर्णित हुआ है, वही राधाका स्वरूप है। इसलिये राधा-उपनिषद् नामक पृथक् उपनिषद् न होनेसे कोई हानि नहीं है। वेदमें राधाका उल्लेख अवश्य है। वेदमें क्या है और क्या नहीं है, इस विषयका विचार कैसे करना चाहिये—इस सम्बन्धमें इससे पूर्व तुम्हें बहुत कुछ बतला चुका हूँ, उन्हें स्मरण करो। वेद अनन्त है, 'साधु' शब्द-मात्र ही वेद है। अतएव 'यह वेदमें है, यह वेदमें नहीं है'—इस प्रकारकी उक्तिका प्रयोग सावधानीसे करना ही उचित है। वेदमें सब विषय बीज-भावसे और सामान्य-भावसे ही रहते हैं, उनके देखनेके लिये विशिष्ट दृष्टि आवश्यक है। वेदमें जिनका 'उमा' नामसे गान किया गया है, वही ब्रह्म-विद्या राधाका स्वरूप हैं। यह ब्रह्मविद्या सर्वदा परमात्माके साथ वर्तमान रहती हैं। यह कदापि परमात्मासे अलग होकर नहीं रह सकतीं। वेदमें अनेकों स्थानोंमें इनका उल्लेख है। यह वस्तुतः परमात्मासे भिन्न पदार्थ नहीं हैं। वेदमें गाये हुए परमात्माके 'सोम' नामके अर्थपर अच्छी तरह विचार करो। परमात्माके नित्यज्ञान अर्थात् वेदरूपिणी उमाके साथ सदा वर्तमान रहनेके कारण उन्हें 'सोम' कहा जाता है। इन्हीं उमा या ब्रह्मविद्याका तुम सीता, राधा, गौरी, सावित्री प्रभृति जो कुछ भी नाम रखना चाहो, रख सकते हो। सर्व-व्यापी इस सोमको परिच्छिन्न जीव किस प्रकार जान सकता है? कृष्णयजुर्वेदके इस मन्त्रमें इसका उल्लेख किया गया है—

आक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मन्
जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषापवित्रे अधि सा नो अव्ये
बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्द्रः ॥

वेदके त्रिसुपर्ण-मन्त्रमें उमा अर्थात् ब्रह्मविद्याके साथ वर्तमान सोमका उल्लेख आता है। परमात्माने श्रीकृष्णा-वतारमें जो प्रेमभक्तिपरिपालिनी लीला की है, त्रिसुपर्ण-मन्त्रमें उसकी प्रस्फुट छबि वर्तमान है।

सीता-तत्त्वकी व्याख्याके समय तुमने सुना था कि वह श्रीविष्णु-देहके अनुरूप ही अपना देह धारण करती हैं—

कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ॥
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्म०)

विष्णु भगवान् जब लोकके उपकारार्थ लीलामें जिस प्रकारका रूप धारण करते हैं, यह भी उस समय उसीके अनुसार रूप धारण करती हैं।

सीताके समान राधा भी अयोनिसम्भवा तथा मूल-प्रकृतिरूपिणी हैं। 'सीता मूलप्रकृतिरूपिणी हैं'—यह बात तुमने सीतोपनिषद्‌में सुन ली है। वह प्रणवरूपिणी होनेके कारण ही मूलप्रकृतिरूपिणी हैं। सीता मूल-प्रकृति होनेके कारण जैसे सर्वदेवमयी, सर्ववेदमयी, सर्वशास्त्रमयी, सर्व-लोकमयी, सर्वशक्तिमयी हैं, उसी प्रकार राधा भी मूलप्रकृति-रूपा होनेके कारण सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वशक्तिमयी हैं। राधा ही त्रिगुणात्मक संसार हैं, वही त्रिगुणातीता, अखण्ड सच्चिदानन्दमयी हैं। *

* संसिद्ध्यर्थक राध्-धातुसे 'राधा' पद सिद्ध होता है। जो सर्व परिणामका साधन करती हैं, वह राधा हैं। इससे राधा मूल-प्रकृति है, यह समझमें आ जायगा। 'राधा' शब्दकी अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं, वह उनकी विभिन्न विभूतिकी वाचक हैं; परन्तु मूल-अर्थके साथ किसीका भी विरोध नहीं है। जो भक्तोंकी समस्त मङ्गल-कामनाओंको सिद्ध करती हैं, वह राधा हैं। 'आराधन', 'संराधन' प्रभृति शब्दोंका अर्थ तुम जानते ही हो।

पुराणादि भी वेदका ही रूप है। जो ऋषिगण वेदोंके स्मारक हैं वे ही पुराणादि शास्त्रोंके प्रवक्ता हैं। अतएव वे ऐसी कोई बात नहीं कह सकते जो वेद-मूलक न हो। वेद-में जो बीजरूपसे है, वही सब लोगोंके उपकारार्थ पुराणादिमें विस्तृत हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें राधाके स्वरूप एवं उत्पत्ति-तत्त्वका वर्णन है, वहाँ देख सकते हो—

गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाज्ञयाधुना।
अयोनिसम्भवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी॥

नारदपाञ्चरात्रमें आये हुए श्रीराधाके सहस्रनामका पाठ करनेसे तुम राधाका स्वरूप जान सकोगे तथा यह भी जान सकोगे कि यह सीता और दुर्गासे अभिन्न हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी राधा और दुर्गाका अभेद बतलाया गया है।

× × × ×

द्वितीय प्रकाश

जिज्ञासु—कमलाका राधारूपमें आविर्भाव किस विशेष उद्देश्यके लिये हुआ है, यह जाननेकी इच्छा होती है।

वक्ता—उसे जाननेके लिये तुम्हें शक्ति-विषयक सम्बन्धाख्य-तत्त्व, रास-तत्त्व और गोपी-तत्त्व भी कुछ श्रवण करना होगा।

जिज्ञासु—तब प्रार्थना है कि सम्बन्ध-तत्त्वके विषयमें कुछ उपदेश प्रदान कीजिये।

वक्ता—अभी संक्षेपमें कुछ कहता हूँ, श्रवण करो। श्रीमहादेवने नारद ऋषिको इसी तत्त्वका उपदेश किया था।

सब दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्तिके साथ मोक्षरूप परमानन्दके लाभार्थ भक्ति ही उत्तम साधन है। भक्ति-मार्ग निरुपद्रव है, यह अधिकारी-अनधिकारी सबके लिये प्रशस्त है। विष्णु-भक्ति ही मुक्तिदायिनी है। भक्तिके इस श्रेष्ठ रूपका जीवोंको उपदेश देनेके लिये ही कमला राधा-रूपमें आविर्भूत हुई थीं।

भक्ति-मार्गके साधनके लिये तुमने 'राधाभाव' का नाम सुना होगा, परन्तु जान पड़ता है कि राधाभावके स्वरूपसे तुम पूर्णरूपेण अवगत नहीं हो। भक्तचूडामणि ज्ञाननिधि महर्षि नारदके प्रति भगवान् शङ्करने जो उपदेश दिया था, उसे सुननेपर तुम्हारे समझनेमें बहुत सुविधा होगी। अगस्त्यसंहितामें यह संवाद है, उससे तुम्हें संक्षेपमें कुछ सुनाता हूँ।

××× महादेवने कहा—'हे रघुनन्दनपरायण मुनिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो। तुमने आज मुझसे अत्यन्त श्रेष्ठ तथा गुह्य तत्त्व-की बात पूछी है। जराविहीन ऋषिगण, भक्तगण अथवा ज्ञानीगण—किसीको यह परम रहस्य ज्ञात नहीं है। साक्षात् जानकीनाथके द्वारा मुझे यह दुर्लभ तत्त्व प्राप्त हुआ है। पूर्वकालमें एक दिन मुझे करुणापात्र समझकर प्रभुने गुप्त-रूपसे इस तत्त्वका उपदेश दिया था। जो जीवोंके लिये परम हितकर है, जो निखिल वेदान्तसे भी गुह्य है, जो अति दुर्लभ और अमृतमय है, हे विप्र! भावभाजन समझकर मैं तुम्हें सहजानन्ददायक सम्बन्धाख्य उसी परम तत्त्वको कहता हूँ; सुनो। उसकी प्राप्तिमात्रसे जीवोंकी श्रीरघुनाथके चरणमें अचला प्रीति हो जाती है। हे महामुने! उसके पाँच भेद हैं—(१) शान्त, (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य, (५) शृङ्गारक। इनमें भी बहुतेरे भेदोपभेद हैं, जिन्हें तुम्हें अभी विस्तारपूर्वक मैं बतलाना नहीं चाहता। जो मुख्य रसस्वरूप तत्त्व है, उसीको मैं इस समय तुम्हें याथातथ्येन कहता हूँ, सुनो। क्रमानुसार साधु-सङ्ग, निरहङ्कार, निर्वेद प्रभृति विभावके द्वारा समन्वित स्थायी शान्तभाव ही शान्तरस है। क्रमशः सम्यक्शरणागतत्व, आज्ञाकारित्व, दैन्य प्रभृति विभाव* द्वारा समन्वित स्थायी आदर-भावको 'दास्य' भाव† कहते हैं। मधुर वचन, परिहास एवं हर्ष

यह आराधन वा संराधन, मुक्ति वा परमानन्दकी प्राप्ति जिनका उद्देश्य है, उन्हें राधा वा मूल-प्रकृतिकी शक्तिके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। जो सबको उनका ईप्सित अर्थ प्रदान करती हैं ('रा' शब्द दानवाचक है) तथा जो मायिक लोगोंके लिये निर्वाण-मुक्ति धारण किये रहती हैं ('धा' शब्द धारणार्थक है) वही राधा हैं। शास्त्रमें 'राधा' नामकी इसी प्रकारकी व्युत्पत्ति पायी जाती है।

* 'विभाव' किसे कहते हैं? रति, हास, निर्वेद प्रभृतिके आस्वादनके कारणको 'विभाव' कहते हैं। अग्निपुराणमें लिखा है कि रत्यादि जिससे वा जिसके द्वारा विभावित, व्यक्तिविषयीकृत, प्रकटीभूत होते हैं उसीको 'विभाव' कहते हैं—

'विभावो हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।' (अग्निपुराण)

† 'भाव' किसे कहते हैं? जो अन्तःकरणमें भावित या

प्रभृति 'विभाव' द्वारा सदा युक्त स्थायी भावको 'सख्य' भाव कहते हैं। क्रमशः चापल्य, पुलक और अनिष्टशङ्का प्रभृति 'विभाव' द्वारा युक्त स्थायी वत्सलताको 'वात्सल्य' भाव कहते हैं। क्रमशः माधुर्य, भ्रुकुटिक्षेप, हर्ष प्रभृति विभावोंके द्वारा समन्वित रतिरूप स्थायी भावको 'शृङ्गार' भाव कहते हैं। उपर्युक्त पाँच प्रकारके रसोंके आश्रित भक्तोंके लक्षण आगे कहे जाते हैं। जो भक्त श्रीमान् रघुपति-को‡ सर्वपरात्पर साक्षात् ब्रह्म जानकर उनका भजन करते हैं, वह शान्तरसके आश्रय हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र करुणासिन्धु हैं, वह सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं—इस प्रकार जानकर जो इस श्रेष्ठ सम्बन्धसे उनका भजन करते हैं, वह दास्यरसके आश्रय हैं। जो श्रीरघुनन्दनको मित्र और प्रेमपात्र जान परम स्नेहसे उनके साथ नित्य रमण करते हैं, वह सख्यरसके आश्रय हैं। (अर्जुन प्रभृति भगवान्के सख्यभावके भक्त थे।) बालस्वरूप, परम सौन्दर्ययुक्त, कोमलाङ्ग परमानन्ददायकरूपमें भगवान् श्रीरामचन्द्रको अपना बाह्यसञ्चारी प्राण समझकर जो भजन करते हैं वह वात्सल्यरसके आश्रय हैं। माधुर्यमय, मनोहर श्रीरामचन्द्र-को अपना पति जानकर जो सदा उनका भजन करते हैं वह शृङ्गाररसके आश्रय हैं।

ऊपर जो पाँच प्रकारके भावोंकी बात कही गयी है, इनमेंसे किसी एक भावसे भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़नेसे ही वे प्राप्त हो सकते हैं। इतने ही भाव कहे गये और अधिक क्यों नहीं कहे गये ? इसका उत्तर यह है कि मनुष्य-के मन (Mind) का विश्लेषण (Analysis) करनेपर इन भावोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं पाया जाता। मनुष्यके समस्त मनोभावोंमेंसे चाहे तुम किसीको भी लो, उसका समावेश इन भावोंके अन्दर हो जायगा। संसारमें यही चिरपरिचित भाव हैं, इनके ही पूर्णभाव भगवान् हैं।

इन पाँच प्रकारके भावोंमें जो एक 'प्राकृतिक क्रम' है, उसपर भी ध्यान देना चाहिये। पहले जनक-जननीभाव है, उसके बाद आचार्यभाव (गुरुभक्ति), उसके पश्चात् सख्यभाव इत्यादि। एक भावकी साधना हो चुकनेपर दूसरा भाव स्वयं ही आ जाता है। सबके अन्तमें शृङ्गार-भाव आता है। यही भक्तिका श्रेष्ठ भाव है। इसीका नाम राधाभाव है।

तृतीय प्रकाश

राधाके 'रासेश्वरी' नामकी सार्थकता

जिज्ञासु—श्रीराधाके सहस्रों नाम रहते हुए भी उनके केवल सोलह नाम ही विशेष प्रसिद्ध और साधकोंके लिये मुक्ति आदि फलके देनेवाले बतलाये गये हैं। उनमें पहले उनके 'रासेश्वरी', 'रासवासिनी', 'रसिकेश्वरी' प्रभृति नाम उक्त हुए हैं। राधाके 'रासेश्वरी' प्रभृति नामोंकी सार्थकता जाननेकी इच्छा होती है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें उक्त राधाके उत्पत्ति-तत्त्वको पढ़कर मेरे मनमें दो-चार प्रश्न उत्पन्न हुए हैं। पूर्ण, निःस्पृह, निष्काम परमात्माकी किसी विषयमें इच्छा या कामना होगी ही क्यों ? उन्हें रमणकी इच्छा ही क्यों होगी ?

स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः।

इस रमणेच्छाको चरितार्थ करनेके लिये ही मानों रासेश्वरी राधाकी तथा गोपीगणकी उत्पत्ति होती है। यथा—

बभूव रमणी रम्या रासेशी रमणोत्सुका।
बभूव गोपीसङ्घश्च राधाया लोमकूपतः॥

—मैं इसका अर्थ अच्छी तरह नहीं समझ सका।

वक्ता—इसके समझनेके लिये तुम्हें सृष्टि-तत्त्व तथा भगवान्का रासलीला-तत्त्व समझना होगा। यहाँ संक्षेपमें दो-चार बातें कहता हूँ। भगवान् पूर्ण एवं अकाम हैं, परन्तु जीवोंके काम ही उनके काम हैं। समष्टिभूत जीवोंके कामवशतः ही उनकी सृष्टिकी इच्छा होती है। विभिन्न जीवात्माओंके विभिन्न कामनाओंके कारण ही सृष्टि तथा भगवान्के अवतारोंमें भेद होता है। ज्ञानका परिपाक होनेपर हृदयमें प्रेमभक्तिका उदय होता है, तब ज्ञानी भक्तके प्रेमका परिपालन करनेके लिये भगवान्को लीलाकी आवश्यकता होती है, यही उनकी रासलीलाका एक मुख्य कारण है। समष्टिभूत गोपीरूप (गोपीगण वेदज्ञ ऋषियोंके

बासित होता है, उसे 'भाव' कहते हैं। अन्तःकरणकी वासना या संस्कार ही यहाँ 'भाव' शब्दसे लक्षित हुआ है।

'स्थायी भाव' किसे कहते हैं ? विरुद्ध, अविरुद्ध आदि भावोंके द्वारा जिस भावका विच्छेद नहीं होता, जो भाव अन्य सब भावोंको स्वात्मभावमें लीन कर देता है, वही 'स्थायी भाव' है।

‡ यहाँ 'रघुपति', 'रामचन्द्र', 'रघुनन्दन' प्रभृति नाम वस्तुतः साम्प्रदायिक भावमें उक्त नहीं हुए हैं। भगवान्के जो नाम या रूप जिन्हें इष्ट हों वे उन्हीं नाम और रूपोंसे विचार कर सकते हैं। जिसके जो इष्ट है वही उनके 'राम' हैं।

या बहुशाखा वेदोंके ही रूप हैं) ही श्रीराधाका रूप है । इस बातको समझ लेनेपर ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके—

बभूव गोपीसङ्घश्च राधाया लोमकूपतः ॥

—इस पदका अर्थ भी समझमें आ जायगा ।

चतुर्थ प्रकाश

जिज्ञासु—ज्ञानका परिपाक होनेपर भी अद्वैतज्ञानके आविर्भावसे पृथक् जीवत्वका लोप कर साधक परमात्माके साथ अभेदभावापन्न हो जाता है । रमणादि भक्तिभावकी लीला तो द्वैत-भाव-सापेक्ष है ।

वक्ता—अद्वैत-ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है, अद्वैत-भाव ही साधनाका परम भाव है—यह बात सत्य है । भक्तिमार्गके साधनका चरमभाव भी अद्वैत-भाव ही है । रासलीलामें यही भाव दृष्ट होता है । जो जिसे हृदयसे प्यार करता है, वह उससे किञ्चिन्मात्र भी दूर रहना नहीं चाहता । जो भक्तिमार्गकी साधना करते हैं, वे अवश्य ही उसे द्वैतभावसे ही प्रारम्भ करते हैं । जितनी भक्तिकी पुष्टि होती है, उतनी ही भक्तकी इच्छा भगवान्के समीपवर्ती होनेकी बढ़ती जाती है । क्रमशः ऐसी अवस्था आ जाती है कि भक्त काल और देशका व्यवधान भी सहन नहीं कर सकता, अर्थात् भक्त सर्वदा भगवान्को देखना चाहता है और जहाँतक सम्भव हो उसके समीप रहना चाहता है । (In the highest divine communion the devotee wishes to annihilate both time and space in entirety in respect of his object of devotion.) जब कुछ भी देशगत भेद नहीं रह जाता, तब उपास्यके अङ्गके साथ उपासकका अङ्ग युक्त हो जाता है । भक्तिमार्गके साधनकी पूर्णावस्थामें ऐसी दशाका होना स्वाभाविक है । उपासक और उपास्यके बीच तनिक भी भेद न रहनेपर ही दोनोंका शरीर परस्पर युक्त हो जाता है । बहुतेरे इस लीलाके तत्त्वको न समझकर इसमें लौकिक भावका आरोप कर इसकी निन्दा करते हैं । इस तत्त्वकी उपलब्धिके लिये विशिष्ट अधिकारका होना आवश्यक है । शास्त्र कहते हैं कि अनन्त गुणसागर भगवान्के गुण ही ऐसे हैं कि जिनसे सनकादि मुनिगण अद्वैत-ज्ञानमें ज्ञानी होकर भी द्वैतभावसे भगवान्की सेवा करनेकी इच्छा करते हैं—'इत्थम्भूतगुणो हरिः ।'

पञ्चम प्रकाश

जिज्ञासु—आपने कहा है कि राधा और दुर्गा एक ही वस्तु हैं । इसको सत्य माननेपर भी मनमें एक प्रश्न उठता है कि, 'फिर राधा और दुर्गाका पृथक् नाम और रूप क्यों हुआ ?'

वक्ता—तुम्हारा प्रश्न तत्त्व-जिज्ञासुका प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं । इसका उत्तर सम्यक्रूपसे जाननेके लिये तुम्हें शब्द, नाम एवं रूप-तत्त्वको अच्छी तरहसे जानना होगा । अभी मुझे इसके लिये अवसर नहीं है, किसी दूसरे समय इसे समझानेका विचार है । इस विषयको योगद्वारा उपलब्ध करना होगा । अभी एक बात कह देता हूँ, इसका आश्रय कर ध्यान करनेकी चेष्टा करना—

राधा=प्राणशक्ति ।*

दुर्गा=बुद्धिशक्ति ।

[३]

(लेखक—'कवीन्द्र श्रीदिल-दरियाव')

जयति जयति श्रीराधिके, बंदौं पद-अरबिंद ।
चहत मुदित मकरंद मृदु, जेहि ब्रजचंद मलिंद ॥

श्रीवृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधारानीके चरण-कमलोंका बारंबार सप्रेम वन्दन करता हूँ । जिन चरणारविन्दके मधुर मकरन्दको स्वयं श्रीआनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र मुग्ध मलिन्द-वत् आस्वादन करनेके लिये आसक्त हो सदैव आकाङ्क्षी रहते हैं, जिनकी सेवामें सुन्दर शृङ्गारसुसज्जिता सहचरियाँ सदा संलग्न रहती हैं; इन्द्राणी, रुद्राणी, ब्रह्माणी—सभी सुर-रानियाँ सतत सावधानीके साथ सौरभ, गुलाबदानी आदि लिये आठों याम हरदम हाजिर-हजूरीमें हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं; ललित-लौनी लावण्यमयी लोक-पालनी-ललामा मनोहर फूल-मालाएँ लिये जिन्हें पहनानेके हेतु सदैव मालिनी बनी ही रहती हैं; पन्नगी-नगी, आसुरी-सुरी, किन्नरी-नरी—ऐसी कौन-सी नारि है जिसने इन्हें 'नैनन निहारिकर नारि न नवायी हो ।' ऐसी श्रीव्रज-ठकुरानी वृन्दावन-रानी श्रीराधा महारानीके महान् माधुर्य तथा ऐश्वर्यका कौन पारावार है ?

* देवीभागवतमें इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश है ।

इनके परम तत्त्व प्रदर्शित करनेका किसे साहस हो सकता है ? किन्तु निज कल्याण-कारण केवल कैङ्कर्य करते हुए, उनका तनिक-सा भी गुणगान तथा संकीर्तन करना परम श्रेयस्कर समझकर दो-चार पंक्तियाँ उन्हीं स्वामिनीजीकी सेवामें साञ्जलि, सानुनय समर्पित की जाती हैं ।

श्रीराधामहारानी गोलोकस्वामिनी, परमतत्त्वाभिरामिणी, श्रीकृष्णानुगामिनी, सच्चिदानन्दघनस्वरूपिणी, स्वेच्छाविलासिनी, वृन्दावनविहारिणी, दिव्याह्लादिनी, पराशक्तिप्रमोदिनी, परमप्रियप्रियतमा, श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी भामिनी हैं । गोलोकधाममें इनका नित्य-नवीन क्रीड़ा-कौतुक निरन्तर होता ही रहता है । परम कारुणिक, कञ्जाभकलित कमनीय कृपाकटाक्षके आश्रय, अखिल अनादि अनन्त ब्रह्माण्डनायक, परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णचन्द्र, इन्हीं अपनी आराध्या अखिलेश्वरी आदिशक्ति श्रीराधाकी अपरिमिता दिव्य-पराशक्तिके आधारपर अखिल विश्वको धारण करते हैं ।

इस प्रकार इन दोनोंकी लीला चलती है । श्रीकृष्णकान्ता तथा श्रीराधाकान्तके अखण्ड नित्य-विहार, अपार सुखमासार, उज्ज्वल शृङ्गार और लीला-चमत्कारका तदाकार अभेद सावयव पारस्परिक व्यवहार है । ये दोनों एकप्राण, एकात्मा और एकतत्त्व हैं । स्नेह-विवश हो असीम परमानन्द-प्रेम-पीयूष पान करनेके लिये एक ही प्राण दो देहके रूपमें प्रकट होकर अप्रमेय दिव्य रसका अनन्त प्रवाह बहा रहे हैं । जैसे चन्द-चन्द्रिका, प्रभाकर-प्रभा तथा अमरकोश और उसका धूम्र एक-दूसरेसे पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार हमारे युगलसरकारके युगल शरीर होनेपर भी, ये वस्तुतः अभिन्न हैं । इनकी विभिन्नता असम्भव है । ये एक क्षणमात्र भी एक-दूसरेसे विलग नहीं हो सकते । जैसे—

(श्री) कृष्णप्राणाधिका राधा राधाप्राणाधिको हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥
कृष्णदेवमयी राधा राधादेवीमयो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥
राधाकृष्णात्मकं नित्यं कृष्णराधात्मकं ध्रुवम् ।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥

× × × ×

जहँा कृष्ण राधा तहाँ, जहँ राधा तहँ कृष्ण ।
न्यारे निमिष न होत कहुँ, समुझि करहु यह प्रश्न ॥

इस प्रकार प्रिया-प्रीतमका परस्पर प्रगाढ़ प्रेम प्रशंसनीय है और प्रवीण मीन-जलवत् अविचल, अनादि तथा अखण्ड है ।

वास्तवमें यदि श्रीकृष्ण-प्राणेश्वरी रासेश्वरी राधिकाके परमतत्त्वके आविर्भाव-पृथक्करणकी कल्पना की जाय तो स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् स्वयमेव अपनी अर्द्धाङ्गसम्भूता अभिनेत्रीके अनुभूत दिव्य-आत्म-विभूतिके अभावसे शक्तिहीन हो जाते हैं । यहाँतक कि यदि युगलनामात्मक 'राधेकृष्ण' शब्दसे 'रकार' वर्णका लोप कर दिया जाय तो 'रकार' के स्थानमें केवल 'आ' रह जाता है जिससे 'आधेकृष्ण' प्रतीत होने लगते हैं । जैसे कि—

कौन कूँख कीरतकी कीरत प्रकास देतो ,
कौतुकी कन्हैया काज दूलही काहि कहते ।
दान दधि-घाटिनमें बृंदावन-बाटिनमें ,
काको दधि लूट प्रेम चित्त-चाह चहते ॥
'दिलदरियाव' स्यामा स्वामिनी सलोनी बिनु,
कैसे घनस्याम रस-रास रंग लहते ।
आदिमें न होती यदि राधेकी रकार जोपै ,
मेरे जान राधेकृष्ण आधेकृष्ण रहते ॥

× × × ×

सुंदर स्वच्छंद सब्द सोभित समास द्वंद ,
ताके भिन्न अन्तर सो बोध नाहिं लहते ।
रचतौ ब्रह्मांड कैसे ब्रह्म जीव माया बिनु ,
उठतो बिराट कैहूँ सक्ति जो न लहते ।।
'दिलदरियाव' काम का बिधि गरूर जातो ,
लीला हाव-भाव कला कासों अवगहते ।
आदिमें न होती यदि राधेकी रकार जोपै ,
मेरे जान राधेकृष्ण आधेकृष्ण रहते ॥

× × × ×

भगवान् सच्चिदानन्दघनसे उनकी दिव्य 'चित्-शक्ति' को विलग कर दिया जाय तो अखिल विराट्वपु निश्चेष्ट जडवत् रह जाता है । चेतनशक्तिसे विहीन होनेपर समस्त जीवभूत (प्राणिमात्र) शक्तिहीन शववत् रह जाते हैं । अतः संसारचक्र-सञ्चालनके हेतु चैतन्य-शक्ति ही सर्व

कारणोंकी कारण है। ब्रह्म और शक्तिका परस्पर अविच्छिन्न सम्मिलन है। अर्थात् सर्वशक्तिमान् शक्तिरहित होनेपर संसारके सृजन-संहारमें अशक्त हो जाते हैं।

अतएव इन अनादि मूलाधारा परमाह्लादिनीशक्ति परब्रह्मस्वरूपिणी श्रीराधाका श्रीकृष्णके साथ घन-सौदामिनी, दिवस-यामिनीके समान पारस्परिक सम्बन्ध सद्य, अच्छेद्य तथा अभेद्य है। श्रीराधाजी नित्यविहारिणी, नित्य-विहारकी बीजभूता, रसशृङ्गारकी शिरोभूषणा तथा महारासकी अधिष्ठात्री रासेश्वरी हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने महारानी राधिकाकी प्रशंसामें कहा है—

श्रीराधेरानी, तोहि सों लगत मैं नीको।
मनि बिनु फनि, दीपक बिनु मंदिर, सुमन गंध बिनु फीको॥
घन बिनु कोस, प्रजा बिनु राजा, लागत अधिक अनीको।
नित-बिहारकी बीज-बिहारिणि, रस-सिंगारको टीको॥

श्रीराधा-नाम अनादि है, कल्पित नहीं। इसका अर्थ है 'श्रीकृष्णकी प्राप्तिके निमित्त विद्वान् जिसकी आराधना करते हैं।' राधाकी आराधना बिना श्रीकृष्णकी प्राप्ति दुर्लभ है।

लक्ष्मी-नारायण-संवादके सामरहस्यमें कहा है—

अनाद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति, स्वयमेव नायिकारूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् तस्मात्तां राधां रसिकनन्दां वेदविदो वदन्ति तस्मादानन्दमयोऽयं लोक इति।

अर्थात् वह अनादि पुरुष एक ही है। वही अपने रूपको दो प्रकारसे प्रकटकरके सब रसोंको ग्रहण करता है। वह स्वयं ही नायिकारूपका विधान करके आराधनमें तत्पर होता है, इसी कारण श्रीराधाको वेद आनन्द देनेवाली कहते हैं! जो हरिको वशीभूत करती है वह राधा है।

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।

राधारानीके कृपा-कटाक्षके बिना श्रीकृष्ण-प्रेमकी उपलब्धि नहीं हो सकती।

भगवान् स्वयं कहते हैं—

त्वं मे प्राणाधिका राधे त्वं परा प्रेयसी वरा।
यथा त्वं च तथाहं च भेदो नास्त्यावयोर्ध्रुवम्॥
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि सन्ततः॥
यदा तेजस्विरूपोऽहं तेजोरूपासि त्वं तदा।
सशरीरो यदाहं च तदा त्वं हि शरीरिणी॥
अर्द्धांशस्वरूपा त्वम्·····················

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

ब्रह्मा कहते हैं—

त्वं कृष्णार्द्धाङ्गसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः।
श्रीकृष्णस्त्वन्मयो राधा त्वं राधे त्वं हरिः स्वयम्॥
नहि वेदेषु मे दृष्टो भेदः केन निरूपितः।
अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केन निरूप्यते॥

अन्यत्र कहा है—

त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्।
न किञ्चिदावयोर्भिन्नमेकावयवयोरिव॥

'हे राधे! तुम मेरे प्राणोंसे अधिक प्रिय हो, तुम परम प्रेयसी हो। जैसी तुम हो वैसा ही मैं हूँ। मेरा-तुम्हारा कुछ भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका-शक्ति और जैसे पृथिवीमें गन्ध है; उसी प्रकार मैं तुममें स्थित हूँ। मैं तेजस्विरूप हूँ तो तुम तेजरूपा हो; जब मैं शरीर-धारी होता हूँ तब तुम शरीरधारिणी होती हो! तात्पर्य यह कि तुम मेरी अर्द्धांशस्वरूपा हो।'

'तुम कृष्णके अर्द्धांगसे सम्भूत हो, सब भाँतिसे कृष्णके तुल्य ही हो। श्रीकृष्ण राधामय और श्रीराधा कृष्णमय हैं, किसीने वेदमें हमारा भेद नहीं देखा है। इनके अंश तुम या तुम्हारे अंश यह हैं। इस भेदका कौन निरूपण कर सकता है!'

'हे राधे! तुम मेरे प्राणके समान और मैं तुम्हारे प्राणके समान हूँ। एक ही शरीरके अवयवोंकी भाँति तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है।'

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामतया चाज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥
····················सा स एवास्ति सैव सः।

(स्कन्दपुराण)

'उनके साथ रमण करनेसे राधिका साक्षात् उनकी आत्मा है, गूढ़ तत्त्वके ज्ञाता आत्मारामके स्वरूपसे उनको जानते हैं। वह राधा साक्षात् कृष्ण ही हैं, कृष्ण राधा हैं।'

रसो यः परमानन्द एक एव द्विधा सदा ।
श्रीराधाकृष्णरूपाभ्यां तस्यै तस्मै नमो नमः ॥

(पद्मपुराण पाताल०)

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम् ।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया ॥
यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः ।
एकं ज्योतिर्द्विधाभिन्नं राधामाधवरूपकम् ॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

अर्थात् जो यह परमानन्दरूप रस है वह एक ही दो प्रकारका है और श्रीराधाकृष्णरूप है उसको नमस्कार करते हैं । राधाकी आत्मा नित्य श्रीकृष्ण हैं और कृष्णकी आत्मा नित्य श्रीराधा हैं । वृन्दावनकी ईश्वरी राधा हैं, इस कारण मैं (कृष्ण) राधाकी नित्य आराधना करता हूँ । जो कृष्ण हैं वही राधा हैं और जो राधा हैं वही कृष्ण हैं । राधा-माधवरूपसे एक ही ज्योति दो प्रकारसे प्रकट है ।

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ।
देहो यथा छायया शोभमानः
शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम् ॥

(राधातापिनी)

जो यह राधा और जो यह कृष्ण रसके सागर हैं वह एक ही दो रूप हुए हैं । जैसे छायासे देह शोभायमान होती है, इस प्रकार दोनों हैं; उनके चरित्र पढ़ने-सुननेसे प्राणी उनके शुद्ध धामको प्राप्त होता है ।

उपासकोंके हितके लिये सच्चिदानन्दघनका द्विधा स्वरूप प्रकट होता है । गौर-तेजके साथ श्याम-तेजका नित्य विहार है । और प्रत्यक्ष देखनेमें श्रीकृष्णस्वरूपान्तरगत श्रीराधाकी गौर-तेजोमयी दिव्यमूर्ति भासित होती है । उसी प्रकार श्रीराधाके स्वरूपान्तरगत श्रीकृष्णकी श्याम-तेजोमय सुन्दर सलोनी साँवली सूरत भासित होती है । जैसे—

स्यामल अंतस गौर है, गौर-सु अंतस स्याम ।
जुगल जुगल छबि छलकि छकि,जुगल मुकुर छबि धाम ॥

देखिये ! इसी दिव्य गौर-तेजोमय रूपराशिकी महिमा श्रीशङ्करजी वर्णन करते हैं । गोपालसहस्रनाममें लिखा है—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ॥

अर्थात् 'हे शिवे ! गौर-तेज अर्थात् श्रीराधाजीके बिना श्याम-तेज श्रीकृष्णको फल-भेद अन्य-बुद्धिसे पूजन, जप तथा ध्यान करता है वह पातकी होता है ।' भगवान् स्वयं कहते हैं—

आवयोर्बुद्धिभेदं च यः करोति नराधमः ।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

अर्थात् मुझमें (श्याम-तेजमें) और तुझमें (गौर-तेजमें) जो अधम नर भेद मानता है वह जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे तबतक कालसूत्र-नरकमें रहेगा ।

बोलो श्रीनिकुञ्जेश्वरी वृन्दावनविहारिणी श्रीराधा-रानीकी जय !

अमित महिमा

जयति श्रीराधिके ! सकल सुखसाधिके, तरुनि-मनि नित्त-नव-तनु-किसोरी ।
कृष्ण-तनु-लीन घन-रूपकी चातकी, कृष्ण-मुख-हिमकिरनकी चकोरी ।
कृष्ण-दृग-भृंग-बिस्राम-हित पद्मिनी, कृष्ण-दृग-मृगज-बंधन-सुडोरी ॥
कृष्ण-अनुराग-मकरंदकी मधुकरी, कृष्ण-गुन-गान-रस-सिंधु-बोरी ।
और आश्चर्य कहुँ मैं न देख्यौ सुन्यौ, चतुर चौसठ कला तदपि भोरी ॥
बिमुख पर-चित्ततें, चित्त जाको सदा, करत निज नाहकी चित्त-चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै, अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी ॥

—गदाधर

श्रीसीता-तत्त्व

[१]

(पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द स्वामीजीके उपदेश)

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम् ।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥ *

वक्ता—रमा ! आज सीतानवमी है ।

जिज्ञासु (रमा)—पञ्चाङ्गमें मैंने एक चित्र देखा है, जिसके नीचे लिखा है—'श्रीश्रीसीतानवमीव्रतम् ।' दादा ! इस महीनेकी इस तिथिको सीतादेवीने जन्म ग्रहण किया था, क्या इसीसे इसका नाम 'सीतानवमी' पड़ा है ?

वक्ता—हाँ, आज ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी, सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधारकार्यकारणमयी, इच्छा, ज्ञान तथा क्रियाशक्तिमयी, विश्वमाता, महालक्ष्मी सीतादेवीके जगत्के हितार्थ स्थूल रूपमें पृथिवीपर अवतरित होनेका दिन है । आजका दिन जगत्के लिये क्या ही आनन्दका है ! क्या ही सौभाग्यका है !! आज जगत्को विशुद्ध ज्ञान तथा भक्ति सिखानेके लिये, निखिल कोमल भावोंका विमल रूप दिखानेके लिये जगन्माताके इस दुःखमय मर्त्य-धाममें स्थूलरूपमें प्रकट होनेका दिन है । अहा ! किसी अवस्थामें भी जिनका चित्त सर्वाभिराम राम-रूपको छोड़कर अन्य किसी रूपमें गमन नहीं करता; जिनके चरित्रका स्मरण करनेपर पातिव्रतकी विमल छवि नेत्रोंके सामने नाचने लगती है; पृथिवीके अन्य किसी देशमें, किसी कालमें, कोई कवि जिनके आदर्श चरित्रकी पूर्ण छवि अपनी कल्पनारूपी तूलिकाद्वारा अंकित करनेमें समर्थ न हो सका; जिनके मातृभावकी उपमा नहीं, जिनके पातिव्रतकी तुलना नहीं, जिनके धैर्यकी सीमा नहीं, जिनकी कोमलताका दृष्टान्त-स्थल नहीं; जिनकी विमल तेजस्विता अनुपमेय है; शरणागत भक्तोंपर जिनका प्रेम, दुःखितोंपर जिनकी करुणा अतुलनीय है; जिनका सुस्निग्ध, सोममय हृदय देखकर अग्निको भी शीतवीर्य होना पड़ा था; जिनके समान तपस्विनी कोई त्रिलोकमें भी नहीं है; जो कृपाकर जीवको यह सिखा गयी हैं कि परमात्माको पानेके लिये जीवको किस तरह साधना करनी पड़ती है, अज्ञानका नाश करनेके लिये किस प्रकारके कठोर तपश्चरणकी आवश्यकता है; जिन्होंने यह बतलानेके लिये 'वेदवती' का रूप धारण किया था कि जगत्स्वामीको स्वामिरूपसे प्राप्त करनेके लिये किस प्रकारकी साधना करनी पड़ती है; जिन्होंने यह समझानेके लिये विविध लीलाएँ की हैं कि वेदके आश्रयसे च्युत हो जानेपर शास्त्रकी कैसी दुर्गति होती है, वेदसे छूटा हुआ शास्त्र और रामसे छूटी हुई सीता एक ही चीज़ है; जिन्होंने जगत्को

---

* सीता-तत्त्व क्या है, यह उपर्युक्त श्लोकमें स्पष्टरूपसे बतलाया गया है । इच्छा, ज्ञान और क्रिया, इस शक्ति-त्रयके स्वरूपके ज्ञानसे जो भाव विमल बुद्धि-दर्पणमें प्रतिफलित होता है, वह ब्रह्मसत्तासामान्य—वह अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्मभाव ही सीता-तत्त्व है । सीता-उपनिषद्में कहा गया है—'सीता सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वलोकमयी हैं ।' कहना न होगा कि 'सीता सर्ववेदमयी हैं' इस बातका यदि अभिप्राय जानना हो तो पहले वेदका स्वरूप जानना होगा । ऋगादि वेद-त्रय इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान-शक्ति-स्वरूप हैं । 'सीता'-शब्दका उच्चारण करनेपर साधारणतः लोगोंके चित्तमें जो भाव उदय होता है, उस भावसे सीताको सर्ववेदमयी समझना असम्भव है । 'सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता'—सीतोपनिषद् । 'सीताको मूलप्रकृतिसंज्ञिता भगवती जानना' सीतोपनिषद्की यह बात भी दुर्बोध्य वा अबोध्य है, इसमें भी सन्देह नहीं ।

'सा देवी त्रिविधा भवति शक्त्यात्मना—इच्छाशक्तिः, क्रियाशक्तिः, साक्षाच्छक्तिरिति'—सीतोपनिषद् । अर्थात् सीतादेवी शक्त्यात्मामें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा साक्षात्-शक्तिके भेदसे त्रिविधा हैं । सीतोपनिषद्में सीतादेवी मूलप्रकृति तथा प्रणवस्वरूपिणी कही गयी हैं ('मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता । प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते'—सीतोप०) । सीतादेवीको मूल-प्रकृति वा प्रणवस्वरूपिणी कहनेसे ही यह सूचित होता है कि सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं; इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान—इन शक्तित्रयका तत्त्वज्ञान ही सीता-तत्त्वका प्रकाशक है । 'ज्ञान, क्रिया और इच्छा' ये सत्त्व, रजः और तमः—इन गुणत्रयात्मिका प्रकृतिके ही कार्य हैं । 'अथातस्त्रिगुणात्मकः संसार इत्युच्यते । सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणा भवन्ति । तादृशज्ञानेच्छाक्रियाक्रमनियमेन गुणा वेदितव्या भवन्ति ॥' (महर्षि गार्ग्यायण-प्रणीत प्रणववाद) ।

यह स्पष्टरूपसे सिखा दिया है कि ऐश्वर्यमदोन्मत्त, कामोपहत, अविवेकीकी कैसी दुर्दशा होती है; जिनकी कृपासे मृत जीवित हुए, उन सर्वविद्याशरीरिणी सीतादेवीके पृथ्वीपर स्थूलरूपमें अवतरणका आज शुभ दिन है।

जिज्ञासु (रमा)–आपने कहा है—सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं, सीतादेवी सर्वदेवमयी हैं। आपकी इन बातोंका अर्थ क्या है ? 'वेद' क्या है, सो तो मैं नहीं जानती। सुना है, स्त्री-जातिको वेदका अधिकार नहीं है। दादा ! जिनको वेदका अधिकार नहीं, वे कैसे सीतादेवीको जान सकेंगे ? दादा ! स्त्रियोंको वेदका अधिकार क्यों नहीं है ? जगन्माताने तो स्त्री-रूपमें ही अपना रूप (वेद-रूप) प्रकट किया है, वेदवती-रूप तो स्त्री-रूप ही है, तो फिर वेदका अधिकार स्त्रियोंको क्यों नहीं रहेगा ? जो सर्वशक्तिमयी हैं, क्या वह अनधिकारीको अधिकारी नहीं बना सकतीं ?

वक्ता–रमा ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा सुन्दर है, मैं आगे चलकर तुम्हारे इस प्रश्नका विशदरूपसे समाधान कर दूँगा। यहाँ संक्षेपमें कुछ कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। यहाँपर मैं पहले ही यह कह रखता हूँ कि सीतादेवी केवल वेदमयी ही नहीं हैं, बल्कि सर्वशास्त्रमयी भी हैं; पुराण, इतिहास (जिनमें स्त्रियोंका भी अधिकार है, जो वेदकी ही सरल तथा मधुर व्याख्या हैं), दर्शन इत्यादि सब विद्याएँ अनुग्रहशक्तिस्वरूपिणी सीतादेवीके ही रूप हैं।

× × ×

सीतादेवी वेदशास्त्रमयी हैं। यदि तुम उनके शरणागत हो सको; यदि सर्वान्तःकरणसे, सरल भावसे इस प्रकार उनके प्रति आत्मनिवेदन कर सको कि 'माँ ! मैं अपराधोंका घर हूँ, मैं अकिञ्चन हूँ, मैं अगति हूँ, तुम मेरी उपायस्वरूप बनो, तुम सबकी आश्रय हो, मेरी भी आश्रय बनो, मुझको अपने सर्वाधार चरणोंमें ग्रहण करो' तो तुम कृतार्थ हो जाओगी। जो इस तरहसे सीतादेवीके चरणोंमें प्रपन्न हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं कि उनके सारे अभाव विनष्ट हो जाते हैं, सब प्रकारके तप केवल इसी एक बातसे उनके लिये पूर्ण हो जाते हैं, उन्हें उसी क्षण सब तीर्थोंमें भ्रमण करने, सब प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करने और सब तरहके दान देने आदि धर्माचरणोंकी फल-प्राप्ति हो जाती है, मोक्ष उन्हें करतलगत हो जाता है। *

* कृतान्यनेन सर्वाणि तपांसि वदतां वर।
सर्वे तीर्थाः सर्वयज्ञाः सर्वदानानि च क्षणात्।
कृतान्यनेन मोक्षश्च तस्य हस्ते न संशयः॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता अ० १७)

जिज्ञासु (रमा)–'सीतादेवी वेदशास्त्रमयी हैं'–इस वाक्यका क्या अर्थ है ? 'वेद' क्या है, 'शास्त्र' क्या है, सो तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानती। इस सम्बन्धमें मेरी तो यही धारणा है कि 'वेद' और 'शास्त्र' ग्रन्थविशेषके नाम हैं। और मैं यह भी जानती हूँ कि सीतादेवी जनक राजाकी कन्या तथा श्रीरामचन्द्रकी पत्नी हैं। आपके मुखसे बहुत बार मैंने सुना है कि श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णु हैं; वे भयङ्कर दुष्ट दुर्धर्ष रावणादि राक्षसोंका वध करके धर्मस्थापन करनेके लिये, अशान्तिसागरमें मग्न, सर्वदा उत्पीड़ित लोगोंको शान्ति देनेके लिये, उन्हें निरुपद्रव करनेके लिये, इच्छानुसार मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए थे। सीतादेवी साक्षात् जगन्माता कमला हैं, इन्होंने लीलासे मनुष्य-रूप धारण किया था।

× × ×

वक्ता—××× जो, जो नहीं है, वह कभी उसे यथार्थरूपसे नहीं जान सकता। सभी मनुष्य 'पूर्णमनुष्य' के स्वरूपको नहीं ग्रहण कर सकते। जिस परिमाणमें मनुष्यत्वका—मनुष्योचित धर्मका विकास होता है, मनुष्य उसी परिमाणमें 'मनुष्य'-शब्दका यथार्थ अर्थ समझनेमें समर्थ होता है। अतः जब कोई पूर्णमनुष्य होता है तभी वह 'पूर्णमनुष्य' का वास्तविक अर्थ ग्रहण कर पाता है। इसी तरह 'देवता' हुए बिना, मनुष्य-भावमें देवभाव लाये बिना कोई 'देवता'-शब्दका वास्तविक अर्थ नहीं जान सकता। यदि देवताको यथार्थरूपमें जानना हो तो देवता होना पड़ेगा। वेद और शास्त्रमें इसीलिये कहा गया है कि देवता होकर देवताकी अर्चना करो, शिव होकर शिवकी अर्चना करो, राम होकर रामकी अर्चना करो। किसी देवताकी पूजा करते समय क्या करना होता है, शास्त्रोक्त पूजा-विधिका तत्त्व क्या है, यह जान सकनेपर तुम्हें मालूम होगा कि पूजा-विधिका उपदेश देते समय शास्त्रने यही बताया है कि किस तरह पूज्य या उपास्यदेव होना पड़ता है। अतः अनन्त हुए बिना 'अनन्त'-शब्दके वास्तविक अर्थका बोध नहीं हो सकता। देवता हुए बिना कोई 'देवता'-शब्दका यथार्थ अर्थ जान नहीं सकता। स्कन्दपुराणमें कहा है—सीता कमला हैं, ये जगन्माता हैं; इन्होंने लीलासे मनुष्यमूर्ति धारण की है; ये देवत्वमें देवदेहा (देवशरीरिणी) हैं, मनुष्यत्वमें मानुषी हैं; ये विष्णुदेहके अनुरूप अपनी देह धारण करती हैं।

कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनूम्॥
(स्क० ब्रह्म० सेतुमाहात्म्य)

× × ×

लीला-मनुष्य होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रने तथा जगन्माता कमला, सर्ववेदमयी, सर्वलोकमयी सीतादेवीने देवता और मनुष्य दोनोंका ही कितना उपकार किया है—यह सोचनेपर हृदय अत्यन्त विस्मित हो जाता है, कृतज्ञता-से परिपूर्ण हो जाता है। मनुष्य किस तरह पूर्ण देवत्वको प्राप्त कर सकता है, यह भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा भगवती सीतादेवी जगत्‌को सिखा गयी हैं। मेरा यह कथन सोलहों आने सत्य है, सीता-तत्त्वमें तुम्हें यह बात समझाने-की चेष्टा करूँगा। सीता-उपनिषद्‌में यह पूर्णरूपसे वर्णित है कि सीता कौन हैं। सीतोपनिषद्‌में सीतादेवीका स्वरूप प्रदर्शित करनेके लिये जो कुछ कहा गया है उसकी सम्यक् रूपसे व्याख्या करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। अगर सम्यक् रूपसे उसकी व्याख्या करनी हो तो वेदका स्वरूप दिखाना पड़ेगा, निखिल शास्त्र या विष्णुका स्वरूप दिखाना पड़ेगा, सब प्रकारकी शक्तियोंका तत्त्व समझाना पड़ेगा। अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्मतत्त्व ही 'सीता-तत्त्व' है—सीतोपनिषद्‌ने यही समझाया है। सीता 'सर्ववेदमयी' हैं, 'सर्वदेवमयी' हैं, 'सर्वलोकमयी' हैं; सीता भगवती मूल प्रकृति हैं; सीता प्रणव-स्वरूपिणी हैं; सीता इच्छा-शक्ति हैं, क्रिया-शक्ति हैं, साक्षात् शक्ति हैं; सीता त्रिगुणात्मक संसार हैं; सीता त्रिगुणातीता—अखण्डसच्चिदानन्दमयी हैं। सीतादेवी श्री अथवा महालक्ष्मी हैं; जिनपर दृष्टि पड़नेपर फिर वे उन्हें छोड़ अन्यत्र जाना नहीं चाहते, जा नहीं सकते, जो रमणीय हैं, जो सौन्दर्यका आकर हैं, जो माधुर्यकी खानि हैं, जिन्हें देखनेहीके लिये दृक्शक्ति दृक्शक्ति-रूपमें परिणत हुई है, एकमात्र जो सबका लक्ष्य हैं, जिनके आश्रयमें सब कोई वर्तमान हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करनेकी सब किसीकी अभिलाषा है, वह लक्ष्मी हैं, वह श्री हैं; सीतादेवी वही लक्ष्यमाणा लक्ष्मी या सर्वाश्रयमयी श्री हैं।

श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा भवतीति विज्ञायते।
(सीतोपनिषद्)

सीतादेवी सब प्राणियोंका रोग शमन करनेवाली हैं, सीतादेवी सब प्राणियोंकी पोषिका—शक्तिरूपा हैं।

सर्वौषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति।
(सीतोपनिषद्)

सीतोपनिषद्‌में सीताका स्वरूप वर्णन करनेके लिये इस प्रकारकी बातें कही गयी हैं। इसीलिये मैंने कहा है कि सीतोपनिषद्‌में सीतादेवीके स्वरूप-प्रदर्शनार्थ जो कुछ कहा गया है, सम्यक्‌रूपसे उसकी व्याख्या करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

जिज्ञासु—तो क्या सीतादेवीका स्वरूप जाननेका कोई उपाय नहीं है?

वक्ता—सो क्यों! सीतादेवीका स्वरूप जाननेका उपाय है। मैंने तो तुम्हें वह उपाय बता दिया है।

जिज्ञासु—वह उपाय क्या है? वह तो मेरी समझमें आया ही नहीं।

वक्ता-वह उपाय है सीतादेवीके चरणोंमें प्रपन्न होना, उनके शरणागत होना। 'माँ! मैं अपराधोंका घर हूँ, मैं अकिञ्चन हूँ; माँ! मैं अगति हूँ, तुम्हें छोड़ मेरा अपना और कोई नहीं है; माँ! तुम्हीं अगतिकी गति हो, तुम्हीं निराश्रयकी आश्रय हो, तुम अकिञ्चनकी सर्वस्व हो, मैं तुम्हारे चरणोंमें अपना अहंभाव सर्वान्तःकरणसे समर्पण करता हूँ, तुम मुझे अपने सर्वाश्रय चरणोंमें ग्रहण करो। माँ! मैं तुम्हारा हूँ'—इस तरह माँके चरणोंमें आत्म-निवेदन करना ही माँको पानेका, माँको यथार्थरूपमें जाननेका एकमात्र उपाय है; इसीका नाम अविराम 'नमो नमः करना' है। सर्ववेदमयी, सर्वशास्त्रमयी सीतादेवीने स्वयं ही अपनी प्राप्तिका, पूर्णरूपसे अपनेको जाननेका, अपने समीपवर्त्ती होनेका यह उपाय बता दिया है। ×××

जिज्ञासु—करुणामयी सीतादेवीकी कृपाके बिना उन्हें जानना असम्भव है, यह बात आपकी कृपासे क्रमशः मेरी समझमें आ रही है। क्या मनुष्य मनुष्यमात्रको ही ठीक तौरसे जान सकता है? मनुष्यमें जो देवत्व है, क्या मनुष्यमात्र ही उसे लक्ष्य करते हैं? अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवता हुए बिना देवताका स्वरूप देखना सम्भव नहीं। 'सीतादेवी देवत्वमें देव-देहा हैं, मनुष्यत्वमें मनुष्य-विग्रहा हैं'—स्कन्दपुराणकी यह बात कितनी सुन्दर है; किन्तु मैं इसे अनुभव करनेमें असमर्थ हूँ।

वक्ता–यह बात क्रमशः तुम्हारी समझमें आवेगी कि स्थावर, जङ्गम पदार्थोंकी जो पृथक्-पृथक् आकृतियाँ होती हैं—इसका कोई सूक्ष्म अथवा आन्तरिक कारण है। प्रकृति सब प्रकारका रूप धारण कर सकती है; प्रकृति देवता प्रसव करती है, प्रकृति मनुष्यकी सृष्टि करती है, प्रकृतिसे धार्मिक, सौम्य, विविधगुणविशिष्ट प्रजाकी उत्पत्ति होती है, प्रकृति फिर घोर अधार्मिक, असौम्य, सर्वदोषागार, सब मनुष्योंमें क्षोभ पैदा करनेवाली कुसन्तान भी पैदा करती है। सीतोपनिषद्में सीतादेवी मूल प्रकृति बतायी गयी हैं। अतएव सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वलोकमयी हैं। मूल-प्रकृति सर्वशक्तिमयी हैं; अतः मूल-प्रकृतिस्वरूपिणी सीतादेवी देव-देहा हैं, लीलासे मनुष्य-देह धारण करती हैं—इस बातपर विश्वास करनेमें कोई बाधा नहीं हो सकती। 'ये (सीतादेवी) विष्णुदेहके अनुरूप अपनी देह स्वीकार करती हैं; हे विष्णो! (हे रामचन्द्र!) आप जब-जब जो-जो अवतार स्वीकार करते हैं, तब-तब यह आपकी सङ्गिनी होती हैं'—स्कन्दपुराणोक्त पावक-देवकी यह बात युक्तिविरुद्ध मानकर कदापि अविश्वास करनेयोग्य नहीं है।

× × ×

जिज्ञासु–(नन्दकिशोर विद्यानन्द) आज सीतोपनिषद्की कुछ संक्षिप्त व्याख्या सुनना चाहता हूँ; यद्यपि सीतातत्त्वको हृदयङ्गम करनेकी यथार्थ योग्यता मुझमें नहीं है तथापि श्रीमुखके उपदेश सुनते-सुनते कुछ तो योग्यता आ ही जायगी, ऐसी आशा है।

वक्ता–देवताओंने प्रजापतिके पास जाकर उनसे पूछा—'सीता कौन हैं? उनका स्वरूप क्या है?' प्रजापतिने कहा—'वह सीता हैं;' अर्थात् तुमलोग जिनका स्वरूप जानना चाहते हो उनका स्वरूप तो 'सीता'-शब्द ही व्यक्त कर रहा है। स, ई, त–ये तीन अक्षर ही उनके स्वरूपके वाचक हैं। सब वस्तुओंकी वह मूल-प्रकृति हैं, इसलिये 'प्रकृति' नामसे ज्ञात हैं।

मूल-प्रकृति कौन-सा पदार्थ है? जो दूसरे किसी पदार्थका कार्य नहीं हैं, जिनका और कोई मूल नहीं है, जो स्वयं अमूल हैं, जो अविकृति हैं, वह 'प्रकृति' हैं। (प्रकृति जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी हैं, वह जगत्-कारण हैं।) प्रणव ही प्रकृतिका रूप है; प्रणव ईश्वरका वाचक है; प्रणव भगवान् श्रीरामचन्द्रका रूप है। जिसके द्वारा कुछ प्र-कृत होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। विश्वजगत् किसके द्वारा प्र-कृत है? सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके द्वारा। चूँकि 'अ'कार, 'उ'कार, 'म'कारात्मक प्रणवसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है, इसलिये प्रणव ही प्रकृति है। मूल-प्रकृतिका स्वरूप है प्रणव अर्थात् चैतन्याधिष्ठित गुणत्रय, यह बात दो बार कही गयी है। सम्भवतः इसे पुनरुक्तिदोष कहा जा सकता है। किन्तु नहीं, मूल-प्रकृतिका स्वरूप समझानेके लिये ही द्वितीय बार इसका उल्लेख किया गया है। स-ई-त—इन वर्णत्रयात्मिका सीताको चैतन्याधिष्ठिता माया जानना चाहिये।

'विष्णुः प्रपञ्चबीजञ्च' इत्यादि—विश्व-जगत् नाना आकार धारण करता है, इसलिये इसे 'प्रपञ्च' कहते हैं; जो प्रकृष्टरूपसे पञ्चीकृत या विस्तृत होता है, उसे 'प्रपञ्च' कहते हैं। विष्णु ही प्रपञ्चबीज हैं। व्याप्त्यर्थक 'विश्' धातुसे 'विष्णु' पद सिद्ध हुआ है। विष्णु ही विश्वमें व्याप्त होते हैं।

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥

–इत्यादि रामपूर्वतापनीय उपनिषद्के वाक्योंको यहाँ स्मरण करना चाहिये।

'सत्' 'चित्' और 'आनन्द'—ये सभी सीताके रूप हैं (चाहे परिच्छिन्नभावसे देखा जाय अथवा अपरिच्छिन्नभावसे)।

माँके दो रूप हैं—अव्यक्त और व्यक्त। अव्यक्तरूपिणी महामाया किस तरह व्यक्तरूप धारण करती हैं, अब यही कह रहे हैं।

'प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना'—माँका प्रथम व्यक्त रूप है उनका 'शब्दब्रह्ममय' रूप, अर्थात् वेद, पुराण आदि पढ़नेके समय जिनकी कृपासे हम उन्हें (उन शास्त्रोंको) समझा करते हैं, उनको जाना करते हैं, माँका यह रूप। स्वाध्याय या वेदपाठ करते-करते (अर्थबोध तथा यथार्थ मननादिके साथ) जब पहले आनन्दानुभव होता है, तब फिर सीताका दर्शन होता है। स्वाध्याय करते-करते ऐसा खयाल होता है कि मैं अशेष पापपङ्कमें निमग्न था, अब वेदाध्ययन करके निष्पाप हुआ, मैंने सीताके रूपका दर्शन किया। यह नहीं कि केवल मैं ही एक वेदाध्ययन

कर रहा हूँ और माँकी कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि करके आनन्दलाभ कर रहा हूँ, प्रत्युत इसके पहले भी जिस किसीने वेदाध्ययन करके आनन्दलाभ किया है, उसे भी माँकी ही कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि हुई है और आनन्द मिला है। सबसे पहले ब्रह्मा आदिने ही माँका स्मरण किया था और वेदाध्ययन किया था।

'द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना'—यही माँके अवतारका रूप है। माँका द्वितीय व्यक्तरूप वही है, जिसमें यह भूतलपर हलाग्रमें जानकीरूपसे अभिव्यक्त हुई थीं।

भूतले—आधार-शक्ति जो वस्तु है वह विष्णुकी ही शक्ति है। पृथिवीशक्ति=आधारशक्ति। सीता ही पृथिवी हैं—जिस शक्तिने जगत्को धारण कर रक्खा है। इसीलिये सीता पृथिवीस्थ होकर अवतीर्ण हुई थीं। मननशील साधकको इसमें कुछ और भी विशेष तत्त्व दिखायी देगा। सूक्ष्म किस तरह स्थूल अवस्थाको प्राप्त होता है, यहाँपर यह विचार करना चाहिये। माँका पहला व्यक्त रूप शब्दब्रह्ममय या मातृकामय है। शब्दसे विश्व-जगत् सृष्ट हुआ है, अकारादि मातृका वर्ण ही व्यक्त जगत्का पूर्व-रूप है, इत्यादि शास्त्रोक्तियोंको यहाँपर स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर पाश्चात्य विज्ञानद्वारा वर्णित जगत्के सृष्टितत्त्वको भी स्मरण करना चाहिये। नैहारिक सिद्धान्त (The Nebular Theory of Creation) पूर्णरूपसे भ्रमशून्य न होनेपर भी उसमें किञ्चित् सत्यकी छाया है। एक अविभागापन्न विश्वव्यापी वाष्पमय अवस्था किस तरह घनीभूत या सम्मूर्च्छित होकर वर्तमान दृश्यजगत्में परिणत हो गयी है—इसका वर्णन पाश्चात्य विज्ञानने किया है। सीताशक्ति पहले अपेक्षाकृत सूक्ष्म शब्दब्रह्ममयरूपमें अभिव्यक्त हुई थीं, तदनन्तर यह शक्ति क्रमशः घनीभूत या सम्मूर्च्छित (Condensed) होकर अन्तमें आधारशक्तिरूपमें—स्थूलरूपमें—पृथिवीरूपमें अभिव्यक्त हुईं। वे पृथिवीपर पड़ी हुई हैं—इस अवस्थामें जनकजीने उनको देखा।

ऊपर माँकी दो अवस्थाओंकी बात कही गयी है, ये दो ही उनके व्यक्त रूप हैं। माँका तृतीय रूप ईकार-रूपिणी अव्यक्ता मूल-प्रकृतिका रूप है। यही संक्षेपमें सीताका स्वरूप है। यह शौनक ऋषिका उपदेश है।

जिज्ञासु—माँके व्यक्तावस्थाके पूर्वके रूपकी धारणा किस तरह की जा सकती है?

वक्ता—सामान्य ही विशेषका पूर्व-रूप है। सामान्य दो प्रकारका है—परसामान्य और अपरसामान्य। जिसका (अथवा जिससे) और कोई सामान्य भाव नहीं है, वह परसामान्य है। 'सत्तासामान्य' शब्दके अर्थकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करो। सत्तासामान्यपर एक और विशेषण 'ब्रह्म' देनेसे 'ब्रह्मसत्तासामान्य' पद बनता है। इसका अर्थ है अखण्डसत्तासामान्य या अपरिच्छिन्नसत्तासामान्य। विश्व-जगत्की व्यक्तावस्थाके पूर्वकी अवस्थाका वर्णन करते हुए ऋग्वेदने कहा है—

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राज्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥

(ऋग्वेदसंहिता १२९।१०।२)

अर्थात् प्रलयकालमें मृत्यु न थी, सूर्य और चन्द्रमाके अभावके कारण तब दिवा-रात्रिका ज्ञान न था, तब सर्व-वेदान्तप्रसिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्राणितवत् विद्यमान था। 'प्राणितवत्' कहनेसे लोग निरुपाधि ब्रह्मको जीवभावापन्न, जीववत् क्रियाविशिष्ट खयाल कर सकते हैं। इसी आशङ्कासे वेदने 'अवातम्' पदका प्रयोग किया है। उस समय (सत्त्व, रज और तम) त्रिगुणात्मिका प्रकृति या माया अपने आधार ब्रह्मके साथ अविभागापन्न होकर साम्यावस्थामें विद्यमान थी। तब क्रियाशील रजोगुणकी अनभिव्यक्तिके कारण किसी प्रकारकी क्रिया नहीं थी।

इससे तुम माँकी व्यक्तावस्थाके पहलेकी अवस्थाका कुछ अनुमान लगा सकते हो।

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥

परमात्माकी शक्ति हैं, इसलिये सर्वदा ये उनके सान्निध्यमें रहती हैं। आनन्दमयके समीप, उनके साथ नित्ययुक्त होकर, विद्यमान हैं। अतः ये भी आनन्दमयी होंगी, इसमें सन्देह ही क्या है? आनन्दमयके साथ रहकर फिर यही जगत्को आनन्द देती हैं। माँके लिये ही जगत् आनन्द पाता है।

जिज्ञासु—यहाँ 'राम'-शब्दके प्रयोग करनेकी आवश्यकता क्या है?

वक्ता—यहाँ 'राम' शब्दमें प्रयोगकी विशिष्ट सार्थकता है। अखण्ड सच्चिदानन्दमय परमात्माका बोध करानेके

लिये ही यहाँपर 'राम'-शब्दका प्रयोग हुआ है। 'आनन्द' जो वस्तु है, वह परमात्माका निजी रूप है। माँका निजी रूप है सृष्टिस्थितिलयात्मक रूप। माँ जब भगवान्से पृथक् रूप धारण करती हैं, तब वह 'असीता' (असिता) वा काली-रूप धारण करती हैं। माँ जब पिताके पास रहती हैं, तब वह माया होती हैं (जिसे 'उत्तमा अविद्या' कहते हैं), नहीं तो वह 'अविद्या' (अर्थात् 'अधमा अविद्या') रूपमें अवस्थान करती हैं।

'पूर्ण' कोई एक है, यह मानना ही पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि पूर्ण तो सिवा एकके दो हो नहीं सकते, फिर 'राम' और 'सीता' दो तत्त्व क्यों माने जाते हैं? वे वस्तुतः एक ही हैं। शक्ति शक्तिमान्से वास्तवमें भिन्न पदार्थ नहीं है। शक्तिमान् सदा ही शक्तियुक्त रहते हैं। बिना किसी विशेष प्रयोजनके शक्ति शक्तिमान्से पृथक् नहीं होती।

माँका स्वरूप बतलानेके लिये फिर कह रहे हैं—वह सब देहियोंकी सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी हैं। इसलिये सीता ही काली हैं। पुराणमें जो कुछ है, वह वेदकी ही व्याख्या है। पुराणमें लिखा है—माँने सीता-रूपसे कालीरूप धारण किया था।* इसका अर्थ यही है कि काली जो पदार्थ है, सीता भी वही पदार्थ है। (कलन करके सबको अपनी गोदमें ले लेती हैं, इसलिये इनकी 'काली' आख्या हुई है।) 'काली' के बीजका अर्थ भी यही है। क=सृष्टि; र=संहार; ई=पालन।

सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता—जब इन तीन शक्तियोंकी समष्टिका चिन्तन किया जाता है, तब उस समय सत्त्व, रज, तमकी साम्यावस्थामें जो रूप होता है उसी रूपका अर्थात् मूल-प्रकृतिके रूपका चिन्तन होता है। प्रणव उसीका वाचक है। प्रणवका जो अर्थ है, सीताका भी वही अर्थ है; अ—उ—म वा सृष्टि—स्थिति—संहार।

'प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन इति। अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च। सा सर्ववेदमयी' इत्यादि—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' यह नित्य-सूत्र है। ब्रह्मसूत्र नित्य-पदार्थ है। महर्षि वेदव्यास ब्रह्मसूत्रके स्मारक हैं, रचयिता नहीं। (जिज्ञासा होनेसे ही ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। जिज्ञासा ज्ञानका ही पूर्वरूप है। जिज्ञासा ज्ञानके अन्तर्भूत है।) प्रणव जो (वस्तु) है, ब्रह्म जो (वस्तु) है, वही सीता है। यदि किसीको ब्रह्मजिज्ञासा हो तो क्या उन्हें सीताकी तत्त्व (ब्रह्म=तत्त्व)-जिज्ञासा हुए बिना रह सकती है? जो ब्रह्मवादी होते हैं, वे इस तत्त्वको समझ सकते हैं और वे ही इस तत्त्वको व्यक्त किया करते हैं।

जिज्ञासु—यहाँपर अकस्मात् 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा,' इस सूत्रकी बात क्यों छेड़ी गयी?

वक्ता—बात यह है कि ब्रह्म जो वस्तु है, यदि उसे जानना हो तो प्रणवका स्वरूप जानना होगा और यदि प्रणवका स्वरूप जानना हो तो सीताका स्वरूप जानना पड़ेगा। इसीलिये यहाँ 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रका उल्लेख किया गया है।

सर्ववेदमयी—सब देवता प्रणवनिष्पन्न हैं (सर्वे देवाः प्रणवनिष्पन्नाः)। ऋग्वेदके 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।' इत्यादि मन्त्रका स्मरण करो। यहाँ 'मयट्' प्रत्यय स्वरूपार्थमें है।

सर्वलोकमयी—अर्थात् सर्वलोकस्वरूपिणी।

सर्वकीर्त्तिमयी, सर्वधर्ममयी—पहले ही कहा गया है कि सत्, चित् और आनन्दका जो कोई रूप या अवस्था हो, वह सीताका ही रूप है।

सर्वाधारकार्यकारणमयी—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है। आधारशक्ति=पृथिवीशक्ति। इसलिये सीता 'भूतले' अर्थात् पृथिवीस्थ होकर अवतीर्ण हुई थीं।

देवेशस्य—परमात्मा विष्णुकी।

महालक्ष्मीर्देवेशस्य—वेदके 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' इस मन्त्रको स्मरण करो।

भिन्नाभिन्नरूपा—वह परमात्मासे भिन्न तथा अभिन्न दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। किसीकी दृष्टिमें शक्ति और शक्तिमान्का भेद है और किसीकी दृष्टिमें नहीं।

चेतनाचेतनात्मिका—वह चेतन तथा अचेतन दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। पहलेकी तरह दृष्टि-भेद ही इसका भी कारण है।

ब्रह्मस्थावरात्मा—वह जड और अजड दोनों ही हैं।

* सीताने ही कालीरूप धारण करके सहस्रस्कन्ध रावणका बध किया था।

ब्रह्मस्थावरात्मा तद्‌गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा—ब्रह्मासे स्थावरतक सभी उनके रूप हैं। यह जो सीतादेवी हैं, उनके जो गुण और कर्म हैं, और उनके जो विभिन्न विभाग हैं, उन्हींसे जगत्‌में नाना रूप हुए हैं। जो कुछ जगत्‌में देख रहे हो, ये सभी सीताके गुण-भेद और कर्म-भेदसे उन्हींके रूप हैं। यहाँपर गीताके उपदेशको स्मरण करो। ('गुण' यहाँपर हैं—सत्त्व, रज और तम; कर्म हैं—ब्राह्मणादिवर्णोचित शम-दमादि कर्म। यहाँपर 'कर्म'-शब्दका प्रयोग कर अनादि कर्मकी ही ओर लक्ष्य किया गया है।)

देवर्षिमनुष्य···विज्ञायते—इसके द्वारा प्रकृतिके सारे परिणाम दिखाते हुए यह दिखाया गया है कि वही सर्व-परिणामरूपा हैं और वही इन सारे परिणामोंका मूल हैं।

भूतादि—अर्थात् अहङ्कार। यह त्रिविध है—सात्त्विक, राजस और तामस।

देवर्षि—यह सात्त्विक परिणाम है।

जो कुछ होता है, शक्तिद्वारा ही होता है। सर्वशक्तिकी मूल वही हैं, अब यह बात स्पष्ट की जा रही है।

यह (सीता) देवी तीन प्रकारसे विवर्तित होती हैं। ये तीन प्रकार शक्त्यात्मामें हैं—इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति, और साक्षात्-शक्ति। इच्छा-शक्तिके तीन भेद हैं। ये जो वृक्षादि उत्पन्न होते हैं ये सोम-शक्तिके रूप हैं। सोम-शक्ति ही उद्भिद्‌प्रसविणी-शक्ति है। सोम-शक्ति आप्यायन-शक्ति—पोषण-शक्ति है। सूर्य-शक्तिद्वारा क्रिया होती है, क्षय होता है ('Work must have waste.')। उसका सोम-शक्ति पोषण किया करती है। माँकी सोम-शक्ति ही विश्व-जगत्‌का अन्नस्वरूप है। सोम अन्न हैं और सूर्य अन्नाद। औषध भी सोम-शक्तिसे ही उत्पन्न है। रोग क्षय कर देता है, औषध उस क्षयका पोषण कर देती है। आप्यायन-शक्तिका अभाव होनेसे ही तो रोग होता है। 'यास्ते सोम' इत्यादि मन्त्रद्वारा भेषजको अभिमन्त्रित करना पड़ता है। यह सोम-शक्ति ही अमृत-रूपमें वर्तमान है, जिसे सेवन करके देवता तृप्ति-लाभ किया करते हैं।

(अब सूर्य-शक्तिकी बात कह रहे हैं) माँ ही सकल-भुवनप्रकाशिनी दिवा वा प्रकाश-शक्ति हैं।

माँ ही रात्रि हैं। दिनमें सौर-शक्तिद्वारा नाना प्रकारके कर्म करके जब लोग श्रान्त हो जाते हैं तब आरामके लिये इनके चरणोंमें शरण प्राप्तकरनेकी प्रार्थना करते हैं (प्ररमयति भूतानि इति 'रात्रिः')। यही श्रान्त पुत्रको गोदमें लेकर सुलाती हैं।

(इसके द्वारा सृष्टि-तत्त्व दिखाया गया है। इस 'दिवा' और 'रात्रि'-शक्तिद्वारा 'सृष्टि' और 'लय'-शक्तिका रूप दिखाया गया है। रात्रि तमोगुणात्मिका है। इसके बाद फिर 'दिन' होता है, सृष्टि होती है।)

इसके बाद माँके 'काल' रूपका वर्णन किया गया है। हम कालके जितने प्रकारके रूप प्रत्यक्ष किया करते हैं, यथा—कला, निमेष, घटिका, याम, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, मनुष्यकी आयु अथवा शत-संवत्सर— ये सभी माँके रूप हैं। हमलोग कहा करते हैं, यह कार्य शीघ्र सम्पन्न हुआ, यह विलम्बसे हुआ—ये जो कालके भेद हैं, ये सीताके ही रूप-भेद हैं। निमेषसे लेकर परार्धतक कालचक्र, जगच्चक्र प्रभृति चक्रवत् परिवर्तमान जिन पदार्थोंकी उपलब्धि होती है, ये 'काल' के ही विभाग-विशेष हैं। काल-शक्ति प्रकाशरूपा हैं। (सीतारूपिणी (अखण्ड-) काल-शक्ति पूर्वोक्त सारे (खण्ड-) कालचक्रोंको प्रकाशित किया करती हैं।)

(इसके बाद माँके अग्निरूपकी बात कह रहे हैं।) 'अग्निरूपा अन्नपानादिप्राणिनाम्' इत्यादि माँकी यह अग्नि-शक्ति अन्नाद-रूपमें, प्राणियोंकी क्षुत्तृष्णा-रूपमें, देवगणके मुखरूपमें, वनौषधोंके शीतोष्णरूपमें, काष्ठमें अन्तर्बहिः-रूपमें प्रकाशित होती है। उष्णता दो प्रकारकी है, एक 'बाह्य' प्रकार है और दूसरा 'आन्तर' (बाहरसे नहीं मालूम होता है कि इसमें ताप है परन्तु भीतर वर्तमान रहता है, इस तरहका ताप)। यह अग्नि-शक्ति नित्या-नित्यरूपा है। अग्नि भोक्तृ-शक्ति है; वही अन्नाद है। वही प्रकृति है, वही पुरुष है। प्राण ही अग्नि है (वेदकी भाषामें)। मैत्र्युपनिषद्‌में अन्न और अन्नाद वा भोग्य-भोक्तृत्वका जो वर्णन है, उसे स्मरण करो। जिस तरफसे देखो, उन्हींका रूप देखोगे। प्राण-रूपसे यदि देखो तो भी सीताका ही रूप देखोगे।

(इसके पश्चात् श्रीशक्तिके त्रिविध रूपकी बात कही गयी है।) श्रीदेवी भगवान्‌के सङ्कल्पानुसार लोकरक्षाके

लिये रूप धारण करती हैं। यह 'श्री' या 'लक्ष्मी' रूपमें सबकी लक्ष्यमाणा होती हैं। सौन्दर्यके लिये (जिसे देखनेसे लोगोंकी दृष्टि आबद्ध होती है, लोग आकृष्ट होते हैं) लोग जिनको लक्ष्य करते हैं, जिनको पाना चाहते हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करना चाहते हैं, वह लक्ष्मी हैं, वह श्री हैं।

तदनन्तर भूशक्तिकी बात कही गयी है। आधार-शक्तिका नाम ही 'भूदेवी' है। भूदेवी ससागराम्भः-सप्तद्वीपा वसुन्धरा-रूपा हैं (इसीलिये माँ पृथिवीसे उठी थीं), यही चतुर्दश भुवनके आधार तथा आधेयरूपमें लक्षिता प्रणवात्मिका शक्ति हैं। (प्रणवमें अ-उ-मकार हैं; 'भू' में भी केवल 'भू' ही नहीं रहता, बल्कि 'भुवः' और 'स्वः' भी रहते हैं।) 'नीलात्मिका' शक्ति सब प्राणियोंकी पोषणरूपा है।

(इसके बाद क्रियाशक्तिकी बात कह रहे हैं।) भगवान् हरिके मुखसे पहले जो नादकी उत्पत्ति होती है, वही क्रिया-शक्तिका स्वरूप है। (इसके द्वारा वेदका स्वरूप दिखाया जा रहा है।) उससे विन्दु, उससे ओंकार और उससे रामवैखानस-पर्वतकी उत्पत्ति होती है। उससे कर्मज्ञानमयी बहुशाखाओंका आविर्भाव होता है। बहु-शाखाएँ होनेपर भी प्रधान तीन ही शाखाएँ हैं, जिनका नाम 'त्रयी' है। यही आद्यशास्त्र हैं। इससे सभी अर्थोंका दर्शन होता है। अतः वेद ही सब विज्ञानोंके विज्ञान हैं, सब अर्थोंके अर्थ हैं। विशिष्ट कार्य-सिद्धिके लिये माँ चतुर्वेदका रूप धारण करती हैं, (अर्थात् अतिरिक्त अथर्ववेदका आविर्भाव होता है), नहीं तो 'त्रयी' के अन्दर ही अथर्व है। जिस दृष्टिसे ऋक्, यजुः, साम—ऐसा भाग किया गया है, उस दृष्टिसे अथर्वको पृथक् करनेकी कोई आवश्यकता न होगी। अथर्ववेदका कुछ अंश अभिचारादिव्यापारविषयक है; अथर्व भी साम-ऋक्-यजुरात्मक है। ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९ और सामवेदकी सहस्र शाखाएँ हैं। अथर्ववेदकी पाँच शाखाएँ हैं।

जिज्ञासु—रामवैखानसपर्वत और त्रयी—इन दोनों शब्दोंका अर्थ अच्छी तरह मेरी समझमें नहीं आया है।

वक्ता—सब शक्तियाँ 'रामवैखानसपर्वत' का आश्रय लेकर रहती हैं। 'रामवैखानस'-शब्दद्वारा सगुण ब्रह्म लक्षित होते हैं। जिसमें पर्व हैं, वह पर्वत है। यह शब्द रामरूप वेद-पर्वतका बोध कराता है। वेदमें काण्ड हैं, इसलिये इसकी तुलना पर्वतके साथ की गयी है। कर्म-काण्डके लिये 'अथर्व' नामक वेदके चतुर्थ भागकी कल्पना की गयी है। सामान्य लक्षणोंके अनुसार विभाग करनेपर ऋक्, यजुः और साम—तीन ही विभाग होते हैं। जिस तरह ओंकारसे वेद उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह ओंकारसे भगवान्‌के सगुण रूपका आविर्भाव हुआ है।

प्रकृतिके तीन रूप हैं। चतुर्थ अवस्था साम्यावस्था है। वेदकी भी चार अवस्थाएँ हैं। जब तीन लोकोंको लेकर (अर्थात् तीन लोकके खयालसे) चिन्तन किया जाता है तब वह 'त्रयी' है। 'सोऽयमात्मा चतुष्पात्'—इस उक्तिके अर्थका चिन्तन करो। प्रणव=वेद=ब्रह्म। कर्मदृष्टिसे तीन प्रकार हैं—ऋक्, यजुः और साम। जहाँ सब कुछ जाकर सम्मिलित हो जाता है, जहाँ फिर परस्पर भेद नहीं रह जाता, वही गीत है। वहाँ इतरत्व नहीं रहेगा, वैषम्य नहीं रहेगा। सम=साम=संवित्त्व। वैषम्य नहीं रहनेसे क्रिया नहीं होती।

पहले कर्म। ऋग्वेद कर्म है (ऋग्वेद प्रधानतः कर्मात्मक है)। भूर्लोक ऋग्वेदका रूप है। ऋग्वेदके न रहनेपर किसी वेदकी स्थिति नहीं रहती। पहले कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करनी होगी। छन्दके अनुसार जो कर्म है, वही ऋक् है। चक्षुरादि इन्द्रियोंके द्वारा जो कर्म हो रहे हैं, वे ऋक्‌के रूप हैं। उसके बाद यजुर्वेद या भुवर्लोक है अर्थात् (बाह्य जगत्‌से) संस्कार लेकर मनकी अवस्थामें प्रवेश करना। यह उपासना-काण्ड है। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है। ज्ञानकाण्डके उपासनाके साथ मिल जानेपर 'सङ्गीत' होता है। यही 'साम' है। तभी 'संवित्' होती है।

'विखान'-शब्दसे 'वैखानस'-पद उत्पन्न हुआ है। विगत हुआ है खनन जिससे, अर्थात् एक केन्द्र-अवस्था, जो जागतिक विषयोंद्वारा परिच्छिन्न नहीं है।

इसके बाद उस वेदका अङ्ग-विभाग किया गया है। सीता या वेदके कौन-कौन-से अङ्ग हैं, यह कहा गया है। तत्पश्चात् उपाङ्ग बताये गये हैं। षड्दर्शन (मीमांसा, न्याय प्रभृति) वेदके उपाङ्ग हैं। वेदद्रष्टा (जिन्होंने पूर्णरूपसे वेदको ही अवलम्बन किया था) महर्षियोंसे ही

स्मृति-शास्त्र निर्गत हुआ है। इतिहास प्रभृति वेदके उपाङ्ग हैं।

तदनन्तर 'साक्षात् शक्ति' की बात विशेषरूपसे कही गयी है। (भावभेदसे 'साक्षात् शक्ति' के कई प्रकारके अर्थ होते हैं।) परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रके स्मरणमात्रसे ही—उनका ध्यान करते-करते—जो उनका आविर्भाव होता है, वह इस साक्षात् शक्तिकी क्रियासे होता है। निग्रहानुग्रहरूपा, शान्तितेजोरूपा प्रभृति इनके अनेक रूप हैं। ये भगवत्-सहचारिणी, अनपायिनी हैं। ये 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार', 'तिरोधान' और 'अनुग्रह' आदि सब शक्तिके रूप हैं, इसलिये इनको 'साक्षात् शक्ति' कहा जाता है।

जिज्ञासु—साक्षात् शक्तिका स्वरूप कुछ और विशदरूपसे समझा दीजिये।

वक्ता—पहले 'साक्षात्' शब्दको लक्ष्य करो। ये 'साक्षात्' शक्ति हैं और कोई शक्ति नहीं; यह इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि सब शक्ति नहीं हैं। ये 'साक्षात्' शक्ति हैं। साक्षात् शक्ति चैतन्यशक्ति या चित्शक्ति है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिनसे उत्पन्न हुए हैं, वे साक्षात् शक्ति हैं। साक्षात् शक्ति वह शक्ति है जो और किसी शक्तिसे उत्पन्न नहीं हुई है। इस अपरिच्छिन्न ब्रह्मशक्तिसे ही इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति निर्गत हुई हैं, अथवा ऋक्, यजुः और साम आविर्भूत हुए हैं। महालक्ष्मी, महाविष्णु, सदाशिव प्रभृति शब्दोंके द्वारा जो लक्षित होते हैं, वही 'साक्षात् शक्ति' हैं। जो सबके ऊपर हैं, उन्हींको 'साक्षात् शक्ति' कहते हैं।

फिर इच्छाशक्तिकी बात कह रहे हैं। इच्छाशक्ति त्रिविध है।* यह इच्छाशक्ति प्रलयावस्थामें विश्रामार्थ भगवान्के दक्षिण वक्षःस्थलमें श्रीवत्साकृतिरूपमें अवस्थान करती हैं। परमात्मा वा भगवानको आश्रयकरके उनके हृदयमें रहती हैं, इसलिये इनका 'श्री' नाम पड़ा है। सीताकी जो इच्छाशक्ति हैं, वही प्रलयकालमें संक्रमण करके भगवान्के हृदयमें जाकर आश्रय ग्रहणकरती हैं। यही योगशक्ति हैं। बहिर्मुखवृत्ति जो (सृष्टि) शक्ति है, उससे जो (लय) शक्ति उनकी ओर ले जाती है, वही 'योगशक्ति' है। सीतादेवी सर्वदा जो कार्य कर रही हैं, वही इन बातोंद्वारा व्यक्त किया जा रहा है। वह सृष्टिकालमें बाहर निकल आती हैं, फिर (लयकालमें) भीतर प्रवेश कर जाती हैं, वहाँ जाकर विश्राम करती हैं। तुम जो योग-साधन करोगे, वह भी यही वस्तु है। तुम भगवान्से बहिर्मुख होकर (निकल) आये हो, तुमको वृत्ति-निरोध करके फिर जाकर उनके साथ मिलना पड़ेगा। यही योग है।

भोगशक्ति जो वस्तु है, वह भी वही हैं। वही भोग-रूपा हैं। कल्पवृक्षादि जो कुछ हैं, वे भोगके ही उपलक्षण हैं। धनादि जो कुछ हैं, वे भगवान्के उपासकोंके पास आप ही जाकर उपस्थित हुआ करते हैं। जो भगवान्की यथार्थ उपासना किया करते हैं, उनकी इच्छामात्रसे ही शंखादि निधि उत्पन्न होते हैं। 'चिन्तामणि' उनके करतलगत हुआ करता है।

जिज्ञासु—'चिन्तामणि' का स्वरूप क्या है?

वक्ता—कहा जाता है, 'चिन्तामणौ स्वरूपेण न किञ्चिदुप-लभ्यते।' परन्तु उसमें सब किसीको अपना-अपना वाञ्छित रूप दिखायी पड़ता है। भगवान् सर्वाकार हैं, तुम उनको जिस-जिस रूपमें देखनेकी इच्छा करोगे, वह तुमको उसी-उसी रूपमें दर्शन देंगे। जो भक्तियुक्त होकर साधन करेंगे, वे चाहे इच्छा करें या न करें, विभूतियाँ आप ही उनके समीप आ पहुँचेंगी।

इसके बाद वीरशक्तिकी बात कही गयी है। वीर लक्ष्मी जो हैं, वह भी सीताका ही रूप हैं।

× × ×

वक्ता—चिदात्मासे वियुक्त होनेपर प्रकृतिकी कैसी अवस्था होती है, ज्ञानमय परमात्मासे विच्छिन्न होनेपर जीवको कैसी व्याकुलता होनी चाहिये, अज्ञान वा अविद्या-द्वारा ज्ञान अपहृत होनेपर पुनः ज्ञान-प्राप्तिके लिये कैसी चेष्टा होनी चाहिये, किस प्रकार निरन्तर स्मरण होना चाहिये,—जगत्को इस बातकी शिक्षा देना ही सीताके द्वितीय व्यक्त (अर्थात् हलाग्रमें जानकीरूपमें) अवतारका मुख्य प्रयोजन है।

[रावणके अन्दर ज्ञान तथा भक्तिका बीज था, परन्तु पहले वह सम्यक्रूपसे प्रस्फुटित नहीं हुआ था।] शिव-

* यथा—सृष्टि, स्थिति और संहार।

माता श्रीसीताजी

नीलाम्भोजदलाभिरामनयनां नीलाम्बरालङ्कृतां गौराङ्गीं शरदिन्दुसुन्दरमुखीं विस्मेरबिम्बाधराम् ।
कारुण्यामृतवर्षिणीं हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दितां ध्यायेत् सर्वजनेप्सितार्थफलदां रामप्रियां जानकीम् ॥

ध्यानपरायण और तपस्यापरायण होनेपर भी रावणके हृदयमें पहले 'देवताओंपर आधिपत्य करूँगा' ऐसी ही कामना थी। तब उसे ब्रह्मविद्याकी कामना नहीं थी। जब उसने ब्रह्मविद्या (सीता) की कामना की, तब वह धर्म (अर्थात् राघव)-निर्जित हुआ (अर्थात् धर्मद्वारा अभिभूत हुआ, अर्थात् स्वयं धर्ममय हुआ), तभी श्रीरामके हाथसे उसकी मुक्ति हुई। जभी उसने ब्रह्मविद्या (सीता) को देखा तभी उसके अन्दर ज्ञानका कुछ उदय हुआ। [तब वह इस ब्रह्मविद्याको प्राप्तकरनेके लिये, मुक्ति-प्राप्तिके लिये उद्योगशील हुआ।] सभीने कहा—(सीताको) छोड़ दो, नहीं तो सर्वनाश होगा। परन्तु उसने छोड़ना न चाहा। कहा—'सर्वनाश होनेपर भी मैं नहीं छोड़ूँगा।' रावणकी इस अवस्थाके साथ भक्तकी अवस्थाकी तुलना करो। जब भक्तके हृदयमें यथार्थ भक्तिका आविर्भाव होता है, जब भजनीयका रूप कुछ उसकी समझमें आता है, तब फिर सर्वनाश होनेपर भी वह उनको छोड़ना नहीं चाहता। (यहाँ 'सर्वनाश' का अर्थ है—सांसारिक जो कुछ है उसका नाश।)

[२]

(लेखक—पं० श्रीरामदयाल मजूमदार, एम० ए०)

'कल्याण'के शक्ति-अङ्कमें श्रीजानकी-तत्त्वकी आलोचना करनेका अनुरोध कर 'कल्याण' के सम्पादक महाशयने मुझे जो विशेष सुविधा दी है, उसके लिये कृतज्ञता प्रकाशकरना अपना अवश्यकर्तव्य समझकर ही प्रथम इसका उल्लेख मैं करता हूँ। ऋषियोंको भगवान् अथवा भगवतीके सम्बन्धमें कोई बात पूछनेपर वे आनन्दसे भर जाते थे, ऐसा क्यों होता था—इस कराल-कलिकालके मनुष्य होते हुए भी इसका कुछ आभास हमें मिलता है। इस विषयपर विशेष स्पष्टरूपसे कुछ न कहना ही ठीक समझकर मैंने इसे खोलकर नहीं कहा।

किन्तु श्रीराम-तत्त्व अथवा श्रीसीता-तत्त्वको कौन कह सकता है ? भगवान् सनत्कुमारने दशाननसे कहा था—

'वास्तवमें रूपरहित उस मायावीका रूप कहता हूँ। वह समस्त वृक्षों तथा पर्वतोंमें तथा नद-नदियोंमें विद्यमान है। वही ओङ्कार है, वही सत्य है, वही सावित्री और वही पृथ्वी है। सारे जगत्के आधारभूत शेषनागका रूप भी वही धारण किये हुए है। सारे देवता, समुद्र, काल, सूर्य, चन्द्रमा, सूर्यके अतिरिक्त अन्य ग्रह, अहोरात्र, यमराज, वायु, अग्नि, रुद्र तथा मृत्यु, मेघ तथा अष्टवसु, ब्रह्मा, रुद्र आदि प्रधान देव तथा अन्य गौण देव तथा दानव भी उसीके रूप हैं। बिजलीके रूपमें वही चमकता है, अग्निके रूपमें वही प्रज्वलित होता है, वही विश्वको उत्पन्न करता है, वही उसका पालन करता है और वही भक्षण करता है। इस प्रकार वह सनातन अविनाशी विष्णु अनेक प्रकारसे क्रीडा करता है। उसीने इस समस्त चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है। वे भगवान् विष्णु नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं और बिजलीके समान पीतवस्त्रको धारण किये हुए हैं, वामाङ्कमें तपाये हुए सोनेके समान आभावाली अविनाशिनी देवी लक्ष्मीजी विराजमान हैं जिनकी ओर वे सदा देखते रहते हैं और आलिङ्गन किये रहते हैं।'

सीताराम ऐसे हैं। इनका वर्णन- कौन करेगा ? क्या कोई इनका वर्णन कर सकता है ? श्रीमद्भागवतमें महर्षि व्यासदेवसे देवर्षि नारद कहते हैं—

> **इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो**
> **यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः।**
> **तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै**
> **प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम्॥**

'यह विश्व भगवान्‌का ही रूप है और भगवान् इससे भिन्न भी हैं, क्योंकि उन्हींके द्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है। इसे आप निश्चयरूपसे जानते हैं, तथापि आपको आदेशरूपसे इतनी बात कह दी है।'

आप मुझे भगवान्‌की लीलाका वर्णन करनेके लिये कहते हैं—किन्तु वह भगवान् कौन हैं ? उनकी लीला क्या है ? श्रीकृष्ण तो चले गये हैं, अब इस जगत्‌में उनकी लीला क्या है ? इसके उत्तरमें देवर्षि कहते हैं, 'यह जो विश्व है, यह भगवान् ही हैं। परन्तु भगवान् इस विश्वसे इतर—अन्य हैं, इस विश्वसे विलक्षण हैं। विश्वसे भगवान् अन्य क्यों हैं ? इसीलिये कि, भगवान्‌से ही इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं। यह सृष्टि, स्थिति और संहार ही उनकी लीला है।' भगवान् व्यासदेव कहते हैं, 'मैं उनको

कितना देखता हूँ ? आप जो दिखलाते हैं, मैं उसका एकदेशमात्र ही देखता हूँ ।'

भगवान् ही इस विश्वरूपमें उपस्थित हैं, तथापि यह इन्द्रियगोचर विश्व वे नहीं हैं । सृष्टि, स्थिति, प्रलय ही उनकी लीला है । इसे समझनेके लिये स्थूल विश्व, सूक्ष्म संस्कार वा वासना एवं बीजस्वरूप स्पन्दन—इनसे पार होकर चित्स्वरूपका अथवा चिन्मयीका अनुसन्धान करना पड़ता है ।

यह विश्व जबतक रहेगा तबतक भगवान्‌की सृष्टिशक्ति-की मूर्ति ब्रह्मा भी रहेंगे, अर्थात् ब्रह्माके रूपमें श्रीरामचन्द्रजी सदा ही सृष्टि-कार्यमें रत रहेंगे । वही बीजसे वृक्ष उत्पन्न करते हैं, वृक्ष-वृक्षमें फूल खिलाते हैं, फल भी वही लगाते हैं । संसारमें असंख्य नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गको वही लाते हैं, और विष्णुरूपमें वही सब जीवोंका पालन करते हैं पुनः विश्वमें प्रतिदिन जो लयकी लीला चल रही है उसे भी वही परमात्मा श्रीरामचन्द्र अपनी रुद्रमूर्तिद्वारा करते हैं । इन श्रीभगवान्‌का और इनसे अभिन्न ज्योतिः-स्वरूपिणी उनकी शक्तिका एकान्तमें आत्माकी मूर्ति इष्टदेव या इष्टदेवीके रूपमें ध्यान करना होगा और साथ-ही-साथ हृदयमें या भ्रूमध्यमें उनके चरणारविन्दमें मन एकाग्र करके बाहर उसी शक्तिसमन्वित शक्तिमान्‌को विश्वरूपमें चिन्तन करना होगा; तभी उपासना होगी, और तभी उनके दर्शन मिलेंगे । परन्तु उनके दर्शन कैसे होंगे ? शास्त्र कहते हैं—

द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ।
यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति ॥

'देव, दानव, पन्नग कोई उन्हें नहीं देख सकता । फिर उपाय क्या है ? वह जिसके ऊपर कृपा करते हैं वही उन्हें देख सकता है ।' श्रीचण्डीमें जगन्माता कहती हैं कि 'मैं ही विद्वान्‌को भी मोहयुक्त कर देती हूँ ।' पुनः ऋषि कहते हैं—

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

उनकी पूजा, उनका स्तवन, प्रार्थना, प्रणति करनेसे वह प्रसन्न होकर मनुष्यको संसारसागरसे मुक्त कर देती हैं । सर्वदा नाम-जप करना, मानस-पूजा करना, बाह्य-पूजा करना, स्तवन-प्रार्थना-नमस्कार करना आदि सब वे ही हैं, सब कुछ उनका ही है, मेरा कुछ भी नहीं—ऐसा चिन्तन करना । इस प्रकार करनेसे माँको प्रसन्न किया जा सकता है । श्रीसीतातत्त्वका प्रथम सोपान यह है कि जो सीता हैं वही श्रीराम हैं । शास्त्र यही कहते हैं—

'राम साक्षात् परमज्योति, परमधाम और परात्पर पुरुष हैं । सीता और रामकी आकृतिमें ही भेद है, वास्तवमें नहीं । राम ही सीता हैं और सीता ही राम हैं । इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । सन्त लोग इसी तत्त्वको बुद्धिके द्वारा भलीभाँति जानकर जन्म-मरणरूपी संसारके पार पहुँच सके हैं ।' (अद्भुतरामायण)

श्रीसीता श्रीरामकी ज्योति हैं, जिस प्रकार सविताका भर्ग है । राहुके शिरके समान सविता और 'वरेण्यं भर्गः' एक ही वस्तु हैं । इसी प्रकार शिवकी ज्योति अन्नपूर्णा हैं और श्रीकृष्णकी ज्योति राधा हैं ।

श्रीचण्डीमें जो महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती-रूपमें असुरनाशिनी हैं वही रामायणमें असुरनाशिनी कालरात्रि हैं । रावणकी सभामें श्रीहनूमान्‌ने कहा था—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे ।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ॥

(वा० रा० सु० ५२ । ३४)

'हे रावण ! जिन्हें तुम सीता समझते हो, जो आज तुम्हारे घरमें अवस्थित हैं, उन्हें तुम कालरात्रि ही समझो । वह सर्वलङ्काविनाशिनी हैं ।' श्रीचण्डी भी वही कालरात्रि हैं । श्रीचण्डीके समान वही योगमाया, महामाया, जगद्धात्री हैं ।

जिस प्रकार भगवान् वाल्मीकिके समान दूसरा कवि इस जगत्में नहीं, उसी प्रकार समस्त जगत्में सीता एक ही थीं, हैं और सदा रहेंगी । रामायणमें श्रीसीतारामका यशोवर्णन कर भगवान् वाल्मीकि पूर्ण हो गये । भगवान् ब्रह्माने जब सब उपादान देकर आदिकविको महाभारत-रचनाके लिये कहा तब आदिकवि बोले—मैं तो पूर्ण हो गया हूँ, अब किसलिये परिश्रम करूँ ? परन्तु आपकी आज्ञानुसार मेरे पश्चात् जब व्यासदेव आवेंगे तो मैं उन्हें काव्यका बीज बतला दूँगा । यह बात बृहद्धर्मपुराणमें मिलती है । मैं भगवान्‌का यशोवर्णन कर पूर्ण हो गया हूँ, यह बात आधुनिक जगत्में किसी भी कवि अथवा ग्रन्थलेखकके मुखसे नहीं सुनी गयी । इसीलिये मैंने कहा है कि वाल्मीकिके समान ही श्रीसीता भी एक ही हैं ।

समस्त जगत्‌के साहित्य वा धर्ममें ऐसा दूसरा कोई नहीं है। रूप, गुण और लीलामें ऐसा दूसरा नहीं है। स्वरूपकी तो बात ही निराली है। मैं कहता हूँ कि श्रीसीता रूपमें अतुलनीया हैं। इससे अधिक कहना अनावश्यक है। अकम्पन रावणसे कहता है—

'उनकी सीता नामकी सुन्दर भार्या है जो संसारभरकी नारियोंमें श्रेष्ठ है। उसका कटिप्रदेश अत्यन्त सुन्दर है, उसके सारे अवयव सुडौल हैं। वह स्त्रियोंमें रत्नके समान है और रत्नोंसे सुसज्जित है। मनुष्यलोककी स्त्रियोंकी तो कौन कहे, देवाङ्गनाओं, गन्धर्विनियों, नागपत्नियों और अप्सराओंमें भी कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो उसकी समता कर सके।'　　(वा० रा० अरण्य० ३१। २९-३०)

शूर्पणखा भी रावणसे कहती है—

'रामकी धर्मपत्नी विशाल नेत्रोंवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा अपने पतिको अत्यन्त प्रिय है और सदा उसके अनुकूल आचरण एवं हितसाधनमें तत्पर रहती है। उसके सुन्दर केश हैं, सुन्दर नासिका और सुन्दर जङ्घाएँ हैं। वह अप्रतिम सुन्दरी है और उसका बड़ा यश है। हे देवदेव! वह इस वनकी मानो दूसरी लक्ष्मी है। उसका तपाये हुए सोनेके समान वर्ण है। सीता उसका नाम है, विदेहकी वह पुत्री है, उसके जघन बहुत सुन्दर हैं और कटिप्रदेश अत्यन्त क्षीण है। मैंने वैसी सुन्दर नारी पृथिवीतलपर कहीं नहीं देखी। और तो क्या, देवाङ्गनाओं, गन्धर्विनियों, यक्षपत्नियों तथा किन्नरियोंमें भी कोई वैसी सुन्दरी नहीं है।'

इससे बढ़कर रूपका वर्णन और क्या होगा? तथापि श्रीभगवान्‌ने जो कुछ कहा है वह बहुत ही सुन्दर है—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः।
अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः (रसः)
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥

'यह साक्षात् गृहलक्ष्मी है, मेरे नेत्रोंको जुड़ानेके लिये यह अमृतकी सलाईका काम देती है, इसका स्पर्श शरीरके लिये प्रचुर चन्दनरसके समान शीतल है, इसकी भुजलता मेरे कण्ठमें शीतल और चिकने मोतियोंके हारकी शोभा धारण करती है। इसका सब कुछ मुझे अतिशय प्रिय है, केवल इसका वियोग मेरे लिये असह्य है।'

भगवान् पुनः कहते हैं—

मध्यं केसरिभिः स्मितञ्च कुसुमैर्नेत्रं कुरङ्गीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरुतं हा हा हृतं कोकिलैः।
वल्लीभिर्ललितं गतं करिवरैरित्थं विभक्त्याञ्जसा
कान्तारे सकलैर्विलासपटुभिर्नीतासि किं मैथिलि॥

गुणोंका मैं अधिक उल्लेख न करूँगा। स्त्रियोंका जो रमणीय गुण है उसे ही कहकर विश्राम लूँगा। जगन्माता जगदेकनाथके परमवाक्यसे व्यथित होकर श्रीलक्ष्मणसे कहती हैं—'हे सुमित्रानन्दन! मेरे लिये चिता तैयार करो। मेरे रोगकी अब यही दवा है। इस झूठे कलङ्कका टीका सिरपर लगाये मैं जीवित नहीं रह सकती।' माता उस समय भी अधोमुखस्थित पति-देवताको प्रदक्षिण और प्रणाम करना नहीं भूलती हैं। केवल स्वामीको ही नहीं, देवता और ब्राह्मणको भी नहीं भूलतीं। लिखा है कि—

मिथिलेशकुमारी देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके हाथ जोड़कर अग्निके समीप इस प्रकार कहने लगी—'यदि मेरा हृदय रघुकुलनन्दन श्रीरामके चरणोंसे क्षणभरके लिये भी दूर नहीं होता तो अखिल विश्वके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें। यदि रघुनन्दन मुझ निर्दोष चरित्रवालीको भी दूषित समझते हैं तो ये लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।'

'मेरा हृदय मेरे स्वामीसे यदि क्षणभरके लिये भी न हटा हो'—इससे अधिक स्त्रीके लिये शरीर धारण करनेका गुण शायद और कोई नहीं है। यदि और भी कहें तो कह सकते हैं कि मिथ्या लोकापवादके कारण जब श्रीभगवान्‌ने लक्ष्मणके द्वारा सीताका त्याग किया तब भी इस त्रिलोकजननीने भर्ताके प्रति किसी कठोर शब्दका प्रयोग नहीं किया। वनमें रोते-रोते वह बोलीं—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

'स्त्रीके लिये उसका पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिये स्वामीका कार्य स्त्रीके लिये प्राणोंसे भी प्यारा है।'

पातालप्रवेशकालमें सीताने कहा था—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

'यदि मैं रघुनन्दनको छोड़कर किसी परपुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं करती तो पृथिवीदेवी मुझे अपने अन्दर स्थान दें।'

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

'यदि मैं मन, वाणी और कर्मसे श्रीरामका अर्चन करती हूँ तो पृथिवीदेवीको चाहिये कि वे मुझे अपने अन्दर अवकाश दें।'

यथैस्य सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

'यदि मेरा यह कथन सत्य है कि मैं रामको छोड़कर किसी दूसरेको नहीं जानती तो देवी भूतधात्री मुझे अपने गर्भमें स्थान दें।'

रूप और गुणके विषयमें कुछ बातें कही गयीं। अब लीलाके विषयमें कुछ कहकर मैं स्वरूपका कुछ निर्देश करूँगा। सुन्दरकाण्डके आधारपर यह आलोचना की जा रही है।

भगवान् वाल्मीकिने इस काण्डका नाम सुन्दरकाण्ड क्यों रक्खा? बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड—इन नामकरणोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती; परन्तु सुन्दर-काण्ड-नामकरणमें मानो कुछ विशेषता है।

रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम्।

रामायण लोगोंको बहुत प्रिय है और यह आदिकाव्य है। अध्यात्मरामायणके अन्तिम श्लोकके प्रथम चरणमें रामायणको जनमनोहर आदिकाव्य कहा गया है। समस्त रामायण ही मनोहर है, उसके अन्दर सुन्दरकाण्ड अत्यन्त मनोहर है। जिस प्रकार महाभारतका विराट्-पर्व सर्वश्रेष्ठ अंश है, उसी प्रकार रामायणमें सुन्दरकाण्ड सर्वश्रेष्ठ अंश है, इसके श्रेष्ठ होनेका कारण बतलाते हुए कहा गया है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥

सुन्दरकाण्डमें राम सुन्दर हैं, सुन्दरकी कथाएँ सुन्दर हैं, सुन्दरमें सीता सुन्दरी हैं, सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है? सुन्दरमें रामकी कथा तो है नहीं, फिर 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' क्यों कहा गया है?

सुन्दरकाण्डमें प्रधान चरित्र दो हैं। श्रीसीता और श्रीहनूमान्। श्रीहनूमान् तो भक्त हैं और श्रीसीता क्या हैं? पहले कहा जा चुका है कि श्रीराम-सीता अभिन्न हैं—

'गिरा अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।'

सीता शक्ति हैं और श्रीराम शक्तिमान् हैं। एक होने-पर भी शक्ति शक्तिमान्की भक्त हैं—सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। क्योंकि सीताका हृदय एक क्षणके लिये भी श्रीरामको नहीं छोड़ सकता। रामके सौन्दर्यको लेकर ही सीता त्रैलोक्यसुन्दरी हैं। फलतः राम ही सीता बनकर सुन्दर हो रहे हैं।

रामतापनीय उपनिषद्में कहा है—

यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या जानकी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः।

'श्रीरामचन्द्र साक्षात् भगवान् हैं और देवी जानकी भूर्भुवः स्वःरूप व्याहृति हैं। इसलिये उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'

राम ही जानकी हैं, इसीसे रामके सौन्दर्यमें ही राम-मानस-सरो-मरालिकाका सौन्दर्य है। सुन्दरकाण्डमें जिस कुन्तलाकुल-कपोल-सुन्दरी सीताके रूप और गुणका विकास है, वह क्या जाग्रत और क्या स्वप्न, सर्वदा श्रीरामके चरण-कमलोंमें सब कुछ समर्पण किये हुए है—इसीलिये कहा गया है—'सुन्दरे सुन्दरो रामः।'

हनूमान्ने रावणको अति तुच्छ मानकर कहा था—

न मे समा रावणकोटयोऽधमाः
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।

'रावण-जैसे करोड़ों अधम मेरी समता नहीं कर सकते। मैं श्रीरामका दास हूँ, अतः मेरे पराक्रमका कोई थाह नहीं पा सकता। रामका दास होनेके कारण मुझमें अपार विक्रम है।' दास होनेसे जहाँ इतना शौर्य-वीर्य प्रस्फुटित हो उठता है, वहाँ भक्तका सौन्दर्य भगवान्का ही है। इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' कहा गया है। 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' का अर्थ तो समझमें आया; परन्तु सुन्दरमें सभी सुन्दर है, इसका क्या अभिप्राय है?

क्या सुन्दरमें सब सुन्दर नहीं है ? शतयोजनविस्तीर्ण, भीमदर्शन, महोन्नततरङ्गसमाकुल, भीमनक्रभयङ्कर, अगाध गगनाकार सागरको लाँघना; मारुतिकी बल-परीक्षाके लिये सुरसाका विघ्न पैदा करना, मैनाककी अभ्यर्थना—याचनापर श्रीहनूमान्‌का यह कहना कि 'मैं रामकार्य करने जा रहा हूँ, इस समय मुझे भोजन करने या विश्रामके लिये कहाँ अवसर है, मुझे तो अत्यन्त शीघ्र जाना है'; सिंहिका राक्षसीके हनूमान्‌की छायापर आक्रमण कर समुद्रमें मारुतिका मार्ग रोकनेपर उसका विनाश, समुद्रके दक्षिण-किनारे त्रिकूट-शिखरपर लङ्कापुरीका दर्शन, सन्ध्याकालमें सूक्ष्म देह धारणकर लङ्कामें प्रवेश करते समय राक्षसीवेशधारिणी लङ्किनीपर हनूमान्‌का चरण-प्रहार, हनूमान्‌के वाम मुष्टि-प्रहारसे लङ्किनीका रक्त-वमन, लङ्किनीके द्वारा सीताका संवाद, सीताका अन्वेषण, घने शिंशपा पेड़के नीचे 'देवतामिव भूतले'—

एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ।
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् ॥

(श्रीहनूमान्‌जीने जगदम्बा जानकीजीको इस प्रकार देखा, मानो पृथिवीतलपर कोई देवाङ्गना उतर आयी हो । वे एक वेणी धारण किये हुए थीं, उनका शरीर दुर्बल था, आकृति दीन थी, मलिन वस्त्र पहने हुए थीं, पृथ्वीपर लेटी हुई थीं, शोचमें पड़ी हुई थीं और राम-रामकी रटन लगाये हुए थीं ।)

—जनकनन्दिनीका दर्शन; रात्रिकालमें स्त्रीजन-परिवारित दश मुख, बीस भुजावाले नीलाञ्जन-राशिके समान रावणका सीता-दर्शन; रावण और सीताका उत्तर-प्रत्युत्तर, जानकीके परुष वाक्य श्रवणकर उनका वध करनेके लिये रावणका खड्ग उठाना, मन्दोदरीका निवारण करना, रावणके प्रस्थान करनेपर उसकी दासियोंका तर्जन-गर्जन और उत्पीड़न, त्रिजटाका स्वप्नवृत्तान्त, राक्षसीवृन्दका भयभीत तथा निद्रित होना, सीताका रुदन और प्राणत्याग करनेकी चेष्टा, वृक्षके ऊपरसे श्रीहनूमान्‌का राम-वृत्तान्त-वर्णन, सीता और हनूमान्‌का कथोपकथन, अँगूठी प्रदान करना, अशोकवाटिकाका विध्वंस, रावणकी सेना और अक्षयकुमारका वध, इन्द्रजीतके द्वारा बन्धनमें हनूमान्‌का रावणके समीपमें लाया जाना, रावणको उपदेश, रावणका क्रोध, पूँछमें अग्निप्रदान, लङ्कादहन, पुनः सीतासे बातचीत करके सागरका लाँघना, वानरोंके साथ मिलना, मधुवनके फल खाना और उसे उजाड़ना, राम और सुग्रीवको सीताका संवाद सुनाना, रामके द्वारा हनूमान्‌का आलिङ्गन—सुन्दरकाण्डकी ये सभी कथाएँ बड़ी सुन्दर हैं ।

इसके पश्चात् 'सुन्दरे सुन्दरी सीता' के विषयमें तो कहना ही क्या है ? सतीके सतीत्वका तेज, सीता और हनूमान्‌के कथोपकथनमें सीताके चरित्रकी रमणीयता—इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरी सीता' कहा है और इसीलिये कहा गया है कि 'सुन्दरे किन्न सुन्दरम्'—सुन्दरकाण्डमें असुन्दर क्या है ?

[२]

नाम, रूप, गुण और लीलाकी आलोचनासे तत्त्व-विचारमें रस आता है, और तत्त्वस्वरूपकी धारणा नहीं करनेसे नाम-रूप आदिमें गम्भीरता नहीं आती । हम जिनके तत्त्वकी आलोचना करते हैं वही सर्वव्यापिनी चैतन्यरूपसे भूर्भुवःस्वर्लोकमें व्याप्त हो रही हैं तथा इन सर्वव्यापी सर्वानुस्यूत चैतन्यकी घनीभूत मूर्ति ही उपासना-की वस्तु है—इसे जाने बिना उपासना ठीक-ठीक नहीं होती । हम जिनकी उपासना करते हैं वही सर्वप्रधान हैं—यह धारणा न होनेसे अथवा हमारी उपासनाकी वस्तुसे बढ़कर भी कुछ और है, ऐसी धारणा होनेसे उपासनाका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ।

[३]

श्रीसीताका तत्त्व क्या है, इसे मैं श्रीसीता-उपनिषद् तथा श्रीअध्यात्मरामायणसे उल्लेखकर इस लेखका उप-संहार करता हूँ । 'का सीता किं रूपमिति—सीता कौन हैं, उनका रूप कैसा है ?'—देवतालोग प्रजापतिसे पूछते हैं । ब्रह्मा कहते हैं कि मूलप्रकृतिरूपा होनेसे सीताको प्रकृति कहते हैं ।

प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते ।

प्रणव (अ, उ, म्), नाद, बिन्दु, कला और कला-तीत—इस सत्ताङ्कसे जटित होनेके कारण सीता ही प्रणव-रूपिणी हैं । वही सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृति हैं । वही त्रिवर्णात्मा साक्षात् माया हैं । 'सी' में जो ईकार है वह प्रपञ्च-बीज है, वही माया है । विष्णु संसारके बीज हैं और

ईकार माया है। त्रिगुणात्मिका सीता साक्षात् मायामयी हैं, वह अविद्यास्वरूपिणी हैं। साथ ही वही विद्यास्वरूपिणी भी हैं। 'स' कार सत्यका नाम है; यही अमृत, प्राप्ति और सोम हैं। और 'त' कार है रजतसौन्दर्यमण्डित विराजमान यशस्वी मणिविशेष।

ईकाररूपिणी अव्यक्तरूपिणी महामाया हैं—सोमके अमृत अवयवरूप दिव्य अलङ्कारद्वारा तथा माला-मुक्तादि अलङ्कारसे भूषिता होकर प्रकाशित होती हैं।

माताका प्रथम रूप शब्दब्रह्म प्रणव है, वही वेदपाठके समय प्रसन्न होकर उत्पन्न हुआ था। माताका द्वितीय रूप है नारीरूप—जो पृथ्वीसे हलके अग्रभागसे उत्पन्न हुआ है। तृतीय रूप है ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा। शुनकऋषि-प्रणीत ग्रन्थमें सीता इसी रूपमें वर्णित हुई हैं।

फिर श्रीसीताजीका और कैसा रूप है? श्रीरामके निकट रहनेके कारण यह जगदानन्दकारिणी हैं और जो कुछ देहविशिष्ट है सबकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारकारिणी भी यही सीतादेवी हैं। सीता ही भगवती मूलप्रकृति हैं। ब्रह्मवादी कहते हैं कि सीता ही प्रणव होनेके कारण प्रकृति हैं। तब सीता क्या नहीं हैं? श्रुति कहती है—

'वे सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वकीर्तिमयी हैं, सर्वधर्ममयी हैं, सबका आधार और कार्य-कारण दोनों हैं। वही महालक्ष्मी हैं, देवाधिपति भगवान्से भिन्न और अभिन्न दोनों हैं; चेतन भी वही हैं और अचेतन भी वही हैं। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सबकी आत्मा वही हैं। यही प्रकृतिके गुण और कर्मविभागके पार्थक्य-हेतु शरीर बनी हुई हैं। देव, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्व सब उन्हींके रूप हैं। दैत्य, राक्षस, भूत, प्रेत आदि भूतोंका आदिशरीर वही हैं। पञ्चमहाभूत, इन्द्रिय, मन और प्राण भी उन्हींके स्वरूप हैं।'

श्रुति फिर कहती है—सीता शक्ति हैं; वह इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और साक्षात् शक्ति हैं। वही इच्छा-शक्तिके तीन भेद भी हैं; अर्थात् श्रीभूमि और लीलास्वरूपमें वह भद्ररूपिणी हैं, प्रभावरूपिणी हैं और सोम-सूर्य-अग्निस्वरूपिणी हैं। सोमात्मिका होनेके कारण सीता ओषधियोंके ऊपर प्रभाव विस्तार करनेवाली हैं। वह कल्पवृक्ष, पुष्प, फल, लता और गुल्मस्वरूपा हैं। फिर औषधसे उत्पन्न औषध-रूपमें वह अमृतस्वरूपा होकर देवताओंको यज्ञफल-प्रदान करनेवाली हैं।

वही सीता अमृतद्वारा देवताओंको, अन्नद्वारा पशुओंको, तृणद्वारा तृणभोजी जीवोंको तृप्त करती हैं। वह सूर्यादि सब लोकोंका प्रकाश करती हैं। वही दिन-रात्रिस्वरूपिणी हैं। समयका जो प्रकाश-भेद है सब वही हैं। निमेषसे आरम्भ करके परार्द्धपर्यन्त जो कालचक्र है वही जगचक्र है और इस प्रकारसे सीता ही चक्रवत् परिवर्तमाना हैं। श्रुतिने कहनेमें कुछ भी शेष नहीं रक्खा।

वह अग्निरूप होकर समस्त जीवधारियोंकी क्षुधा और पिपासाके रूपमें स्थित हैं, देवताओंका मुखस्वरूप हैं, वनकी ओषधियोंमें शीत और उष्णरूपसे व्याप्त हैं तथा काष्ठोंके भीतर और बाहर नित्यानित्यरूपसे स्थित हैं।

श्रीदेवी लोकरक्षाके लिये रूप भी धारण करती हैं। पृथ्वीरूपसे वह त्रिभुवनको आश्रय देती हैं; प्रणवरूप भी वही हैं। समस्त ओषधि और प्राणिगणके पोषणके लिये सर्वरूपा हैं। वह क्रिया-शक्तिस्वरूप श्रीहरिके मुखसे उत्पन्न नाद हैं। नादसे ॐकार इत्यादि हैं। वह ऋग्यजुःसामरूप वेदत्रयी हैं। इक्कीस शाखाओंसे ऋग्वेद, एक सौ नव शाखाओंसे यजुर्वेद तथा सहस्र शाखासे सामवेद वही हैं। इसके अतिरिक्त पाँच शाखाओंमें अथर्ववेद भी वही हैं।

सीता-उपनिषद्में और भी बहुत-सी बातें हैं। मूल-ग्रन्थमें उन्हें देखना चाहिये। अब मैं अध्यात्मरामायणसे कुछ सीता-तत्त्वका उल्लेख करता हूँ—

एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया।

तथा—

योगमायापि सीतेति।

'एकमात्र सत्यवस्तु श्रीराम ही बहुरूपिणी मायाको स्वीकारकर विश्वरूपमें भासित हो रहे हैं और सीता ही वह योगमाया हैं।' लोकविमोहिनी हरिनेत्रकृतालया श्रीसीताने श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायानुसार श्रीसीतारामके एक सर्वश्रेष्ठ भक्तको ज्ञानका पात्र जानकर एक बार तत्त्वज्ञान प्रदान किया था। श्रीसीताजी कहती हैं कि रामको परब्रह्म सच्चिदानन्द ही जानना चाहिये।

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥

'मुझ सीताको सर्ग, स्थिति और अन्तकारिणी मूलप्रकृति जानो। उनके सान्निध्यसे ही मैं प्रमादशून्य होकर सब कुछ

सृजन करती हूँ। रामायणमें जो कुछ होता है, यहाँतक कि मेरा पाणिग्रहणतक भी सब मैं ही करती हूँ। विश्वका सारा कार्य शक्तिरूपसे मैं ही करती हूँ। सदासे करती आ रही हूँ और करती रहूँगी।'

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥

'इस प्रकारके सारे कर्म मैं ही करती हूँ । उन्हें लोग श्रीराममें, जो वास्तवमें निर्विकार एवं अखिल विश्वकी आत्मा हैं, आरोपित करते हैं ।' राम कुछ भी नहीं करते, जो कुछ होता है सब मायाके गुणोंके अनुग्रहसे होता है । कलिमें अधिकांश मनुष्य हाथीके अङ्गोंके समान श्रीभगवान्के एक-एक भावको ही देखते हैं । समग्र ब्रह्मको जाननेकी इच्छा न होनेके कारण इतना दंगा-फसाद मचा रहता है। श्रीगीता कहती है—

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।

'इस नौ दरवाजोंके शरीररूपी घरमें रहता हुआ आत्मा न तो कुछ करता है और न करवाता है।'

इस निर्गुण ब्रह्मकी बात ऐसी ही है। फिर—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

'हे अर्जुन, ईश्वर समस्त भूतप्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर देहरूपी यन्त्रपर आरूढ़ हुए उन सारे भूतोंको अपनी योगमायासे घुमाता है।'

तथा—

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

'मैं उन्हें मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ।'

एवं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
······न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

'यह आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है।···शरीरका वध करनेसे आत्माका वध नहीं होता।' एक ही कालमें यह सब कुछ वही हैं; अर्थात् समकालमें वह आप ही निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, विश्वरूप, सर्वहृदिस्थ आत्मा तथा सिरसे लेकर पदोंके नखपर्यन्त सर्वसौन्दर्यसार हैं। जो साधक पूर्ण ईश्वरभावनाके द्वारा सांसारिक भावनाको चित्तसे दूर कर सकते हैं वह सहज ही इस मृत्युसंसारसागरको पारकर निरन्तर श्रीभगवान्के परमपदमें स्थित रहते हैं।

परात्परा शक्ति श्रीसीता

(लेखक—श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराज)

सकलकुशलदात्रीं भक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम् ।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहर्त्रीं
हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तभर्त्रीम् ॥

श्रीमज्जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीकी अपार महिमा है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा धर्म-ग्रन्थोंमें इनकी अनन्त लीलाओंका शुभ वर्णन पाया जाता है। ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया आद्या-शक्ति हैं । इन्हींके भ्रुकुटि-विलासमात्रसे उत्पत्ति-स्थिति-संहारादि कार्य हुआ करते हैं। श्रुतिका वाक्य है—

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥

(श्रीरामतापनीय-उत्तरार्द्ध)

समस्त देहधारियोंकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली आद्या शक्ति मूल-प्रकृतिसंज्ञक श्रीसीताजी ही हैं। पुनः—

निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादिसर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ।

(श्रीसीतोपनिषद्)

जिसके नेत्रके निमेष-उन्मेषमात्रसे ही संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा संहारादि क्रियाएँ होती हैं, वह श्रीसीताजी हैं। तिरोधान, अनुग्रहादि सर्वसामर्थ्यसम्पन्न होनेसे श्रीजानकीजी साक्षात् आद्या परात्परा शक्ति कहलाती हैं। पुनः—

भूर्भुवः स्वः सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोका अन्तरिक्षं सर्वे त्वयि निवसन्ति । आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वांस्त्वꣳ सन्धत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्याप्रदात्रि धात्रि त्वाꣳ सर्वे वयं प्रणमामहे प्रणमामहे ।

(श्रीमैथिलीमहोपनिषद्)

'हे श्रीजनकराजतनये! पृथिवी, पाताल तथा स्वर्गादि तीनों भुवन, सप्तद्वीपवती वसुन्धरा, तीनों लोक तथा आकाश—ये सब आपमें प्रतिष्ठित हैं। आमोद, प्रमोद, विमोद, संमोदादि सबको आप धारण करती हैं। अञ्जनी-नन्दन पवनपुत्रको आपने ही ब्रह्मविद्याका सदुपदेश दिया था। हे जननी! हम सब महर्षिगण आपके चरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं।' पुनः—

अर्वाची सुभगे भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥
(ऋ० ३।८।९)

'हे असुरोंका नाश करनेवाली श्रीसीते! हम सब आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं, आप हमारा कल्याण करें।'

अथर्वणवेद-उत्तरार्द्धकी श्रुति है—

जनकस्य राज्ञः सद्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपरानन्द-मूर्तिर्गायन्ति मुनयोऽपि देवाश्च, कार्यकारणाभ्यामेव परा तथैव कार्यकारणार्थे शक्तिर्यस्याः, विधात्रीश्रीगौरीणां सैव कर्त्री, रामानन्दस्वरूपिणी सैव जनकस्य योग-फलमिव भाति ।

'महाराजा जनकजीके राजमहलमें जो श्रीसीताजी प्रकट हुई हैं वह सर्वपर, आनन्दमूर्ति हैं। मुनिगण और देवगण उनका गान करते हैं। कार्य-कारणसे पर और कार्य-कारण-शक्तिसम्पन्ना हैं। ब्रह्माणी, लक्ष्मी और गौरी आदि अनन्त शक्तियोंकी उत्पादिका हैं। श्रीरामानन्दस्वरूपिणी हैं। वही श्रीजनकजीके योगफलके समान परम शोभा देती हैं।'

—इत्यादि अनन्तानन्त श्रुतियाँ भगवती श्रीसीताजीके परत्वका मुक्तकण्ठसे प्रतिपादन करती हैं। वाल्मीकिसंहिता-में तो श्रीजानकीजीको श्रुतियोंकी भी माता बतलाया है। एक बार सब श्रुतियोंको यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि हमारे माता-पिता कौन हैं? इसके जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयास किया गया। पर जब पता न लगा तब श्रुतियाँ श्रीब्रह्माजीके पास गयीं और बोलीं—

कास्माकं जननी देव, कः पितेति निबोधय ।

इसके उत्तरमें श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

तामेव जानकीं वित्त जननीमात्मनः पराम् ।
श्रीरामं पितरं वित्त सत्यमेतद्वचो मम ॥

'उन्हीं श्रीजानकीजीको तुम अपनी जननी समझो और श्रीरामजीको ही अपना पिता समझो, यह मैं तुमसे सत्य-सत्य वचन कहता हूँ।' इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसीताजी सकल श्रुतिवन्दिता परात्परा शक्ति हैं।

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम् ।
मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम् ॥
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम् ।

'नित्या, परमनिर्मला, परमविशुद्धा, गुणआगरी, श्रीकी भी परम श्री, आद्याशक्ति, महेश्वरी, श्रीरामजीसे अभिन्ना, श्रीजनकात्मजा, मैथिली, माता श्रीसीताजीकी मैं वन्दना करता हूँ।' श्रीशङ्करजीका भी वाक्य है—

सीतायाश्च परादेव्या लीलामात्रमिदं जगत् ।

'यह परमाश्चर्योंसे परिपूर्ण जगत् परात्परा देवी श्रीसीता-जीका केवल लीलामात्र ही है।'

सदाशिवसंहितामें श्रीसाकेतधामके वर्णनमें आया है—

तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिनमस्कृता ।

'उस दिव्यधामके परमरमणीय मण्डपके सिंहासनके मध्य-भागमें समस्त शक्तियोंसे नमस्कृता श्रीसीताजी विराजमान हैं।' श्रीबृहद्विष्णुपुराणान्तर्गत श्रीमिथिला-माहात्म्यमें भी—

जगद्धात्रीं महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम् ।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सरकिन्नराः ॥

'जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी शक्ति श्रीसीताजीको देखकर ब्रह्मादि देवगण, नारदादि मुनिगण, गन्धर्व, किन्नर और अप्सरागण परम हर्षित हुए।' श्रीमहा-रामायणमें भी शिव-वाक्य है—

जानक्यंशादिसम्भूताऽनेकब्रह्माण्डकारिणी ।
सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी ॥

'श्रीजानकीजीके अंशोंद्वारा ही अनेकानेक जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। वह तो मूल-प्रकृतिस्वरूपिणी महामाया आद्याशक्ति हैं।' महाशम्भुसंहिता-में श्रीअगस्त्यजीने अपने प्रिय शिष्य श्रीसुतीक्ष्णजीसे कहा है—

सीताकलांशाद्बह्व्यश्च शक्तयः सम्भवन्ति हि ।

'श्रीसीताजीके कलांशसे बहुत-सी शक्तियाँ उत्पन्न

होती ही रहती हैं।' श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने भी भगवतीकी अपरिमित शक्तिका वर्णन करते हुए लिखा है—

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
च्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दत्तां नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम्॥

'दिक्पालादि और लोकपालादिके ऐश्वर्य-भोग तथा आश्चर्यमय अद्भुत ब्रह्माण्ड केवल जिनकी कृपा-कटाक्षपर ही सर्वथा अवलम्बित हैं, जो असीम वात्सल्य-रस-पूर्णा हैं वे विद्युत्पुञ्जके समान गौर तेज-सम्पन्ना परम क्षमासम्पन्ना, कमलनयना, भगवत्प्रिया, आद्याशक्ति भगवती श्रीसीताजी निरन्तर हमें मोक्षादि सम्पत्ति प्रदान करें।'

श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीसीताजीका बड़ा ही महिमामय गुण-गान किया है। यथा—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

'उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली, सर्वशक्ति-सम्पन्ना, क्लेशहारी, समस्त कल्याणकारिणी, श्रीराम-वल्लभा भगवती श्रीसीताजीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

पुनः—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा-रमा-ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु लय होई। राम-बाम-दिसि सीता सोई॥

× × ×

लखा न मरम राम बिन काहू। माया सब सिय माया माँहू॥

× × ×

जयति श्रीस्वामिनी सीय सुभ नामिनी
दामिनी कोटि निज देह दरसै।
इंदिरा आदि दै मत्त-गज-गामिनी
देव-भामिनि सबै पाँव परसै॥

(विनय-पत्रिका)

एक भक्तने जगन्माताकी स्तुति करते हुए क्या ही अच्छा कहा है—

सुराः सर्वे खर्वास्तव चरणमूले सुरतरो-
स्त्वमासीना मूलेऽनुचितमिति मत्वा सुरतरुः।
भवन्मञ्चाधस्ताद्भुवि विविधरत्नेषु बहुधा
विशन् प्रायश्चित्तं चरति बहुरूपैः परतमे॥

(श्रीजानकीचरणचामरस्तोत्र)

हे परमेश्वरी! आपके सामने बड़े-बड़े देवगण परम तुच्छ हैं अतः वे जब आपके दरबारमें आते हैं तो आपके श्रीचरण-मूलमें आकर नम्र-भावसे बैठते हैं। यह देखकर कल्प-वृक्षने सोचा कि जिसके चरणोंकी महान् देवतागण वन्दना करते हैं वह भगवती श्रीसीताजी मेरी छायामें बैठती हैं, मैं उनके ऊपर हो जाता हूँ—यह मेरी भारी-से-भारी ढीठता है। हे अम्ब! इस अक्षम्य अपराधको क्षमा करानेके लिये ही इस रत्न-मण्डपकी स्वच्छभूमिमें छाया-रूपेण प्रविष्ट होकर आपके चरणोंका बारंबार स्पर्श करके कल्पतरु अपने अपराधकी क्षमा-याचना करता है। श्रीजानकीजी तो अतुलनीय शक्ति हैं, उनकी तुलनामें अनन्त ब्रह्माण्डमें कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक ही कहा है—

एषा विश्वहतोपमा न तुलनां धत्ते ह्यमुष्या उमा
वाणी चापि रमा च मन्यत इयं निःसंशयं निश्चया।
इन्द्राणी विधिनन्दिनी च सकला देवाङ्गना उत्तमा
मन्यन्तेऽप्सरसोऽपि रूपरसिका अस्या हि दासीसमाः॥

'श्रीजानकीजीकी अप्रतिम महिमाने संसारकी तमाम उपमाएँ हत कर दी हैं। इनकी तुलनामें न उमा आ सकती हैं और न वाणी, न लक्ष्मी और न ब्रह्माणी; उत्तमोत्तम देवाङ्गनाएँ भी इनकी उपमामें नहीं आ सकतीं। उपर्युक्त देवियाँ तथा अप्सरादि तो इनकी दासी-समान हैं।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी इसी आशयपर कहा है—

जो पटतरिय तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर, तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष-बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही॥

वेदान्तके प्रकाण्डवेत्ता महात्मा श्रीकाष्ठजिह्वदेव स्वामीने भी श्रीकिशोरीजीकी अद्भुत महिमा वर्णन की है—

जनक-लली-नख-द्युति-सरिस, निज द्युति कहँ ना जोय।
ब्रह्म-ज्योति प्रगटत नहीं, अजहूँ लज्जित होय॥

ललित पाद-अँगुरीनकी, सोभा अति सरसाय।
पंचदेव मानौं समुझि, बैठे पद ठहराय॥
सिय-कर सुखदायक समुझि, हियेर अति सुख पाय।
तीनौं देवी रेख-मिस, पहुँचीं पहुँचन आय॥
सची-बिधात्री-इंदिरा भाग्य भरहिं निज भाल।
सियकी चितवनि अमिय लहि, लालहु होत निहाल॥

इस प्रकार शास्त्र और महात्मागणोंने श्रीसीताजीको ही आद्या शक्ति, परात्परा शक्ति तथा सर्वशक्तिशिरोमणि कहकर वर्णन किया है। वाल्मीकि-रामायणमें भी महर्षिजीने अन्तमें 'सीतायाश्चरितं महत्' कहकर श्रीजानकीजीकी महत्ताका पूर्ण परिचय दिया है इसलिये यह सिद्ध होता है कि जगदम्बा, श्रीजनकराजपुत्री, श्रीरामप्रिया, श्रीसीताजी परात्परा आद्या शक्ति हैं।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीसीता-तत्त्व

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन', रामायणी)

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

श्रीस्वायम्भुव मनुकी तपस्यासे नैमिषारण्यमें परमप्रभु परमेश्वरके प्रादुर्भावके प्रसङ्गमें श्रीसीता-तत्त्वका इस प्रकार विवेचन पाया जाता है—

बाम भाग शोभति अनुकूला। आदि शक्ति सबबिधि जगमूला॥
जासु अंश उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा, रमा, ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई॥

इन तीन चौपाइयोंमें महाशक्तिस्वरूपा श्रीसीता-तत्त्वका स्वरूप वर्णन करते हुए प्रथम चौपाईके आरम्भमें 'बामभाग' शब्द लिखकर तथा तीसरी चौपाईके अन्तिम चरणमें 'बामदिशि' शब्दका ही सम्पुट लगाकर जो ऐश्वर्य वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि श्रीसीताजी श्रीपरमप्रभुसे सदैव अभिन्नस्वरूपा हैं। इस बातकी पुष्टि ग्रन्थगत अपर प्रसङ्गोंसे भी भलीभाँति हो रही है। उदाहरणार्थ दो-एक प्रसङ्ग यहाँ दिखलाये जाते हैं।

(१) बालकाण्डके अन्तर्गत सती-मोह-प्रसङ्गमें जब सतीजी श्रीरामजीकी परीक्षा ले लज्जित होकर शिवजीके समीप लौटी आ रही थीं, उस समय लीलास्वरूपमें यद्यपि श्रीसीताजीका रावणद्वारा हरण तथा अनलनिवासके द्वारा अन्तर्धान होनेसे स्पष्टतः श्रीरामचन्द्रजीके साथ वियोग दीखता था तथापि मार्गमें अखण्ड अभिन्न श्रीसीताजीका दर्शन श्रीरामजीके साथ-साथ सतीको होता आ रहा था—

सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिर चितवा पाछे, प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥

× × × ×

देखे शिव बिधि बिष्णु अनेका। अमितप्रभाव एकते एका॥

× × × ×

सती बिधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप॥
देखे जहँ-तहँ रघुपति जेते। शक्तिन सहित सकल सुर तेते॥

× × × ×

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। रामरूप दूसर नहि देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीतासहित न बेष घनेरे॥

यहाँ भी वही महत्त्व दिखलायी देता है। जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी अनेकों शिव, बिधि, विष्णुसे सेवित हो रहे हैं, उसी प्रकार श्रीसीताजी भी अमित सती, बिधात्री, इन्दिरा आदिके द्वारा सेवित हो रही हैं।

(२) अवधकाण्डके अन्तर्गत वन-गमनके प्रसङ्गमें जब श्रीगङ्गाजीके तट शृङ्गवेरपुर रथ पहुँचाकर सुमन्तने श्रीरामचन्द्रजीसे महाराज दशरथजीका सन्देशा कहा—

जेहि बिधि अवध आव फिर सीया। सोइ रघुबरहि तुमहि करनीया॥
पितु-सँदेस सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥

और तब श्रीमुखसे उस शिक्षाको सुनकर श्रीसीताजीने स्वयं अपनी नित्य-एकता तथा अभिन्नताके स्वरूपको इस प्रकार उपमासहित निवेदन किया—

प्रभु करुनामय परमबिबेकी। तन तजि रहति छाँह किमि छेकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंद्र तजि जाई॥

यहाँ पहले 'तन' और 'छाया' की उपमासे श्रीचक्रवर्ती दशरथजी महाराजके सन्देशकी ओर लक्ष्य कर वियोगको असम्भव बतलाया गया है। क्योंकि सन्देशमें आया है—

'जो नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई', तो 'फेरिय प्रभु मिथिलेश-किसोरी।' श्रीसीताजी इसीको असम्भव बतलानेके लिये कहती हैं कि कोई कितना भी प्रयत्न क्यों न करे, शरीरके जानेपर शरीरकी छायाको रोका नहीं जा सकता। ऐसी अवस्थामें रोकनेवालेका प्रयास व्यर्थ ही होगा। अतः स्पष्ट है कि यह उपमा रोकनेवाले श्रीदशरथजी तथा श्रीसुमन्तजीको ही लक्ष्य करके कही गयी है। दूसरी दो उपमाएँ श्रीरघुनाथजीके मुखसे निकली हुई, 'फिरहु तो सबकर मिटै खँभारू'—इस आज्ञाके पालनकी असमर्थता-में दी गयी हैं। श्रीसीताजीका तात्पर्य यह है कि 'मेरी क्या सामर्थ्य है जो श्रीकृपालुसे एक क्षणके लिये भी मैं विलग हो सकूँ। प्रभा सूर्यसे अलग होकर क्या कहीं टिकाना पा सकती है ? कदापि नहीं। क्योंकि सूर्यके ओट होते ही उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा।' तात्पर्य यह है कि श्रीरामचन्द्रजीसे अलग होकर श्रीसीताजी जीवित नहीं रह सकतीं। जहाँ सूर्य रहेंगे वहाँ प्रभा अवश्य रहेगी, यह निश्चय है। इसी प्रकार जहाँ श्रीराम हैं वहीं सीता रहेंगी। यही भाव श्रीवाल्मीकीय रामायणमें रावणके प्रति श्रीसीताजीके इस कथनमें आता है—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।

इसी प्रकार चन्द्रमा और उनकी चाँदनीकी दूसरी उपमा भी इसी भावको पुष्ट करते हुए श्रीरामचन्द्रजीके साथ श्रीसीताजीके अहर्निशके वियोगको असम्भव सिद्ध कर रही है। अर्थात् जिस प्रकार सूर्यसे प्रभा दिनमें, तथा रात्रिमें चन्द्रसे चाँदनी अलग नहीं हो सकती उसी प्रकार श्रीसीता-जी दिवस-रात्रि कभी भी श्रीरामजीसे अलग नहीं हो सकतीं।

गिरा अरथ जल बीचि सम, देखियत भिन्न न भिन्न।

अब इस विलक्षण सम्पुटके भीतर जो ऐश्वर्य सूचित किया गया है, उसपर भी किञ्चित् विचार करना चाहिये।

'वाम भाग शोभति अनुकूला'—यह चरण भी ऐश्वर्य-सम्बन्धी ही है। क्योंकि श्रीरामजी तथा श्रीसीताजीका जो अवताररूप माधुर्य-विग्रह स्वायम्भुव मनुको दृष्टिगोचर हो रहा है वह तो लीला-वपु ही सिद्ध है। इसका प्रमाण मनुजीका यह अभिलाष और विश्वास ही है—

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहहीं। भगत-हेतु लीला-तनु गहहीं॥
जो यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमारि पूजहि अभिलाषा॥

इसीलिये उस प्रकट विग्रह—लीलावपुके लिये यह अन्तिम चरण दिया गया है—

राम बाम दिसि सीता सोई॥

परन्तु यह सोई कौन है ? इसीको लक्ष्य करके ऊपरके पाँचों चरणोंमें ऐश्वर्यस्वरूपका वर्णन कर दोनोंका ऐक्य सिद्ध किया गया है। अतः प्रथम चरण उन्हीं आदि-शक्ति, जगमूला, छबिकी खानि श्रीमहालक्ष्मीजीके लिये है जो श्रीवैकुण्ठमें साक्षात् श्रीमन्नारायणकी अनुकूला (अनुकूलस्वरूपा) होकर नित्य वामभागमें शोभित रहा करती हैं। तथा जिस प्रकार श्रीमन्नारायणसे (परस्वरूपसे) अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु अंशरूपमें उपजते हैं, जैसे—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंसते नाना॥

—उसी प्रकार उन आदि-शक्ति महालक्ष्मीजीके अंशसे अगणित गुणकी खानि उमा, रमा और ब्रह्माणी उपजती रहती हैं। अतएव जिनके भ्रुकुटि-विलासमात्रसे जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार-शक्तियाँ प्रकट होती हैं वही सर्वोपरि महाशक्ति श्रीलक्ष्मीजी श्रीसीतारूपमें श्रीरामजीके वामदिशिमें श्रीस्वायम्भुव मनुको दर्शन दे रही हैं। यह बात आगे चलकर स्वयं श्रीरामजीने अपने श्रीमुखसे श्रीमनु-शतरूपाके प्रति कही है। जैसे—

आदिशक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहिं मोरि यह माया॥

महर्षि वाल्मीकिजीके मिलन-समयके वचन भी इसके प्रमाणकी सूचना देते हैं—

श्रुति-सेतु-पालक राम! तुम जगदीश, माया जानकी।
जो सृजति जग, पालति, हरति रुख पाय कृपानिधानकी॥

श्रीआलवन्दारस्तोत्रमें भी इसी सिद्धान्तको पुष्ट करने-वाले वाक्य आते हैं कि जगत्का ईशित्व श्रीजानकीजीको ही है। जैसे—

आकारत्रयसम्पन्नामरविन्दनिवासिनीम्।
अशेषजगदीशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम्॥

यहाँ जिस प्रकार आकारत्रय—अनन्यशेषत्व, अनन्य-भोग्यत्व तथा अनन्यशरणत्वका लक्ष्य है, इसी प्रकार उपर्युक्त प्रथम चौपाईमें तीन ही शब्द 'आदि-शक्ति', 'छबि-निधि' और 'जगमूला' का सङ्केत किया गया है। इस प्रकार विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि 'आदि-शक्ति' में ही

अनन्यशेषत्व सम्भव है। 'आदि-शक्ति' भगवत्-शेष न होकर दूसरा ऐसा कौन अनादि है जिसकी शेष होगी।

छविनिधिमें ही अनन्यभोग्यत्व सम्भव है, क्योंकि छविकी निधि श्रीजी भगवत्-भोग्य न होकर और किसकी भोग्या हो सकती हैं। यही सुन्दरकाण्डमें कहा है—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करै बिकासा॥

तथा सर्वजगत्की मूलस्वरूपामें ही अनन्यशरणत्व सम्भव है। जो स्वयं जगत्की मूल हैं वह भगवत्को छोड़कर अन्य किसकी शरण ले सकती हैं?

जिस प्रकार इस मनु-प्रसङ्गमें श्रीस्वायम्भुव मनुकी अभिलाषा केवल परमप्रभुके दर्शनमात्रकी पायी जाती है, जैसे—

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परमप्रभु सोई॥
अगुन, अखंड, अनंत, अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति-नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद, निरुपाधि, अनूपा॥
संभु, बिरंचि, बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंसते नाना॥

—उसके अनुसार तो ब्रह्मको केवल एक विग्रह—रामरूपमें प्रकट होकर दर्शन देना था। तब श्रीसीता और श्रीरामके दो रूपोंमें श्रीभगवान् क्यों प्रकट हुए? इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि परमप्रभुके जिस स्वरूपका दर्शन मनुजी करना चाहते थे वह शक्तिरहित न होकर नित्यशक्तिसंयुक्त ही है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त सर्व विशेषणोंसे विशिष्ट परब्रह्म नित्य द्विधाविग्रह सशक्ति ब्रह्म ही है, शक्तिरहित ब्रह्म नहीं। इसीसे 'वासुदेव' और 'हरि' शब्दके वाच्यार्थमें परमप्रभुके श्रीलक्ष्मी-नारायण उभय दिव्यविग्रह सम्मिलित हैं।

द्वादश अक्षर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव-पद-पंकरुह, दंपति-मन अति लाग॥
पुनि हरि हेत करन तप लागे। बारि अहार, मूल-फल त्यागे॥

इसी कारण वह परम प्रभु अपने पूर्ण स्वरूपसे अर्थात् शक्तिसंयुक्त लीलातनु (अवतारस्वरूप) श्रीराम और श्रीसीताके रूपमें प्रकट हुए हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है—

नारद-बचन सत्य सब करिहौं। परा-शक्ति समेत अवतरिहौं॥

इसलिये यह अकाट्य और स्पष्ट सिद्धान्त है कि ब्रह्मसे शक्ति भिन्न नहीं है—'देखियत भिन्न न भिन्न।' अतएव जिस प्रकार साक्षात् श्रीमन्नारायणने श्रीरामरूपमें अवतार लेकर भूभार हरने तथा धर्मस्थापन करनेके साथ-साथ अपनी मर्यादाकी सीमा दिखलाकर पुरुषोंके लिये लोक-परलोकका मार्ग प्रशस्त कर दिया है, उसी प्रकार साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीने श्रीसीतारूपमें प्रकट होकर भूभारनिवारण आदि कार्योंके साथ महान् नारी-धर्मकी मर्यादा प्रदर्शितकर स्त्रियोंके लिये लोक-परलोकका सुन्दर मार्ग दिखला दिया है। मानव-जगत्के सम्पूर्ण नर-नारियोंके लिये श्रीसीता-रामजी इस प्रकार आदर्श बने हैं और भक्तोंके लिये तो श्रीयुगल-सरकारने अपना नाम और यश प्रदानकर कुछ अप्राप्य ही नहीं रहने दिया। नीचे इसका किञ्चित् प्रमाण देकर लेख समाप्त किया जा रहा है।

प्रथम श्रीअवधकी जिस प्रकार शोभा—

रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि न जाइ।
अणिमादिक सुख-संपदा, रही अवध सब छाइ॥

—इस दोहेमें वर्णित है। इसी प्रकार श्रीमिथिलाकी शोभाका—

बसे नगर जेहि लच्छिकर, कपट नारि बर बेष।
तेहि पुरकी शोभा कहत, सकुचहिं शारद शेष॥

—इस दोहेमें वर्णन मिलता है। पुनः नारिधर्मकी शिक्षाके प्रमाण इन चौपाइयोंमें प्राप्त होते हैं—

पति अनुकूल सदा रह सीता। शोभा-खानि सुशील बिनीता॥
जानति कृपासिंधु-प्रभुताई। सेवति चरन-कमल मन लाई॥
यद्यपि गृह सेवक-सेवकिनी। बिपुल, सकल सेवाबिधि गुनी॥
निजकर गृह-परिचर्या करहीं। रामचंद्र-आयसु अनुसरहीं॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानहिं। सोइ करि श्री सेवाबिधि जानहिं॥
कौशल्यादि सासु गृह माहीं। सेवहिं सबहि, मानमद नाहीं॥
उमा-रमा-ब्रह्मानि-बंदिता। जगदंबा, संततमनिंदिता॥

जासु कृपाकटाक्ष सुर, चाहत चितवनि सोइ।
राम-पदारबिंदरत, करति स्वभावहि खोइ॥

सियावर रामचन्द्रकी जय!

शक्ति-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीदुर्गादत्तजी शर्मा)

पनी अल्पमतिके अनुसार शास्त्रसिन्धुके तटका अटन करनेसे उपलब्ध हुई बोधकणिकारूप रत्नज्योतिसे प्रकाशित बुद्धिद्वारा निश्चय हुए शक्ति-रहस्यका दिग्दर्शन पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया जाता है।

मन-वाणीके अगोचर एक अद्वैत परतत्त्व (ब्रह्म) में बहुरूपता (विविध नामरूपोंसे दृष्टिगोचर होनेवाले अनन्त ब्रह्माण्डसमुदायरूप) से प्रकट होनेके स्वाभाविक सामर्थ्यको ही शास्त्रोंने माया, प्रकृति और शक्ति आदि नामोंसे सङ्केतित किया है। 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति', 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्यादि श्रुतिवाक्यों तथा 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया' (गीता), 'स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया। साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी॥' (देवीभागवत) इत्यादि वचनोंसे ब्रह्मका ईक्षण, माया और प्रकृति आदि नामोंसे प्रसिद्ध शक्तिद्वारा बहुरूपतासे प्रकट होना सिद्ध है। शक्ति-शब्दकी व्युत्पत्तिसे भी यही बात सिद्ध होती है—

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥
(देवीभा० ९। २। १०)

'श-नाम ऐश्वर्यका और क्ति-नाम पराक्रमका है। एवं ऐश्वर्य-पराक्रमस्वरूप और दोनोंके प्रदान करनेवालीको शक्ति कहते हैं।' इसी आदि-शक्ति प्रकृति-देवीकी विकृति ही जगत् है। अब जिस प्रकार प्रकृति अपने विकृतिरूप जगत्की रचना करती है, यह संक्षेपमें प्रकृति-शब्दके अर्थद्वारा दरसाया जाता है।

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥
गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता।
प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥
प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥
(देवीभा० ९। १। ५—८)

'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और 'कृति' का अर्थ सृष्टि है एवं जो सृष्टि रचनेमें प्रकृष्ट हो उसे प्रकृति कहते हैं। यह प्रकृतिका तटस्थ लक्षण है। 'प्र' शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुणमें बर्तता है, 'कृ' शब्द मध्यम रजोगुणमें और 'ति' शब्द तमोगुणमें बर्तता है। यह प्रकृतिका स्वरूप-लक्षण है, जैसा कि सांख्यशास्त्रमें प्रतिपादन किया है—'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।' इन तीन गुणोंके द्वारा ही तीन देवताओंको अर्थात् सत्त्वसे विष्णुको, रजसे ब्रह्माको और तमसे रुद्रको उत्पन्नकर भगवती जगत्का पालन, उत्पत्ति और लय करती है।

सृजसि जननि देवान् विष्णुरुद्राजमुख्यान्
तैः स्थितिलयजननं कारयस्येकरूपा॥
(देवीभागवत)

इस विषयको बह्वृचोपनिषद्में इस प्रकार वर्णन किया है।

देवी ह्येकाऽग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्··· तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्···सर्वमजीजनत्···। सैषा पराशक्तिः। (१, १ ख)

'सृष्टिके आदिमें एक देवी ही थी, उसने ही ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया; उससे ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए। अन्य सब कुछ उससे ही उत्पन्न हुआ। वह ऐसी परा-शक्ति है।' प्राधानिकरहस्यमें लिखा है—

स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।
पुपोष, पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः।
सञ्जहार जगत् सर्वं सह गौर्या महेश्वरः॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने अर्धाङ्गीभूत त्रिविध-शक्ति—सरस्वती, लक्ष्मी और गौरीकी सहायतासे जगत्का जनन, पालन और लय करते हैं।

न हि क्षमस्तथात्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना।
(दे० भा० ९। २। ९)

'बिना शक्तिके आत्मदेव सृष्टि-रचना नहीं कर सकते।'

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।
स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः॥
(दे० भा० ९। २। १२)

'ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलवाचक 'भग'-शब्दयुक्त भगवतीसे संयुक्त होनेसे आत्माका नाम भगवान् है; स्वेच्छामय होनेसे भगवान् कभी साकार और कभी निराकार होते हैं।'

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

(सप्तशती)

यही जगदम्बा 'जब-जब दानवजन्य बाधा उपस्थित होगी तब-तब मैं अवतीर्ण हो दुष्टोंका नाश करूँगी'—अपनी इस प्रतिज्ञानुसार समय-समयपर दुर्गा, भीमा, शाकम्भरी आदि नामोंसे अवतार लेकर जगत्का क्षेम करती है। एवं देव-देवी, स्त्री-पुरुष आदि स्त्री-पुं-भेदसे, तथा—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

(गीता ७। ५)

—परा और अपरा प्रकृति अर्थात् जड-चेतन-भेदसे दृश्यमान समस्त विश्व शक्तिका ही विलास है। इस प्रकार शक्तिके सगुण रूपका दिग्दर्शन कर अब संक्षेपमें उसके गुणातीत स्वरूपका वर्णन किया जाता है।

एकमेवाद्वितीयं यद् ब्रह्म वेदा वदन्ति वै।
सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं सन्देहं विनिवर्तय॥

(दे० भा० ३। ५। ४३)

'जिसे वेद एक—अद्वैत ब्रह्म कहते हैं वह तुमसे भिन्न है या तुम्हीं ब्रह्म हो इस सन्देहको निवृत्त करो।' इस प्रकार ब्रह्माजीके प्रश्न करनेपर भगवतीने उत्तर दिया—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति खलु विभ्रमात्॥

(दे० भा० ३। ६। २)

'मैं और ब्रह्म सदा एक हैं, हममें भेद नहीं है; जो वह है सो मैं हूँ जो मैं हूँ सो वह है, हममें भेद भ्रमसे भासता है।'

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसङ्गत्वं स्फुटं मम॥

'स्वशक्तिके योगसे मेरा (ब्रह्मका) जगत्कारणत्व सिद्ध है। वस्तुतः जगत्का मिथ्यात्व होनेसे मेरा असङ्गत्व स्पष्ट है। यह मेरा अलौकिक रूप है।'

अर्जुनकी शक्ति-उपासना

(१)

[विजयके लिये]

महाभारतके समय कुरुक्षेत्रमें जब भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रजीने कौरव-सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देखा तो उन्होंने अर्जुनसे उनके हितके लिये कहा—

हे महाबाहु अर्जुन! तुम शत्रुओंको पराजित करनेके निमित्त रणाभिमुख खड़े होकर पवित्र भावसे दुर्गा (शक्ति) का स्तवन करो।

संग्राममें बुद्धिमान् वसुदेवनन्दनके ऐसा कहनेपर अर्जुन रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़कर दुर्गाका ध्यान करते हुए इस प्रकार स्तवन करने लगे—

हे सिद्ध-समुदायकी नेत्री आर्ये! तुम मन्दराचलके विपिनमें निवास करती हो, तुम्हारा कौमार (ब्रह्मचर्य) व्रत अक्षुण्ण है, तुम काल-शक्ति एवं कपाल-धारिणी हो, तुम्हारा वर्ण कपिल और कृष्णपिङ्गल है, तुम्हें मेरा नमस्कार। भद्रकाली तथा महाकालीरूपमें तुम्हें नमस्कार। अत्यन्त कुपित चण्डिकारूपमें तुम्हें प्रणाम। हे सुन्दरि! तुम्हीं सङ्कटोंसे पार करनेवाली हो; तुम्हें सादर नमस्कार। तुम मोर-पंखकी ध्वजा धारण करती हो और नाना भाँतिके आभूषणोंसे भूषित रहती हो। हे महाभागे! तुम्हीं कात्यायनी, कराली, विजया तथा जया हो। अत्यन्त उत्कट शूल तुम्हारा शस्त्र है, तुम खड्ग तथा चर्म धारण करती हो। हे ज्येष्ठे! तुम गोपेन्द्र श्रीकृष्णजीकी छोटी बहिन और नन्दगोपके कुलकी कन्या हो। हे पीताम्बर-धारिणी कौशिकि! तुम्हें महिषासुरका रक्त सदा ही प्यारा है, तुम्हारा हास उग्र और मुख गोल चक्रके समान है, हे रणप्रिये! तुम्हें नमस्कार है। उमा, शाकम्भरी, महेश्वरी, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और धूम्राक्षी आदि रूपोंमें तुम्हें मेरा प्रणाम। हे देवि!

तुम्हीं वेद-श्रवणसे होनेवाला महान् पुण्य हो, तुम वेद एवं ब्राह्मणोंकी प्रिय तथा भूतकालको जाननेवाली हो। जम्बूद्वीपकी राजधानियों और मन्दिरोंमें तुम्हारा निवास-स्थान है। हे भगवति! कार्तिकेयजननि! हे कान्तारवासिनि! दुर्गे! तुम विद्याओंमें महाविद्या और प्राणियोंमें महानिद्रा हो। हे देवि! तुम्हीं स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता और वेदान्त आदि नामोंसे कही जाती हो। हे महादेवि! मैंने विशुद्ध चित्तसे तुम्हारी स्तुति की है, तुम्हारे प्रसादसे रणक्षेत्रमें मेरी सदा ही विजय हो। बीहड़ पथ, भयजनक स्थान, दुर्गम भूमि, भक्तोंके गृह तथा पाताल-लोकमें तुम निवास करती हो और संग्राममें दानवोंपर विजय पाती हो। तुम्हीं जम्भनी (तन्द्रा), मोहिनी (निद्रा), माया, लज्जा, लक्ष्मी, सन्ध्या, प्रभावती, सावित्री तथा जननी हो। तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य और चन्द्रमाको अधिक कान्तिमान् बनानेवाली ज्योति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं भूति-मानोंकी भूति (ऐश्वर्य) हो और समाधिमें सिद्ध तथा चारणजन तुम्हारा ही दर्शन करते हैं।

इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर मनुष्योंपर कृपा रखनेवाली भगवती दुर्गा अर्जुनकी भक्तिको समझकर भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही आकाशमें स्थित होकर बोलीं—

हे पाण्डुनन्दन! तुम स्वयं नर हो और दुर्द्धर्ष नारायण तुम्हारे सहायक हैं; अतः तुम थोड़े ही समयमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लोगे। रणमें शत्रुओंकी कौन कहे साक्षात् इन्द्रके भी तुम अजेय हो।

ऐसा कहकर वह वरदायिनी देवी उसी क्षण अन्तर्हित हो गयी। (महाभारत भीष्मपर्व)

(२)

[गुह्यतम प्रेमलीला-दर्शनके लिये]

एक समय यमुनाजीके तटपर किसी वृक्षके नीचे भगवान् देवकीनन्दनके पार्षद अर्जुन बैठे थे, उन्होंने कथा-प्रसङ्गमें ही भगवान्से प्रश्न किया—

हे दयासागर प्रभो! श्रीशिव तथा ब्रह्माजी आदिने भी आपके जिस रहस्यका दर्शन अथवा श्रवण न किया हो उसीका मुझसे वर्णन कीजिये। पूर्वमें आपने कहा था कि गोप-कन्याएँ मेरी प्रेयसी हैं। वे कितने प्रकारकी और संख्यामें कितनी हैं? उनके नाम क्या-क्या हैं? उनमेंसे कौन कहाँ रहती है? हे प्रभो! उनके कौन-कौनसे कर्म हैं? तथा उनकी अवस्था क्या और वेष कैसा है? हे भगवन्! उनमेंसे किन-किनके साथ आप किस नित्य स्थानपर, जहाँका आनन्द और वैभव भी नित्य है, एकान्त-विहार करते हैं। वह परम महान् शाश्वत स्थान कहाँ और कैसा है? यदि आपकी मुझपर पूर्ण कृपा हो तो यहाँ मेरे सभी प्रश्नोंका उत्तर दीजिये। हे पीड़ितोंकी पीड़ा हरनेवाले महाभाग! आपके जिन अज्ञात रहस्योंको मैं पूछना भूल गया होऊँ उन सबोंका भी वर्णन कीजिये।

अर्जुनके प्रश्नको सुनकर भगवान्ने कहा—यह स्थान, वे मेरी वल्लभाएँ और उनके साथका मेरा विहार, यह मेरे प्राणप्रिय पुरुषोंके भी जाननेकी बात नहीं है। इसे तुम सच मानो। हे सखे! उसकी चर्चा कर देनेपर तुम्हें उसे देखनेकी उत्कण्ठा हो जायगी। जो रहस्य ब्रह्मा आदिके लिये भी द्रष्टव्य नहीं है वह अन्य जनोंके लिये कैसा है, यह कहनेकी बात नहीं। इसलिये हे भाई! उसके बिना तुम्हारा क्या बिगड़ता है, उसे सुननेका आग्रह छोड़ दो।

इस प्रकार भगवान्के दारुण वचन सुनकर अर्जुन दीनभावसे उनके युगल चरणारविन्दोंपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब भक्तवत्सल प्रभुने हँसकर अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया और बड़े प्रेमके साथ उनसे कहा—

यदि तुम उस स्थानको देखना ही चाहते हो तो यहाँ उसका वर्णन करनेसे क्या लाभ? जिस देवीसे समस्त ब्रह्माण्डका आविर्भाव हुआ है, वह अब भी जिसमें स्थित है और अन्तमें जिसमें लीन होगा उसी श्रीमती भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक आराधना करके उनको आत्मसमर्पण कर दो; क्योंकि उन देवीके बिना वह स्थान दिखा देनेमें मैं कभी समर्थ नहीं हूँ।

भगवान्की बात सुनकर अर्जुनके नेत्र आनन्दसे भर आये और उनके आदेशानुसार वे श्रीमती त्रिपुरादेवीके पादुका-स्थानको गये। वहाँ जाकर उन्होंने चिन्तामणिकी बनी हुई वेदी देखी, जो विविध रत्नोंद्वारा निर्माण की हुई

सीढ़ियोंसे अत्यन्त शोभित हो रही थी। उसपर कल्पवृक्ष देखा, जो फूलों और फलोंके भारसे झुका हुआ था। उसके किशलय सभी ऋतुओंमें कोमल रहनेवाले थे, मधु-बिन्दु-वर्षी वायु-कम्पित पल्लवोंसे वह वृक्ष निर्मल प्रतीत होता था। उसपर शुक, कोयल, सारिका, कबूतर आदि रमणीय पक्षियोंका कलनाद हो रहा था। भँवरे गुंजार कर रहे थे

कल्पवृक्षके नीचे उन्होंने बड़ा ही अद्भुत रत्ननिर्मित दिव्य मन्दिर देखा, जो प्रभायुक्त मणियोंसे देदीप्यमान एवं मनोहर था। मन्दिरके भीतर एक रत्नजटित सुवर्णमय सिंहासन था, उसपर विराजमाना प्रसन्नवदना भक्तवत्सला वरदायिनी देवीका अर्जुनने दर्शन किया। उसकी कान्ति बाल-रविके समान थी, वह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे भूषित थी, उसका अङ्ग अभिनव यौवनसे सम्पन्न था। चारों भुजाएँ अङ्कुश, पाश, धनुष और बाणसे सुशोभित थीं। स्वरूप आनन्दमय तथा मनोहर था। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंके मुकुटमणिकी किरणोंसे उसके चरणारविन्द प्रकाशित होते थे और अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ उसे घेरे हुए थीं।

देवीका दर्शन पाकर पार्थका हृदय भक्तिसे भर गया और 'मेरा नाम अर्जुन है' इस प्रकार कहकर उन्होंने हाथ जोड़े हुए बारम्बार प्रणाम किया, तत्पश्चात् एकान्तमें खड़े हो गये।

भगवती अर्जुनकी उपासना तथा उनपर दयानिधिका अनुग्रह जानकर कृपापूर्वक बोली—

हे वत्स! तुमने किसी सुपात्रको क्या दुर्लभ दान दिया है? अथवा यहाँ किस यज्ञद्वारा यजन या किस तपका अनुष्ठान किया है? पूर्वकालमें भगवच्चरणोंमें तुमने कैसी निर्मल भक्ति की है? इस संसारमें कौन-सा अत्यन्त दुर्लभ शुभ कर्म तुमसे हुआ है जिससे शरणागतवत्सल भगवान्‌ने तुम्हें इस अत्यन्त गूढ़ रहस्यको जाननेका अधिकारी समझा है।

हे पुत्र! विश्वरूप भगवान्‌ने तुमपर जैसा अनुग्रह किया है, वैसा भूतलवासी अन्य मनुष्योंपर, स्वर्गवासी देवताओंपर, तपस्वी, योगी तथा अखिल भक्तोंपर भी नहीं किया है; अतः तुम यहाँ आओ, मेरे कुलकुण्ड नामक सरोवरका आश्रय लो। देखो, यह निकटवर्तिनी देवी समस्त कामनाओंको देनेवाली है, तुम इसके साथ सरोवरपर जाओ और उसमें विधिवत् स्नान करके शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

यह सुनकर पार्थने उसी समय जाकर सरोवरमें स्नान किया और तुरन्त लौट आये। उन्हें स्नान करके आये देखकर देवीने उनसे न्यास और मुद्रा आदि कार्य कराया और उनके दाहिने कानमें तत्काल सिद्धिदायिनी परा बालाविद्याका उपदेश किया; साथ ही उस मन्त्रका अनुष्ठान, पूजन, लक्षसंख्यक जप तथा करवीर (कनइल) की लाख कलिकाओंद्वारा हवन आदिका यथोचित प्रयोग भी समझा दिया। तत्पश्चात् परमेश्वरीने दया करके कहा—हे वत्स! इसी विधिसे मेरी उपासना करो, इससे अनुग्रहवश जब मैं तुमपर प्रसन्न हो जाऊँगी तो तत्काल ही तुम्हारा श्रीकृष्णजीकी लीलामें अधिकार हो जायगा।

यह सुनकर अर्जुनने इसी पद्धतिसे भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी और पूजन तथा जप करके देवीको प्रसन्न किया। तदनन्तर उन्होंने शुभ हवन तथा विधिपूर्वक स्नान करके अपनेको कृतार्थ-सा माना और मनोरथ प्रायः प्राप्त हुआ ही समझा। उस समय समस्त सिद्धियोंको पार्थने हस्तगत ही माना।

इसी अवसरमें देवी वहाँ आयी और मुस्कुराती हुई बोली—'बेटा! इस समय तुम उस घरके अन्दर जाओ।' इतना सुनते ही पार्थ आनन्दित हो बड़े वेगसे उठे और अनन्त उल्लाससे भरकर देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भगवतीकी आज्ञा पाकर उसकी सहचरीके साथ अर्जुन राधापतिके स्थानपर गये, जहाँ सिद्ध भी नहीं पहुँच सकते।

इसके बाद देवीकी सखीके उपदेशसे उन्होंने गोलोकसे ऊपर स्थित नित्य वृन्दावन-धामका दर्शन किया, जो वायुके धारण करनेपर भी स्थिर है। यह धाम नित्य, सत्य और सम्पूर्ण सुखोंका स्थान है; वहाँपर नित्य ही रास-महोत्सव हुआ करता है, वह पूर्ण प्रेमरसात्मक तथा परम गुह्य है।

सखीके वचनसे ही अपने दिव्य नेत्रोंसे उस रहस्यमय स्थानका दर्शन करके बढ़े हुए प्रेमोद्रेकसे अर्जुन विह्वल हो उठे और मोहवश मूर्छित होकर वहीं गिर पड़े। फिर कठिनतासे होशमें आनेपर सहचरीने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया।

उसके आश्वासन देनेपर जब वे किसी तरह सुस्थिर हुए तो उससे पूछा, बताओ, अब और कौन-सा तप मुझे करना चाहिये?—ऐसा कहकर भगवल्लीला-दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठासे कातर हो गये।

तब भगवतीकी सखी उन्हें हाथसे पकड़कर वहाँसे दक्षिण ओर एक उत्तम स्थानपर ले गयी और वहाँ जाकर कहा—

हे पार्थ ! तुम इस शुभद जलराशिमें स्नानार्थ प्रवेश करो । यह सहस्रदल कमलका आकर है, इसके चारों ओर चार घाट हैं । यह सरोवर जल-जन्तुओंसे व्याप्त है, इसके भीतर प्रवेश करनेपर तुम यहाँकी विशेष बातें देख सकोगे ।

यहाँसे दक्षिण-भागमें यह जो सरोवर है इसका नाम मलय-निर्झर है, यहाँ मधूकके मधुर मकरन्दका पान हुआ करता है । यह सामने जो विकसित उद्यान है यहाँ भगवान् गोविन्द वसन्त-ऋतुमें वसन्त-कुसुमोचित मदनोत्सव करते हैं । यहाँ दिन-रात भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति होती है, इसलिये इस सरोवरमें स्नान करके पूर्व-सरोवरके तटपर जाओ और उसके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो ।

उसकी बात सुनकर अर्जुनने ज्यों ही जलमें प्रवेशकर डुबकी लगायी त्यों ही वह सहचरी अन्तर्धान हो गयी । और उन्होंने जलसे निकलकर अपनेको सम्भ्रममें पड़ी हुई एकाकिनी सुन्दरी रमणीके रूपमें देखा । तुरन्त तपाये हुए सोनेकी किरणोंके समान उस बालाके अङ्गकी गौर कान्ति थी । वह किशोरावस्थाकी प्रतीत होती थी । उसका मुख शरत्कालीन चन्द्रमाके समान था । रत्नसूत्रोंसे गूँथी हुई अलकावली बाँकी, चिकनी और काली थी । सीमन्त-भाग सिन्दूर-बिन्दुकी प्रभासे देदीप्यमान था । ऊपरकी ओर तनी हुई भौंहोंकी भङ्गिमासे वह कामदेवके धनुषको पराजित कर रही थी । स्निग्ध, श्यामल एवं चञ्चल नयन-खञ्जरीट विलास कर रहे थे । मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे कपोल-मण्डल उद्भासित होता था । कमलनाल-सी कोमल तथा शोभायमान बाहु-वल्लरी अद्भुत मालूम होती थी । शरदृतुके अरुण कमलोंकी समस्त शोभाको मानो पाणिपल्लवोंने चुरा लिया था । चतुर स्वर्णकारके बनाये हुए सुवर्णमय कटिसूत्रसे कटिप्रदेश आवृत था । झनकारते हुए मणिमय मञ्जीरोंसे उसके चरणकमल मनोहर मालूम पड़ते थे । वह रमणीजनोचित सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न, सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित आश्चर्यजनक सुन्दरी ललना थी ।

गोपीवल्लभ गोविन्दकी मायासे वह सुन्दरी अपने प्रथम शरीरकी सब बातें भूल गयी और विस्मित-भावसे किंकर्तव्यविमूढ हो जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी ।

इतनेमें आकाशमें सहसा यह गम्भीर शब्द हुआ कि—'हे सुन्दरि ! तुम इसी मार्गसे पूर्व सरोवरके तटपर चली जाओ और वहाँके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो । हे वरवर्णिनि ! तुम खेद न करो; वहीं तुम्हारी सखियाँ हैं, वे तुम्हारे उत्तम मनोरथको पूर्ण करेंगी ।'

इस दैवी वाणीको सुनकर वह पूर्व-सरोवरके तटपर गयी । उस पोखरेमें अनेकों अपूर्व स्रोत थे, विविध भाँतिके विहङ्गमोंसे वह भरा हुआ था । कैरव, कल्हार, कमल और इन्दीवर आदि विकसित कुसुम उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । पद्मरागमणिके बने हुए उसके सोपान और घाट सुन्दर मालूम होते थे । भाँति-भाँतिके कुसुमों तथा मञ्जुल निकुञ्ज, लता और वृक्षोंसे उसके चारों तट सुशोभित थे । वह किशोरी वहाँ आचमन करके क्षणभर खड़ी रही ।

इसी समय कानोंमें कूजती हुई काञ्ची तथा मञ्जीरकी मधुर ध्वनिसे मिश्रित किङ्किणीकी झनकार सुनायी देने लगी । फिर अद्भुत यौवन-सम्पन्न दिव्य वनिताओंका झुंड वहाँ आ पहुँचा । उनके आभूषण, रूप, भाषण, शरीर, विलास, विचित्र वचन, विचित्र हास और अवलोकन आदि सभी दिव्य थे । लावण्य मधुर तथा अद्भुत था, उसमें जगत्की समस्त मधुरिमा कूट-कूटकर भरी थी ।

उस परम आश्चर्यदायिनी वनितावृन्दको देखकर वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगी और पैरके अँगूठेसे जमीन खोदती हुई सिर झुकाये खड़ी रही ।

इसके बाद इसे अकेली खड़ी देखकर वनिताओंने परस्पर दृष्टिपात करके विचारा कि—'बड़ी देरसे कौतूहलमें पड़ी हुई यह कौन हमारी ही जातिकी स्त्री है ?' इस तरह सबोंने उसके ऊपर दृष्टि डालकर क्षणभर परस्पर मन्त्रणा की कि 'चलकर इसे जानना चाहिये' । ऐसा सोचकर सभी कौतुकवश इसे देखने आयीं ।

उनमेंसे एक प्रियमुदा नामकी मनस्विनी बाला उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें बोली—तुम कौन और किसकी कन्या हो ? तथा किसकी प्राणप्रिया हो ? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है, किसके द्वारा तुम यहाँ आयीं ? अथवा तुम स्वयं ही चली आयी हो ? चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं, हमारे प्रश्नानुसार सब बातें हमसे कह दो । इस परमानन्दमय स्थानमें भला किसीको क्या दुःख है ?

इस तरह पूछनेपर उसने विनीतभावसे उनके मनोंको मोहते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कहा—मैं कौन हूँ ? किसकी कन्या अथवा प्रेयसी हूँ ? मुझे यहाँ कौन लाया अथवा मैं स्वयं चली आयी ?—इन बातोंको भगवतीजी जानें, मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। फिर भी मैं कुछ कहती हूँ, यदि मेरी बातोंपर आप लोगोंको विश्वास हो तो उसे सुनें। यहाँसे दक्षिण ओर एक सरोवर है, मैं वहीं स्नान करने आयी और वहीं खड़ी रही। थोड़ी देरमें उत्कण्ठावश मैं चारों ओर निहारने लगी, इतनेमें मुझे अद्भुत आकाशवाणी सुन पड़ी—हे सुन्दरि ! तुम इसी मार्गसे पूर्व सरोवरपर चली जाओ और उसके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो; हे वरवर्णिनि ! खेद न करो; वहीं तुम्हारी सखियाँ हैं, वे तुम्हारे उत्तम मनोरथको पूर्ण करेंगी।—यही सुनकर मैं वहाँसे यहाँ चली आयी हूँ। यहाँ आनेपर मैंने आचमन करके नाना भाँतिकी मधुर ध्वनि सुनी, तत्पश्चात् आपलोगोंका शुभ दर्शन मिला। बस मन, वाणी और शरीरसे इतना ही मुझे मालूम है। हे देवियो ! यही मेरा कहना था। यदि आप लोगोंको अच्छा मालूम हो तो आप भी बतावें कि आप कौन हैं, किनकी कन्याएँ हैं, कहाँ आपलोगोंकी जन्म-भूमि है ? और किनकी आप लोग वल्लभाएँ हैं ?

यह सुनकर प्रियमुदाने कहा—अच्छा मैं बतलाती हूँ। हे शुभे ! हम लोग वृन्दावनके कलानाथ गोविन्दकी प्राण-प्यारी सखियाँ तथा विहारसहचरियाँ हैं। हम आत्मानन्दमयी व्रजबालाएँ यहाँ आयी हुई हैं। ये श्रुतिगण तथा मुनिगण भी वनितारूपमें यहाँ हैं। हमलोग गोप-कन्याएँ हैं—यह स्वरूपतः तुम्हें बतला दिया। पूर्व-कालमें हममेंसे जो-जो राधापतिको अत्यन्त प्यारी थीं वे ही यहाँ उनके सङ्ग नित्य-विहार करनेवाली क्रीडा-भूमिकी सहचरी हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य सबोंका परिचय भी तुम्हें प्राप्त करना चाहिये। हे भामिनि ! हमी लोगोंके साथ तुम भी यहाँ विहार करोगी। हे सखी ! पूर्व-सरोवरपर चलो, वहाँ तुम्हें विधिवत् स्नान कराकर मैं सिद्धिदायक मन्त्र दूँगी।

इस प्रकार उसे ले आकर उसने विधिवत् स्नान कराया और वृन्दावन-चन्द्रकी प्रेयसीके उत्तम मन्त्रका दीक्षाविधिके साथ उपदेश किया; पुरश्चरणकी विधि, ध्यान तथा होम-जपकी संख्या भी बतला दी।

सखियोंके लाये हुए कह्लार, करवीर, चम्पा तथा कमल आदि अनेकों सुगन्धित कुसुमोंसे और पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके दिव्य नैवेद्योंसे उसने देवीकी विधिवत् पूजा करके एक लाख मन्त्र-जप किया; फिर विधिपूर्वक हवन करके पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अनन्तर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए उसने देवीकी स्तुति की।

उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती श्रीराधिकादेवी वहाँपर प्रकट हुईं। काञ्चन तथा चम्पाके समान उनकी कमनीय कान्ति थी। प्रत्येक अङ्गमें सौन्दर्य, लावण्य और माधुर्य था; शरत्कालके कलङ्कहीन कलाधरके समान उनके मुखकी शोभा थी। स्नेह-युक्त मुग्ध-मुसकान त्रिभुवन-मोहिनी थी। वह भक्तवत्सला वरदायिनी देवी अपने शरीरकी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बोलीं—

हे शुभे ! मेरी सखियोंकी बातें सत्य हैं, इसलिये तुम मेरी प्यारी सखी हो। उठो, चलो, मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करती हूँ।

अर्जुनी देवीके मुखसे मनोवाञ्छित वाणी सुनकर पुलकित हो गयी और प्रेम-विह्वल हो नेत्रोंमें आँसू भरकर पुनः देवीके चरणोंपर गिर पड़ी।

तब देवीने अपनी सखी प्रियंवदासे कहा—तुम इसे हाथका अवलम्बन देकर आश्वासन देती हुई मेरे साथ ले आओ। प्रियंवदाने ऐसा ही किया। उत्तर-सरोवरके तटपर पहुँचकर विधिपूर्वक अर्जुनीको नहलाया गया। फिर सङ्कल्पपूर्वक विधिवत् पूजन कराकर हरिवल्लभा श्रीराधादेवीने गोकुल-चन्द्र श्रीकृष्णके मन्त्रका उपदेश किया। वे गोविन्दके सङ्केतको जानती थीं, अतः उसे उन्होंने अविचल भक्ति प्रदान की और मन्त्रराज मोहनका ध्यान भी बता दिया। इस अनुष्ठानमें नील कमलके समान श्यामल, अलङ्कारोंसे विभूषित, कोटि कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली तथा रास-रसके लिये उत्सुक श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करना चाहिये।

उपर्युक्त बातें अर्जुनीको समझाकर राधाने पुनः प्रियंवदासे कहा—'जबतक इसका उत्तम पुरश्चरण पूर्ण न हो तबतक तुम सखियोंके साथ सावधान होकर इसकी रक्षा करना।' यह कहकर वह स्वयं तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके निकट चली गयीं और प्यारी सखियोंके पास अपनी छाया रख दी।

प्रियंवदाके आदेशसे यहाँ अर्जुनीने गोरोचन,

कुङ्कुम और चन्दन आदि नाना मिश्रित द्रव्योंसे अष्टदल कमलके आकारमें एक यन्त्र बनाया तथा उसमें अद्भुत मोहन-मन्त्रका न्यास किया। इसके बाद ऋतुसम्भव विविध पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, मुखवास, वस्त्र, आभूषण और माला आदिसे वाहन तथा आयुधोंसहित भगवान् श्यामसुन्दरकी पूजा करके उनकी स्तुति तथा नमस्कार भी किया और मन-ही-मन उनका स्मरण करने लगी।

तब भक्तिके वशीभूत हो भगवान् श्यामसुन्दरने मुसुकान भरी दृष्टिसे सङ्केत करके राधासे कहा—'उस (अर्जुनी) को यहाँ शीघ्र बुलाओ।' आज्ञा पाते ही देवीने अपनी सखी शारदाको भेजकर उसे तुरन्त बुला लिया।

वह रसिकशेखर श्रीकृष्णचन्द्रके सामने आते ही प्रेम-विह्वल हो पृथिवीपर गिर पड़ी। उसे वहाँ सब कुछ अद्भुत दीखने लगा। उसके अङ्गोंमें स्वेद, पुलक और कम्प आदि सात्त्विक विकार होने लगे। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उठकर जब उसने नेत्र खोले तो सबसे प्रथम वहाँका विचित्र मनोरम स्थान दीख पड़ा। उसके बाद कल्पवृक्षपर दृष्टि पड़ी, उसके पत्ते मरकतमणिके समान और पल्लव प्रवालमय (मूँगे-से) थे। तना कोमल और सुवर्णमय था। मूल स्फटिकके समान श्वेत था। वह वृक्ष काम-सम्पदाको देनेवाला था। उसके नीचे रत्नमन्दिर था, उसमें एक रत्नमय सिंहासन रक्खा था। उसके ऊपर भी अष्टदल-पद्म बना हुआ था। उसमें बायें-दायेंके क्रमसे शङ्ख और पद्म-निधि रक्खे गये थे। चारों ओर जगह-जगह कामधेनु गौएँ थीं। सब ओर नन्दन-वन था, उसमें मलयसमीर बह रहा था। वहाँ सभी ऋतुओंके कुसुमोंकी दिव्य सुगन्ध आती थी, निरन्तर मधु-बिन्दुकी वर्षासे वह उद्यान मनोहर मालूम होता था। उसका मध्यभाग मधुपानमत्त भँवरोंके झङ्कारसे सदा मुखरित रहता था। कोयल, कबूतर, सारिका, शुकी तथा अन्य विहङ्ग-वनिताओंका कलनाद वहाँ नित्य हुआ करता था। मतवाले मयूरोंके नृत्यसे व्याप्त होकर वह उपवन प्रेम-पीड़ाको बढ़ाता था।

ऐसे रमणीय स्थानमें भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। उनके अङ्गकी कान्ति श्यामल थी; अलकावली स्निग्ध, असित एवं भङ्गुरित थी; उससे आँवलेकी गन्ध आती थी। मत्त मयूरोंके शिखरसे उनकी चूडा बाँधी गयी थी, बायें कानके पुष्पमय आभूषणपर भ्रमर बैठे थे, दर्पणके समान स्निग्ध कपोल चञ्चल अलकोंके प्रतिबिम्बसे शोभित हो रहे थे। मस्तकमें सुन्दर तिलक लगा था। तिलके फूल और शुककी चोंचके समान उनकी मनोहर नासिका थी। बिम्बफलके सदृश सुन्दर अरुण अधर थे। वे अपनी मन्द मुसकानसे प्रेमोद्दीपन कर रहे थे। गलेमें मनोहर वनमाला थी और सहस्रों मदोन्मत्त भ्रमरोंसे भरी हुई पारिजातकी सुन्दर माला दोनों स्थूल कन्धोंपर शोभायमान थी। मुक्ताहार तथा कौस्तुभमणिसे वक्षःस्थल विभूषित था, उसमें श्रीवत्सका चिह्न भी था। आजानु लम्बी भुजाएँ मनोहर थीं। नाभि गम्भीर और मध्यभाग सिंहकी कटिसे भी कहीं अधिक सुन्दर था। वे अपने लावण्यसे कोटि कन्दर्पको पराजित करते थे। वेणुके मनोहर गानसे वे त्रिभुवनको सुखके समुद्रमें निमग्न तथा मोहित कर रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग प्रेमावेशसे पूर्ण और रास-रससे आलस्ययुक्त हो रहा था।

उनके मुखकी ओर दृष्टि लगाये अनेकों सेविकाएँ यथास्थान खड़ी रहकर उनके सङ्केतोंको देख रही थीं और सम्मानपूर्वक चमर, व्यजन, माला, गन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, पानपात्र तथा अन्य क्रीडोपयोगी विविध वस्तुओंको वे पृथक्-पृथक् रख रही थीं।

श्रीमती राधिकादेवी उनके वामभागमें विराजमान होकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना करती हुई हँस-हँसकर उन्हें पान देती थीं।

यह सब देखकर वह अर्जुनी प्रेमावेशसे विह्वल हो गयी। सर्वज्ञ हृषीकेशने उसके भावोंको समझ लिया और क्रीडावनमें उसकी इच्छानुसार उसे सुख दिया। तदनन्तर शारदासे कहा—'इसे शीघ्र ले जाकर पश्चिम सरोवरमें नहलाओ।'

शारदा उसे वहाँ ले गयी और क्रीडासरमें स्नान करनेको कहा। परन्तु भीतर जाते ही वह पुनः अर्जुन बन गयी। उसी समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर जब अर्जुनको खिन्न तथा हताश देखा तो प्रेमपूर्वक हाथसे स्पर्श करके उन्हें फिर पूर्ववत् कर दिया और कहा—'अर्जुन! तुम मेरे प्रिय सखा हो, इस त्रिलोकीमें तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी मेरा रहस्य नहीं जानता। देखना, इसे कहीं प्रकाशित न करना।'　　(पद्मपुराणसे)

श्रीतारा-रहस्य-निरूपण

(लेखक—चतुर्वेदी पं० श्रीकेशवदेवजी शास्त्री)

अस्ति समस्तजगदुत्पत्तिपालनसंहारकर्तृभिर्ब्रह्मविष्णुमहेशैरुपसेव्यमाना, जगदाधाररूपा, संसारभयनाशिनी, अपुनरावृत्तिकारिणी, संसारतारिणी तारा नाम्नी शक्तिः परममहती।

आज परम हर्षका विषय है कि जो शक्तिविद्या बहुत प्राचीन कालसे अपरिमित तेजस्विनी होनेके कारण अनेक सम्प्रदायोंके मतभेद होते हुए भी सर्वोत्तमा थी, वैसे ही आज भी अनेक मत-मतान्तरवाले मनुष्योंद्वारा सम्मानित, संसारके आवागमनको हटानेमें सर्वश्रेष्ठ, परमपूजितरूपमें उपस्थित है।

तारा-शक्तिका रहस्य बड़ा गूढ़ है, उसे जाननेके लिये बड़े परिश्रम और अध्यवसायकी आवश्यकता है। 'शक्ति-अङ्क' के पाठकोंकी साधारण जानकारीके लिये हम इस रहस्यका कुछ थोड़ा-सा दिग्दर्शन इस लेखमें करानेका प्रयत्न करेंगे। पूरा रहस्य लिखने और उसे साङ्ग प्रस्तुत करनेमें तो एक पूरा ग्रन्थ ही उपस्थित हो जानेकी आशङ्का है, जिसके लिये यहाँ न समय है न स्थान।

हाँ, तो अब हम प्रस्तुत विषयपर आते हैं। यथार्थ-नामवती होनेके कारण ही तारा नामकी शक्ति सर्वोत्तमा शक्ति है। ताराशक्तिका शाब्दिक अर्थ है 'तरत्यनया सा तारा'—अर्थात् इस संसारसागरसे जो तारे, वह तारा।

ताराविद्याकी गणना दश महाविद्याओंमें है। इसके महत्त्वका दिग्दर्शन कराते हुए तन्त्र-ग्रन्थोंमें कहा है—

विना ध्यानं विना जाप्यं विना पूजादिभिः प्रिये।
विना बलिं विनाभ्यासं भूतशुद्ध्यादिभिर्विना॥
विना क्लेशादिभिर्देवि देहदुःखादिभिर्विना।
सिद्धिराशु भवेद्यस्मात्तस्मात्सर्वोत्तमा मता॥

अर्थात् बिना ध्यान, जप, पूजा, बलि, अभ्यास, भूतशुद्धि, देहदुःख, क्लेशके उठाये ही इसकी सिद्धि शीघ्र ही हो जाती है; इसीसे इसे सर्वसिद्धियोंमें सर्वोत्तम स्थान प्राप्त है।

इतनी सरलता भला किस देवताकी आराधनामें होगी? सरलता और बन्धनमुक्तिकी हद है। ऐसे निष्कण्टक सुखप्रद मार्गपर भला कौन न चलना चाहेगा? यही कारण है कि अनन्तकालसे ताराकी उपासना अबाधरूपसे होती चली आ रही है।

ताराका स्वरूप क्या है? इसके वर्णनमें कहा है—

शून्ये ब्रह्माण्डगोले तु पञ्चाशच्छून्यमध्यगे।
पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता॥

अर्थात् शून्य ब्रह्माण्ड-गोलमें पचास शून्य हैं, जिनमें पाँच शून्यपर श्रीतारा तथा शेष सबपर श्रीकालिका स्थित हैं।

अब विचारणीय विषय यह है कि पचास शून्य कुल हैं, उनमेंसे पाँच शून्यपर श्रीताराजी स्थित हैं और बाकी शून्यपर श्रीकालिकाजी विराजमान हैं और विराट्चक्र तथा स्वराट्चक्रके भेदसे मध्यमें जो शून्य आता है उसमें ब्रह्माण्डनायिका श्रीराजराजेश्वरी श्रीमहासुन्दरी श्रीश्रीविद्याजीका स्थान है।

तन्त्रमें कहा है—

ततः शून्या परारूपा श्रीमहासुन्दरी कला।
सुन्दरी राजराजेशी महाब्रह्माण्डनायिका॥
महाशून्या ततस्तारा तद्वैगुण्यक्रमेण च।
मुक्तौ संयोज्य सर्वं तं महासुन्दर्यनन्ततः॥

इसमें श्रीमहासुन्दरीको कला और श्रीताराको शून्यरूप निर्देश किया है। अब द्रष्टव्य यह है कि शून्यरूपमें ही सब देवता और दैवी शक्तियाँ हैं और महात्माओंका भी यही सिद्धान्त है कि संसारका शून्यरूपमेंसे उद्भव तथा शून्यमें ही पराभव है, तब निश्चय ही इन शक्तियोंको आद्य-शक्ति मानना पड़ता है। संसारके इस शून्य परिणामको देखकर ही महात्मा लोग मोहादिको छोड़कर शून्यरूप निर्विकार ब्रह्मरूपमें लीन होकर मुक्तिसाधन करते हैं। इधर जितने बीजमन्त्र हैं उन सभीमें विन्दुस्वरूप शून्य है। कोई बीजमन्त्र विन्दुरहित नहीं। इसीसे उनका महत्त्व इतना श्रेष्ठ है और जितना भी इसपर विचारते हैं अधिकाधिक ज्ञान और रहस्य दृष्टिगत होता ही जाता है।

तारा-रहस्य

(लेखक—डा० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, डी० लिट्०)

स्मृत्वा.....................

तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ।

(लघुस्तव)

'तारा' शब्दके अर्थ तो बहुत-से हैं परन्तु यहाँ इस पदका प्रयोग एक देवताविशेषके लिये ही किया जा रहा है, जिसे ब्राह्मण अथवा हिन्दू, बौद्ध एवं जैन लोग भी पूजते हैं। हिन्दू-धर्ममें तारा एक महाविद्या है। ये महाविद्याएँ दश हैं और इनके नाम हैं—

काली[1] तारा[2] महाविद्या षोडशी[3] भुवनेश्वरी[4] ।
भैरवी[5] छिन्नमस्ता[6] च विद्या धूमवती[7] तथा ।
वगला[8] सिद्धविद्या च मातङ्गी[9] कमलात्मिका[10] ॥

गणनामें ताराका स्थान दूसरा होनेसे इसको द्वितीया भी कहते हैं। इसी प्रकार कालीका नाम आद्या भी है। इन दोनोंको प्रायः इन संख्याओंसे ही सूचित कर देते हैं। अन्य महाविद्याओंके लिये क्रमकी इतनी आवश्यकता नहीं। द्वितीया या तृतीया इत्यादिसे यह नहीं द्योतित होता कि गौरवमें इनका स्थान आद्यासे न्यून है। सेवकके लिये तो अपने इष्टदेवका स्थान सर्वोपरि होता है। वैसे तो दुर्गाको ही मुख्य अथवा आदिशक्ति माना जाता है। अन्यान्य शक्तियाँ उसकी 'विभूति' मानी जाती हैं। महाभारतके विराट् (अ० ६) एवं भीष्मपर्व (अ० २३) में, जहाँ युधिष्ठिर और अर्जुनने भगवतीकी स्तुति की है, उसके लिये तारिणी नामका भी प्रयोग किया गया है—

चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ।

इससे हम यह नहीं कह सकते कि इस स्तोत्रमें 'द्वितीया' की ही स्तुति की गयी है। इसे 'शक्ति' की या भगवतीकी सर्वसाधारण स्तुति मान सकते हैं।

तन्त्र वा मन्त्रशास्त्रमें ताराका ध्यान ऐसा है—

विश्वव्यापकवारिमध्यविलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थितां
कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करां नीलभाम् ।
काञ्चीकुण्डलहारकङ्कणलसत्केयूरमञ्जीरता-
माप्तैर्नागवरैर्विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥
पिङ्गोग्रैकजटां ललत्सुरशनां दंष्ट्राकरालाननां
चर्म द्वैपि वरं कटौ विदधतीं श्वेतास्थिपट्टालिकाम् ।
अक्षोभ्येण विराजमानशिरसं स्मेराननाम्भोरुहां
तारां शावहृदासनां दृढकुचामम्बां त्रिलोक्याः स्मरेत् ॥

'जगद्व्यापी जलसे निकले हुए एक श्वेत कमलपर विराजमान; कर्त्री(कैंची), खड्ग, कपाल और नीलोत्पलको हाथोंमें लिये हुए; काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर, मञ्जीर (नूपुर)-रूप बने हुए सर्पोंसे भूषित; तीन लाल-लाल नेत्रोंवाली, एक पीली जटावाली, सुन्दर रशनासे मण्डित, विकराल दंष्ट्रायुक्त, कटिप्रदेशमें द्वीपि (चीते) के चर्मको धारण किये हुए, श्वेत अस्थिकी पट्टालिका लिये हुए, शवके हृदयपर बैठी हुई, जिसके सिरपर 'अक्षोभ्य' विराजमान है, ऐसी स्मितवदना, त्रैलोक्यजननी तारा भगवतीका स्मरण करे।'

इस ध्यानसे दो मुख्य बातें प्रतीत होती हैं—एक तो भगवतीका सर्वत्र फैले हुए जलमेंसे निकले हुए कमलपर बैठना और दूसरा उसके सिरपर 'अक्षोभ्य' का विराजमान होना। सर्वत्र फैले हुए जलसे निकले कमलपर बैठना सूचित करता है कि भगवती तारा जलके भयको दूर करती है। अक्षोभ्यका सिरपर रक्खा जाना द्योतित करता है कि ताराका स्थान अक्षोभ्यसे नीचे है—अन्यथा उसका सिरपर बिठलाया जाना सम्भव नहीं था। तारा जलप्लावके भयको दूर करती है और एतदर्थ उसका पूजन किया जाता है, यह हमें लघुभट्टारकरचित लघुस्तवके निम्नलिखित पद्यसे ज्ञात होता है—

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्याद्द्विपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचराक्षसभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥

'तोयप्लव' अर्थात् जलकी बाढ़ वा 'तूफान' में ताराका स्मरण करके प्राणी विपत्तियोंको लाँघ जाते हैं।

ताराका नाम ही सूचित करता है कि इस भगवतीका 'तरण' या 'तारण' से सम्बन्ध है, उत्तराम्नायके प्रायः

सभी तन्त्र-ग्रन्थ इस बातको सूचित करते हैं। हाँ, दक्षिणाम्नाय अर्थात् दक्षिण-भारतके तन्त्र-ग्रन्थोंसे यह निश्चित नहीं होता। परन्तु दक्षिणमें तो इस शक्तिकी पूजा प्रचलित ही नहीं रही होगी, तभी तो इसका वर्णन भी उपलब्ध नहीं होता। तत्त्वनिधि-जैसे ग्रन्थमें, जहाँ उत्तमोत्तम तन्त्रोंसे देवताओंके ध्यानादि दिये गये हैं, उग्रताराका एक ध्यान-जैसा लिखकर कह दिया है—'इत्याम्नाये'। कौन-सा आम्नाय है, यह भी नहीं बतलाया और न ध्यान ही पूरा दिया है। हम बिना सङ्कोच यह कह सकते हैं कि तारण करनेवाली शक्ति ही तारा है।

जैन-सम्प्रदायमें भी 'सुतारा' और 'सुतारका' नाम पाये जाते हैं, जो कि श्वेताम्बर-मतके अनुसार सुविधिनाथकी एक यक्षिणी या शासनादेवीके हैं। तारि नामकी एक देवीकी पूजा भारतकी आदिम जातियोंमें पायी जाती है। परन्तु यह दोनों तारा-महाविद्यासे भिन्न हैं। जैन-सुतारा या सुतारका शायद हिन्दू-ताराका ही रूपान्तर है। यह प्रायः देखा जाता है कि धर्मान्तरमें किसी अन्य धर्मके देवी-देवताको जब अन्तर्हित कर लेते हैं तब उसे गौण पदवी या स्थान देकर उसके नाम इत्यादिमें भी कुछ-न-कुछ परिवर्तन कर देते हैं। इस समय हमारा इन दोनों देवियोंसे कोई प्रयोजन नहीं। हिन्दू-ग्रन्थोंको देखनेसे यह प्रकट हो जाता है कि तारा या महाविद्याका बौद्ध-सम्प्रदायके एक बोधिसत्त्वविशेष अथवा बौद्धमतसे अवश्य सम्बन्ध है अथवा यह उसीका रूपान्तर है। इस बातको हम नीचे अभी स्फुट करेंगे।

हमारे यहाँ तारा अथवा दुर्गाकी वही स्थिति है जो ताराकी बौद्धधर्ममें। हिन्दूसम्प्रदायमें दुर्गा शिवकी शक्ति है और बौद्धमतमें तारा अवलोकितेश्वरकी। हीनयानमें तो देवी-देवताओंका अथवा बोधिसत्त्वोंका अभाव-सा ही है। महायानमें ही बोधिसत्त्वों और देवी-देवताओंकी भरमार है। हमारे यहाँ जैसे भगवतीका प्राधान्य है और उसे देवमाता माना जाता है वैसे ही महायानमें ताराकी स्थिति है। हमारे तन्त्र-ग्रन्थोंमें शिवका नाम अक्षोभ्य भी दिया गया है और ताराको उसकी शक्ति या 'भार्या' कहा गया है। तारातन्त्र अथवा तोडलतन्त्रके इन श्लोकोंसे इसका प्रमाण मिलता है—

> समुद्रमथने देवि ! कालकूटं समुत्थितम्।
> सर्वे देवाश्च देव्यश्च महाक्षोभमवाप्नुयुः॥
> क्षोभादिरहितं यस्मात् पीतं हालाहलं विषम्।
> अत एव महेशानि ! अक्षोभ्यः परिकीर्तितः॥
> तेन सार्द्धं महामाया तारिणी रमते सदा।

शिव-शक्ति-सङ्गमतन्त्रमें तो 'अक्षोभ्य' और 'शिव' पर्यायवाची नाम हैं।

हमारे तन्त्र-ग्रन्थोंमें स्पष्ट लिखा है कि ताराकी उपासना बौद्धमतके अनुसार करनी चाहिये अन्यथा यह भगवती 'सिद्ध' नहीं होगी। आचारतन्त्रमें जो वसिष्ठमुनिकी आराधनाका उपाख्यान दिया है उससे यह स्फुट हो जाता है। उसमें लिखा है कि जब वसिष्ठमुनि ताराकी आराधना करते-करते थक गये और निराश हो गये तब आकाशवाणीसे उन्हें 'चीनाचार' के अनुसार ताराकी अर्चना करनेका आदेश किया गया। उन्होंने तब वैसे ही आराधना की और उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

> मदीयाराधनाचारं बौद्धरूपी जनार्दनः।
> एक एव विजानाति नान्यः कश्चन तत्त्वतः॥
> वृथैवाक्लेशबहुना कालोऽयं गमितस्त्वया।
> विरुद्धाचारशीलेन मम तत्त्वमजानता॥
> तद्बोधरूपिणो विष्णोः सन्निधिं याहि सम्प्रति।
> तेनोपदिष्टाचारेण मामाराधय सुव्रत॥
> तदैवाशु प्रसन्ना स्यां त्वयि वत्स न संशयः।

आचारतन्त्रके इन अवतारित श्लोकोंमें इसीका उल्लेख है। इस तन्त्रमें यह भी लिखा है कि मुनि वसिष्ठ चीन गये। वहाँ उन्होंने बुद्धसे ताराकी आराधनाका प्रकार सीखकर तदनुसार अर्चना करके भगवतीको प्रसन्न किया। अन्यत्र भी इसका उल्लेख पाया जाता है, परन्तु यहाँ अधिक उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं।

उपरिलिखित वाक्योंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ताराका पूजन हिन्दुओंने बौद्धोंसे सीखा, अथवा यह कहें कि तारा भगवतीका पूजन पहले बौद्ध-सम्प्रदायमें प्रारम्भ हुआ। इस अनुमानका समर्थन 'साधनमाला' नामक बौद्धग्रन्थमें लिखे एकजटासाधनके इस अन्तिम वाक्यसे भी हो जाता है—

> एकजटासाधनं समाप्तम्—आर्यनागार्जुनपादैर्भोटेषूद्धृता इति।

इससे तो यह भी अनुमित होगा कि पहले ताराकी पूजा भोट-देश अर्थात् तिब्बतमें प्रचलित थी, तभी तो

नागार्जुनने उसका उद्धार किया। एकजटा तारा-देवीका ही नाम या रूपान्तर है।

'स्वतन्त्रतन्त्र' नामक पुस्तकमें लिखा है—

मेरोः पश्चिमकूले तु चोलनाख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती॥

अर्थात् तारा मेरु-पर्वतके पश्चिममें उत्पन्न हुई। इस आधारपर कहा जा सकता है कि इसकी उपासनाका प्रारम्भ लदाखके आसपास कहीं हुआ होगा। वहाँ और तिब्बतमें अब भी ताराकी पूजाका बहुत प्रचार है। लामा लोग वहाँसे आते हैं और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बौद्धस्थान कसया, बुद्ध-गया आदिके मन्दिरोंमें ताराकी पूजा करते हुए देखे जाते हैं।

ब्रह्माण्डपुराणके ललितोपाख्यानमें जो ताराका वर्णन दिया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह भगवती मुख्यतया जलौघ वा जलाप्लावजन्य दुःखोंका नाश करनेवाली है—

मनो नाम महाशालः······
तन्मध्यकक्ष्याभागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका।
न तत्र गन्तुं मार्गोऽस्ति नौकावाहनमन्तरा॥
तारा नाम महाशक्तिर्वर्त्तते तोरणेश्वरी।
बह्व्यस्तत्रोत्पलश्यामास्तारायाः परिचारिकाः॥
रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यस्सरसीजले।
अपरं पारमायान्ति पुनर्यान्ति परं तटम्॥
कोटिशस्तत्र ताराया नाविक्यो नवयौवनाः।
मुहुर्गायन्ति नृत्यन्ति देव्याः पुण्यतमं यशः॥
अरित्रपाणयः काश्चित्काश्चिच्छृङ्गाम्बुपाणयः।
पिबन्त्यस्तत्सुधातोयं सञ्चरन्त्यस्तरीशतैः॥
तासां नौकावाहिकानां शक्तीनां श्यामलत्विषाम्।
प्रधानभूता ताराम्बा जलौघशमनक्षमा॥
आज्ञां विना तयोस्तारा मन्त्रिणीदण्डनाथयोः।
त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाम्भसि सान्तरम्॥
तारातरणिशक्तीनां समवायोऽतिसुन्दरः।
इत्थं विचित्ररूपाभिर्नौकाभिः परिवेष्टिता॥
ताराम्बा महतीं नौकामधिगम्य विराजते॥

इसका भावार्थ यह है—तारा भगवती मनस् नामक महाशालस्थित एक अमृतवापिकाके द्वारकी रक्षा करती है। वहाँ बिना नौका और ताराकी आज्ञाके कोई नहीं जा सकता। यहीं ताराकी अनेक परिचारिकाएँ रहती हैं, जो इस वापीके आर-पार जाती रहती हैं। वे भगवतीका यशगान करती हैं, नाचती हैं और प्रसन्न रहती हैं। तरण-शक्तियोंका और ताराका मिलाप बहुत ही सुन्दर है और ताराम्बा ही जलौघजन्य दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं। इसके आगे कुरुकुल्लाका वर्णन आता है। उसको नौकश्वरी कहा गया है और उसके ध्यान-में उसके हाथमें 'अरित्र' या डाँड (चप्पे) दिये गये हैं। बौद्ध-साधनोंमें कुरुकुल्लाको ताराका रूपान्तर कहा गया है। इन दोनों वर्णनोंसे ताराका जलयात्रा या Navigation से स्पष्ट सम्बन्ध दीख पड़ता है। कन्हेरीमें जो ताराकी मूर्ति है उसमें तो जहाज भी बना हुआ है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैसे ब्रह्माण्डपुराणमें इस भगवतीको तारा-अम्बा कहा है वैसे ही इसका मंगोल नाम दर-एके (Dara-eke) है, जो कि पर्यायमात्र-सा है। इन सब प्रमाणोंको देखकर हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ताराकी पूजाकी उत्पत्ति जलकी बाढ़से उत्पन्न हुए दुःखोंकी निवृत्तिके लिये या तैरनेके निमित्त हुई होगी। यह भी स्फुट-सा ही है कि प्रारम्भमें तारा भगवती बौद्ध देवता होगी। बौद्ध-मतसे हिन्दुओंने उसकी पूजा सीखी होगी। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें तारा महाविद्याके रूपमें नहीं उपलब्ध होती। इसकी पूजा बहुत प्राचीन भी नहीं, अठारह मुख्य पुराणोंमें इसका अभाव-सा है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें जो वर्णन है वह तारा महाविद्याका नहीं वरं एक देवताविशेषका है। यह पुराण गुप्त महाराजाओंके काल-से पहले ही निर्मित हुआ था क्योंकि इसमें इन सम्राटों और उनके समकालीन राजाओं या अर्वाचीन नरेन्द्रोंका वर्णन नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि विक्रम संवत्की पाँचवीं शताब्दीके आसपास इस पुराणका निर्माण हुआ होगा। इसके पश्चात् सातवीं शताब्दीमें इस शक्तिका महाविद्याके रूपमें दर्शन होता है।

जावा या यवद्वीपमें जो लेख मिलते हैं, जिनमें इस देवीका उल्लेख है, इसी समयके हैं। इसी कालमें भारतवर्ष-के लोगोंका बाहर आना-जाना भी बढ़ गया होगा। उस समय बौद्ध-धर्मका ह्रास हो चुका था और उसका हिन्दूधर्म-से मिश्रण भी हो गया था। हमारी समझमें उसी समय हिन्दुओंने इस देवीकी उपासना भी सीखी होगी। समुद्र-

यात्राके लिये ऐसे देवताकी आवश्यकता है ही। तारा भगवती समुद्रसे 'उत्तारण' करा सकती है और जल्दी ही प्रसन्न होकर वर देती है। फिर समुद्रयात्री उसका ध्यान क्यों न करें? सुतरां, जब वह 'जल' सागरसे रक्षा करती है तो' भव, सागरसे भी पार लँघा देगी। तभी तो यह तारिणी भव-तारिणी है। हमारे विचारमें यही इसका रहस्य है।

तारयिष्याम्यहं नाथ! नानाभवमहार्णवात्।
तेन तारेति मां लोके गायन्ति मुनिपुङ्गवाः॥

भवसागर या दुःखसागर, या सागरसे तारनेके कारण ही इसका नाम तारा है।

कात्यायनीजी

कहानी

(लेखक—म० श्रीबालकरामजी विनायक)

'पुत्री! अब निज पन तजु रे।
मोरे कहे विवाह विभूषन बसन सुरँग सजु रे।'

× × ×

'पिताजी! यह पन टरत न टारे।
हौं बरु रहौं कुँआरि जनम भरि, पन न तजब तनु जारे।'

× × ×

चरणाद्रिगढ़-निवासी विप्रवर भारविकी इकलौती पुत्रीने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पण्डित मुझे श्रुति-सिद्धान्तमें परास्त कर देगा और मेरे मार्मिक प्रश्नोंका उपयुक्त उत्तर दे देगा, उसीसे विवाह करूँगी। वह अद्भुत कन्या थी। यह 'श्रीविद्या' माँके पेटसे ही सीखकर जन्मी थी। उसी विद्याके प्रभावसे यह श्रुति-स्मृतिमें निष्णात थी। सैकड़ों पण्डित बड़ी-बड़ी पगड़ी बाँधकर आये, परन्तु परास्त होकर लौट गये। हारनेपर वह पगड़ी उतरवा लेती थी। इस प्रकार पगड़ियोंसे एक कोठा भर गया था। समस्त देशपर उसका रोब छा गया था। अब, किसी पण्डितका साहस नहीं होता था कि उसके पास जाय। उसके पिता धुरन्धर कवि और मनीषी थे। जब उन्होंने देख लिया कि अब परास्त होनेके भयसे कोई आता-जाता नहीं, तब अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार वर ठीक करके लग्न-मुहूर्त्त निश्चित कर दिया। और पुत्रीसे प्रतिज्ञा-भङ्ग करके विवाहके भूषण-वसन धारण करनेके लिये वे आग्रह करने लगे। परन्तु उस हठीली कन्याने साफ़ इनकार कर दिया। उसने कहा—'चाहे जन्मभर मैं कुमारी ही क्यों न रहूँ, परन्तु अन्त समयतक अपनी प्रतिज्ञा नहीं भङ्ग कर सकती।'

अब बेचारे भारवि मुँह लटकाये इसी सोच-विचारमें बैठे थे। घोर-चिन्तामें पड़ गये थे। इतनेमें महात्मा बोपदेवजी उधरहीसे कहीं जा रहे थे। कविवर भारविका म्लान-मुख देखकर वहीं रुक गये। उनसे खेदका कारण पूछा। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें सुन्दर आसनपर पधराया और सब वृत्तान्त निवेदन किया। अनन्तर कन्याको भी बुलाकर पालागन कराया। उसे देखते ही मुनिराज ताड़ गये कि यह कन्या कौन है? उसी समय ध्यान करके उन्होंने उसके सम्बन्धकी सभी बातें जान लीं। सिद्ध-सन्तोंसे कुछ छिपा तो रहता ही नहीं। सुधी भारविने चकित-चित्तसे पूछा—'भगवन्! आप त्रिकालदर्शी हैं। कन्याके भाग्यमें क्या-क्या लिखा है, सो कृपापूर्वक मुझे बतलाइये। मैं बहुत दुखी हूँ, बहुत विकल हूँ; मुझपर दया कीजिये।' मुनिने कहा—'यह कन्या दिव्या है, इसका विवाह मत करना। यह कुमारी ही रहेगी। इस समय तो मैं जाता हूँ, ठहरनेका अवकाश नहीं है। कुछ दिनोंके बाद लौटूँगा तो इससे शास्त्रार्थ करूँगा और इसके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी चेष्टा करूँगा; विवाहकी इच्छासे नहीं, केवल इसका समाधान करनेकी इच्छासे।'

इतना कहकर मुनिराज उठे और विदा होकर चले गये। भारविके हृदयको सान्त्वना मिली। और कन्या? उसके ऊपर तो महात्माके वचनोंका भारी प्रभाव पड़ा। उसके मनमें मुनिकी शान्त-मूर्त्ति बस गयी। उसे हृदय-मन्दिरमें प्रतिष्ठितकरके वह अष्ट-याम सेवा-पूजा करने लगी। और उनके पुनरागमनकी बाट सतृष्ण-नेत्रोंसे जोहने लगी।

(२)

कात्यायनी स्वयं बहुत सुन्दरी थी और शुद्ध एवं सुन्दर चित्र भी अङ्कित करती थी। उसके पुण्य-सदनमें

त्रिपुरसुन्दरीका मोहक चित्र टँगा था और उसीके सामने दश महाविद्याका सुन्दर चित्र भी लगा हुआ था। सखी-सहचरीसे हीन वह चित्र-कलामें ही अपना समय लगाती थी। उसने बड़े प्रेमसे महात्मा बोपदेवजीका भी एक शान्तिरसावेशित चित्र तैयार किया। वह चित्र इतना भावपूर्ण था कि वह चित्रकारिणी स्वतः उसपर आसक्त हो गयी। उसे बार-बार इकटक दृष्टिसे निहारते रहना, गजरा गूँथकर उसे पहनाना एवं उसकी आरती उतारना, यही उसका नित्यका व्यापार हो गया। आरती उतारती हुई वह प्रेमविह्वल होकर मानो 'दीन' कविके शब्दोंमें इस प्रकार कहने लगती—

तुम बोलो न बोलो, सुनौ न सुनौ,
हमैं दाबि हियाको कराहने हैं।
तुम ओर हमारी लखौ न लखौ,
हमें रूपपयोनिधि थाहने हैं॥
तुम आनि मिलौ न मिलौ हमैं तो–
पग-धूरि लै भूरि सराहने हैं।
रटि नाम तिहारोइ 'दीन' भनै,
हमैं नेहको नातो निबाहने हैं॥

इस तरह भावना-पचीसीमें छकी हुई वह कन्या काल-क्षेप करती रही और कविवर भारवि काव्य-कलापमें निमग्न थे कि मुनिराज आ गये। उनके भव्य दर्शनसे पिता और पुत्री दोनों निहाल हो गये। श्रेष्ठ आसनपर पधराकर उनकी पूजा हुई। दुग्ध और फल अर्पण किये गये। अस्तु, सेवा-सत्कारसे सन्तुष्ट होकर जब मुनिने कन्यासे शास्त्रार्थकी भिक्षा माँगी तब वह दिव्या सङ्कुचित हो गयी। फिर सँभलकर उसने कहा—'अच्छा, बताइये, सर्गका मूलतत्त्व क्या है? उस मूलतत्त्वकी ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक क्रियाओंमें प्रकृति-विकृतिका आभास किस प्रकार दृष्टिगोचर हो सकता है?' मुनिने मुस्कराकर कहा—'सर्गका मूल-तत्त्व अजा, आद्याशक्ति है; अनन्त और अव्यक्त है। शाक्तागमसे लेकर वैष्णवागम एवं वैखानसागमतक, सम्पूर्ण आगमसाहित्यमें उसी अव्यक्तको प्रकट करनेकी चेष्टा की गयी है। आगमका विशेष महत्त्व इसीमें है। उस अज्ञेय एवं अव्यक्त शक्तिके प्रत्येक विकासमें एक ही परमतत्त्वका स्वतः आगम होता रहता है, इसी हेतुसे इसे आगम कहते भी हैं। उस परमतत्त्वको ईश्वर कहते हैं, शिव कहते हैं। उदाहरणस्वरूप आदिलीला ही है। ब्रह्मदेव तपके प्रभावसे सृष्टि तो जैसी चाहते थे, कर लेते थे; परन्तु उसकी अभिवृद्धि नहीं होती थी। अस्तु, शक्तिने विमर्श या स्फूर्तिका रूप धारण किया और शिवने प्रकाशरूपसे उसमें प्रवेश किया। परिणामस्वरूप 'विन्दु' की प्रादुर्भावना हुई। इसी रीतिसे शक्तिने शिवमें प्रवेश किया, जिससे वह विन्दु समुन्नत हुआ और इस संयोगसे स्त्री-तत्त्व 'नाद' की उत्पत्ति हुई। ये दोनों विन्दु और नाद दूध और पानीकी तरह ऐसे मिले कि एकरूप हो गये और 'संयुक्त-विन्दु' (अर्द्धनारीश्वर) नामसे प्रसिद्ध हुए। और यह तत्त्व पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व—उभयके बीच आत्यन्तिक आसक्तिको प्रकट करता है, इसी अभिप्रायसे इसको 'काम' कहते हैं।

पुनः विन्दु दो हैं। उनमेंसे एक श्वेत है और पुंसत्वका बोधक है और दूसरा रक्त है, जो स्त्रीत्वका परिचायक है। इनसे 'कला' की उत्पत्ति होती है। अस्तु। तीनों विन्दु—[(१) संयुक्त-विन्दु (काम), (२) श्वेत-विन्दु और (३) रक्त-विन्दु (कला)]—मिलकर 'काम-कला' में परिणत हुए। इस प्रकार यहाँ चार शक्तियोंका एकत्रीकरण हुआ। (१) मूल-विन्दु, वह तत्त्वविशेष जिससे इस जगत्की रचना हुई है। (२) नाद, जिसके ही ऊपर विन्दुके क्रमोन्नतिपरिणामसे उत्पन्न द्रव्योंका नामकरण अवलम्बित है। इन दोनोंमें अत्यन्त प्रेम है, परन्तु वह सृष्टि-विस्तार-हीन है। वे ऋत एवं वाङ्मय हैं। इसीलिये एक जनन-शक्ति उनके साथ (३) श्वेत-पुं-विन्दु (जो स्वतः तो उत्पत्तिमें असमर्थ है) और (४) रक्त-स्त्री-विन्दुके द्वारा संयोजित हुई। जब ये चारों तत्त्व मिलकर 'काम-कला' में प्रवृत्त हुए तब सम्पूर्ण शाब्दिक और वास्तविक सृष्टि उत्पन्न हुई। भृगु आदिके मतसे नादके साथ 'अर्ध-कला' की भी परिणति हुई, जब प्रथमतः स्त्रीतत्त्वने मूल-विन्दुमें प्रवेश किया था। किसी-किसी आगममें सर्वश्रेष्ठ देवी 'काम-कला' के स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है कि सूर्य (संयुक्त-विन्दु) ही उनका वदन है और अग्नि एवं चन्द्रमा (रक्त और श्वेत विन्दु) ही उनके वक्षःस्थल हैं। और अर्ध-कला जननेन्द्रिय है। इस विचारसरणिसे गर्भकी स्थिति सुस्पष्ट होती है, जिससे सृष्टिका विकास होता है। अस्तु, सृष्टि-विधायिनी एक महिमान्वित देवी है और उसको 'परा', 'ललिता', 'भट्टारिका' और 'त्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं।

संस्कृत-वर्णमालाका प्रथम अक्षर 'अ' शिवका प्रतीक है,

एवं अन्तिम अक्षर 'ह' शक्तिका प्रतीक है। इसी 'ह' को अर्ध-कला अथवा अर्धभाग कहते हैं। इसीसे यह स्त्री-तत्त्व है, गर्भाशय है। यह 'ह' और शिवस्वरूप 'अ' का सम्मिलन कामकला अथवा त्रिपुरसुन्दरीका स्वतः विकास है। यह त्रिपुरसुन्दरी 'अहम्' से ओतप्रोत है। अहंत्वसे व्यक्तित्व संवलित है। यही कारण है कि सम्पूर्ण सृष्टि व्यक्तित्व और अहंत्वसे परिपूर्ण है। और जीवमात्र, इस प्रकार, त्रिपुरसुन्दरीके ही रूपान्तर हैं और त्रिपुरसुन्दरी-पदको प्राप्त हो सकते हैं, यदि वे 'देवी-चक्र'—'अ' और 'ह'—के साथ 'काम-कला-विद्या' का अभ्यास करें। संस्कृत-वर्णमालाके प्रथम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' बीचके सम्पूर्ण अक्षरोंको अपनेमें समावेशित किये हुए हैं, और उनके द्वारा बने हुए सम्पूर्ण शब्दोंको भी (सम्पूर्ण वाङ्मयको भी)। जैसे त्रिपुरसुन्दरीद्वारा सब वस्तुओंकी उत्पत्ति है, उसी तरह सम्पूर्ण शब्दोंकी भी। इसीलिये उस महादेवीका नाम 'परा' है अर्थात् चार प्रकारकी वाणीमें प्रथम। सृष्टि परिणामी है, विवर्त्त (मिथ्या आभास) नहीं है।

भद्रे! तुम्हारे मनमें जो धारणाएँ गूँज रही थीं, उन्हींको प्रतिपादित किया गया है। हाँ, तेरे मनमें वीरभाव-सम्बन्धी जो धारणा बद्धमूल हो गयी है; शक्ति और सृष्टिकी एकताकी अनुभूति जो तेरे चित्तमें हुई है और दिव्यभावसे भावित होकर सहस्रदल-कमलमें ध्यानस्थ होकर चन्द्रगर्भसे स्रवित, दिव्यभावमें मत्त करनेवाले रसको जो तू पीती रहती है; ज्ञान-कृपाणसे काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी असुर-पशुको मारकर जो तूने निर्विषयता प्राप्त की है; वञ्चना, पिशुनता, ईर्ष्या आदि मछलियोंको भौतिक विषयोंसे बचानेवाले जालमें पकड़कर सत्य-ज्ञानकी अग्निमें जिस प्रकार तू उन्हें सेंक रही है; आशा, कामना, निन्दा आदि मुद्राओंको जो तू ब्रह्माग्निमें पका रही है और मेरुदण्डकी आश्रिता बहु-रमणियोंके साथ मिलकर जो तू मैथुनके लिये उत्सुक हो रही है—इन सब प्रसङ्गोंको मैंने बचा दिया है। अब तू सच-सच कह दे कि मेरे मार्मिक उत्तरसे तेरा समाधान हुआ या नहीं?'

कात्यायनी—मुनिवर! आपके समुचित उत्तरसे मैं इतनी सन्तुष्ट हुई हूँ कि मैं आपके चरणोंकी दासी होनेके लिये उत्सुक हो रही हूँ। क्या आप इस दासीको अपनायेंगे? मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। मैं आपसे परास्त हो गयी।

बोपदेव—शुभे! मैं विवाह नहीं कर सकता। मैं अपना सर्वस्व गोपियोंके दुकूल चुरानेवाले बाल-गोपालके चरणकमलोंमें अर्पण कर चुका हूँ। अस्तु! अब तुम उसी वरको वरण करो जिसे तुम्हारे पिताने निश्चित किया है।

कात्यायनी—ऐसा मत कहिये। क्या आपका उपदेश सुनकर भी विवाह करनेकी लालसा बनी रह सकती है। गुरुदेव! अब तो उस गोपीवल्लभ, मनहरण चितचोरसे मेरा भी परिचय करा दीजिये। मैं उन्हींको वरण करना चाहती हूँ। क्या यह सम्भव है?

बोपदेव—क्यों नहीं? तू सर्वथा इसके योग्य है। तू तो ऋषि दुर्वासाकी 'कृत्या' है, उनके तपकी विभूति है। मुनिने जब भक्तराज अम्बरीषपर तेरा प्रयोग किया था और बड़े वेगसे तू राजाको भस्म करने चली थी तब हरि-प्रेरणासे सुदर्शनने तेरी इतिश्री कर डाली थी। भक्तके ऊपर आक्रमण करनेके कारण ही तू इस मर्त्यलोकमें पतित हुई। अस्तु, हे श्रीविद्यास्वरूपिणी! अब अपने स्वरूपको चेत जा। अपना तामसी चोला उतारकर फेंक दे। टुक, इस सृष्टिके परे उस लोकमें चल जहाँ विरजाकी धारा लहर मार रही है।

कात्यायनी मुनिके चरणोंपर पड़ी आँसुओंसे चरणोंको पखारने लगी। करुणाकी धारा बह चली। सिसकियाँ बँध गयीं। उसकी दशा देखकर उसके पिता भारवि घबरा गये। वात्सल्यरस उमड़ आया।

इतनेमें एक अपूर्व दृश्य उपस्थित हुआ। दीवारमें बने आलेके ऊपर अर्द्धचन्द्राकार दिव्यालोक प्रतिष्ठित हो गया। इसको सबने देखा, परन्तु कात्यायनीको उसमें मुरलीमनोहरकी झाँकी भी देख पड़ी। वह छवि जब उसके नयनोंसे प्रविष्ट होकर हृदयमें बस गयी तब वह दिव्य दृश्य अदृश्य हो गया। उसकी आँखें बन्द हो गयीं। उस महाछविको देखकर फिर और किसको देखें—इसी विचारसे आँखें बन्द हो गयीं और खुलना नहीं चाहतीं। इसलिये भी कि कदाचित् वह छवि जो हृदयमें बस गयी है उन्हीं नयनोंके मार्गसे लौट न जाय। उसकी ऐसी दशा देखकर मुनिराज चुपके-से उठकर अपने आसनपर चले गये। भारवि महात्माको कुछ दूरतक पहुँचानेके लिये गये और हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करके लौट आये।

(३)

आँखोंमें अब नींद कहाँ ? अब स्वप्नके दृश्य स्वप्न हो गये । हृदय-मन्दिरकी ऐकान्तिक पुजारिन कात्यायनी माधवकी सेवा-पूजा बड़े भावसे करती हुई उसीमें मग्न हो गयी । भूख-प्यास विदा हो गयी । बोलना भी बहुत ही कम । अस्तु, प्रेमाभक्तिके सब लक्षण उसमें दृष्टिगोचर होने लगे ।

प्रेमलक्षणा षट् अहै, प्रिय उसास, दृगपात ।
स्वप्नहीन, मुखपीत अरु, लघु भोजन, अरु बात ॥

सुखसरसायन सावनमें वह सकुटुम्ब वृन्दावन पहुँची, वहाँ पहुँचते ही उसके हृदयमें बसी हुई झाँकी अदृश्य हो गयी । उसका हृदय-मन्दिर सूना हो गया । वह विरहकी चोट खा गयी । विरह ऐसा समुद्र है जिसका कहीं ओर-छोर नहीं । उसको पारकरना असम्भव है । विरहिणी कात्यायनी यमुनातटपर बैठी हुई आँखोंकी तपन बुझा रही थी । किसीने पीछेसे कहा—

सुरति जगावै जीवका, बिरह मिलावै पीव ।

इसे सुनते ही चौंककर जब उसने पीछे फिरकर देखा तो गुरुदेव बोपदेवजीको देखकर प्रसन्न हो गयी । चरणोंपर गिर पड़ी । मुनिराजने पूछा—'वत्से ! क्या हाल ?' उसने उत्तर दिया । 'क्या कहूँ, वह नटवरनागर मेरे हृदयसे निकलकर अपनी प्यारी पुरीमें, प्रिय कुञ्जोंमें जाकर छिप गया । कहाँ ढूँढ़ूँ, कहाँ पाऊँ ? आप भले मिल गये । हे मेरे कर्णधार ! इस डूबती-उतराती नैयाको विरह-सागरसे पार लगा दीजिये ।'

बोपदेव—भद्रे ! उस दिन तुझे प्रेम-मन्त्र दिया था । अब आज तुझे तारक-मन्त्र प्रदान करता हूँ । बिना इसके विरह-सागरको पार नहीं किया जा सकता । वह तारक-मन्त्र 'राम' नाम है । अर्द्धचन्द्रपर विन्दुके समान जो मुरलीधरकी झाँकी तुझे प्रेम-दीक्षाके समय प्राप्त हुई थी वह तारक ही है । अस्तु, तू राम-नामकी रटन लगा, वह झाँकी दूर नहीं है; तेरा शून्यमन्दिर फिरसे बस जायगा ।'

इस उपदेशका गहरा प्रभाव पड़ा । श्रीराम-नामके उच्चारणमात्रसे उसकी हृदय-तन्त्री बज उठी । सप्त चक्र खुल गये और सभी चक्रोंमें ध्येय मूर्त्तिके दर्शन हुए । वह कृतार्थ हो गयी ।

देवी कात्यायनी द्वादश वनोंकी परिक्रमा करने चलीं । हृदयमें वही दिव्य झाँकी, आँखोंमें प्रेमाश्रु, मुखसे भगवद्-गुणगान करती हुई जाती थीं । उनका स्वर बड़ा ही मधुर था । गानकलामें वह निपुण थीं । द्विमिलवनमें एक जगह बैठकर प्रेमोन्मत्तदशामें प्रलापालाप करने लगीं—

भज गोविन्दं राधासहितम् ।
× × ×
वैषम्यक्लेशहारी स्फटिकगिरिशिलामलः ।
× × ×
शङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा सर्वलोकशरण्यः ॥
× × ×

इस प्रेमालापमें इतनी आकर्षणी सत्ता थी कि वनके वृक्ष लतासहित उस आलापमें स्वर भरने लगे । उनकी जडता जाती रही । देवीने इसका अनुभव किया और गान समाप्त करके उन्होंने अपना वस्त्राभूषण उतारकर पुरस्कार-स्वरूप उन लता-वृक्षोंको पहना दिया । क्योंकि भगवद्गुण-गानके समय उन्होंने वाद्यका काम किया था । प्रेमकी उन्मत्त दशामें जड सृष्टि भी चेतन-सी प्रतीत होती है । तामसिक विकार छँट जाता है और सात्त्विकता निखर आती है । वह ब्रह्म, जो चराचरमें ओतप्रोत है, प्रेमीके सामने निरावरण होकर प्रदर्शित होता है । तृणसे लेकर तालतक सब उस प्रेमीकी आज्ञाका पालन करते हैं—संकीर्त्तनानन्दमें उस प्रेमीके साथ हिल-मिल जाते हैं । गोस्वामी नाभाजीने अपने भक्तमालमें कात्यायनीके इसी चरित्रको लेकर प्रेमाभक्तिकी मर्यादा स्थापित की है ।

कात्यायनिके प्रेमकी, बात जात कापै कही ।
मारग जात अकेल, गान रसनाजु उचारै ।
ताल मृदंगी बृच्छ, रीझि अंबर तहँ डारै ॥
गोपनारि अनुसारि गिरा गदगद आवेसी ।
जग-प्रपंचते दूरि अजा परसै नहि लेसी ॥
भगवान रीति अनुरागकी संत साखि मेली सही ।
कात्यायनिके प्रेमकी, बात जात कापै कही ॥
(भक्तमाल, छप्पय १२७)

[श्री 'कात्यायनी'जीके प्रेमकी बात किससे कही जा सकती है । आपकी यह दशा थी कि अकेली मार्गमें चलती हुई सरस रसनासे प्रभु-सुयश गाती ऐसे प्रेमावेशमें छक जाती थीं कि जो वृक्षोंमें पवन लगनेसे शब्द होता था

उसको जानतीं कि ये मेरे गानके साथ मृदङ्गादि बाजे बजाते हैं; इससे उनके ऊपर रीझके अपने वस्त्र-भूषण दे डाला करती थीं। आपका श्रीकृष्णचन्द्रजीमें गोपवधूजनोंके समान ही प्रेम था। प्रभुके गुणानुवाद करनेमें अनुराग-के आवेशसे वाणी गद्गद हो जाती थी। आपके चित्तमें जगत्-प्रपञ्चका भान नहीं था और मायाका स्पर्श लेशमात्र भी नहीं। श्रीकात्यायनीजीके भगवत्-अनुरागकी रीति देख सन्तजनोंने यही ठीक किया कि बस अनुराग इसीका नाम है।—श्रीभक्तिसुधाविन्दुस्वाद]

अस्तु। उस दिन द्विमिलवनकी विचित्र छटा थी। मानो देवी कात्यायनीके लिये अपूर्व नायकद्वारा विशेष आयोजना हुई थी। प्रकृतिकी सम्पूर्ण शक्तियोंने मिलकर काम किया था। राकारजनी अपने साज और सामानके साथ शोभायमान थी। तारकावली उदित थी और निशानाथ चन्द्रमा ? यह तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कामने क्रुद्ध होकर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया हो; प्राची दिशासे अग्निका गोला आकाशमें चढ़ता हुआ जान पड़ता था। विरहिणीके ऊपर इस निर्दयताके साथ ऐसे आघात! अस्तु, मयङ्क ज्यों-ज्यों आकाशमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने लगा त्यों-त्यों अमृतके कण रश्मियोंद्वारा स्रवित होकर वनकी वनस्पतियों—द्रुमों, किशलयों, दलोंको अनुप्राणित करने लगे; प्रत्येक स्फटिकशिलापर शीतकर अनेक रूप धारणकर आनन्द लूट रहा था। ऐसी अवस्थामें विरहिणीकी क्या दशा होगी, इसको कोई रसिक ही समझ सकता है। रसिकराज श्रीव्रजचन्द्रजीने पहले अग्रवर्तिनी सखीको भेजकर कात्यायनीके बिखरे हुए केशोंको सँवारकर जूड़ा बँधवाया और स्वयं ताग-पाट लिये हुए सामने पहुँचे। प्यारीकी माँग करकमलोंसे भरकर सोहाग धारण कराया और प्रियाजूने अपनी सहेलियोंके साथ मङ्गलगीत गाये। अग्रवर्तिनी हरिस-खम्भ बनी और भाँवरें फेरी गयीं। यह सब कृत्य श्रीजूके उत्साहसे सम्पन्न हुए। कात्यायनी अपने सौभाग्यपर आश्चर्य मानती हुई प्रियतम प्रभुके चरणकमलोंको पकड़कर बोली—'प्राणनाथ! आपने इस दासीको अपनाया, प्रतिज्ञाकी सर्वोच्च विधि सम्पन्न करके सनाथ किया; यह गुरु-कृपाका फल है अथवा विशेष अनुकम्पाका परिणाम है, यह मैं न समझ सकी।' भगवान् बोले—'प्यारी! यह सब श्रीजूकी लीला है। विभूति-शक्तिको आह्लादिनी-शक्तिने कृतार्थ किया।' यह कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और साथ ही सम्पूर्ण समाज। देवी अपने मनमें सोचने लगीं कि यह क्या हुआ, मैं स्वप्न तो नहीं देखती रही। दिव्य सोहाग, ताग-पाट-सहित माँगको देखकर सोचतीं कि स्वप्न नहीं है, वस्तुतः ऐसी घटना घटी है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। महाशक्तिकी उदारता, कृपालुता और शृङ्गारपटुताकी सराहना करती हुई देवीने फिर लताओंको भूषण उतार-उतारकर पहनाये कि मङ्गलगीतमें, मण्डप-पुनीतमें, परिणयकी रस-रीतिमें इनका विशेष साहाय्य और अधिकार था।

इस प्रकार प्रकृष्ट प्रेमरसमें सराबोर, उदात्त-भावावेशमें सुधि-विभोर, उस चतुर चितचोरसे ठगी और मधुर-मदभरी उसकी त्रैलोक्यमोहिनी छवि-सुरामें पगी हुई देवी कात्यायनी वृन्दावनकी उपवन-कुञ्जोंमें फिरा करतीं। कामवनमें पहुँचते ही विरहाग्नि धधक उठी। प्रीति-रीति-पालनमें प्रवीण बाँकेबिहारीजू प्रियाजूके सहित एक लता-मण्डपमें, कुञ्ज-विहारमें तत्पर दृष्टिगोचर हुए। उस अपार शोभाको देखकर देवी दौड़ पड़ीं। युगलसरकारने स्वागतपूर्वक उन्हें अपनाया, अङ्गरागसे भूषित किया और सदा-सर्वदाके लिये उन्हें नित्य-विहारमें सम्मिलित कर लिया।

धन्य देवी कात्यायनी! धन्य तुम्हारा सौभाग्य और धन्य तुम्हारे माता-पिता !!!

शिव और शक्ति

(लेखक—श्रीअनन्त शङ्कर कोल्हटकर बी० ए०)

'शक्ति' सिद्धिका साधन है। हम सभी उसे चाहते हैं जरूर, पर समझ नहीं पाते कि 'शक्ति' शिवहीका प्रकट रूप है। शिव हैं विश्व-मङ्गलके विधाता। तुम भी सर्वभूतहितके लिये मन, वाणी, कर्मसे सदा प्रयत्नशील रहो; 'शक्ति' अवश्य ही तुम्हारी सहायता करेगी।

शक्तिका रहस्य

(लेखक—डा० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर)

संसारमें किसी भी काममें हाथ डालनेके पहले अपनी शक्तिका पता लगा लेना चाहिये, तभी हम संसारमें किसी भी विभाग या शाखामें सफलता प्राप्त कर सकते हैं। एक विद्वान्ने कहा है—Weaklings have no place in the world. 'कमजोरोंके लिये संसारमें कहीं स्थान नहीं है।' हमको अपनी पूरी शक्तियोंका ज्ञान नहीं है, इसीलिये हम संसारको भाररूप मालूम हो रहे हैं और हमारा कहीं ठिकाना नहीं है। क्योंकि हमको स्वयं अपनी शक्तिमें विश्वास नहीं है। परमात्माने किसीको निर्बल या बलवान् नहीं बनाया है। तुम अपनी अवस्थाको जैसी चाहो वैसी बना सकते हो। तुम कहोगे कि हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि, महात्माओंमें शक्तियाँ और सिद्धियाँ थीं। इन बातोंके राग अलापनेसे उन्नतिकी तरफ तुम कुछ भी नहीं बढ़ सकते। उनमें जो सिद्धियाँ और शक्तियाँ थीं वे तुममें भी हैं और तुम भी अपनी अपार उन्नति कर सकते हो और महात्मा बन सकते हो।

प्रयत्न करो, पुरुषार्थ करो, परिश्रम करो, तप करो, और तुम्हारे भीतर जो शक्तिका भण्डार पड़ा है उसे खोल दो। तुम्हारे भीतर एक ऐसी शक्ति विद्यमान है कि तुम उसकी सहायतासे जो कुछ चाहो सो कर सकते हो।

कोई इसे पराशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति कहते हैं। कोई चितिशक्ति कहके पुकारते हैं; कोई जगन्माता, जगदम्बा, जगज्जननीके नामसे स्मरण करते हैं।

यह आनन्दमयी चितिशक्ति उपास्यकी ही शक्ति है। उपासकको बिना इस शक्तिकी सहायताके परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'—शक्तिहीनको न आत्माकी और न परमात्माकी ही प्राप्ति हो सकती है। इसलिये शक्तिकी उपासना करो। चितिशक्ति पूर्ण प्रेमस्वरूप है; चितिशक्ति सत्यस्वरूप है; चितिशक्ति सर्वव्यापक है, चेतनमय है।

चितिशक्तिकी प्रसन्नताके लिये तुम्हें बलिप्रदान करना होगा किन्तु हिंसात्मक बाह्य-बलि नहीं। अपने अहङ्काररूपी मस्तकको प्रेमरूपी तलवारसे पृथक्‌करके उनके चरणकमलोंमें समर्पण करो। प्राणिमात्रपर प्रेम करो। चितिशक्ति जगज्जननी जगदम्बा है; चितिशक्ति तुच्छ-से-तुच्छ कीट और महान्-से-महान् प्राणी ब्रह्मातकमें, सबमें है—सर्वप्रिय है। क्योंकि उसका निवास सब प्राणियोंमें है, सब उनकी प्रिय सन्तति हैं। सबकी रक्षा और पालन अपने ऊपर कष्ट लेकर कर रही है। चितिशक्ति प्रेमरूप है, चर-अचर प्राणिमात्रमें व्यापक है।

भूतमात्रमें चितिशक्ति है, इसलिये सबको आत्मवत् समझो। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, रङ्क-राजा, साधु या पापी, मूर्ख या विद्वान्, सबके प्रति प्रेमकी धारा बहाओ। शुद्ध विचारोंको ही निरन्तर अन्तःकरणमें उदय होने दो। अशुद्ध विचार पास भी न फटकने पावे। शुद्ध विचार और शुद्धाचरण ही माँको प्रसन्न करनेका उपाय है। सद्विचार करो, शुद्धाचरणका पालन करो; अगर माँको प्रसन्न करना है, शुद्ध विचार अखण्ड हृदयमें जाग्रत रक्खो।

शक्तिका सञ्चय करो, शक्तिकी ही उपासना करो; शक्ति ही जीवन है, शक्ति ही धर्म है, शक्ति ही सत्य है, शक्ति ही सब कुछ है; शक्तिकी ही सर्वत्र आवश्यकता है। बलवान् बनो, वीर बनो, निर्भय बनो, साहसी बनो, स्वतन्त्र बनो और शक्तिशाली बनो।

तुम निरे मिट्टीके पुतले नहीं हो, हाड़-मांस और रक्तके थैले नहीं हो, निर्जीव मुर्देके समान नहीं हो, किन्तु एक सजीव शक्तिसम्पन्न चेतन आत्मा हो। तुम्हारे जीवनका उद्देश्य किसी विशेष उद्देश्यको पूर्ण करना है।

प्रत्येक मनुष्यमें दैवी-शक्ति छिपी हुई है और वह सब कुछ कर सकता है। समस्त मानसिक और शारीरिक निर्बलताओंपर विजय प्राप्त करो और जीवनको आनन्दमय बनाओ। कोई निर्बल व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं हो सकता। शक्ति स्वयं ईश्वरका रूप है। यह शक्ति सर्वव्यापक है। यह शक्ति तुम्हारे भीतर गुप्त है। तुम इस शक्तिके बलसे अपनी परिस्थिति बदल सकते हो। तुममें शक्ति है। शक्ति तुम्हारे भीतर-बाहर सर्वत्र मौजूद है।

शक्ति तुम्हारी जननी है, तुम्हारे शरीर और प्राणोंकी

जननी है। जगत्में और तुम्हारे शरीरमें जो कुछ जीवन है—चेतन है, उस सबकी वही दयामयी जननी है। तुम यह कल्पना करो कि तुम सदा शक्तिमें ही रहते हो, शक्तिमें ही चलते हो और शक्तिमें ही जीवित रहते हो। आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सब तरफ शक्ति-ही-शक्तिको देखते रहो।

तुम अपनी मनःस्थितिको उस महान् शक्तिसे संयुक्त कर लो जिससे सब शक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं।

शक्तिकी प्रार्थना

रात्रिके पिछले हिस्सेमें अपने बिस्तरसे उठ बैठो और शान्त होकर एक दिव्य ध्वनिको, जो सारे संसारमें गूँज रही है, ध्यानसे सुनो। यह ध्वनि तुम्हारे हृदयमन्दिरमें हो रही है। हृदयमन्दिर ही चितिशक्तिका निवासस्थान है। अङ्ग-प्रत्यङ्गको ढीला करके शान्ति और स्थिरतासे किसी भी सुखासनसे बैठ जाओ और नीचे लिखी हुई प्रार्थना करो—

प्रार्थना

दयामयी जननी! आनन्दमयी, स्नेहमयी, अमृतमयी माँ!! तुम्हारी जय हो। माँ! जिस प्रकार बिना पंखके पक्षी अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखसे पीड़ित बछड़े अपनी माँकी बाट देखते रहते हैं, वैसे ही माँ! मैं तुम्हारी बाट देखता रहता हूँ। तुम जल्दीसे आकर मुझे दर्शन दो। तुम मेरे मनमें, शरीरमें व्याप्त हो। मैं तुम्हें समझ सकूँ, तुम्हारा दर्शन कर सकूँ, ऐसी बुद्धिशक्ति मुझे प्रदान करो।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥

'हे माँ! तुम्हारा स्मरण करनेसे समस्त जीवोंके भयका नाश होता है और शान्त-चित्तसे स्मरण करनेसे अत्यन्त शुद्ध बुद्धि तुम देती हो। दरिद्रता, दुःख और भयका नाश करनेवाली तुम्हारे सिवा कौन है। सबोंके उपकारके लिये तुम्हारा चित्त सदा दयासे सुकोमल रहता है।'

इस प्रकार इस मन्त्रका अनेक बार पाठ करके पूर्ण श्रद्धाके साथ भगवतीका ध्यान करके फिर सो रहो। प्रातःकाल उठते वक्त फिर उस शक्तिका चिन्तन करो, थोड़ी देर ध्यानमें मग्न बैठे रहो। इस साधनसे तुम्हें विलक्षण बातें मालूम होंगी।

इसका सिद्धान्त यह है कि समस्त विश्वका सञ्चालन और ज्ञान जिस महत्तत्त्वद्वारा हो रहा है उसे गुप्त मन या सर्वव्यापक मन कहते हैं। उसको चलानेवाली शक्ति है। प्रतिदिन इस शक्तिकी श्रद्धाके साथ उपासना करनेसे शक्ति तुम्हें प्रेम करेगी, चाहेगी। तुम भूल भी जाओ, माँ तुम्हें कभी नहीं भूलती।

इस विधिसे एक मास साधन करके देखो और तुम्हें एक मासमें ही विलक्षण बल और शक्ति मालूम देगी।

जिन-जिन कामनाओंको पूर्ण करना हो उनको माँसे कह दो और अनन्य चिन्तन करो, तत्काल तुमको उन पदार्थोंकी प्राप्ति होगी।

विद्या, धन, बल, ऐश्वर्य—ये सब इस पराशक्तिसे ही उत्पन्न होते हैं और शक्तिका साधन करनेसे अवश्य फलसिद्धि होती है। इस महाशक्तिकी उपासनासे तुममें आश्चर्यजनक शक्तिकी जागृति होगी और तुम असाध्यसे भी असाध्य कार्यको साध्य कर सकोगे। संसारमें जीवित रहना हो तो शक्ति-सम्पादन करो और यह समझते रहो कि तुम माँकी गोदमें सदैव सुरक्षित हो और समग्र शक्तियोंका भण्डार तुम्हारे अन्दर है।

शक्ति-महिमा

(लेखक—साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस')

विष्णु विधि शिव संग घूमत-फिरत साथ, तेरे बिन उन घरी एक नाहिं भाई है।
हारि गये देव, दैत्य-दानव प्रबल भये, दुष्टनकी जीति देखि हिये भीति छाई है॥
कीन्हो है पुकार अंब नेकु ना बिलंब कीन्हे, सिंह-वाहिनी भवानी वाहिनी नसाई है।
पकरि-पकरि सब नीचनको मारि डारे, सेये बिन शक्तिके न काहू शक्ति पाई है॥

माँ ! ओ माँ !!

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०)

जगज्जननी महामाये ! सृष्टि और प्रलय, जीवन और मृत्युके सूत्रको अपने हाथोंमें लेकर जब तुम एक बार अट्टहास करती हो तो उसमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड बनते और बन-बनकर मिट जाते हैं। माँ, सृष्टि तुम्हारा लास्य और प्रलय तुम्हारा ताण्डव है। तुम कराल काल हो, महामृत्यु हो । सृष्टिके पूर्व केवल तुम्हीं थीं और प्रलयके अनन्तर तुम्हीं रह जाती हो !

काली, दुर्गा और शक्ति तुम्हारा ही नाम है। 'विनाशाय च दुष्कृताम्' तुम्हारा व्रत है। रक्तबीजोंसे जब संसारका पुण्य त्राहि-त्राहि करने लगता है, जब धर्मको कहीं शरण नहीं मिलती तब देवि ! तुम खप्पर और करवाल लेकर अवतार लेती हो ! ओ माँ ! तुम्हारा यह रूप कितना भीषण, कितना रौद्र है ! माँ ! तुम्हारा यह विकट रण-ताण्डव ! चण्डिके ! दुर्गे ! माँ कालिके ! तुम्हारा यह रूप देखकर तो हृदय भयसे थर-थर काँप रहा है ! यह भीषण रौद्र रूप ! घने-घने काले केश खुले हुए हैं । काला डरावना भैरव वेश ! मस्तकपरके नेत्रसे क्रोधाग्नि धधक रही है। उससे प्रखर दाहक ज्वाला धाँय-धाँय कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानों समस्त संसार इस क्रोधाग्निमें भस्म हुआ जा रहा है ! दुर्गे ! तुम्हारे इस तीसरे नेत्रकी ज्वाला !! तुम्हारी और भी दोनों लाल-लाल आँखोंसे चिनगारियाँ बरस रही हैं। उससे कराल किरणें फूटी निकलती हैं। माँ भैरवि ! तुम्हारे मस्तकपर सिन्दूरका जो बड़ा टीका लगा है वह भी कितना भयावना है !

और गलेकी मुण्डमाला ! उफ़ ! इतना भैरव, इतना प्रकुस ! माँ ! तुम्हारा चन्द्रहार नरमुण्डमालका क्यों ? यह दुहरी-तिहरी मुण्डमाला । कितना भयानक, कितना बीभत्स ! उन नरमुण्डोंके मस्तकपर तुमने श्मशानका भस्म लगाकर इंगुरकी बेंदी लगा दी है। माँ ! यह कैसा विकराल प्रलयङ्कर रूप ! उफ़ ! तुम्हारी लाल-लाल जीभ छातीतक लटक रही है और उससे खून टप-टप चू रहा है। दाहिने हाथमें करवाल है और बायें हाथमें खप्पर ! करवाल भी खूनसे लथपथ है। और तुम्हारा यह खप्पर ! रक्तसे भरा खप्पर ! ना, ना; यह खप्पर कभी भी भरेगा ? जब तुम अट्टहास करके शत्रुपर झपटती हो उस समय माँ ! इस खप्परके रक्तमें भी एक आन्दोलन उठ खड़ा होता है। उफ़ ! तुम्हारी प्यासी तलवार ! तुम्हारा लोहू-भरा खप्पर ! तलवारकी प्यास न बुझेगी, न यह खप्पर ही कभी भर पायेगा। सिंहवाहिनी माँ ! जब तुम सिंहके समान असुरोंपर झपटती हो उस समय तुम्हारे मुक्त कुन्तल फहरा उठते हैं—आँखोंसे आग बरसने लगती है। लपलपाती हुई जीभ—असुरोंके रक्त पीनेकी अभ्यस्त जीभ ! अनादि कालसे तुम असुरोंके महानाशमें संलग्न हो; पर तुम्हारा खप्पर न भरा, करवालकी प्यास न बुझी, रक्त पीनेसे तुम्हारा जी न भरा ! पियो, पियो भगवती भैरवि ! जगज्जननी दुर्गे ! असुरसंहारिणी कालिके ! पियो, पियो रक्तबीजोंका लोहू ! उफ़ ! यह कितना रौद्र, माँ ! जब तुम अपने अधरोंको खप्परसे सटाकर रक्त पीने लगती हो—उस समय, उस समय जब एक क्षणके लिये अपने उन्मद नेत्रोंको ऊपर उठाकर नेक मुसका देती हो !! फिर खप्परमें मुँह सटाकर जब उसमें अपनी कराल काल-स्वरूपिणी लपलपाती हुई जिह्वाको डुबोती हो !! माँ चामुण्डे ! पियो, पियो, असुरोंके रक्तको पियो !

और माँ ! तुम्हारा ताण्डव ! प्रलयकी छातीपर तुम्हारा महाविकराल ताण्डव ! श्मशान-भूमिमें तुम्हारा प्रलय-ताण्डव और उसका रौद्र रूप ! उस समय तुम खप्परको सिरके ऊपर उठा लेती हो और दाहिने हाथका करवाल आकाश चूमने लगता है। तुम्हारे केश हवामें खड़े हो जाते हैं। दोनों नेत्रोंमें रक्त आभा होती है और तीसरेसे प्रलयाग्निके क्रोध-स्फीत स्फुलिङ्ग बरसने लगते हैं। गलेकी मुण्डमाला पदसञ्चालनकी गतिके साथ कभी कटिके दक्षिण-पार्श्वको और कभी वाम-पार्श्वको स्पर्श करती है। तुम्हारी लपलपाती हुई लाल जीभ ऊपरकी ओर मुड़ती है और तुम खूब ज़ोरसे अट्टहास करके नाच उठती हो ! उस समय तुम्हारे पाँवके पायजेब और घुँघरू झमाझम बोल उठते हैं और तुम उन्मत्त रणचण्डिकारूपमें अपने अलस-उन्मद-

ताण्डवमें सुध-बुध खोकर नाचने लगती हो। उस समय माँ! समस्त कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष—तुम्हारी नूपुर-ध्वनिमें अपनी ध्वनि मिलाकर नाच उठते हैं। सब दिशाएँ, नर-नाग, किन्नर-गन्धर्व—तुम्हारे चरणोंमें भीत-भावसे मस्तक टेक देते हैं!! माँ, ओ माँ!

× × ×

माँ! अपनी ज्वाला आप ही सँभालो। यह ज्योति मुझसे सही नहीं जाती, दयामयी जननी! अपना रौद्र रूप समेट लो। माँ भैरवि! मुझे अपने सौम्य रूपकी भी झाँकी लेने दो; माँ! दयामयी माँ!

माँ! तुम्हारा यह सौम्य, शान्त, पावन, कोमल, करुण-प्रेमिल रूप! महामाये! महादुर्गे! माँ शक्ति! तुम्हारा यह स्नेहिल रूप कितना पावन, कितना सौम्य है!

माँ सरस्वती! माँ, ओ माँ! तुम्हारा यह मङ्गलरूप! तुम्हारा यह कल्याणरूप! तुम्हारी यह स्निग्ध शीतल-कान्ति! अह! हृदय श्रद्धा और प्रेमसे तुम्हारे चरणोंमें नत है।

माँ! तुम्हारा यह हृदयहारी रूप! श्वेत-पद्मकी सुविकसित पँखुड़ियोंपर तुम सुखासीन हो। तुम्हारा वाहन हंस जलमें केलि-कुरेल कर रहा है। दिव्य-वीणाके स्वर्गीय तारोंपर तुम्हारी कोमल-कोमल अँगुलियाँ नाच रही हैं। एक हाथमें वेद है, और दूसरे हाथकी अभय-मुद्रा। धपधपाती हुई स्निग्ध-कोमल धवल-कान्ति! कितनी भव्य, कितनी चित्ताकर्षक पावन मङ्गल-मूर्त्ति है। हृदयमें पावनताका महासमुद्र उमड़ रहा है, प्राणोंमें तुम्हारी स्निग्ध-कोमल मधुर कान्ति प्रेम भर रही है। तुम विद्या, बुद्धि, विवेक और ज्ञानकी देवी हो! कैसा मङ्गलमय है तुम्हारा रूप—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

और माँ! महालक्ष्मी भी तो तुम्हीं हो। सकल ऋद्धि-सिद्धिकी अधिष्ठात्री, समस्त वैभवकी जननी, समस्त सुख-सुहाग-ऐश्वर्यकी दात्री माँ! रक्त-कमलपर तुम्हारे कोमल चरण समासीन हैं। कैसा सुन्दर रूप है। लाल रेशमी साड़ी पहिने हुए हो। एक हाथमें कमल है, दूसरेमें शङ्ख। और अभयदान दे रही हो तीसरे हाथसे। तुम्हारी आँखोंसे कैसी स्निग्ध-द्युति छलक रही है—और सरोवरमें खिले हुए कमलोंके बीच एक श्वेत गज अपनी सूँड़में कमलकी माला लेकर तुम्हारे चरणोंमें समर्पित करनेके लिये उत्सुक है! इस रूपमें समस्त विश्व, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड तुम्हारे चरणोंमें अपना हृदय-कमल समर्पित कर रहे हैं। माँ नारायणी! तेरी जय हो! जय हो!!

× × ×

देवि! जगज्जननी महामाये! तुम्हारा सरस्वती और लक्ष्मीरूप कितना सौम्य और कितना स्निग्ध है। जी चाहता है, अपनेको चढ़ा दूँ इस मधुर-मनोहर देवीके पाद-पद्मोंपर। माँ! तेरी झाँकी बनी रहे—इससे अधिक इस आतुर हृदयके लिये क्या चाहिये?

ऐं! जगज्जननी महासती पार्वती तुम्हारा ही नाम है। तुम्हींको न त्रिभुवनमोहन शङ्करने वरा था! माता पार्वती! तुम्हारे पावन चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम हैं। देवताके साधन-में तुम्हारी कठोर तपश्चर्या! 'बरौं संभु न त रहौं कुँवारी' की तुम्हारी भीषण प्रतिज्ञा और उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये जीवनको तपस्याकी आगमें झोंककर, निरावरण होकर, सर्वशून्य होकर अपने प्राणनाथके चरणोंमें सर्वात्मसमर्पण!

प्रेमकी कैसी विकट परीक्षा थी। सप्तर्षि आये और तुम्हें विचलित करनेकी चेष्टा करने लगे। उस समय तुमने जिस अविचल श्रद्धा, अगाध प्रेम और अटूट भक्तिका परिचय दिया था उसके जोड़का संसारमें नहीं मिला। आज भी स्त्रियाँ माँगमें सेंदुर देते समय सतीत्वके आदर्शरूपमें माता गौरा-पार्वतीका ध्यान करके उनकी माँगमें सिन्दूर सभक्ति डाल देती हैं। आज भी संसारमें जहाँ सतीत्वकी बात आती है वहाँ, माँ अन्नपूर्णे! परमकल्याणि देवि! तुम्हारा ही नाम गर्वके साथ लिया जाता है। सतीत्वके आदर्श-रूपमें तुम्हारा गुणगान समस्त विश्व कर रहा है! और इसी प्रेमने तो तुम्हें शिवके चरणोंमें पहुँचाया।

माँ! तुम्हारा कैसा मङ्गलरूप है। कैसा अपूर्व तुम्हारा परिवार है और कैसा अपूर्व हैं उनके वाहन! मेरे सम्मुख जो मूर्ति है वह तो बहुत ही आह्लादकारी और वात्सल्यपूर्ण है। तुम मङ्गलमूर्ति शिशु गणेशको गोदमें लेकर सोनेके कटोरेमें रक्खी हुई मिठाई खिला रही हो और गणेशजी कभी-कभी अपनी सूँड स्वयं कटोरेमें डुबा देते हैं। भगवान् शङ्कर यह देखकर मुसका रहे हैं। माँ! तुम्हारे कोमल